पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज
का जीवन-चरित्र

परिष्करण-कर्त्ता

श्री जसराज चौपड़ा, न्यायाधीश

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, बीकानेर (राज.)

❑
पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का जीवन-चरित्र

❑
प्रथम संस्करण के प्रयोजक :
जौहरी दुर्लभजी त्रिभुवन
मौरवी, जयपुर

❑
प्रथम संस्करण वि. सं. 1980, वीर सं. 2449
द्वितीय संस्करण 1993 ई.

❑
परिष्करण-कर्ता :
श्री जसराज चौपड़ा
न्यायाधीश, राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर (राज.)

❑
प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर-334 005

❑
मूल्य : तीस रुपये मात्र

❑
मुद्रक :
सांखला प्रिण्टर्स
सुगन निवास, चन्दन सागर
बीकानेर-334 001

नोट : इस पुस्तक का परिशिष्ट भाग अवश्य देखें।

प्रकाशकीय

साधुमार्गी की इस पवित्र-धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये बड़े-बड़े आचार्यों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भगवान महावीर के पश्चात् अनेक बार आगमिक धरातल पर क्रांति का प्रसंग आया है। इस क्रांति के द्वारा श्रमण संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखे जाने का प्रयास किया जाता रहा। ऐसी क्रांति की धारा में क्रियोद्धारक महान आचार्य श्री हुक्मीचंद जी म.सा. का नाम विशेष रूप से उभर कर सामने आता है। तत्कालीन युग में जहां शिथिलाचार व्यापक तौर पर फैलता जा रहा था, शुद्ध साधुत्व की स्थिति विरल ही परिलक्षित होती थी। बड़े-बड़े साधु भी मठों की तरह उपाश्रयों में अपना स्थान जमाये हुए थे। चेलों के पीछे साधुता बिखरती चली जा रही थी। ऐसे युग में आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म.सा. ने उपदेशों से नहीं अपितु अपने विभुह एवं उत्कृष्ट संयममय जीवन से जनमानस को प्रभावित किया था। तप के साथ क्षमा एवं उत्कृष्ट संयम के साथ उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान का संयोग दुर्लभ ही देखने को मिलता है। किन्तु आचार्य प्रवर में ऐसे दुर्लभ संयोग सहज सुलभ थे। आपके जीवन का ही प्रभाव था कि हजारों स्त्री-पुरुष आपके चरण सानिध्य को पाने के लिये लालायित रहते थे। 'तिन्नाणं तारयाणं' के आदर्श आचार्य प्रवर ने योग्य मुमुक्षुओं को दीक्षित किया और देशव्रती बनना चाहते थे उन्हें देशव्रती बनाया। इस प्रकार सहजरूप से ही चतुर्विध संघ का प्रवर्तन किया।

वर्तमान में समता विभूति समीक्षण ध्यानयोगी धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश के सानिध्य में साधुमार्गी की वह धारा निरन्तर प्रवाहमान है।

साधुमार्गी जैन संघ सत्साहित्य एवं जीवन विकासोन्मुखी कृतियों के प्रकाशन के लिये कृत-संकल्प है। इसी दिशा में प्रस्तुत कृति 'पूज्य श्री श्रीलाल जी म.सा. का जीवन-चरित्र' जिसकी प्रथम आवृत्ति पूर्व में विक्रम संवत 1980 में जौहरी दुर्लभजी त्रिभुवन मौरवी, जयपुर द्वारा प्रकाशित हुई थी। किन्तु इस कृति के उपलब्ध न होने तथा पाठकों की अत्यधिक मांग को देखते हुए इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय किया गया किन्तु पूर्व प्रकाशित पुस्तक की भाषा प्राचीन होने से भाषा सम्बन्धी परिष्करण आवश्यक समझा गया।

इसके लिये स्थविर प्रमुख श्री प्रेममुनिजी म. सा. की प्रेरणा से श्रीमान् जसराज जी सा. चौपड़ा, न्यायाधीश, राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर (राज.) ने इस गुरुतर भार को ग्रहण करते हुए परिष्करण कार्य सम्पन्न किया।

स्थविर प्रमुख प्रेगगुनिजी जी म.रा. का प्रेरणा प्रदान कराने एवं 'आचार्य श्री श्रीलाल जी ग. सा. के जीवन-चरित्र' गें भाषा सम्बन्धी परिष्करण के लिये संघ माननीय जसराज जी सा. चौपड़ा के प्रति हृदय से आभार प्रकट करता है, जिनकी वजह से आचार्य श्री श्रीलाल जी ग. सा. का जीवन-चरित्र प्रकाशित करना संभव हो सका।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अर्थ सहयोग श्रीमती उगराव वाई मूथा, मद्रास की ओर से प्राप्त हुआ जिसके लिए संघ आभार प्रदर्शित करता है।

श्रीमती मूथा का संक्षिप्त परिचय अलग से दिया जा रहा है।

भवदीय

रिधकरण सिपानी	चम्पालाल डागा	पीरदान पारख
अध्यक्ष	मंत्री	संयोजक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

गुमानमल चोरड़िया	सरदारमल कांकरिया	धनराज वेताला
डा. नरेन्द्र भानावत	मोहनलाल मूथा	केशरीचन्द सेठिया

सदस्यगण, साहित्य समिति

परिचय

श्रीमती उमराव बाई जी मूथा का जन्म विक्रम संवत् 1989 माघ बदी 7 को वगड़ी (मारवाड़) में हुआ। आपके पिताश्री का नाम स्व. श्रेष्ठिवर्य श्री लक्ष्मीलाल जी धारीवाल तथा माता का नाम श्रीमती लक्ष्मी बाई था। श्रेष्ठिवर्य श्री लक्ष्मीलाल जी धर्मनिष्ठ सुश्रावक थे। हुक्म संघ के प्रति उनकी अनन्य श्रद्धा थी। स्व. आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. का चातुर्मास संवत् 2003 में हुआ था उस समय आपकी वजह से बगड़ी में धर्म ध्यान का खूब ठाठ लगा था।

उमरावबाई जी का विवाह मद्रास निवासी श्रीमान् विजयराज जी सा. मूथा के सुपुत्र श्री सम्पतराज जी मूथा के साथ सम्पन्न हुआ1 किंतु श्री सम्पतराज जी का 35 वर्ष की अल्पायु में ही स्वर्गवास हो गया।

संसार की नश्वरता का बोध पाकर आपने अपने जीवन को धार्मिक साधना की ओर लगाया तथा आदर्श श्राविका के रूप में चर्चित रही। तपाराधन में आपकी विशेष रुचि रही। आपने अब तक 8 मासखमण की तपस्या की है।

संघ सेवा में सदैव अग्रणीय रह कर समय समय पर मुक्तहस्त से उदारतापूर्वक दान देकर धन का सदुपयोग किया है।

पूर्व में भी संघ द्वारा प्रकाशित पुस्तकों (संत दर्शन आदि) में आपकी ओर से अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है।

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन में भी आपका अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है जिसके लिए संघ आपका आभारी है तथा विश्वास है कि भविष्य में भी इसी प्रकार से आपकी ओर से सहयोग मिलता रहेगा।

निवेदन

चरित्रनायक महामनीषी परम पूज्य 1008 स्वर्गीय आचार्यप्रवर श्री श्रीलाल जी महाराज
हब का जीवन-चरित्र मूल में गुजराती में लिखा हुआ है और अन्ततः उसका हिन्दी अनुवाद भी
ी के गुजराती लेखक भाई श्री दुर्लभ जी जौहरी ने किया था। यह बात आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा
वत् 1980 यानी आज से करीब 68-70 वर्ष पूर्व की है। तत्पश्चात् प्रथम तो यह पुस्तक
प्राप्य हो गयी और द्वितीय वर्तमान में प्रचलित हिन्दी, जिसकी लिपि देवनागरी है, उसमें उसका
नुवाद किया जावे ऐसा विचार परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर 1008 श्री नानालाल जी म. साहब के
शिष्य पंडितरत्न श्री प्रेममुनि जी महाराज साहब और उनके सहयोगी युवामुनि श्री जितेश मुनिजी
मस्तिष्क में आयी और उन्होंने 1980 के कोटा चातुर्मास में असीम अनुग्रह कर मुझे इस बात
लिए प्रेरित किया कि मैं कुछ समय निकाल कर इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद करूं एवं इसमें
नयानुकूल परिवर्तन व परिवर्धन करूं। उन्होंने इससे पूर्व इस सम्बन्ध में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती रतन
पड़ा से सम्पर्क साधा और उन्हें यह प्रेरणा दी कि वे मुझे इस कार्य के लिए तैयार करें। मुनिश्री
प्रवल प्रेरणा से और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि एक परम वैराग्यनिष्ठ क्रियोद्धारक एवं
शाल हृदय के महामनीषी का जीवन चरित्र समाज के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेगा, यह कार्य
रना मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसके पश्चात् जहां कहीं से सम्भव हो सकी, मूल पुस्तक
पलब्ध की गई और बावजूद सारी कठिनाइयों एवं कार्य के बोझ के मैंने इस कार्य को शुरू किया,
अन्ततः जयपुर में, जहाँ मैं विधि सचिव के पद पर तैनात था मेरे निजी सचिव श्री दमनदास
द्धानी के सहयोग से इस भागवती कार्य को पूर्ण किया। उसका एक बार पुनः वाचन, आवश्यक
शोधन व परिवर्द्धन कर इस पुस्तक की मूल हिन्दी अनुवाद की प्रति परम आदरणीय श्रद्धेय
008 श्री नानालाल जी महाराज साहब को अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी सम्मेलन, जो जलगांव
सन् 1986-87 में सम्पन्न हुआ था, उसमें उनको समर्पित की। परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर ने कृपा
र इस अनूदित प्रति को स्वीकार किया, मगर ऐसा लगता है कि कई वर्षों तक यह अनुवाद कहीं
ड़ा-पड़ा छपने हेतु प्रतीक्षारत रहा। मगर अन्ततः वह घड़ी भी आ पहुंची जब इस अनुवाद को
स्तक का रूप प्रदान किया गया और वह आज पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

महामनीषी-नरपुंगव श्रद्धेय आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज साहब स्वेच्छा से वैराग्य की
बल भावना से प्रेरित होकर श्रमण दीक्षा अंगीकृत करने के ज्वलंत प्रतीक हैं। कुछ लोगों को
ारिवारिक परिस्थितियों से, कुछ को सदमे से या व्यक्तिगत विपत्तियों से संसार की असारता का
ान होकर अथवा साधुओं की प्रबल प्रेरणा से वैराग्य का भाव उत्पन्न होता है। ऐसा भी देखा गया
कि परिवार में पहले से एक अथवा अनेक लोग दीक्षित हों, उस कारण से भी कुछ लोगों में दीक्षा
ा भाव जागृत हो जाता है। मगर जिन परिस्थितियों में यह वैराग्य का भाव पूज्य श्री श्रीलाल जी

महाराज साहब के जीवन में पला-पुसा व निष्पत्ति को प्राप्त हुआ, वह वर्तमान काल में अद्वितीय है। भगवान महावीर के जीवन काल में और उसके कुछ समय पश्चात् के उत्तरवर्ती काल में तो ऐसा वैराग्य का भाव आते देखा गया है। वर्तमान काल में, जहां एक व्यक्ति भरे-पूरे परिवार में रहता हो, परिवार सम्पन्न व स्नेहशील हो, उसको सभी तरह की सुख-सुविधाएं उपलब्ध हो, परिवार में जिसको स्नेह एवं प्रेम से ओत-प्रोत स्थान प्राप्त हो, जिसकी वैराग्य भावना को कुण्ठित अथवा निष्प्राण करने हेतु परिवार वालों ने एक सुन्दर कन्या से उसकी शादी कर दी हो, उसके बावजूद भी जो अपने स्वयं की प्रज्ञा एवं चरित्र की दृढ़ता के आधार पर पत्नी को छूने से भी मना कर दे, पत्नी द्वारा बात करने का प्रयत्न करने पर बात न करे, उसके द्वारा हठात् मिलने का प्रयत्न करने पर अन्य कोई रास्ता न देखकर मकान की छत से नीचे की मंजिल पर कूद पड़े और सदैव के लिए पांव का दर्द और कठिनाई मोल ले ले, बार-बार परिवार द्वारा मना करने पर भी जो साधु-वेश में घर से निकल पड़े, बावजूद सरकारी वारण्ट के जो संयम के प्रति अपने दृढ़ अनुराग को कायम रख पावे और अन्ततः परिवारजनों और पत्नी तथा मां को इस बात के लिए मजबूर कर दे कि उनके लिए उन्हें दीक्षा की आज्ञा देने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प न रह जावे, ऐसे उदाहरण वर्तमान में विरले ही देखने को मिलते हैं। धनाढ्य लोगों को भी दीक्षा लेते देखा गया है, मगर दीक्षा के मार्ग में जिस तरह की कठिनाइयों का सामना पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज साहब ने किया और जिस तरह से उनका दृढ़ता से मुकाबला कर अपने वैराग्य भाव को उन्होंने अक्षुण्ण रखा और अन्ततः दीक्षा प्राप्त करने में समर्थ हो सके, ऐसे उदाहरण कम ही देखने को मिलते हैं।

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् त्याग और तपस्या की जो झड़ी उन्होंने लगा दी और अपनी ज्ञान पिपासा को बुझाने का जो भागीरथ-प्रयास उन्होंने किया, वह भी कम प्रेरणास्पद नहीं है। गुरू चरणों के प्रति उनकी निष्ठा और समर्पण बेजोड़ था और यही कारण था कि उन्हें आचार्य श्री चौथमल जी महाराज साहब ने अपने हाथों से संघ के युवाचार्य की पदवी हेतु मनोनीत किया और कार्तिक शुक्ला 2 संवत् 1957 को उन्हें युवाचार्य की पदवी विधिवत प्रदान की। विनम्रता का यह भी एक आयाम था कि आचार्यश्री एक सबल और दृढ़ चरित्रनिष्ठ साधु के कन्धों पर युवाचार्य का भार डालना चाह रहे थे और महामनीषी चरित्रनायक श्री श्रीलाल जी महाराज साहब अपने आचार्य भगवान से यह निवेदन करते हैं कि दीक्षा और शिक्षा एवं वय में उनसे बुजुर्ग व उनसे ज्यादा अनुभवी कई मुनिवर संघ में मौजूद हैं अतः यह गुरूभार उन्हें नहीं सौंपा जावे और अन्य सबल कन्धों पर रखा जावे। आज की इस मानव संस्कृति एवं समाज में जहां पद प्राप्ति के लिए होड़ लगी रहती है और इस लिप्सा की अन्धी होड़ से साधु समुदाय भी मुक्त नहीं है, उस समाज में इस बात की भावाभिव्यक्ति भी अपने आप में यह सिद्ध करने में सक्षम है कि यदि चरित्र में दृढ़ता हो, व्यक्ति में योग्यता हो और विनय का भाव हो तो पदों के पीछे भागने की आवश्यकता नहीं है, पद स्वयं उसका पीछा करके उसे अपने परिवेश में ले ही लेते हैं।

जिस वक्त पूज्य श्री 1008 श्री श्रीलाल जी महाराज साहब को युवाचार्य का पद सौंपा गया था उस वक्त उनकी आयु मात्र 31 साल की थी मगर उन्होंने आचार्य पद ग्रहण करने के पश्चात् अपने क्रियाकलापों से यह साबित कर दिया कि 'हीरा मुख से कब कहे लाख हमारा मोल।' श्रीसम्पन्न लाल तो वे पहले से ही थे मगर आचार्य पद ग्रहण करने के पश्चात् संयम एवं चरित्र में जिस गहन आस्था, दृढ़ निश्चय, साहस, पवित्रता एवं सिद्धान्तों की पालना में अडिगता का जो

परिचय उन्होंने दिया व उसके जो आयाम उन्होंने स्थापित किए एवं जीव-दया, दूसरे समाज के साधुओं के प्रति समानता एवं स्नेह का भाव एवं लम्बी-लम्बी तपस्याओं के बावजूद बिना किसी वाधा के निरन्तर अपने व्याख्यानों द्वारा जन कल्याण एवं जन-जागृति के कुछ ऐसे कीर्तिमान उन्होंने स्थापित किए जिनसे उनका आचार्य पद अविस्मरणीय बन गया है। वस्तुतः कुछ लोग पद से अलंकृत होते हैं पर वे ऐसे विरले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वयं आचार्य पद को गरिमा, शोभा, सार्थकता एवं अलंकरण प्रदान किया था। उन्होंने अनेक अछूते क्षेत्रों में विचरण कर न केवल धर्मभाव की जागृति एवं प्रभावना की, लोगों को शुद्धाचार से परिचित करवाया बल्कि उन्होंने समाज सेवा एवं जैन एवं जैनेत्तर महानुभावों को जीव-दया करने हेतु जैसी प्रेरणा दी एवं उसे जो क्रियात्मकता प्रदान की वह स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। यह उन्हीं की श्रेष्ठ वकृत्व कला एवं चरित्र की श्रेष्ठता आदि के प्रभाव का ही परिणाम था कि कई जैनेत्तर भाईयों ने माँस-मदिरा का व्यापक रूप से परित्याग कर दिया और जैन धर्म की गुरुआमनाएं ग्रहण कर ली। उन्हीं की प्रेरणा से अनेकानेक रजवाड़ों एवं ठिकानों में जीव-दया का श्रेष्ठ कार्य न सिर्फ शुरू हुआ वरन् उसे स्थायित्व प्रदान करने हेतु पट्टे-परवाने व स्थायी-आदेश जारी किए गए जिसके विभिन्न उदाहरण आपको इस पुस्तक में जगह-जगह पढ़ने को मिलेंगे।

वे एक अनोखे एवं विरल व्यक्तित्व के धनी थे। हृदय की विशालता व मक्खन सी स्निग्धता इसी बात से दृष्टिगोचर होती है कि वे प्राणी मात्र के प्रति सृजनात्मक एवं दया से परिपूर्ण दृष्टिकोण रखते थे और थोथे सम्प्रदायवाद के दलदल से पूरी तरह अछूते रहकर अन्य मतावलंबी साधुओं से पूरे स्नेह से मिलने का व उन्हें प्रेरणा प्रदान करने का ध्यान रखते थे और उनके साथ बैठकर व्याख्यान देने में किसी तरह का संकोच नहीं करते थे, मगर साथ ही कठोर भी इतने थे जहां कहीं भी किसी श्रावक अथवा साधु में चरित्र या क्रिया की ढिलाई दिखती थी अथवा शुद्ध साध्वाचार के पालन में यदि उन्हें किसी प्रकार की शिथिलता दृष्टिगोचर हो जाती थी तो वे कठोर से कठोर रवैया अपनाने में कभी नहीं हिचकिचाते थे। सिद्धान्तों की पालना और चरित्र की स्खलना के मामलों में उन्होंने जीवन पर्यन्त कोई समझौता नहीं किया। ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व व चरित्र के धनी थे स्वर्गीय आचार्य प्रवर श्री श्रीलाल जी महाराज साहब। यह उनके जीवन की विशिष्टता है कि वे मक्खन की तरह नरम होकर भी जहां चरित्र साधना और सिद्धान्तों के पालने का प्रश्न आता था, मेरु की तरह अडिग रहे और मन में एक क्षण के लिए भी उन्होंने यह ख्याल तक नहीं आने दिया कि कुछ साधु जो उनके इंगित मात्र से उनके समुदाय में सम्मिलित होने के लिए तैयार हैं, मगर चूंकि वे उनके शुद्ध साध्वाचार व चरित्र की कठिन क्रिया की परिपालना के प्रति आश्वस्त नहीं थे अतः उन्होंने सम्प्रदाय की अभिवृद्धि को बालाए ताक रखकर चरित्र पालन और सिद्धान्तों की शुद्धता एवं अक्षुण्णता कायम रखने के मार्ग को अंगीकृत किया और समाज को यह बता दिया कि उन्हें शिष्यों की संख्या अधिक करने का लोभ नहीं है। उन्होंने सम्प्रदाय का आधार एवं हित साधुओं की संख्या को नहीं बल्कि चरित्र की दृढ़ता एवं गुणवत्ता को माना।

जैतारण कस्बे में, जो पाली जिला (राजस्थान) में स्थित है, जब उन्होंने देखा कि अब उनका शरीर धर्म-प्रभावना हेतु पूरी तरह सशक्त नहीं रह गया है तो उन्होंने अपने अन्तेवासी शिष्यों से कहा कि उनकी साधना में बाधा नहीं डालें और उन्हें संथारा पचक्का दें। अंत समय में भी वे परिणामों में कितने दृढ़ थे यह सबके लिए प्रमोद का विषय है। इतनी वेदना के बावजूद पूरे

समभाव से उसे सहन करते हुए उन्होंने संथारा पूर्वक पंडित-मरण प्राप्त किया, यह भी अपने आप में साधना की पराकाष्ठा का एक अनुकरणीय उदाहरण है। अपनी शारीरिक अक्षमता का स्वयं ज्ञान कर, स्वेच्छा से आचार्य जैसे पद पर पदासीन होने के बावजूद अपने सहयोगी मुनियों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे उनके पंडित-मरण में बाधा उत्पन्न नहीं करें। उन्होंने 51 वर्ष की वय में पंडितमरण प्राप्त किया।

वन्धुओं, एक अंग्रेज लेखक ने ठीक ही कहा है : 'लाईफ वर्दीली स्पेन्ट शुड वी मेजर्ड इन गुड डीडस् रादर देन नम्बर ऑफ ईयर्स.' 51 वर्ष की अल्पायु में पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज साहब ने धार्मिक, चारित्रिक, नैतिक, व्रत-प्रत्याख्यान, जीव दया व तप-त्याग के रूप में इतना कुछ प्राप्त किया है जो कई आचार्यों द्वारा मिलकर भी इतने अल्प काल में प्राप्त करना सम्भव नहीं है। ऐसे महान् नरपुंगव, चरित्रनायक, तपोधनी और वैराग्यनिष्ठ स्वर्गीय आचार्य 1008 श्री श्रीलाल जी महाराज साहब के जीवन चरित्र को आप सभी तक पहुंचाने में मेरा जो तुच्छ योगदान रहा है उसके लिए मैं अपने आपको परम सौभाग्यशाली महसूस कर रहा हूँ और मुझे ऐसा विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर अनेकानेक नर-नारी अपनी जीवन-धारा को पवित्र बनाने में सफल होंगे। मैं श्रद्धेय श्री प्रेम मुनिजी व जितेश मुनिजी महाराज साहब का हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने इस कार्य को करने के लिए मुझे प्रेरणा दी। मैं मेरी धर्मपत्नी श्रीमती रतन चौपड़ा का भी आभारी हूँ जिन्होंने पूरी दृढ़ता से इस कार्य को अपने हाथों में लेने एवं पूर्ण करने का मुझे न सिर्फ निवेदन किया बल्कि संबल और सम्पूर्ण सहयोग प्रदान किया। श्रद्धेय आचार्यप्रवर 1008 श्री नानालाल जी म. साहब की परम कृपा के लिए भी मैं श्रद्धावनत हूँ कि उन्होंने मेरे इस प्रयास को सराहा और उसे समाज के समक्ष प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्रदान की।

धन्यवाद,

जसराज चौपड़ा
न्यायाधीश,
जोधपुर उच्च न्यायालय

जोधपुर

विषयानुक्रमणिका

निवेदन

वर्तमान प्रगतिशील युग में आर्यावर्त को अग्रसर करने के लिए सच्चरित्र के सबल आलम्बन की अधिक आवश्यकता है। भौतिकवाद के युग में उन्नति के शिखर तक नहीं पहुँचने के कारणों में भी चरित्र की दुर्बलता ही प्रधान है। इस परिस्थिति में अनुभवी लोगों की यही राय है कि अन्य समस्त उपायों को पार्श्व में रख कर प्रजा को चरित्रवान बनाने को ही सर्वोपरि प्रधानता दी जानी चाहिए। प्रत्येक युग के महापुरुषों ने लोगों के चरित्र-सुधार को ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य माना है। उत्कृष्ट चरित्र वाले महात्मा ही जगत के लिए महान आशीर्वाद स्वरूप माने जाते हैं। उनके जीवनकाल में उनका चरित्र ही जगत को कर्तव्य-बोध कराता है और प्रजा में नवीन उत्साह, नवजीवन, नवचेतना आदि का संचार करता रहता है। ऐसे महात्माओं की अनुपस्थिति में उनका जीवन चरित्र ही प्रजा में सात्विक प्राण का संचार कर प्रजा को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करता है।

वर्तमान युग में साहित्य में कहानी, उपन्यास, नाटक आदि की पुस्तकों का अधिक प्रचलन है, जिससे सत्पुरुषों का जीवन वृत्तान्त बहुत कम लोग पढ़ पाते हैं। सच्चे जीवन वृत्तान्तों में कल्पना पर आधारित मनोरंजक बातें नहीं होती हैं। इसीलिए कहानी और उपन्यास के प्रति जन साधारण की अधिक रुचि रहती है, लेकिन फिर भी गुणान्वेषी पुरुष तो महापुरुषों के इन जीवन-चरित्रों के पठन-पाठन में ही आनन्द लेते हैं।

दूसरों का अनुकरण करना मनुष्य का स्वभाव है। यदि जनता के सामने आध्यात्मिक और पारमार्थिक जीवन विताने वाले महापुरुषों का चरित्र रखा जाय तो इससे उनको लाभ ही होगा। चरित्र नायक के गुण ग्रहण करने की प्रत्येक की इच्छा होती है और पाठक अपने गुणों के साथ उनकी तुलना करके भले-बुरे का विवेक कर अपने में सुधार करने का प्रयास करता है। इसी भाँति महापुरुषों का जीवन चरित्र इस लोक से परलोक तक सुख का मार्ग दिखा कर सच्चे शिक्षक का काम करता है। श्री महावीर का जीवन चरित्र पढ़ने से आत्मिक बल का विकास होकर देहाभिमान कम होता है और आत्मा की अनन्त शक्ति का भान होता है। श्री रामचन्द्रजी का जीवन-वृत्तान्त पढ़कर पत्नीव्रत तथा रामराज्य की महिमा का ज्ञान होता है। भीष्म पितामह के चरित्र से जहाँ ब्रह्मचर्य की महिमा समझ में आती है, वहाँ राणा प्रतापसिंह का जीवन चरित्र हमें अटूट धैर्य एवं दृढ़ प्रतिज्ञा की शिक्षा देता है।

प्रत्येक के जीवन काल में कुछ न कुछ संकट आता ही रहता है, उस कठिन समय में स्वयं की बुद्धि काम करना बन्द कर देती है। ऐसे समय में धैर्य व आत्मबल की ही सबसे अधिक आवश्यकता होती है जो महापुरुषों के जीवन-चरित्र के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है। जीवन-चरित्र के अध्ययन से ही संकट का सामना करने का साहस एवं मार्ग-दर्शन मिलता है ताकि हम इस बात का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त कर सकें कि इस संसार सागर में जीवन-नौका को किस

ओर ले जाना है जिससे ठोकरें न लगें और मंजिल तक सुगमता से पहुँच सकें। इस संसाररूपी वन को पार करने का मार्ग दिखाने के साथ-साथ जीवन-चरित्र यह भी ज्ञान प्रदान करते हैं कि जीवन-यात्रा में कहाँ-कहाँ विश्राम मिलेगा अर्थात् कब और किस प्रकार के संकट एवं विघ्न का किस प्रक्रिया द्वारा निराकरण कर चित्त को शान्ति प्रदान की जा सकती है।

सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए महापुरुषों का जीवन-चरित्र लिखने की परम्परा प्राचीन काल से है। रामायण, महाभारत, पुराण आदि में लिखे हुए सच्चे अथवा कल्पित जीवन-चरित्रों ने साहित्यिक कृति के रूप में उच्चतम पद प्राप्त किया है। जैनागम में भी चरितानुयोग, कथानुयोग को इतना ही महत्व प्राप्त है। जीवन-चरित्र में अमुक व्यक्ति का जीवन घटनाक्रम से संक्षेप में कहा गया होता है जिससे पाठक उसे वास्तविक पुरुष मानकर उसके आदर्शों का अनुकरण करने का संकल्प करता है। ऐसे महापुरुष भी कभी-कभी पैदा होते हैं जिनके मन, वचन व शरीर से सद्कार्य ही होते हैं अर्थात् जिन्होंने मन, वचन और काया से कभी किसी प्रकार का पाप किया ही नहीं। उनका जन्म संसार के परोपकार के लिए ही होता है। कुछ महापुरुष दूसरों के अणुमात्र के गुण को पर्वत समान मान कर निरन्तर उसकी प्रशंसा कर अन्य लोगों को अनुकरण करने के लिए प्रेरित करते हैं। ऐसे विरले चरित्रवान पुरुषों का जीवन चरित्र ही लिखने योग्य होता है। इस संसार में जन्म लेकर मौज-मस्ती करने, स्वार्थान्धता, आलस्य और जीवन कलह में जीवन बिताने वालों का जीवन-चरित्र कभी भी नहीं लिखा जाता है। ज्ञानवान, श्रेष्ठ गुणों वाले और मनुष्यों द्वारा प्रशंसित जो क्षणभर भी जीया है उन्हीं का जीवन-चरित्र लिखा जाता है। और विचारशील जन संसार में उन्हें सदैव जीवित मानते हैं अर्थात् वे ही अमरत्व को प्राप्त होते हैं।

प्रबल वैराग्य, घोर तपश्चर्या, निश्चल मनोवृत्ति, अनुपम सहनशीलता इत्यादि उत्तमोत्तम सद्गुणों की खान, स्वयं के जीवन को परम आदर्श में परिणत कर भव्य जीवों के हृदयपटल पर असाधारण प्रभाव उत्पन्न करने वाले और अनेक राजा-महाराजाओं को अहिंसा धर्म के अनुयायी बनाने वाले धर्मवीर पुरुष पूज्यश्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज जैसी आध्यात्मिक विभूति की जीवनचर्या शुद्ध स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए हमें परम आह्लाद होता है। श्री महावीर भगवान की आज्ञा को अपना लक्ष्य मानकर ध्रुवतारे की तरह निश्चल होकर अपने लक्ष्य की ओर इनका जीवन प्रवाह सतत बहता रहा है। आर्य प्रजा के अधःपतन को देखकर इनकी आत्मा अत्यन्त दुःखी होती थी। उसके आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए पूज्यश्री दिन-रात लगे रहते थे। पूज्यश्री ने अपनी जीवन-चर्या से जगत को उद्धार का मार्ग दिखाया है। जैन अथवा जैनेतर समस्त समाज के प्रति उनका समभाव था। और सभी पर उपदेश का समान प्रभाव होता था। बहुत से मुसलमान गृहस्थ इनको पीर मानते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजा इनके चरण-कमल पर नतमस्तक होकर अपने को धन्य मानते थे। इस आदर्श महापुरुष की जीवन घटना हमें जिस प्रामाणिकता (प्रमाण में) और जिस स्वरूप में मिली है उसी (प्रमाण और) प्रामाणिकता के साथ एवं स्वरूप में हमने उसे यहाँ पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है।

महात्मा गांधी के समकालीन पूज्यश्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज साहब की समाज सेवा जगत विदित है। उन पूज्यश्री का पवित्र नाम उच्च से उच्च मान्यजनों में भी मान्य है। निर्मल चरित्र और अवर्णनीय गुणनिधि एवं बुद्धिसागर होते हुये भी पूज्यश्री निरभिमानी थे। वे शुद्ध संयम की आवश्यकता स्वासोच्छ्वास के समान मानते थे।

पूज्यश्री सामान्य व्यापारिक कुल में पैदा हुए, अतः न तो भाषा का विशेष ज्ञान था और न विशेष अभ्यास। अपनी गम्भीर एवं विचारमय मुखमुद्रा, अल्प किन्तु मार्मिक वचन और सिद्धान्त तथा कर्मक्षेत्र में साध्य-सिद्धि पर उनका अभेद्य, अखण्ड व अस्खलित प्रवाह और अपनी अपूर्व कार्यशक्ति के आधार पर ही वे दिग्विजय कर सके। असह्य दुःख में सन्तप्त होकर पार उतरा हुआ उनका विशुद्ध जीवन और उनका अगाध भक्तिभाव तथा अपूर्व संघसेवा इन सब बातों का स्मरण जिन्हें पूरा-पूरा होगा पूज्यश्री की जीवनी की भव्यता का यथार्थ ज्ञान उनकी समझ में सरलता से आ सकेगा। समकालीन कार्य-क्षेत्र में कुछ मतभेद हो जाने पर भी जैन जगत एक स्वर से पूज्यश्री का गुणगान करता है। यही बात उनके संपूर्ण गौरव की साक्षी है।

चारों दिशाओं में अविराम विहार कर, निराशा का विनाश कर उत्साह का संचार करने में पूज्यश्री ने कुछ बाकी नहीं रखा। धार्मिक शिथिलता और अज्ञानता के स्थान पर श्रद्धा और धार्मिक ज्ञान का प्रसार किया और करवाया। संप्रदाय का कल्याण करने में एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोया। शिथिलाचारियों को अपने उग्र आचार और संयम से मौन उपदेश देकर सचेत किया। ऐसे महात्मा पुरुष के आदर्श जीवन के प्रचार का अवसर मिला यह हमारा अहोभाग्य है।

जीवनी के संग्रहार्थ मैंने स्वयं प्रयास किया है, इसके अतिरिक्त चरित्रनायक की जन्मभूमि तथा जहाँ-जहाँ उनका विशेष आवागमन रहा है, वहाँ मैंने अपने सहायकों को भेज कर सच्चे घटना-क्रमों का संकलन किया है इसी कारण पुस्तक के प्रकाशन में विलम्ब हुआ है। मेरे आर्टिस्ट मित्र तलसानियांजी ने रसिया टेकरी का अवलोकन कर छायाचित्र तैयार किया है। कल्पित कथा एवं असत्य घटनाओं का समावेश न हो जाय इसकी पूर्ण सतर्कता रखी गई है।

ब्यावर निवासी भाई मोतीलालजी रांका ने चरित्र लिखना प्रारम्भ किया था। उनका विचार था कि जीवन-चरित्र हिन्दी में लिखें। लेकिन इसी विषय में हमारे प्रयास को देखकर रांका साहब ने अपना संग्रह हमें दे दिया और हमारे कार्य में सहयोग किया। उनकी इस सहृदयता के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हमें हर्ष होता है।

इस महान कार्य में यदि भाई श्री झवेरचन्द जादव जी कामदार का सहयोग नहीं मिलता तो यह प्रकाशन ही शायद सम्भव न हो पाता। पूज्यश्री के परम अनुरागी शतावधानी पण्डित महाराज श्री रतन चन्द्र जी स्वामी तथा अन्य मुनिजनों ने जो श्रम उठकर तथा श्रीमान् कोठारी जी, श्री बलवन्त सिंह जी साहब वगैरह ने उपयोगी सलाह देकर हमारा प्रयास सफल बनाने में सहयोग दिया है उनका हमारे प्रति परम उपकार है।

कविवर श्रीयुत् श्री नानालाल दलपतराम जी एम. ए. ने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने की कृपा कर हम पर उपकार किया है। इस पवित्र पुस्तक के संकलन में विशेष सावधानी रखी गई है कि ऐसा कोई भी प्रसंग न आने पाये जिससे किसी को दुःख पहुँचे। उपरोक्त कारण से कई सच्ची घटनाओं का उल्लेख करने से रह गया है।

काठियावाड़ के दो चातुर्मास की वार्ता विस्तारपूर्वक लिखी गई है। यह बहुतों को पक्षपात लगेगा किन्तु सही कारण यह है कि उन दोनों चातुर्मासों की घटनाओं को देखने का मुझको स्वयं को अवसर मिला था किन्तु फिर भी अन्य घटनाओं को उतना ही महत्त्व देने के उद्देश्य से काठियावाड़ की घटनाओं को संक्षिप्त कर दिया गया है।

ओर ले जाना है जिससे ठोकरें न लगें और मंजिल तक सुगमता से पहुँच सकें। इस संसाररूपी वन को पार करने का मार्ग दिखाने के साथ-साथ जीवन-चरित्र यह भी ज्ञान प्रदान करते हैं कि जीवन-यात्रा में कहाँ-कहाँ विश्राम मिलेगा अर्थात् कब और किस प्रकार के संकट एवं विघ्न का किस प्रक्रिया द्वारा निराकरण कर चित्त को शान्ति प्रदान की जा सकती है।

सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए महापुरुषों का जीवन-चरित्र लिखने की परम्परा प्राचीन काल से है। रामायण, महाभारत, पुराण आदि में लिखे हुए सच्चे अथवा कल्पित जीवन-चरित्रों ने साहित्यिक कृति के रूप में उच्चतम पद प्राप्त किया है। जैनागम में भी चरितानुयोग, कथानुयोग को इतना ही महत्व प्राप्त है। जीवन-चरित्र में अमुक व्यक्ति का जीवन घटनाक्रम से संक्षेप में कहा गया होता है जिससे पाठक उसे वास्तविक पुरुष मानकर उसके आदर्शों का अनुकरण करने का संकल्प करता है। ऐसे महापुरुष भी कभी-कभी पैदा होते हैं जिनके मन, वचन व शरीर से सद्कार्य ही होते हैं अर्थात् जिन्होंने मन, वचन और काया से कभी किसी प्रकार का पाप किया ही नहीं। उनका जन्म संसार के परोपकार के लिए ही होता है। कुछ महापुरुष दूसरों के अणुमात्र के गुण को पर्वत समान मान कर निरन्तर उसकी प्रशंसा कर अन्य लोगों को अनुकरण करने के लिए प्रेरित करते हैं। ऐसे विरले चरित्रवान पुरुषों का जीवन चरित्र ही लिखने योग्य होता है। इस संसार में जन्म लेकर मौज-मस्ती करने, स्वार्थान्धता, आलस्य और जीवन कलह में जीवन बिताने वालों का जीवन-चरित्र कभी भी नहीं लिखा जाता है। ज्ञानवान, श्रेष्ठ गुणों वाले और मनुष्यों द्वारा प्रशंसित जो क्षणभर भी जीया है उन्हीं का जीवन-चरित्र लिखा जाता है। और विचारशील जन संसार में उन्हें सदैव जीवित मानते हैं अर्थात् वे ही अमरत्व को प्राप्त होते हैं।

प्रबल वैराग्य, घोर तपश्चर्या, निश्चल मनोवृत्ति, अनुपम सहनशीलता इत्यादि उत्तमोत्तम सद्गुणों की खान, स्वयं के जीवन को परम आदर्श में परिणत कर भव्य जीवों के हृदयपटल पर असाधारण प्रभाव उत्पन्न करने वाले और अनेक राजा-महाराजाओं को अहिंसा धर्म के अनुयायी बनाने वाले धर्मवीर पुरुष पूज्यश्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज जैसी आध्यात्मिक विभूति की जीवनचर्या शुद्ध स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए हमें परम आह्लाद होता है। श्री महावीर भगवान की आज्ञा को अपना लक्ष्य मानकर ध्रुवतारे की तरह निश्चल होकर अपने लक्ष्य की ओर इनका जीवन प्रवाह सतत बहता रहा है। आर्य प्रजा के अधःपतन को देखकर इनकी आत्मा अत्यन्त दुःखी होती थी। उसके आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए पूज्यश्री दिन-रात लगे रहते थे। पूज्यश्री ने अपनी जीवन-चर्या से जगत को उद्धार का मार्ग दिखाया है। जैन अथवा जैनेतर समस्त समाज के प्रति उनका समभाव था। और सभी पर उपदेश का समान प्रभाव होता था। बहुत से मुसलमान गृहस्थ इनको पीर मानते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजा इनके चरण-कमल पर नतमस्तक होकर अपने को धन्य मानते थे। इस आदर्श महापुरुष की जीवन घटना हमें जिस प्रामाणिकता (प्रमाण में) और जिस स्वरूप में मिली है उसी (प्रमाण और) प्रामाणिकता के साथ एवं स्वरूप में हमने उसे यहाँ पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है।

महात्मा गांधी के समकालीन पूज्यश्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज साहब की समाज सेवा जगत विदित है। उन पूज्यश्री का पवित्र नाम उच्च से उच्च मान्यजनों में भी मान्य है। निर्मल चरित्र और अवर्णनीय गुणनिधि एवं बुद्धिसागर होते हुये भी पूज्यश्री निरभिमानी थे। वे शुद्ध संयम की आवश्यकता स्वासोच्छ्वास के समान मानते थे।

पूज्यश्री सामान्य व्यापारिक कुल में पैदा हुए, अतः न तो भाषा का विशेष ज्ञान था और न विशेष अभ्यास। अपनी गम्भीर एवं विचारमय मुखमुद्रा, अल्प किन्तु मार्मिक वचन और सिद्धान्त तथा कर्मक्षेत्र में साध्य-सिद्धि पर उनका अभेद्य, अखण्ड व अस्खलित प्रवाह और अपनी अपूर्व कार्यशक्ति के आधार पर ही वे दिग्विजय कर सके। असह्य दुःख में सन्तप्त होकर पार उतरा हुआ उनका विशुद्ध जीवन और उनका अगाध भक्तिभाव तथा अपूर्व संघसेवा इन सब बातों का स्मरण जिन्हें पूरा-पूरा होगा पूज्यश्री की जीवनी की भव्यता का यथार्थ ज्ञान उनकी समझ में सरलता से आ सकेगा। समकालीन कार्य-क्षेत्र में कुछ मतभेद हो जाने पर भी जैन जगत एक स्वर से पूज्यश्री का गुणगान करता है। यही बात उनके संपूर्ण गौरव की साक्षी है।

चारों दिशाओं में अविराम विहार कर, निराशा का विनाश कर उत्साह का संचार करने में पूज्यश्री ने कुछ बाकी नहीं रखा। धार्मिक शिथिलता और अज्ञानता के स्थान पर श्रद्धा और धार्मिक ज्ञान का प्रसार किया और करवाया। संप्रदाय का कल्याण करने में एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोया। शिथिलाचारियों को अपने उग्र आचार और संयम से मौन उपदेश देकर सचेत किया। ऐसे महात्मा पुरुष के आदर्श जीवन के प्रचार का अवसर मिला यह हमारा अहोभाग्य है।

जीवनी के संग्रहार्थ मैंने स्वयं प्रयास किया है, इसके अतिरिक्त चरित्रनायक की जन्मभूमि तथा जहाँ-जहाँ उनका विशेष आवागमन रहा है, वहाँ मैंने अपने सहायकों को भेज कर सच्चे घटना-क्रमों का संकलन किया है इसी कारण पुस्तक के प्रकाशन में विलम्ब हुआ है। मेरे आर्टिस्ट मित्र तलसानियांजी ने रसिया टेकरी का अवलोकन कर छायाचित्र तैयार किया है। कल्पित कथा एवं असत्य घटनाओं का समावेश न हो जाय इसकी पूर्ण सतर्कता रखी गई है।

ब्यावर निवासी भाई मोतीलालजी रांका ने चरित्र लिखना प्रारम्भ किया था। उनका विचार था कि जीवन-चरित्र हिन्दी में लिखें। लेकिन इसी विषय में हमारे प्रयास को देखकर रांका साहब ने अपना संग्रह हमें दे दिया और हमारे कार्य में सहयोग किया। उनकी इस सहृदयता के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हमें हर्ष होता है।

इस महान कार्य में यदि भाई श्री झवेरचन्द जादब जी कामदार का सहयोग नहीं मिलता तो यह प्रकाशन ही शायद सम्भव न हो पाता। पूज्यश्री के परम अनुरागी शतावधानी पण्डित महाराज श्री रतन चन्द्र जी स्वामी तथा अन्य मुनिजनों ने जो श्रम उठकर तथा श्रीमान् कोठारी जी, श्री बलवन्त सिंह जी साहब वगैरह ने उपयोगी सलाह देकर हमारा प्रयास सफल बनाने में सहयोग दिया है उनका हमारे प्रति परम उपकार है।

कविवर श्रीयुत् श्री नानालाल दलपतराम जी एम. ए. ने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने की कृपा कर हम पर उपकार किया है। इस पवित्र पुस्तक के संकलन में विशेष सावधानी रखी गई है कि ऐसा कोई भी प्रसंग न आने पाये जिससे किसी को दुःख पहुँचे। उपरोक्त कारण से कई सच्ची घटनाओं का उल्लेख करने से रह गया है।

काठियावाड़ के दो चातुर्मास की वार्ता विस्तारपूर्वक लिखी गई है। यह बहुतों को पक्षपात लगेगा किन्तु सही कारण यह है कि उन दोनों चातुर्मासों की घटनाओं को देखने का मुझको स्वयं को अवसर मिला था किन्तु फिर भी अन्य घटनाओं को उतना ही महत्व देने के उद्देश्य से काठियावाड़ की घटनाओं को संक्षिप्त कर दिया गया है।

अमूल्य मनुष्य जीवन के सम्बन्ध में सार्थक सूत्र, महात्मा और अनुभवियों का वचनामृत उद्धृत कर जो विचार व्यक्त किये गए हैं वे किसी खास व्यक्ति या मण्डली के लिए नहीं हैं अतः समस्त पाठक उन्हें विशाल हृदय से स्वीकार करेंगे, यह सविनय प्रार्थना है।

निर्दोष केवलो हरिः

जयपुर,   श्री संघ सेवक

ज्ञानपंचमी, सं. 1979   दुर्लभजी त्रि. जौहरी

प्राचीन इतिहास

विद्वानों का मत है कि मनुष्य जन्म ही ईश्वरत्व प्राप्ति का मूल साधन है क्योंकि वह ज्ञानी एवं विचारवान है इसलिए सार-असार, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म और आत्म-अनात्म तत्वों का निर्णय कर सकता है। उन्नति के आकाश में मनुष्य कितनी ऊंचाई तक पहुंच सकता है, यह कोई नहीं बता सकता है। स्वर्ग और मोक्ष के द्वार खोलने का सामर्थ्य मनुष्य ही रखता है। प्रभु के गुण वह अपनी आत्मा में प्रकाशित कर प्रभुता प्राप्त कर सकता है। समस्त वन्धनों से मुक्ति, सच्ची एवं सर्वकाल-व्यापिनी स्वतंत्रता, सर्व दुःखों से मुक्ति और शाश्वत शान्ति प्राप्त करना ही उन्नति का चरम विन्दु है। इसी को परमपद, परमात्मपद या मोक्ष कहते हैं। इस पद को प्राप्त करने का सामर्थ्य मनुष्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्राणी में नहीं है।

परन्तु जब तक मनुष्य जन्म का उद्देश्य, आत्मज्ञान, जगत का स्वरूप और मोक्ष का यथार्थ मार्ग ज्ञात न कर सके तब तक मनुष्य जन्म सार्थक नहीं है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि मोक्ष मार्ग को लक्ष्य बनाकर उसी मार्ग पर चले जिससे जन्म, जरा, मृत्यु और रोग-शोक आदि व्याधियों से छुटकारा पा सके। जिस प्रकार वन में भटकते हुए मनुष्य को वन से बाहर निकालने के लिए पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता है उसी तरह इस सांसारिक गहन वन को पार कर मोक्ष को प्राप्त करने के लिए भी किसी मार्गदर्शक की आवश्यकता है। इस कलिकाल में, जबकि तीर्थंकर विद्यमान नहीं हैं, तीर्थंकरों की वाणी जो उपलब्ध शास्त्रों में सुरक्षित है उसके ज्ञान एवं व्याख्याता जो महापुरुष हैं उनका आश्रय, उनकी आज्ञा का पालन एवं उनका अनुकरण ही सर्वोच्च उपाय है।

ऐसे महात्मा प्रत्येक युग में जन्म लेते हैं। अनादि काल से विश्व की व्यवस्था है कि जब-जब इन महान आत्माओं की आवश्यकता होती है, तब-तब उनका प्रादुर्भाव होता है। ये सांसारिक तुच्छ कामनाओं को त्याग अपने जन्म के समय की संसार की स्थिति में सुधार लाने के लिये निष्काम भाव से प्रयत्न करते हैं और इसमें अपना सर्वस्व लगा देते हैं। संसार के कल्याणार्थ समर्पण भावना से कार्य करते हुए अपने प्राणों की परवाह भी नहीं करते। उनके आचार-विचार, नीति-रीति, जीवनचर्या से संसार-सागर में अन्य लोगों को अपनी जीवन नौका खेने के लिए ध्रुव की तरह मार्गदर्शन मिलता रहता है।

उपरोक्त महात्माओं में भी जो राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त हों, मोह, ममत्व को त्याग ज्ञान अर्जन में बाधक चार घोर पाप कर्मों को समूल नष्ट कर आत्मा में स्थित अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत साधुता और आत्म-बल उपार्जित कर लेते हैं वे परमात्मा के नाम से संबोधित होते हैं। वे राग-द्वेष को जीतने वाले होने से 'जिन' और साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका चार तीर्थ के संस्थापक होने से 'तीर्थंकर' कहे जाते हैं।

अनंत करुणा के सागर, सर्वज्ञ ओर सर्वदर्शी जिनदेव जगत के उद्धार के निमित्त जो मार्गदर्शन करते हैं, उपादान, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार जिन नियमों की रचना करते हैं और

जो-जो आज्ञाएं देते हैं उन्हें धर्म अथवा शासन की संज्ञा दी जाती है। ऐसे जिनेश्वर पंच महाविदेह क्षेत्र में सर्वदा विद्यमान हैं, किन्तु भरत एवं आर्यवर्त क्षेत्र में अभी विद्यमान नहीं हैं। संसार का जो कालचक्र घूम रहा है अर्थात् समुद्र का पानी छः घंटे ऊपर चढ़ता है और छः घंटे नीचे उतरता है, सूर्य छः माह उत्तर में और छः माह दक्षिण में प्रयाण करता है उसी प्रकार नियमित गति से घूमते कालचक्र में धर्म, अधर्म और सुख-दुःख भी घूमा करते हैं, न्यूनाधिक हुआ करते हैं। बीस क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम के एक कालचक्र के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो भाग हैं और प्रत्येक छः छः आरे से विभाजित हैं। इन छः आरों में से तीसरे और चौथे आरों में तीर्थंकरों का अस्तित्व रहता है। इस प्रकार चढ़ती उत्सर्पिणी काल में 24 और उतरती अवसर्पिणी काल में 24 तीर्थंकर होते हैं। प्रत्येक काल चक्र में दो चौवीसी होती हैं। ऐसे अनन्त कालचक्र व्यतीत हो गए हैं अतएव अनन्त तीर्थंकर हो गए हैं।

अपने इस भरत-क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे में ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक 24 तीर्थंकर हुए हैं। इनमें चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी का वर्तमान में शासन प्रचलित है।

श्री महावीर स्वामी का जन्म ईसा से 599 वर्ष पूर्व विहार के कुंडलपुर नगर में हुआ था। सब तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में ही जन्म लेते हैं और राज्य वैभव त्याग कर जगत के उद्धार के लिए संयम लेते हैं। श्रीमहावीर स्वामी का जन्म क्षत्रिय कुलभूषण, ज्ञातवंशी, काश्यप गोत्री सिद्धार्थ राजा के यहाँ हुआ था। उनकी माता का नाम त्रिशला देवी था। त्रिशला देवी सिंध देश के महाराजा चेटक (चेड़ा) की ज्येष्ठ पुत्री थी। इनका दूसरा नाम प्रियकारिणी था। इनकी बहिन चेलणा मगध देश के अधिपति राजगृही नगरी के महाराजा श्रेणिक जो इतिहास में बिम्बसार के नाम से प्रसिद्ध हैं की पटरानी थी। प्रभु जब गर्भ में थे तब ही से राजा सिद्धार्थ के राज्य में विस्तार तथा धन-धान्य के भंडारों में अतिशय अभिवृद्धि हुई जिससे राजा सिद्धार्थ ने अपने पुत्र के जन्म पर उसका नाम वर्द्धमान रखा। तत्पश्चात् अपने अद्भुत पराक्रम के कारण वे विश्व में महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुए। पुण्य अर्थात् शुभ कर्म के पुद्गलों में शुभ द्रव्यों को आकर्षित करने का अतुल सामर्थ्य होता है। अनन्त पुण्योदय से तीर्थंकर पद प्राप्त होता है। तीर्थंकरों की शरीर सम्पदा, वाणी वैभव और मनोबल आदि असाधारण होते हैं।

यौवनावस्था प्राप्त होने पर यशोमती नामक सद्गुणवती और सुंदर राजकन्या के साथ महावीर का विवाह हुआ था, जिससे एक पुत्री प्रियदर्शना हुई। संसार में रहते हुये भी महावीर का चित्त संसार से जलकमलवत् विरक्त था, उनका समय तत्व चिन्तन में ही व्यतीत होता था। दुःखी संसार के दुःख दूर करने, दुनिया में शांति प्रसारित करने हेतु यज्ञ-हवन आदि में धर्म-निमित्त हो रहे असंख्य पशुओं के वध को रोक सर्वत्र अहिंसा धर्म की विजय पताका फहराने, विषय-कषाय एवं राग द्वेषादि की ज्वाला से जलते जीवों को बचाने और प्राणीमात्र का हित हो ऐसा कर्तव्य मार्ग जगत को दिखाने के लिए गृहवास त्याग संयम लेने की बाल्यकाल से ही इनकी प्रबल अभिलाषा थी। परिपूर्ण युवावस्था में तीस वर्ष की आयु में इन्होंने राज्य-वैभव, विषय-सुख और कुटुम्ब परिवार का परित्याग कर दीक्षा ली। घोर तपश्चर्या करते हुए कर्मों को क्षय करने एवं केवलज्ञान प्राप्त करने को उद्यत हुए। राजमहल में रहने वाले सुकुमार, सिंह, व्याघ्रादि हिंसक पशुओं के बीच भयानक अरण्य में अनेक बाधाओं का सामना करते विचरण करने लगे। अन्य परिग्रहों का परित्याग करने के

साथ-साथ देह ममत्व रूप परिग्रह का भी इन्होंने सर्वथा परित्याग किया था अतः शिशिर ऋतु की कंपकंपाती शीत में उत्तर भारत में जहां हिम पड़ता और शीत वायु वहती थी वहां वे वस्त्ररहित समस्त रात्रि ध्यानावस्था में बिताते थे। प्रभु जब कायोत्सर्ग ध्यान में होते थे तब कई वार ग्वाल आदि निर्दयता से इन्हें पीटते थे। एक समय एक निर्दयी ग्वाल ने प्रभु के कान में कीले ठोक दिये, दूसरे ग्वाल ने इनके दोनों पैर के मध्य के खाली भाग में अग्नि जला उस पर खीर पकाई तो भी प्रभु ध्यान से विचलित नहीं हुए। इसके अतिरिक्त चंड कौशिक नाग, शूल-पाणियक्ष-संगम देवता प्रभृति की ओर से प्राप्त परिषह तथा अनार्य देश में विहार करते समय अनार्य लोगों द्वारा किये गये उत्पात का वर्णन सुनकर रोमांच हो आता है।

क्षमा के सागर श्री महावीर स्वामी ऐसे विषम (विपरीत) समय को भी कर्मक्षय का कारण मानकर आनन्दपूर्वक सहन कर लेते थे। उपसर्ग करने वालों का भी कल्याण चाहते थे और उन्हें श्रेयस्-मार्ग की ओर लगा देते थे। गौशाला ने उन पर तेजोलेश्या छोड़ी फिर भी प्रभु ने उसे उपदेश देकर स्वर्गारोहण का अधिकारी बनाया। चंड कौशिक सर्प ने उन्हें काटा परन्तु उसे अपने पूर्वजन्मों का जाति स्मरण कराकर अहिंसा पालन का उपदेश देकर स्वर्ग का अधिकारी बनाया।

प्रभु की घोर तपश्चर्या का वर्णन भी रोमांचकारी है। किसी-किसी समय तो वे चार-चार छः-छः माह तक निराहारी रह कायोत्सर्ग ध्यान धरते थे। बारह वर्ष और साढ़े छः माह अर्थात् 4515 दिनों की तपस्या में इन्होंने सिर्फ 350 दिन आहार किया था।

इस तरह घोर तपस्या की प्रचंड दावाग्नि द्वारा कर्म काष्ठ का दहन कर योग द्वारा चार घाती कर्मों का सर्वथा विनाश किया और अनादि काल से गुप्त रही हुई केवल्य ज्योति को स्वयं में उदीयमान किया जिससे प्रभु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए — लोकालोक को हस्तामलक के समान देखने लगे। केवल्य प्राप्ति तक प्रभु प्रायः मौन थे, परन्तु संपूर्ण ज्ञानी हो जाने पर उन करुणा सिन्धु भगवान ने जगत के उद्धारार्थ चार तीर्थों की स्थापना कर मोक्ष मार्ग की व्याख्या की। पैंतीस गुणयुक्त प्रभु की अनुपम वाणी प्राणी मात्र के कल्याणार्थ, अनंतानंत भावों से परिपूर्ण, भवसागर को पार कराने के लिए नौका के समान है। इस वाणी द्वारा प्रभु ने मोक्ष प्राप्ति के चार साधन अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चरित्र एवं तप बताये हैं।

ज्ञान—ज्ञान द्वारा जीव-अजीव वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप समझ में आ जाता है जिससे स्व और पर द्रव्य की पहचान होती है एवं पर वस्तु अर्थात् पुद्गल से ममत्व दूर होकर आत्मभाव में स्थिरता होती है। आत्मा के अनन्त ज्ञान और अनन्त सामर्थ्य का भान होता है। अनादिकाल से अविनाशी आत्मा विनाशक पौद्गलिक दशा में अहं ममत्व धारण कर राग-द्वेष के बंधन से बंधा हुआ है और उससे ही चतुर्गति संसार के अनंत दुःख सहन करता है, इन तथ्यों की सत्यता प्रमाणित होती है। देहादिक परवस्तु में ममत्व न रहने से जीव को दुःख छू नहीं सकता एवं शाश्वत सुख का अटूट भण्डार तो उसकी अपनी आत्मा में ही है इस तथ्य का उसे साक्षात्कार हो जाता है। सब आत्मा समान है ऐसा भान होते ही सर्व-आत्मा पर समदृष्टि हो जाती है और सब जीवों को अपने समान समझने लगता है, जिससे वैर-विरोध और लोभ-क्रोधादि दुर्गुण एवं उनसे उत्पन्न दुःखों का सदा सर्वदा के लिए अन्त हो जाता है। उसे फिर जगत के छोटे-बड़े समस्त प्राणी मात्र के सुख की ही अभिलाषा रहती है। सुख सबको सर्वदा प्रिय होता है, ऐसा समझकर वह सबको सुखी

के लिए प्रेरित होता है। इससे ज्ञानी पुरुष मैत्री, प्रमोद, करुणा और तटस्थ भाव द्वारा मोक्ष की कुंजी प्राप्त कर लेते हैं। मैं अजर-अमर अविनाशी हूँ, देह के नाश से मेरा नाश नहीं होगा, ऐसा समझ कर ज्ञानी भय का नाम निशान ही मिटा देता है और मृत्यु से नहीं डरता है। जो मृत्यु से नहीं डरता वह क्या नहीं कर सकता ? अर्थात् सब सिद्धियां प्राप्त कर सकता है। इसलिये ज्ञान को मोक्ष की प्रथम पंक्ति का स्थान दे प्रभु फरमाते हैं कि 'जे आया से विन्नाया जे विन्नाया से आया, जेण विजाणई से आया' अर्थात् जो आत्मा है वही ज्ञान है और जो ज्ञान है वही आत्मा है और जिससे बोध हो सकता है वही आत्मा है। श्रीआचारांग-सूत्र में प्रभु ने ज्ञान को अपार महत्व दिया है, ज्ञान से ही वीतरागता प्राप्त होती है और वीतराग दशा ही सब सुखों का आश्रय स्थान है।

दर्शन—ज्ञान द्वारा जो समझ में आया है उस पर श्रद्धा करना दर्शन कहलाता है। कई मनुष्य शास्त्र श्रवण या सद्गुरु के उपदेश से धर्म का स्वरूप समझते हैं परन्तु जब तक उस पर अटल विश्वास नहीं हो तब तक उसके अनुसार व्यवहार होना अशक्य है, इसलिये सम्यक दर्शन अथवा सच्ची श्रद्धा की पूर्ण आवश्यकता है।

चरित्र—मोक्ष मार्ग की तीसरी सीढ़ी चरित्र है। ज्ञान से मार्ग समझ में आता है और श्रद्धा से उसे सत्य मानने पर भी जब तक उस मार्ग पर चला नहीं जाये तब तक नियत स्थान पर पहुँचना असंभव है। इसलिये ज्ञानानुसार व्यवहार होना उचित है। ज्ञान का फल ही चरित्र है। 'ज्ञानस्य फलम् विरतिः' चरित्र ज्ञान बिना निष्फल है।

हिंसा, असत्य आदि अठारह पापों का त्याग करना, पंचमहाव्रत, तीन गुप्ति और पंच समिति धारण करना ही चरित्र है।

तप—मोक्ष की चतुर्थ सीढ़ी तप है। उसके छः अभ्यान्तर और छः बाह्य बारह भेद हैं। चरित्र से नये कर्म समाप्त होते हैं और तप से पूर्वकृत कर्म क्षय कर सकते हैं। सिर्फ भूखे रहना ही प्रभु के अनुसार तप नहीं है, पाप का प्रायश्चित करना, बड़ों का आदर, वैयावृत्य अर्थात् सबकी सेवा करना, स्वाध्याय करना, ध्यान करना और कायोत्सर्ग करना भी तप के भेद हैं। इस तप को उत्तम अभ्यान्तर तप कहते हैं। उपवास करना, उणोदरी अर्थात् कम खाना, वृत्ति संक्षेप अर्थात् इच्छाओं का निरोध करना, रस परित्याग, देह का दमन, इन्द्रियों को वश में करना ये छः बाह्य तप हैं।

आत्मा और कर्म को पृथक करने के उपरोक्त चार प्रयोग प्रभु ने फरमाये हैं। अनन्त ज्ञानी श्री वीर प्रभु की वाणी का सार लिखना दोनों भुजाओं द्वारा महासागर तैर कर पार करने जैसा उपहासास्पद प्रयास मात्र है। तब भी प्रवचन सागर में से बिन्दु रूप दर्शाने का सिर्फ यही आशय है कि जैन धर्म की भावना कितनी सर्वोत्कृष्ट है। ऐसे उदार और पवित्र विचारों का विश्व में प्रचार करने के समान परमावश्यक और परमार्थिक कार्य दूसरा क्या हो सकता है ?

श्री महावीर स्वामी को केवल्य ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् श्री गौतम स्वामी आदि ग्यारह विद्वान ब्राह्मण-धर्मगुरु अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिये प्रभु के पास आये। उनकी शंकाओं का समाधान हो गया तथा तत्व बोध हो जाने से वे प्रभु के शिष्य बन गए। प्रभु ने उन्हें चरित्र मुकुट पहिनाया, त्रिपदी विद्या सिखाई और गणधर पद अर्पित किया। इन ग्यारह ब्राह्मण धर्माचार्यों के साथ उनके 4400 शिष्यों ने भी श्री महावीर प्रभु के पास दीक्षा ली। श्री महावीर

स्वामी ने साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चार तीर्थों की स्थापना की। देश-देशान्तर में विचरण कर धर्मोपदेश द्वारा कई जीवों को प्रतिबोध कराया, अनेक राजा महाराजाओं को अपना शिष्य बनाया। मगध देश का राजा श्रेणिक तथा उसका पुत्र कौणिक महावीर प्रभु के परम भक्त वन गये इनके सिवाय चेटक, चन्द्रप्रद्योत, उदायन, नंदीवर्धन, दशार्णभद्र, जितशत्रु (ये कलिंग देश के यादव वंशी महाराजा थे इनके साथ महाराजा सिद्धार्थ की वहिन का व्याव हुआ था।), श्वेतराजा, विजयराजा तथा पावापुरी का हस्तिपाल राजा प्रभृति तथा अनेक राजा-महाराजाओं ने श्री वीर प्रभु की वाणी सुनकर जैन धर्म अंगीकृत कर लिया था। प्रभु केवल्य प्राप्ति के वाद तीस वर्ष तक पृथ्वी को अपने विचरण द्वारा पावन करते हुए अनेक जीवों का उद्धार करते रहे। उन्होंने चरम चातुर्मास पावापुरी नगरी में किया। वहां हस्तिपाल राजा की प्राचीन राजसभा में दो दिन का अनशन व्रत धारण कर प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र फरमाया था। 18 देश के राजादि ने भी षठभक्त तप के साथ पौषध कर प्रभु की वाणी का श्रवण किया था। इसी अवस्था में अन्तिम आत्म कल्याणकारी उपदेश फरमाते हुए प्रभु ने कार्तिक माह की अमावस्या की रात्रि को पिछले प्रहर चार कर्मों का क्षय कर 72 वर्ष की पूर्ण आयुष्य भोग कर प्रभुवर निर्वाण (मोक्ष) के शाश्वत पद को प्राप्त हुए।

श्री महावीर प्रभु के उपरोक्त पवित्र शासन को चलाने वाले, सूर्यवत प्रकाश करने वाले अथवा प्रभु के लगाये इस कल्पवृक्ष को सिंचित कर नवपल्लवित करने वाले जो-जो महात्मा हुए हैं अब उन का इतिहास प्रस्तुत है।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के समय श्री गौतम स्वामी और श्री सुधर्मा स्वामी दो गणधर विद्यमान थे शेष नौ गणधर प्रभु के पूर्व ही मोक्ष पद प्राप्त कर चुके थे। जिस पावन रात्रि को महावीर प्रभु को मोक्ष प्राप्त हुआ उसी रात्रि को महान गणधर गौतम स्वामी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

केवली को आचार्य पद नहीं मिलता अतः श्री सुधर्मा स्वामी श्री महावीर स्वामी के आसन पर विराजे।

श्री गौतम स्वामी 12 वर्ष तक केवल्य प्रव्रज्या पाल 92 वर्ष की अवस्था में मोक्ष पधारे।

1. **सुधर्मा स्वामी**—एक समय राजगृही नगरी में पधारे। वहां ऋषभदत्त नामक एक धनाढ्य श्रावक तथा उनका पुत्र जम्बू कुमार उपदेश श्रवण करने आये। अपूर्व उपदेश कर्ण गोचर होते ही जम्बू कुमार की आत्मा मोह निद्रा से जाग्रत हो गई। उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। संसार की अनित्यता का भान होते ही शाश्वत शान्ति की प्राप्ति के लिये उनका मन लालायित हो उठा। घर आकर उन्होंने अपने माता-पिता से दीक्षार्थ अनुमति चाही। अति आग्रह के कारण माता-पिता ने जम्बू कुमार से आठ कन्याओं के साथ विवाह करने के पश्चात् दीक्षा लेने का अनुरोध किया। जम्बू कुमार मान गये। लग्न हुए, आठों तत्काल ब्याही हुई स्त्रियों से प्रथम रात्रि में ही जम्बू कुमार ने दीक्षा लेने का अभिप्राय दर्शाया। पति-पत्नियों में वैराग्य और श्रृंगार विषय पर बहुत रसमय संवाद हुआ। इस बीच प्रभव नामक एक राजकुमार, जो अपने राजगद्दी के अधिकार से वंचित किये जाने के कारण लूट-खसोट करने लगा। वह 500 चोरों सहित जम्बू स्वामी के घर दहेज का माल लूटने को घुसा। चोरी का पाप कृत्य करते वैराग्य-रस-पूरित वचनामृत उसके कानों में पड़ा, और उसके श्रवण मात्र से ही उसे अपने अपकृत्यों का पश्चात्ताप होने लगा और वैराग्य उत्पन्न हो गया। आठों पत्नियां

भी संवाद में पति से पराजित हो वैराग्य रस में लीन हो गई। स्वयं जम्बू कुमार उनकी आठों नवविवाहित नवयौवनाओं के साथ 500 चोरों सहित और प्रभव डाकू ने भी संसार परित्याग कर सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षा ली। उस समय जम्बू कुमार की उम्र सिर्फ 16 वर्ष थी।

अनंत-भाव और भेदमय वाणी में से सुधर्मा स्वामी ने द्वादश अंग की व्याख्या की जिससे जम्बू स्वामी को तत्वावबोध हुआ। वर्तमान में आचारांगादि जो जिनागम हैं वे गणधर श्री सुधर्मा स्वामी द्वारा ही रचित हैं। प्रभु के निर्वाण के पश्चात् 12वें वर्ष में सुधर्मा स्वामी को केवल ज्ञान उपार्जित हुआ और 20वें वर्ष में अर्थात् 100 वर्ष की आयु प्राप्त कर मोक्ष पद को प्राप्त हुए।

2. **जम्बू स्वामी** – श्री सुधर्मा के पश्चात् श्री जम्बू स्वामी पाट पर विराजे। श्री महावीर स्वामी के मोक्ष प्राप्त करने के 20 वर्ष पश्चात् इन्हें केवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ और 64वें वर्ष अर्थात् 80 वर्ष की आयु प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त हुए। श्री जम्बू स्वामी के पश्चात् भारत क्षेत्र में दस विषय अलग-अलग हो गये अर्थात् 1. केवल्य ज्ञान, 2. मनःपर्यवज्ञान, 3. परमावधि ज्ञान, 4. पुलाक लब्धि, 5. आंहारिक शरीर, 6. क्षपक-श्रेणी, 7. उपशम-श्रेणी, 8. परिहार विशुद्ध, सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात ये तीन चरित्र, 9. जिनकल्पी साधु और 10. क्षायिक सम्यक्तव।

3. **प्रभव स्वामी** – श्री जम्बू स्वामी के पश्चात् श्री प्रभव स्वामी पाट पर विराजे। इन्होंने ज्ञानोपयोग द्वारा राजगृही के वासी शय्यंभव भट्ट को आचार्य के पद योग्य समझ उपदेश दिया और उन्हें दीक्षा दी। 85 वर्ष की आयु में महावीर निर्वाण से 75 वर्ष के पश्चात् श्री प्रभव स्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए।

4. **श्री शय्यंभव स्वामी** – श्री प्रभव स्वामी के पश्चात् श्री शय्यंभव स्वामी आचार्य हुए। इन्होंने दीक्षा ली उस समय इनकी स्त्री गर्भवती थी। उससे मनक पुत्र उत्पन्न हुआ। मनक ने नवें वर्ष में पिता के पास दीक्षा ली। परन्तु पिता ने उसकी अल्प आयु होने के कारण श्रुतज्ञानी बनाने के आशय से पूर्वों में से (दशवैकालिक) सूत्र का उद्धार कर मनक मुनि को अध्ययन कराया। अणगार धर्म स्वीकार कर दीक्षा लेने के पश्चात् छः महीने में ही मनक मुनि स्वर्ग पधार गए और शय्यंभव स्वामी भी वीर निर्वाण सम्वत् 98 में स्वर्ग सिधार गये।

5. **श्री यशोभद्र स्वामी** – श्री शय्यंभव स्वामी के पाट पर यशोभद्र स्वामी विराजे। ये वीर प्रभु के निर्वाण संवत् से 148वें वर्ष में स्वर्ग सिधारे।

6. **श्री संभूति विजय स्वामी** – यशोभद्र स्वामी के पश्चात् श्री संभूति विजय स्वामी आचार्य हुए। वे वीर निर्वाण संवत् 156 में स्वर्ग सिधारे।

7. **श्री भद्रबाहु स्वामी** – दक्षिण देश के प्रतिष्ठानपुर नगर के भद्रबाहु तथा वराहमिहिर नामक ब्राह्मण कुलउत्पन्न दो युवकों ने यशोभद्र स्वामी का उपदेश श्रवण कर वैराग्य भावना प्रबल होने से जैन भागवती दीक्षा ग्रहण की। भद्रबाहु स्वामी चौदह पूर्व धारी हुए और संभूति विजय स्वामी के पश्चात् आचार्य हुए। वराह मिहिर को इनसे ईर्षा हुई अतः जैन दीक्षा त्याग ज्योतिष विद्या से लोगों में प्रसिद्ध हुए। इन्होंने वराह संहिता नामक एक ज्योतिष शास्त्र बनाया है। ऐसी कथा प्रचलित है कि तापस बन अज्ञान तप से तप्त हो मरकर व्यंतर देव हुए और जैनों को उपद्रव ग्रसित रखने के लिये महामारी फैलाई, उस उपसर्ग की शांति के लिये भद्रबाहु स्वामी ने 'उवसग्गहर' स्तोत्र की रचना की और उसके प्रभाव से उपद्रव शांत हो गया। इतिहास प्रसिद्ध मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्त

राजा भद्रबाहु स्वामी का परम भक्त हुआ। वीर निर्वाण के 170वें वर्ष में श्री भद्रबाहु स्वामी स्वर्ग सिधारे एवं उनके पश्चात् चौदह पूर्वाधिकारी साधु फिर भारत क्षेत्र में न तो कोई रहे एवं न ही हुए।

8. **स्थूलिभद्र स्वामी** – नौवें नंद राजा का कल्पकवंशीय शकडाल नामक मंत्री था। उसके स्थूलिभद्र और श्रीयक नामक दो पुत्र थे। पाटलीपुत्र में कोशा नामक एक अतिरूपवती वेश्या रहती थी। ज्येष्ठ पुत्र स्थूलिभद्र उसके प्रेमपाश में फंस गया। और हमेशा वेश्या के यहीं रहने लगा। राजा, शकडाल के पश्चात् श्रीयक को प्रधान-पद देने लगे परन्तु श्रीयक ने कहा कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्थूलिभद्र 12 वर्ष से कोशा वेश्या के घर रहते हैं उन्हें बुलाकर मंत्री पद दीजिये। राजा ने स्थूलिभद्र को बुलाकर मंत्री पद लेने को निमन्त्रित किया। लज्ञावश स्थूलिभद्र राज्य सभा में नीची निगाह से देखते रहे और विचार कर उत्तर देने की प्रार्थना की। गहन विचार करने पर राज्य चलाने के गुरुतर कर्त्तव्य में पड़ना उन्हें नहीं जँचा। संसार भी उन्हें अनित्य मालूम हुआ और उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। साधुवेश धारण कर वे राज्यसभा में गये और अपना वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने का अभिमत व्यक्त कर तद्नुसार संभूति-विजय स्वामी के पास से दीक्षा ग्रहण की। चातुर्मास का समय समीप आने पर उन्होंने अपने गुरु से कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास करने की आज्ञा चाही। गुरु ने श्रेयस्कर समझ कर उन्हें सहर्ष इसकी आज्ञा दे दी। उसी समय अन्य तीन मुनि भी सिंह की गुफा में, सर्प के बिल पर और कुएं के रहंट के समीप रहकर चातुर्मास करने की आज्ञा प्राप्त कर अपने उन्हीं गुरु को सविनय वंदना कर चातुर्मास करने हेतु निकले।

स्थूलिभद्र स्वामी कोशा के घर गए। उन्हें आते देख कर कोशा वेश्या ने सोचा कि ऐसे सुकोमल देह वाले मंत्री-पुत्र से इतने कठिन महाव्रतों का पालन कैसे होगा? उसे ऐसा अहसास हुआ कि अभी भी उसका प्रेम उनके दिल से नहीं हटा है। स्थूलिभद्र स्वामी के समीप आने पर वेश्या ने विशेष आदर-सम्मान देकर कहा, स्वामिन्! इस दासी पर महत् कृपा कर आप मेरे घर पधारे हैं अतः जो भी आज्ञा हो वह फरमाइये। निर्विकार मुनि बोले मुझे, तुम्हारी चित्रशाला में चातुर्मास व्यतीत करना है। वेश्या ने तुरन्त चित्रशाला चातुर्मास के लिए सुपुर्द कर दी। उसके पश्चात् स्वादिष्ट भोजन भिजवाया तथा उत्तम श्रृंगार कर उनके सामने आ खड़ी हुई। पूर्व प्रेम का स्मरण कर, पूर्व भोगे हुए भोगों को याद कर वेश्या अत्यन्त हाव-भाव दिखाने लगी। परन्तु मुनिराज तो मेरू के समान अटल रहे। मन में लेश-मात्र भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। उस वेश्या को भी उपदेश देकर श्राविका बना लिया। चातुर्मास पूर्ण कर वे गुरु के पास आये। उसी समय सिंह गुफा वासी आदि तीनों मुनिवर भी वहां आ पहुंचे। गुरुजी ने सबसे अधिक सम्मान स्थूलिभद्र का किया। जिससे अन्य शिष्यों को बड़ी ईर्षा हुई और द्वितीय चातुर्मास लगते ही उन्होंने भी कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास करने की आज्ञा चाही। गुरु के इन्कार करने पर भी वे कोशा वेश्या के यहां गये। एकांत में वेश्या का अद्भुत रूप देखकर ही मुनिवरों का मन चलायमान हो गया, किन्तु कोशा श्राविका ने उन्हें युक्ति से उपदेश दे गुरु के पास वापिस भिजवा दिया।

जब श्री भद्रबाहु स्वामी नेपाल देश में विचरण कर रहे थे तब स्थूलिभद्र मुनि ने उनके पास जाकर 10 पूर्व ज्ञान का अभ्यास किया और भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् उन्होंने आचार्य पद पाया। वीर निर्वाण के 215वें वर्ष में स्थूलिभद्र स्वामी स्वर्ग सिधारे।

9. श्री आर्य महागिरी – श्री स्थूलिभद्र के आसन पर आर्य महागिरी तथा आर्य सुहस्ति स्वामी विराजे। इनके समय में भारी दुष्काल पड़ा। अन्न की इच्छा न करने वाले जैन मुनियों को लोग आदर भाव से आहार कराते थे। एक समय एक क्षुधा पीड़ित भिक्षुक गोचरी से वापस आते समय मुनियों के पीछे-पीछे घबराता हुआ अन्न के लिये उपाश्रय में आया। आर्य सुहस्तिजी ने कहा कि साधु के सिवाय हमारा आहार पाने का हकदार कोई नहीं हो सकता है। तत्काल उसने दीक्षा ली और अधिक दिन से क्षुधा पीड़ित होने से इतना अधिक आहार किया कि वह मरणांतक कष्ट पाने लगा। उस समय बड़े-बड़े साहूकारों ने इस नव दीक्षित मुनि की औषधोपचार आदि से उचित सेवा की। सिर्फ जैन मुनि का वेश धारण करने से ही अपनी स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर देख वह बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव से वेदना सहन कर मृत्योपरांत वह पाटलीपुत्र के राजा कुणाल के पुत्ररूप में राजा साम्प्रति के रूप में उत्पन्न हुआ। ऐतिहासिकों के अनुसार पाटलीपुत्र के महाराजा चन्द्रगुप्त का पुत्र विन्दुसार था, एवं महाराजा बिन्दुसार का पुत्र सम्राट अशोक महान् और अशोक महान् का पुत्र महाराज कुणाल एवं महाराज कुणाल का पुत्र साम्प्रति हुआ।

साम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति महाराज के समागम से जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उन्होंने श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये और देश-देशान्तरों में उपदेशक भेज जैन धर्म की पवित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में जैन धर्म पालन को बढ़ावा देने की सार्वजनिक घोषणा करवाई एवं अनार्य देशों में भी धर्मज्ञ गृहस्थ-उपदेशक भेजकर लोगों को अहिंसा प्रेमी बनाया।

एक समय आर्य सुहस्तिजी उज्ञैन पधारे और भद्रा सेठानी की अश्वशाला में ठहरे। भद्रा का अवंती नामक एक महा तेजस्वी पुत्र था जो अपने महल में अपनी स्त्रियों के साथ देवसदृश सुख भोग रहा था। एक रोज आचार्य महाराज पांचवें देवलोक के नलिनी गुल्म विमान का अधिकार पढ़ रहे थे। उसे सुनकर अवंति सुकुमार ने सोचा कि पूर्व में ऐसी रचना उन्होंने कहीं साक्षात देखी है। विचार करने पर उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। माता की आज्ञा ले आचार्य से दीक्षा ली। अधिक समय तक साधुता के घोर कष्ट सहन करते रहना उन्हें योग्य नहीं लगा अतः गुरु से आज्ञा चाही कि अनशन कर जहां से आया हूँ वहाँ शीघ्र जाऊँ।

गुरु की आज्ञा पाते ही श्मशान में जाकर कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित हुए। राह में कंकड़-काँटे लगने से मुनि के पैरों से रक्त धारा बहने लगी थी। उस रक्त का चूसती-चाटती हुई एक सिमारिनी मय बच्चों के ध्यानस्थ मुनि के समीप आकर इनके शरीर को अपना भक्ष्य बनाया। आत्मभाव में स्थित मुनि तनिक भी नहीं डिगे और समाधि-पूर्वक काल कर नलिनी गुल्म विमान में देव लोक पधार गये। दृढ़ मनोबल द्वारा मनुष्य क्या नहीं कर सकता है? एक प्रहर में ही पांचवें देवलोक की समृद्धि प्राप्त करने वाले कुमार धन्य हैं। वीर निर्वाण के 245 वें वर्ष में आर्य महागिरी और 265वें वर्ष में आर्य सुहस्ति स्वामी स्वर्ग सिधारे।

10. बलसिंहजी – आर्य महागिरी के पाट पर उनके शिष्य बलसिंहजी विराजे। इनके शिष्य उमास्वामी और उमास्वामी के शिष्य श्यामाचार्य हुए। इन्हीं श्यामाचार्य ने श्री प्रज्ञापना सूत्र को पूर्व से उद्धृत किया। इनके पश्चात् अनुक्रम से ग्यारहवें सोवन स्वामी बारहवें वीर स्वामी, 13वें

स्थंडिल स्वामी, 14वें जीवधर स्वामी, 15वें आर्य समेद स्वामी, 16वें नंदिल स्वामी, 17वें नागहस्ति स्वामी 18वें रेवंत स्वामी, 19वें सिंह गणिजी, 20वें थंडिलाचार्य, 21वें हेमवन्त स्वामी, 22वें नागजित स्वामी, 23वें गोविन्द स्वामी, 24वें भूतदीन स्वामी, 25वें छोहगणिजी, 26वें दुःसुह गणिजी और 27वें देवर्धिगणिजी क्षमा श्रगण हुए।

श्री वीर निर्वाण से 980 वें वर्ष अर्थात् विक्रम सम्वत् 510 में समर्थ आठ आचार्यों ने समय की मांग को दृष्टिगत रखते हुए उस वक्त में प्रचलित अपने साधन संग्रह करने का योग्य विचार किया। काठियावाड़ में भावनगर के पास वल्लभीपुर राज्य में विद्वान जोवर टॉड द्वारा लिखित पुस्तक 'राजस्थान' के अनुसार जैनियों की धनी वस्ती थी। राज्य शासन शिलादित्य के हाथ में था। जैन धर्म की विजय पताका फहराने वाले इस प्रसिद्ध नगर में विक्रम संवत् 525 में पार्थियन, गेट और हूण लोगों ने हमला किया। जिससे तीस हजार जैन परिवार वह शहर छोड़कर मारवाड़ में जा बसे। इस भागा-भागी के कारण संकलन पूर्ण नहीं हो पाया और सूत्रों की श्रृंखला छिन्न-भिन्न हो गई। बौद्ध लोगों ने भी जैन धर्म के प्रतिस्पर्धी व प्रतिपक्षी बन जैन शासन का विनाश करने का प्रयास किया। ऐसे अनेक कारणों से भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् विक्रम संवत् 800 तक अनेक जैन विद्वान हुए किन्तु उनकी कृतियां उपलब्ध नहीं हैं।

देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के पाट पर अनुक्रम से निम्न आचार्य पदासीन हुए –

28. वीरभद्र
29. शंकर भद्र
30. यशोभद्र
31. वीरसेन
32. वीरसंग्राम
33. जिनसेन
34. हरिसेन
35. जयसेन
36. जगमाल
37. देवऋषि
38. भीमऋषि
39. कर्मऋषि
40. राजऋषि
41. देवसेन
42. संकरसेन
43. लक्ष्मीलाभ
44. रामऋषि
45. पद्मसूरि
46. हरिस्वामी
47. कुशलदत्त
48. उवनीऋषि
49. जयसेन
50. विजयऋषि
51. देवसेन
52. सूरसेन
53. महासूरसेन
54. महासेन
55. गजसेन
56. जयराज
57. मिश्रसेन
58. विजयसिंह
59. शिवराजजी
60. लालजी ऋषि
61. ज्ञानजी ऋषि

महावीर प्रभु से देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक के 1000 वर्ष तक वीर शासन का सूर्य अपने दिव्य प्रकाश से विश्व को आलोकित करता रहा किन्तु उनके पश्चात् ज्ञानजी ऋषि के समय तक के 100 वर्षों में यह प्रकाश शनैः शनैः कम होता गया और ज्ञानजी ऋषि के समय तो जैन दर्शन की ज्योति बिल्कुल मंद हो गई थी। निरंकुश एवं मान के भूखे साधुओं को उत्सूत्र-प्ररूपना, श्रावक वर्ग की अज्ञानता और अन्ध श्रद्धा, राज्य विप्लव और अराजकता से भारत में व्याप्त कुशासन रूपी गहन काले बादलों ने इस सूर्य को चारों ओर से ढक लिया था।

साधु जो आध्यात्मिक जीवन बिताते थे और सांसारिक झंझटों से सर्वथा दूर रहते थे वे ज्यों-ज्यों उनका अध्यात्म प्रेम कम होता गया त्यों-त्यों बाह्याडम्बर की अभिवृद्धि की ओर अग्रसर होने लगे। वे तुच्छ मतभेदों को तूल देकर नये-नये गच्छ उत्पन्न करने लगे। जिससे जैन संघ की एकता नष्ट एवं छिन्न-भिन्न होने लगी। अपने पक्ष को सबल करने के उद्देश्य से वे परस्पर निन्दा और मिथ्या आक्षेप लगाने में समय व शक्ति का अपव्यय करने लगे। आपस के झगड़ों के कारण से जैन धर्म के सिद्धान्तों पर ही जैन-साधु नाम धराने वालों के हाथों कुठाराघात होने लगा। साधुओं में शिथिलाचार बढ़ गया। कई तो महा आरंभी और परिग्रहधारी हो गए। यति का नाम जो अति पवित्र माना जाता था उसकी महत्ता को इस काल में काफी क्षति पहुंची। श्रावकों को अपने पक्ष में करने के लिए मंत्र, तंत्र और वैधिक आदि आडम्बर बढ़ने लगे। मन, वचन और काया के योग से भी हिंसा नहीं करना, नहीं कराना और करने वाले को उचित नहीं समझने के अणगार धर्म की मर्यादा का प्रत्यक्ष उल्लंघन होने लगा। अन्य मतावलंबियों की प्रवृत्ति का अनुकरण कर स्थान-स्थान पर देवालय और प्रतिमाएँ स्थापित की जाने लगी। अपने-अपने पक्ष के यतियों के लिए उपाश्रय बंधवाये गये। वरघोड़े चढ़ाना, उत्सव करना, नाच नचाना इत्यादि प्रवृत्तियों के प्रेरक और नायक होना यति अपना कर्तव्य समझने लगे। सारांश यह है कि ज्ञानजी ऋषि के समय में साधुवर्ग से चरित्रधर्म लोप होने लगा और श्रावक समुदाय कर्तव्य से पदच्युत हो उनके पीछे-पीछे उलटी राह चलने लगा।

ऐसा होने पर भी वीर-शासन साधुविहीन नहीं हुआ। अनुयायियों की अल्प संख्या होते हुए भी चरित्रवान साधु सर्वकाल में विद्यमान रहे। जब-जब घोर तिमिर बढ़ जाता है, कोई न कोई महापुरुष उत्पन्न होकर जैन प्रजा को सन्मार्ग दिखा जाता है। जैन शासन की मंद हुई ज्योति को विशेष प्रकाश युक्त करने वाले, अपने-अपने युग के प्रवर्तक अनेक समर्थ महात्मा इन दो हजार वर्षों में उत्पन्न हो चुके हैं।

ज्ञानजी ऋषि के समय में भी ऐसे धर्म सुधारक महापुरुष की अत्यन्त आवश्यकता उपस्थित हुई जो कि साधु वर्ग में व्याप्त उपरोक्त दुर्गुणों को दूर कर सत्य का प्रकाश फैलावे एवं जैन-समाज में बढ़ते हुए संदेह और मिथ्या मान्यताओं को नष्ट करे। इतिहास साक्षी है कि जब-जब अंधकार बढ़ जाता है तब-तब कोई न कोई वीर पुरुष पृथ्वी पर प्रकट हो पुनरुद्धार करता है। इसी नियमानुसार सम्वत् पन्द्रह सौ में ऐसा ही एक महान धर्मसुधारक गुजरात के प्रमुख शहर अहमदाबाद में ओसवाल(क्षत्रिय) जाति में उत्पन्न हुआ। उनका नाम लौंकाशाह था। वे सर्राफी का धंधा करते थे। राज-दरबार में उनका अच्छा सम्मान था। बुद्धि तीव्र एवं निर्मल थी। जैन धर्म पर उनका अद्वितीय प्रेम था। एक समय ज्ञानजी ऋषि के समीप वे उपाश्रय में आये। उस समय ज्ञानजी ऋषि धर्म शास्त्रों को संभालने और उन्हें योग्य व्यवस्था से रखने का कार्य कर रहे थे। उनके एक शिष्य ने

सूत्र की प्राचीन जीर्ण प्रतियां देखकर शाहजी से कहा, 'आपके सुन्दर हस्ताक्षर इन पुस्तकों का पुनरुद्धार करने में उपयोगी नहीं हो सकते ?' शाहजी ने अत्यन्त आनन्द के साथ सूत्र की जीर्ण प्रतियों की प्रतिलिपि करने का कार्य स्वीकार लिया। अपने लिये भी उन्होंने सूत्र की प्रतियां लिख ली। लिखते-लिखते उन्हें विस्तृत सूत्र ज्ञान हो गया। उनकी निर्मल एवं कुशाग्र बुद्धि वीर स्वामी के पवित्र आशय को समझ गई। इनके ज्ञान चक्षु खुल जाने से वीर भाषित अणगार धर्म और वर्तमान में विचरने वाले साधुओं की प्रवृत्ति में उन्हें जमीन आसमान का अन्तर लगा। साधुओं की शास्त्र विपरीत गतिविधियाँ उनको असह्य हो गई। जैन समाज की गति उलटी दिशा में प्रवाहित होती देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। सत्य को प्रकाश में लाने की उनके मन-मंदिर में प्रवल इच्छा उत्पन्न हुई। प्रतिपक्षी दल अत्यंत विशाल और शक्ति एवं साधन सम्पन्न था तो भी वे निर्भयता से व्याख्यान-उपदेश देने लगे और सत्य में व्याप्त प्राकृतिक अद्भुत आकर्षण के प्रभाव से उनके श्रोता समुदाय की संख्या प्रतिदिन बढ़ने लगी। भिन्न-भिन्न देशों के श्रीमंत अग्रगण्य श्रावक वृहत् संख्या में उनके अनुयायी हुए। केवल श्रावक ही नहीं अपितु कितने ही यति भी उनके सदुपदेश के असर से शास्त्रानुसार अणगार धर्म का आराधन करने लगे। लौंकाशाह स्वयं वृद्ध होने से दीक्षित न हो सके परन्तु भाणाजी आदि 45 भव्य जनों को उन्होंने दीक्षा दिला उनकी सहायता से जैन-शासन सुधारने के अपने पवित्र कार्य में महान विजय प्राप्त की और अल्प समय में ही हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक लाखों जैनी उनके अनुयायी बने। उसी समय यूरोप में धर्म सुधारक मार्टिन लूथर हुआ जिसने प्युरिटन ढंग से ईसाई धर्म को जागृत किया। संयोग से वह समय जैन धर्म सुधारक श्रीमान् लौंकाशाह के समय से मिलता है।

About A.D. 1452 the Lonka sect arose and was followed by the sthanakwasi sect, the dates which strickingly Coincide with the Lutheren and puritan movements in Europe.

Heart of Jainism

समय समय पर अनेक धर्म गुरु जन्म लेते हैं परन्तु समाज पर पवित्र और स्थिर छाप लगाने का सौभाग्य बहुत कम को प्राप्त होता है। ईसाई धर्म में मानसिक दासता दूर करने का जो कार्य मार्टिन लूथर ने किया वैसा ही कार्य श्वे. जैन धर्म में क्रियोद्धार का श्रीमान् लौंकाशाह ने किया।

लौंकाशाह के उपदेश से 45 मुमुक्षु-जन दीक्षित हुए उन्होंने अपने गच्छ का नाम लौंकागच्छ रखा। वीर संवत् 1531 में ऐसा हुआ।

ज्ञानजी ऋषि के पश्चात् आज तक पूज्य श्री हुकमीचन्द्रजी महाराज के अनुसार आचार्य पद की नामावली निम्न प्रकार है:–

62. भाणाजी ऋषि,63. रूपजी ऋषि, 64. जीवराजजी ऋषि, 65. तेजराजजी, 66. कुंवरजी स्वामी, 67. हर्ष ऋषिजी, 68. गोधाजी स्वामी, 69. परशुरामजी स्वामी, 70. लोकपालजी स्वामी, 71. महाराजजी स्वामी, 72. दौलतरामजी स्वामी, 73. लालचंदजी स्वामी, 74. गोविन्दरामजी स्वामी हुकमीचन्दजी स्वामी, 75. शिवलालजी स्वामी, 76. उदयचन्द्रजी स्वामी, 77. चौथमलजी स्वामी, 78. श्रीलाल जी स्वामी (चरित्र नायक), 79. श्री जवाहिरलालजी

स्वामी, 80. श्रीगणेशीलालजी स्वामी, 81. श्रीनानालालजी स्वामी (वर्तमान आचार्य)।

ज्ञानजी ऋषि से आज तक 450 वर्ष का इतिहास संक्षेप में दिया जाता है।

श्री महावीर वाणी का अवलम्बन कर धर्मोद्धार का जो मार्ग श्रीमान् लौंकाशाह ने प्रदत्त किया उसके मार्गानुगामी साधु शास्त्र का सही पठन-पाठन करते, नियमानुसार संयम पालते, निर्वाध उपदेश देते एवं निष्परिग्रही रहकर गांव-गांव विहार कर, पवित्र जैन धर्म का प्रचार करते थे। भाणाजी ऋषि साधसखाजी, रूपजी ऋषि तथा जीवराजजी ऋषि प्रभृति ने लाखों की सम्पत्ति त्याग कर दीक्षा ली थी। सखाजी तो वादशाह अकवर के मंत्री-मंडल में से एक थे। वादशाह के मना करने पर भी पांच करोड़ की सम्पत्ति का त्याग कर उन्होंने दीक्षा ली थी।

लगभग सौ वर्ष तक तो लौंका-गच्छीय साधुओं का व्यवहार ठीक रहा। फिर उनमें भी धीरे-धीरे आचार शिथिलता एवं अव्यवस्था बढ़ने लगी।

अन्धकार फैलाने वाले बादल फिर घिर आये। साधु पंच महाव्रतों का त्याग कर मठावलम्बी और परिग्रह धारी होने लगे। निन्दनीय भाषा का प्रयोग और आपत्तिजनक कार्य होने लगे। परन्तु ऐसे समय में भी कई अपरिग्रही और आत्मार्थी साधु विशुद्ध संयम पालते हुए काठियावाड़, मारवाड़ एवं पंजाब के क्षेत्रों में विचरते थे। वे इन आपत्तिजनक क्रियाओं के प्रभाव से मुक्त रहे। मालवा मारवाड़ में विचरते पूज्य श्री हुकमीचन्द्रजी महाराज का संप्रदाय ऐसे ही आत्मार्थी साधुओं में से हुआ है।

लौंकाशाह के पश्चात् फिर से जब अंधकार छाने लगा तो उसे नष्ट करने के लिए गुजरात में किसी समर्थ महापुरुष के प्रादुर्भाव होने की आवश्यकता हुई और प्राकृतिक नियमानुसार श्री धर्मसिंह जी, श्री लवजी ऋषि और श्री धर्मदासजी अणगार एक के पश्चात् एक यों तीन महापुरुष पैदा हुए। उन्होंने अद्‌भुत पराक्रम दिखाकर न सिर्फ लौंकाशाह के उपदेश का पुनरुद्धार किया बल्कि शासन सुधारने का जो कार्य वे अपूर्ण छोड़ गये थे उसे इस त्रिपुटी ने पूर्ण किया। उन्होंने भगवान महावीर की आज्ञानुसार अणगार धर्म की आराधना प्रारंभ की। उनके विशुद्ध ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप के प्रभाव से तथा शास्त्रानुकूल और समयानुकूल सदुपदेश से लाखों मनुष्य उनके भक्त हो गये। उस समय से जब से उन्होंने जैन शासन का अपूर्व उद्योत किया जैन श्वेतांबर पंथ का लौंका गच्छ–यति वर्ग और पंच महाव्रतधारी साधु ऐसे दो विभागों में बंट गया। लौंका-गच्छीय तथा अन्य गच्छीय जो श्रावक पंच महाव्रतधारी साधुओं को मानने वाले तथा उनके दिखाये मार्ग पर चलने वाले हुए वे साधुमार्गी कहलाए। यह मार्ग कोई नया नहीं था एवं न ही इसके प्रवर्तकों ने कोई नये धर्म शास्त्र बनाये। सिर्फ शास्त्र विरुद्ध क्रिया प्रणाली को रोककर स्वयं भी शास्त्रसम्मत क्रिया की अनुपालना करने लगे एवं औरों को भी शुद्ध शास्त्रोक्त क्रिया का पालन करने का सदुपदेश देने लगे। मारवाड़ की संप्रदाय भी इसी मार्ग का अनुसरण करने वाली होने से, वह भी साधुमार्गी ही कहलाई। यहां इस संप्रदाय के प्रभावशाली पुरुषरत्नों में से थोड़े से प्रमुख आचार्यों का इतिहास दिया जाना अप्रासंगिक नहीं होगा।

श्री धर्मसिंहजी – ये जामनगर काठियावाड़ के श्रीमाली वैश्य परिवार के थे। इनके पिता का नाम जिनदास व माता का नाम शिवा था। लौंका गच्छ के आचार्य रत्नसिंह जी के शिष्य देवजी महाराज के व्याख्यान से प्रभावित हो, 15 वर्ष की उम्र में ही इनको वैराग्य उत्पन्न हो गया। पिता

और पुत्र दोनों ने दीक्षा ले ली। विनय द्वारा गुरु कृपा प्राप्त कर, ज्ञान ग्रहण करने के लिए धर्मसिंहजी मुनि सतत उद्योग करने लगे। 32 सूत्रों के उपरान्त, व्याकरण तथा न्याय प्रभृति में भी वे पारंगत हो गये। उनकी स्मरणशक्ति अत्यन्त तीव्र थी। वे अष्टावधान करते थे। शीघ्र काव्य रचते थे। दोनों हाथ दोनों पैर से कलम पकड़ कर लिख सकते थे। वहू सूत्री होने के पश्चात् एक दिन धर्मसिंह जी अणगार सोचने लगे कि सूत्र में कहे अनुसार साधु धर्म हम नहीं पालते। अतः इस मानव जन्म की सार्थकता कैसे सिद्ध होगी। इन्होंने संयम पालने का निश्चय किया गुरुजी से भी कायरता का त्याग कर शास्त्रसम्मत क्रिया के पालनार्थ कटिबद्ध होने का आग्रह किया किन्तु उनके गुरुजी पूज्य-पद का मोह नहीं त्याग सके। अन्त में उनकी आज्ञा और आशीर्वाद से आत्मार्थी और सहाध्यायी यतियों के साथ इन्होंने पुनः नये सिरे से विक्रम सं. 1685 में जैन-भागवती दीक्षा ग्रहण की। धर्मसिंह जी अणगार ने 27 सूत्रों पर (टव्बा) टिप्पणी लिखी। ये टिप्पणियाँ सूत्र रहस्य को सरलतापूर्वक समझने में अति-उपयोगी सिद्ध हुई हैं। विक्रम सं. 1728 में इनका स्वर्गवास हुआ। इनका संप्रदाय दरियापुरी संप्रदाय के नाम से जाना जाता है।

श्री लवजी ऋषि – सूरत के वीरजी बोहरा नामक श्रीमाली साहूकार की लड़की फूलबाई, लवजी की माता थी। लौंकागच्छ के यति बजरंगजी के पास इन्होंने अध्ययन किया व दीक्षा ली। यतियों के आचार में शिथिलता देखकर दो वर्ष पश्चात् विक्रम संवत् 1682 में इन्होंने स्वयंमेव दीक्षा ली। शुद्ध-चरित्र पाल कर एवं जैन धर्म का जन-जन में प्रचार कर वे स्वर्ग सिधारे। मुनिश्री दौलत ऋषि जी तथा अभि ऋषि जी आदि इनके सम्प्रदाय के हैं।

श्री धर्मदासजी अणगार – इनके पिता का नाम जीवन कालिदास था। ये अहमदाबाद के समीप सरखेज ग्राम के निवासी भावसार जाति के थे। विक्रम सं. 1716 में प्रबल वैराग्य उत्पन्न होने पर इन्होंने दीक्षा ली। उसी दिन गोचरी जाते समय एक कुम्हारिन ने राख फैंकी। राख थोड़ी-सी पात्र में गिरी और थोड़ी हवा से बिखर गई। यह वृतान्त इन्होंने धर्मसिंह जी से कहा। धर्मसिंहजी ने इसका उत्तर दिया कि जैसे राख बिना कोई घर नहीं होता उसी तरह प्रायः तुम्हारे शिष्यों के बिना कोई ग्राम न रहेगा। और राख हवा में फैल गई इसी तरह तुम्हारे शिष्य चारों ओर धर्म का प्रसार करेंगे। धर्मदासजी के 99 शिष्य हुए। जिन्होंने देश-देशान्तरों में जैन धर्म की अत्यन्त सुकीर्ति फैलाई। 99 शिष्यों में से 98 तो मालवा, मारवाड़ और मेवाड़ एवं पंजाब में विचरते और जैन धर्म की ध्वजा फहराते थे। सिर्फ एक मूलचन्दजी स्वामी गुजरात में रहे। उन्होंने गुजरात में घूम-घूम कर जैन धर्म का प्रचार किया। मूलचन्दजी स्वामी के 7 शिष्य हुए। वे भी जैन धर्म का प्रसार करने वाले हुए। उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं।

1. गुलाबचन्द्रजी, 2. पंचाणजी, 3. बनाजी, 4. इन्द्रजी, 5. बनारसीजी, 6. बिट्ठलजी और 7. भूषणजी। उनके शिष्यों ने काठियावाड़ में 1. लींबड़ी, 2. गोंडल, 3. बरवाला, 4. आठ कोटी कच्छी, 5. चूड़ा, 6. ध्रांगध्रा, 7. सायला ऐसे 7 संघाड़े स्थापित किये।

गुलाबचन्द्रजी के शिष्य बालजी स्वामी, बालजी स्वामी के शिष्य हीराजी स्वामी, हीराजी स्वामी के शिष्य कानजी स्वामी और कान जी स्वामी के शिष्य अजरामरजी स्वामी हुए। अजरामरजी स्वामी महाप्रतापी और पण्डित हुए। इनके नाम से वर्तमान में लींबड़ी सम्प्रदाय (संघाड़ा) प्रख्यात है।

श्री दौलतराम तथा श्री अजरामरजी—ये दोनों महात्मा समकालीन थे। श्री दौलतरामजी ने सं. 1814 में और अजरामरजी ने 1819 में दीक्षा ली। श्री दौलतरामजी महाराज हुकमीचन्द्रजी महाराज के गुरु के गुरु थे। वे अति समर्थ विद्वान और सूत्र-सिद्धान्त के ज्ञाता थे। वे मालवा एवं मारवाड़ क्षेत्र में ही विचरते थे और इसी प्रदेश को पावन करते थे। उनके असाधारण ज्ञान की प्रशंसा श्री अजरामरजी स्वामी ने सुनी। अजरामरजी स्वामी का ज्ञान भी वढ़ा-चढ़ा था किन्तु सूत्र-ज्ञान में अधिक उन्नति करने के लिये उनकी श्री दौलतरामजी महाराज के पास अभ्यास करने की इच्छा हुई। आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी महाराज उस समय वूंदी कोटा विराजते थे। एक विशेष दूत के हाथ लींबड़ी संघ ने दौलतरामजी महाराज की सेवा में प्रार्थना-पत्र भेजा। उन्होंने इस निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर काठियावाड़ की ओर प्रस्थान किया। लींवड़ी संघ का भेजा हुआ दूत भी अहमदाबाद तक पूज्य श्री के साथ ही था फिर वह लींवड़ी संघ को पूज्य श्री के पधारने की वधाई देने हेतु वहां से पृथक् होकर पहले हीडन के पास पहुंच गया। पूज्य श्री के पधारने के समाचार प्राप्त कर लींबड़ी संघ के आनन्द का पार न रहा और संघ ने उस विशेष दूत को रु. 1250/- बधाई के भेंट में दिये। पूज्य श्री दौलतरामजी पधारे तब वहां के संघ ने उनका वड़ा आदर-सत्कार किया।

लींबड़ी संघ की अनुपम भक्ति देखकर दौलतरामजी महाराज भी अति आनन्दित हुए। पंडित श्री अजरामरजी स्वामी पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज से सूत्र सिद्धान्त का रहस्य समझने लगे। समकित सार के कर्ता पं. मुनि श्री जेठमलजी महाराज इस समय पालनपुर विराजते थे। वे भी शास्त्राध्ययन करने के लिए लींबड़ी पधार गये। और ज्ञान गोष्ठी का अपूर्व आनन्द लेने लगे। भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के साधुओं में परस्पर उस समय कितना प्रेमभाव था और साधुओं में ज्ञान-पिपासा कितनी तीव्र थी यह इससे स्पष्ट हो जाता है। पं. श्री दौलतरामजी महाराज के साथ-साथ कितने ही समय तक रहकर पं. श्री अजरामरजी ने सूत्र-ज्ञान में अपरिमित अभिवृद्धि की और पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के आग्रह पर पूज्य श्री अजरामरजी महाराज ने जयपुर में एक चातुर्मास भी उनके साथ किया।

पूज्य श्री हुकमीचन्द्रजी स्वामी—पूज्य श्री दौलतराम जी महाराज के पश्चात् श्री लालचन्द्रजी महाराज आचार्य हुए और उनके पाट पर परम प्रतापी पूज्य श्री हुकमीचन्द्रजी महाराज बिराजे। वे टोड़ा (रायसिंह) ग्राम के रहने वाले ओसवाल गृहस्थ थे। उनका गोत्र चपलोत था। बूंदी शहर में सं. 1879 में मार्गशीर्ष मास में पूज्य श्री लालचन्द्रजी स्वामी से उन्होंने दीक्षा ली। 21 वर्ष तक उन्होंने बेले-बेले तप किया। चाहे जितनी कड़ाके की शीत हो वे सिर्फ एक ही चादर ओढ़ते थे। उन्होंने शिष्य बनाने का सर्वथा त्याग किया। सब प्रकार की मिठाई का भी त्याग कर सिर्फ तेरह द्रव्य रखकर बाकी के सब द्रव्यों का जीवन पर्यन्त त्याग किया था। वे बिलकुल कम निद्रा लेते थे। रात-दिन स्वाध्याय और ध्यानादि प्रवृत्ति में ही लीन रहते थे। नित्य 200 नमोत्थुणं गिनते थे। आप समर्थ विद्वान होते हुए भी निरभिमानी थे। कोई चर्चा करने आता तो अपने आज्ञाकारी साधु श्री शिवलालजी महाराज के पास भेज देते। अपने गुरु पूज्य श्री लालचन्द्रजी महाराज से सख्त आचार पालने के लिये बार-बार विनय करते रहे परन्तु विनय अस्वीकार हो जाने पर पृथक् विहार करने लगे और तप संयमादि में वृद्धि करने लगे। इससे गुरुजी अप्रसन्न होकर उनकी अति-निन्दा करने लगे। प्रचार करने लगे कि कोई इन्हें आहार-पानी न देना, उपदेश न सुनना तथा उतरने के लिए स्थान भी न देना किन्तु क्षमा के सागर श्री हुकमीचन्द्रजी महाराज ने इस पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और

वे तो गुरु के गुणानुवाद ही करते और कहते थे कि मेरे तो वे परम उपकारी पुरुष हैं, महा भाग्यवान् हैं मेरी आत्मा ही भारी कर्मी है। इस तरह वे गुरु प्रशंसा और आत्म निन्दा करते थे तो भी गुरुजी की ओर से वाक्‌वाणों का प्रहार होता ही रहा। इसी प्रकार चार वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु उन्होंने गुरु के विरुद्ध एक शब्द भी न बोला। चार वर्ष वाद गुरु को आप ही आप पश्चात्ताप होने लगा और वे भी निंदा के बदले स्तुति करने लगे। अन्त में तो प्रकट तौर पर व्याख्यान के दौरान फरमाने लगे कि हुकमीचन्द्रजी तो चौथे आरे के नमूने हैं। वे पवित्र-आत्मा, उत्तम साधु एवं क्षमा के भण्डार हैं। मैंने चार वर्ष तक उनके अवगुण गाने में कसर नहीं रखी परन्तु उसके बदले में उन्होंने मेरे गुण-गान में कभी कमी नहीं की। धन्य हैं ऐसे सत्पुरुष श्री हुकमीचन्द्रजी महाराज को। श्री हुकमीचन्द्रजी म. सा. के सद्‌गुणों से उनकी कीर्ति पहले ही फैली हुई थी फिर आचार्य श्री के उद्‌गारों द्वारा अनुमोदन मिलते ही उनकी यशदुंदुभि दसों ही दिशाओं में गूंजने लगी। उन्होंने अपनी सम्प्रदाय में क्रियोद्धार किया तब से यह सम्प्रदाय उनके नाम से प्रसिद्ध हुई और पहचानी जाने लगी। उनके अक्षर मोती के दाने जैसे थे। उनकी हस्तलिखित 19 सूत्रों की प्रतियां इस सम्प्रदाय में अब भी विद्यमान हैं। सम्वत् 1917 के वैशाख सुदी 5 मंगलवार को जावद ग्राम में देह त्याग वे स्वर्ग सिधारे।

श्रीयुत् ग्योइट का कथन सही है कि 'काल से भी अविच्छिन्न हो ऐसा कोई प्रतापी और प्रौढ़ स्मारक मृत्यु के बाद छोड़ जाना उचित है जिससे देह के नश्वर होने से नष्ट हो जाने पर भी उस स्मारक के कारण वह हमेशा जीवित रहे महापुरुषों की यही वास्तविक कीर्ति है।' ऐसे महापुरुष बिरले ही जन्म लेते हैं।

पूज्य शिवलालजी स्वामी – श्री हुकमीचन्द्रजी महाराज के पाट पर शिवलालजी स्वामी बिराजे। इन्होंने सं. 1891में दीक्षा ली। ये भी महाप्रतापी थे। इन्होंने 33 वर्ष तक लगातार अखण्ड एकांतर की तपस्या की। ये सिर्फ तपस्वी ही नहीं प्रकाण्ड विद्वान भी थे। परमततत्व के ज्ञाता एवं समर्थ उपदेशक थे। इन्होंने जैन धर्म का अच्छा प्रचार किया और श्री हुकमीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति बढ़ाई। सं. 1933 पोष शुक्ला 6 के रोज इनका स्वर्गवास हो गया।

पूज्य श्री उदयसागरजी स्वामी – इन महात्मा का जन्म जोधपुर निवासी ओसवाल गृहस्थ सेठ नथमलजी की पतिव्रत परायणा भार्या श्री जीवुबाई के उदर से सं. 1876 में पोष माह में हुआ। इनका विवाह सं. 1891 में हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् ही इन्हें संसार की असारता का भान होने से वैराग्य उत्पन्न हो गया। सब सम्बन्ध परित्याग की अभिलाषा जागृत हुई किन्तु माता-पिता व कुटुम्ब आदि ने दीक्षा लेने की अनुमति नहीं दी। इसलिये श्रावक व्रत धारण कर साधु का वेश पहन भिक्षाचारी हो ग्राम-ग्राम फिरने लगे। कुछ समय इस प्रकार देशाटन करने के पश्चात् माता-पिता की आज्ञा पाकर इन्होंने सं. 1898 के चैत्र शुक्ल 11 के रोज पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के सुशिष्य हर्षचन्दजी महाराज से दीक्षा ग्रहण की। गुरु के पास रहकर ज्ञान ग्रहण करने लगे। इनकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत और बुद्धि बल अगाध था। थोड़े ही समय में इन्होंने ज्ञान और चरित्र दोनों में विशेष उन्नति कर ली। इनकी उपदेश शैली अत्युत्तम थी अतः जहां-तहां पूज्य श्री पधारते इनके वचनामृत सुनने के लिए स्वमती, अन्यमती एवं हिन्दू-मुसलमान आदि अधिक संख्या में आते थे। इनका व्यक्तित्व अति आकर्षक था। गौरवर्ण, दीप्त कांति, विशाल भाल, प्रकाशित बड़े नेत्र, चन्द्र समान मनोहर बदन और तत्वज्ञान पूर्ण मधुर वाणी ये सब श्रोता पर जादू

सा प्रभाव डालते थे। पूज्य श्री पंजाव में अटक रावल पिंडी तक पधारे थे और उस अपरिचित प्रदेश में भी अपना प्रभाव दिखाया। कई राजाओं को सदुपदेश देकर शिकार और मांस-मदिरा का त्याग कराकर अहिंसा धर्म की विजय ध्वजा फहराई।

पूज्य श्री के हृदय की प्रतिच्छाया वर्तमान के उनके साधु हैं। 'छिद्रेष्वनर्था वहुलीभवन्ति' मोह या प्यार के वश में होकर जो लेश मात्र स्वतंत्रता भी दी जाती है वही स्वतंत्रता फिर स्वच्छन्दता के स्वरूप में परिणित हो जाती है और जिसका फल भयंकर असह्य और अक्षम्य दोष उत्पन्न करता है। इस सिद्धान्त को सामने रखकर पूज्य श्री किसी भी शिष्य को स्वच्छन्दी नहीं बनने देते थे।

जहां भिन्न-भिन्न प्रकृति के साधु एकत्रित हों ऐसे सम्प्रदाय को शुद्ध शास्त्रोक्त आचरण की सीमा में रखना सरल कार्य नहीं है। मोह वंधन में फंसते हुए मुनि को मुक्त करने के लिए वे स्तुत्य प्रयास करते थे। सूत्रों के रहस्य को न्यायपूर्वक यों समझाते थे कि –

असंवुडेणं भंते! अणगारे, सिज्झई, वुज्झइ, मुच्चई, परिनिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेई गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे से केणट्ठेणं भंते! जाव अंत करेई गोयमा! असंवुडे अणगारे आउयवज्जाओं सत्तकम्म पर्यडिओ सिढिलवंधणबद्धाओं धीणयवंधण वद्धाओं पकेरइ रहस्सकालठिईआओ, दीहकालठीइआओ पकरेई मंदाणुभावाओं तिव्वाणुभावाओं पकरेई अप्परसगाओं वहुपए सगाओं पकरेई....श्री भगवती श. 1 उ. 1।

भावार्थ – जिसने गृह भार का तो त्याग किया परन्तु आंतरिक आश्रव द्वारा मन की चंचलताओं को नहीं रोका वह पाखंड सेवी साधु भववीज रूपी कर्म प्रकृति व स्थिति एवं रस घटाने के बदले बढ़ाते हैं एवं मन की चंचलता से उत्पन्न चिकने कर्म बांधते रहते हैं और इसीलिये आंतरिक रिपुओं पर विजय प्राप्त करना ही बाह्य त्याग का मुख्य लक्ष्य है।

श्री उत्तराध्ययन से अ. 1 गाथा 9वीं कहकर भावार्थ गले उतारते थे कि गुरु की हित शिक्षा प्रत्येक शिष्य को सम्पूर्ण ध्यान से सुनना, उस पर मनन करना, मन में उसे बसाना और उसी के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। शिष्य के ढीठ मन की गंभीर भूलों का सुधार करने के लिये कठोर प्रहार युक्त हित शिक्षा हो तो भी विनीत शिष्य को अपना हित समझ कर उसे शान्ति से श्रवण करना चाहिए। तनिक भी कोप या शोक न करना चाहिए और शुभ विचारों से मन को समझा कर क्षमा धारण करनी चाहिये। व्यवहार और विचारों में क्षुद्र मनुष्यों का तनिक भी संसर्ग नहीं करना चाहिए, तथा हास्य व क्रीड़ा आदि प्रसंगों से दूर रहना चाहिये।

सम्प्रदाय में थोड़े शिथिलाचारियों का समूह घुसा हुआ था। पूज्य श्री अपनी सूक्ष्म दृष्टि से यह दृष्टिगोचर करने लगे कि साधु के नाम से लोगों को ठगना या ठगाने देना या फंसाना अथवा फंसाने देना यह महापाप, अधर्म और निर्बलता है। यह लापरवाही आगे सम्प्रदाय के लिए भयंकर परिणाम उत्पन्न कर सकती है।

शास्त्र सत्य कहते हैं कि आत्मा की पहचान के लिए इन्द्रिय और मन को वश में रखना ही सरल और उत्तम उपाय है। मानसिक संयम से पापपुंज नहीं बढ़ता। मन में विकार उत्पन्न होते ही पाप तो हो चुका होता है। इसलिये साधु धर्म के संरक्षण के निमित्त ही संयम के नियम बनाये गये हैं। इस अंकुश को दुःखरूप मानने वालों की मनःस्थिति बिगड़ जाती है और अनेक आकर्षणों में

फंस कर जीवन व्यर्थ गंवा देते हैं। निरंकुश स्वतंत्रता से साधुओं में स्वच्छंदता, कलह और दुःखों के सिवाय दूसरे परिणाम भाग्य से ही प्राप्त होते हैं।

ऐसे सबल कारणों पर गम्भीरता से विचार कर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय के अनेक साधुओं के साथ आहार-पानी का सम्वन्ध तोड़ दिया जिसका प्रभाव अभी तक वर्तमान है। चरित्र की शिथिलता के प्रभाव का फैलाव रोकने के लिए ऐसे एक-एक व्यक्ति को तलाश कर उसका उपचार किया। यह उपचार रोग में कटु काढ़े के सदृश होने से छूट मांगने वाले मुनि नामधारी पूज्य श्री की यति-सेवा से भी वंचित होने लगे।

सं. 1954 के आसोज शुक्ल 15 के व्याख्यान में रतलाम में पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज ने आचार्य पद श्री चौथमलजी महाराज को देना जाहिर किया। श्री संघ ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। श्री चौथमल जी महाराज का चातुर्मास जावद में था। इसलिये चातुर्मास पश्चात् रतलाम से महाराज श्री प्यारचन्दजी और महाराज श्री इन्द्रचन्दजी आदि चादर लेकर जावद पधारे। सं. 1954 के मिगसर शुक्ला 13 को जावद में महाराज श्री चौथमलजी को चादर धारण कराई। उस समय महाराज श्री लालजी वगैरह 21 मुनिराज श्री जावद विराजते थे।

सं. 1954 के माघ शुक्ला 10 के रोज रतलाम में पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ। पूज्य श्री का निर्वाण महोत्सव अत्यन्त चित्ताकर्षक और चिरस्मरणीय विधि से हुआ था।

पूज्य श्री चौथमलजी स्वामी – सं. 1954 के फाल्गुन बदी 4 के दिन रतलाम पधार कर सम्प्रदाय की बागडोर आपने अपने हाथ में ली। पूज्य श्री ने सं. 1909 चेत सुदी 12 को दीक्षा ली थी। पूज्य श्री महाक्रियाशील और पवित्र साधु थे।

उनकी नेत्रज्योति क्षीण हो गई थी और वृद्धावस्था भी थी। परन्तु शरीर की दुर्बलता का तनिक भी विचार न कर विहार करते रहते थे। मिथ्या कारण बता आज की तरह ठाणापति रहना उन्हें पसन्द नहीं था वे 'साधु तो फिरते ही अच्छे' इस उक्ति को चरितार्थ करते रहते थे। पूज्य श्री का सूत्र-ज्ञान बढ़ा-चढ़ा था। मुंह से ही व्याख्यान देते थे।

क्रिया की ओर भी पूर्ण लक्ष्य था। रात को एक-दो बार उठ कर शिष्यों की सार संभाल लेते थे। संप्रदायों से अलग हुए साधुओं के सुधरने के कोई आसार न देख उनसे आहार-पानी का व्यवहार समाप्त कर दिया।

उपदेशकों के चरित्र और आचरण का प्रभाव समाज पर और अधिक पड़ता है। इसलिये उन्हें याने उपदेशकों को स्वयं भी श्रेष्ठ आचार वाले होना चाहिए। व्याख्यान देने से ही उपदेशकों के कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती है। उनकी दिनचर्या, आचार-विचार से गंभीरता, पापभीरुता, पवित्रता और प्रसन्नता झलकनी चाहिए। सिद्धान्त व नियम कागज पर ही नहीं परन्तु व्यवहार में भी लाने चाहिए। प्रतिक्षण पाप से बचने की जिज्ञासा जागृत रहेगी तभी असंख्य आकर्षणों से आत्मा को बचाया जा सकेगा। एक प्रबुद्ध महात्मा कह गए हैं कि —

उपदेशकों के भक्ति भाव, श्रद्धा, सत्यसेवन और फकीरी वृत्तियों से ही शिष्यों की धार्मिक वृत्तियां जागृत होती हैं। धार्मिक रिवाज और संस्कार का जितना विशेष ज्ञान हो उतना ही अच्छा

है। चाहे जैसा संकट हो, चाहे जैसा लालच समक्ष हो फिर भी अपने धर्म से विचलित न होने का विचार और निश्चय जब मन में संपूर्णतया बैठ जाये तभी सफलता समझनी चाहिये। धर्म कुछ पांडित्य का विषय नहीं है। धर्म श्रद्धा का विषय है अतः बुद्धिगम्य होते हुए भी हृदय ग्राह्य है। नीति शिक्षण भी श्रद्धा के अभाव में पूर्ण असर नहीं करेगा।

सब मनुष्यों को धर्म की ओर प्रेरित करने के लिए उदार, व्यापक एवं शास्त्रोक्त शुद्ध विचार रखते हुये उनमें इन विचारों के प्रति स्वेच्छा पर आधारित हार्दिक श्रद्धा उत्पन्न करनी होगी। दूसरों के डर या अंकुश का असर कुछ ही समय तक टिक सकता है। आत्मविश्वास के बिना प्रतिज्ञा नहीं निभ सकती। आकस्मिक भूलों के परिणाम को प्रायश्चित्त द्वारा नरम कर सकते हैं। जो स्वेच्छा से शुद्धभाव द्वारा प्रायश्चित्त कर लेता है वह अल्पश्रम और अल्प त्याग से ही निवृत्त हो सकता है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो आगे क्या-क्या करना पड़ेगा उसकी कल्पना मात्र से ही हृदय कांपने लगता है। अपने शास्त्रों में जो कुछ हजारों वर्ष पूर्व कहा गया है उसी के अनुसार महात्मा गांधी ने भी प्रेम, त्याग और अनशन रूपी तपश्चर्या द्वारा ही दूसरों पर प्रभाव डाला था।

एक-दूसरे पर कलंक लगाना, अनर्थ दण्ड सेवन करना, यह जैन नाम को लजाना है। महात्मा गांधी जी की सलाह थी कि प्रेम से मनाओ, भूलें बताओ, गड्ढों में गिरने से बचाओ और उन गड्ढों में गिरने वालों का हाथ पकड़ो, तर्क से समझाओ, ममत्व का नशा उतारकर सही बात उनके गले उतारो। सत्य-मत की प्रबलता से उस वेग को रोको किन्तु बल का प्रयोग मत करो।

समाज की सुव्यवस्था, साधुओं की पहरेदारी का ही प्रताप एवं परिणाम है। मुनिराज द्वारा समाज के नेता को भी उपरोक्त सलाह देते रहने से ही साधु समाज की कीर्ति बढ़ेगी।

चापलूसी अथवा खुशामद मीठा विष है। मनुष्य से भूल होना बहुत संभव है। भूल करने वाले को, फिर से ऐसी भूल न करने की सलाह देने वाले को अपना शुभेच्छु मानना चाहिए, परन्तु पक्षपातवश की हुई भूल को छिपाकर गुनाहगारों की मदद करना गुनाहों को बढ़ावा देने जैसा महापाप है। यह प्रवृत्ति अपराध करने वाले को उकसाने के समान है। यह पक्षपात श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और समर्थ मनुष्यों में भी गुप्त विष फैलाकर कितना मतभेद उत्पन्न कर देता है इसके दुष्परिणाम हमारी आंखों के सामने मौजूद हैं।

विश्वास के आधार पर कुछ समय तक श्रावकत्व निभ सकता है। परन्तु मतभेद का विष ज्यादा समय छिपाना महापाप है। इस इन्द्रजाल के शिकार होने से बचना श्रावकों का मुख्य धर्म है। धर्म की प्रतिष्ठा से खिलवाड़ करने वाले लोगों को इस मीठे विष के भयंकर प्रभाव से सचेत कर दिया जाना चाहिये। सचेत करने वाले अपने इस कर्तव्य का पालन न करने से, धर्म द्रोह के कलंक से कलंकित हो सकते हैं। शुद्ध श्रद्धायुक्त आत्म-यज्ञ करने वाले शूरवीर ही शुद्ध संयम का संरक्षण करने का यश प्राप्त कर सकेंगे। समाज की बागडोर ऐसे शूरवीरों के हाथों में ही शोभा देती है। वे ही इसे विषाक्त चरित्रहीनता के फंदे से बचाते हैं।

हिन्दू समाज की ऐसी रचना है कि प्राचीन काल से ही समाज धर्म गुरुओं के बताये मार्ग पर चलता आ रहा है। भोलेभाले लोग धर्म के नाम पर भुलावे में आ जाते हैं। धर्म अज्ञानी लोगों के मन में भय तथा संदेह उत्पन्न करता है। ऐसे में विद्वान लोग समाज में श्रद्धा जागृत करते हैं। जो

व्यक्ति पवित्र स्थान पर पहुंच गया है उसे उस स्थान के योग्य बनना ही होगा और उसे अपने में ऐसी योग्यता रखनी ही होगी कि समाज उसे श्रद्धापूर्वक मान दे।

To err is human, to know that one has erred is super human, to admit and correct the error and repair wrong is devine.

'भूल हो जाना मनुष्य का स्वभाव है। हम से भूल हो गई उसका ज्ञान होना उच्च मनुष्यत्व है। परन्तु भूल मंजूर कर उसे सुधारना, बुरों का भला कर देना, ये देवी गुण हैं।' मन की प्रवृत्ति घमण्ड को, नम्रता में बदलना ही, इसका श्रीगणेश है।

अपने देश में राजबल और तपोबल दो ही बलों को समाज ने मान्यता दी है। इसमें भी तपोबल की अधिक प्रतिष्ठा है। यह अपने समाज की विशेषता रही है कि मनुष्य विषय-वासनाओं के अधीन जितना ही कम रहेगा, उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा। और उतनी ही उसकी तपश्चर्या परिपक्व होगी। स्वार्थ और विलास की पामरता का, जिसके हृदय पर जितना कम प्रभाव होगा, उतना ही वह उच्च तपस्वी होगा। ज्ञान और तपश्चर्या, इन दोनों का संयोग ही ईश्वरतत्व है।

निन्दा करने वाले की निन्दा न कर, उसे पाप में बांधने वाले कर्मों के प्रति दया दिखाना और उसमें सद्बुद्धि उत्पन्न हो, ऐसी भावना लाना और इस भावना को सफल करने का प्रयास करना, यही सच्ची वीरता है। यही हमारे अरिहंत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है।

आसीद्यथा गुरु मनोहरण समर्था।
त्वत्प्रेम वृत्ति रनद्या न तथा परेषाम्।।
रत्ने यथा हरमतिर्मणि लक्षकाणां।
नैवं तु काच शकले किरणा कुलेपि।।

शतावधानी पंडित श्री रत्नचन्द्रजी महाराज का कथन है कि मानिक-मोती व हीरे-पन्नों को परखने वाले जौहरी का मन कीमती रत्नों पर जैसा आकर्षित होता है वैसा वह कांच अथवा नकली नगीनों पर जो सूर्य के प्रकाश में सच्चे से भी अधिक सुन्दर दिखते हैं उनके प्रति आकर्षित नहीं होता, उसी तरह श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री लालजी महाराज मनुष्यों में विद्यमान सद्चरित्र के सच्चे पारखी थे।

पूज्य श्री श्रीलालजी

अध्याय 1 : बाल्यकाल

राजस्थान के पूर्व में बनास नदी के दक्षिणी तट पर प्राचीनकाल से टोंक नाम का नगर बसा हुआ है। यह जयपुर से दक्षिण की ओर 60 मील की दूरी पर स्थित है। सन् 1817 में श्री अमीरखां पिंढारी ने राजपूताने में एक नये राज्य की स्थापना की। टोंक को उसकी राजधानी बनाया। इस राज्य का विस्तार राजपूताना व मालवा में था तथा क्षेत्रफल दो हजार मील था। टोंक के शासक रोहिला पठान जाति के हैं तथा इनको नवाब की पदवी प्राप्त थी। सारे राजपूताने में यह एक ही मुसलमान राज्य था। चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरा हुआ यह नगर दो भागों में बँटा हुआ है : एक पुराना शहर व दूसरा नया टोंक शहर।

संकड़े बाजार और ऊँचे-नीचे रास्ते वाले पुराने टोंक में श्री श्रीलालजी का जन्म हुआ था। इसी कारण जैन प्रजा में यह नगर अधिक प्रसिद्ध है। इसी पुराने टोंक में क्षत्रिय वंशी परमार जाति से निकली हुई ओसवाल जाति* के बम्ब गोत्र में उत्पन्न हुए चुन्नीलालजी नामक एक सद्‌गृहस्थ रहते थे। राज्य में एवं जाति में चुन्नीलालजी बम्ब की अच्छी प्रतिष्ठा थी। इनके दो-तीन मंजिली तीन-हवेलियां व पुराने तथा नये टोंक में मिलाकर छोटी बड़ी 14 दुकानें थी। जिनका किराया आता था। उनका सरकार से एवं सरकारी फौज से लेन-देन का धंधा था। सेठ श्री चुन्नीलालजी प्रामाणिक एवं धर्म परायण व्यक्ति थे। एक सद्‌गृहस्थ के समस्त गुण उनमें विद्यमान थे। इनकी धर्मपत्नी चांदकुँवर बाई थी। लेखक ने पांच दिन टोंक में रहकर इनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। आज भी इन चांदकुंवर बाई के लोग यशोगान करते नहीं थकते हैं। यहां स्थानाभाव के कारण विस्तार में लिखना सम्भव नहीं है। श्रीमती चांदकुंवर बाई पवित्रता तथा पतिव्रत धर्म की साक्षात् मूर्ति थी। इनका धार्मिक ज्ञान बहुत गहन था। इनका पीहर माधवपुर (जयपुर स्टेट) में था। इनके पिता श्री सूरजमलजी व चाचा श्री देवबक्षजी देश विख्यात श्रावक थे। देवबक्षजी के पौत्र लक्ष्मीचन्दजी वर्तमान में विद्यमान हैं और उन्होंने ही श्री श्रीलालजी के फूंफाजी को समझाकर श्री श्रीलालजी को दीक्षा के लिए आज्ञा प्रदान करवाई थी। देवबक्षजी का 28 सूत्रों का अभ्यास था। और सूरजमलजी भी शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता, विवेकी एवं कर्तव्यनिष्ठ श्रावक थे। उनके ये ही गुण उनकी पुत्री में पूर्णरूप

---

* सर जैम्स टॉड द्वारा रचित 'राजस्थान का इतिहास' नामक पुस्तक में जैन राजपूत जाति के सम्बन्ध में उद्धरण निम्न प्रकार है।

'चित्तौड़ के किले में मानसरोवर के अन्दर पंवार राजाओं के समय का शिलालेख निम्न प्रकार से है :

'मानसरोवर, राजा मान पंवार(परमार) ने बनाया है। उसके सात सौ वर्ष के बाद उनके कुल के राजा भीम ने यह शिलालेख लगाया और उसी भीम के पुत्र ने मारवाड़ में बहुत से नगर बसाये और उसके वंशज जैन क्षत्रिय ओसवाल कहलाये।'

से विद्यमान थे। दिन में दो वक्त सामायिक-प्रतिक्रमण करना, गरीबों को गुप्त दान देना, तपश्चर्या करना, ज्ञान बढ़ाना आदि सद्प्रवृत्तियों से तथा शांत स्वभाव, विवेक आदि सद्गुणों के कारण चांदकुंवर बाई के प्रति सबका आदर भाव था। चुन्नीलालजी सेठ के बड़े भाई हीरालालजी बम्ब सदैव कहा करते थे कि उन्हीं के पुण्य प्रभाव से उनके कुटुम्ब की दिन प्रतिदिन अभिवृद्धि होने लगी थी और उनके घर में पांव रखते ही ऋद्धि-सिद्धि की भी वृद्धि हुई थी।

चांदकुंवर बाई ने सामायिक-प्रतिक्रमण तथा कितने ही थोकड़े तो शादी से पूर्व ही सीख लिये थे। शादी होने के पश्चात् आर्याजी के सम्पर्क में आने से उनके धार्मिक-ज्ञान में और भी अभिवृद्धि हुई। उनके व्रत-प्रत्याख्यान एवं चारों स्कन्ध उनकी जिन्दगी के अन्तिम वर्षों तक रहे। साधु-साध्वियों के प्रति उनमें अनुपम श्रद्धा भाव था। यदि आहार-पानी लेते समय कदाचित अंधेरा हो जाता तो वे उस दिन आहार नहीं करती थी। सारांश में इनका चरित्र स्तुत्य ही नहीं बल्कि श्रद्धास्पद भी था।

निर्मल हृदया चांदकुंवर बाई के तीन संतानें हुई। प्रथम मांगाबाई नामक पुत्री और दूसरे नाथूलालजी नामक पुत्र हुए। तीसरे स्थान पर विक्रम सं.1926 के आषाढ़ कृष्णा 12 को श्री श्रीलालजी का जन्म हुआ। पुत्र के जन्म प्रसंग पर जगत में प्रत्येक माता को आनन्द होता है किन्तु यह कुछ ही माताओं के भाग्य में बदा होता है कि उनका पुत्र उनके दूध की लाज रख कर कुल का नाम ऊँचा करता है एवं उसके गौरव में चार चांद लगा देता है। ऐसी भाग्यशाली माताओं के आनंद की कोई सीमा नहीं हो सकती। श्रद्धेय चांदकुंवर उन्हीं बिरली भाग्यशाली माताओं में से एक थीं।

श्रीमती चांदकुंवर बाई ने शुभ स्वप्न सूचक एक ऐसे पुत्र को जन्म दिया जो पवित्रात्मा, धर्मात्मा, महात्मा और वीरात्मा के रूप में भारत भूमि में प्रख्यात हुआ। जब तक श्री श्रीलालजी जीवित रहे इस पृथ्वी पर चंद्रमा के सदृश अपनी ज्ञानरूपी किरणों से उपदेश रूपी शीतल-अमृत वर्षाते रहे एवं अनेक भव्य आत्माओं के हृदय कमल को उन ज्ञान रश्मियों से आलोकित एवं विकसित करते रहे। उनका नाम श्रीलाल वस्तुतः लगता है बहुत सोच विचार कर रखा गया था। पुत्र के लक्षण पालने में ही दिखाई देने लगे। जिस प्रकार सूर्य के निकलते ही उसकी सुनहरी किरणें ऊँचे से ऊँचे पर्वत शिखर एवं धरा पर स्थित समस्त चीजों को समान रूप से आलोकित कर देती हैं उस तरह इस बालक की प्रतिभा ने भी धार्मिक एवं आप्तजनों के अन्तःकरण को समान रूप से आलोकित किया। इनकी तेजस्विता, मनोहरवदन, भव्याकृति, विशाल भाल, प्रकाशित नेत्र इत्यादि लक्षण स्वाभाविक रीति से जाहिर करते थे कि यह बालक आगे चल कर कोई महापुरुष निकलेगा।

भाग पहला हिन्दी अनुवाद पृष्ठ 1137 मालवे के महाराज अवंति या उज्जैन के अधीश्वर राजा भीम का वर्णन जैन ग्रन्थों में पाया जाता है। उनके ही एक पुत्र ने मारवाड़ राज्य के अनेक स्थानों में नगरों की स्थापना की। इस प्रकार लूनी नदी से अरावली शिखर तक के स्थल पर उनके द्वारा अनेक नगर स्थापित किये गये। उन नगरवासियों में से सब के सब जैन धर्म में दीक्षित थे और उनके वंशज ही उस समय सब में धनाढ्य तथा वाणिज्य व्यवसाय करने वाले थे। वे राजपूत रक्तधारी होने से सर्वत्र गर्व करते थे और लेखिनी तथा तलवार दोनों के समान धनी थे ।

भाग पहला द्विखण्ड अध्याय 26 पृष्ठ 725-35 श्रीरामसिंह जैन धर्मावलम्बी और ओस जाति के थे। इस ओस जाति की संख्या सब रजवाड़ों में लगभग एक लाख होगी। ये सब ही अग्निकुल राजपूत वंश के हैं। इन्होंने बहुत समय पहले जैन धर्म स्वीकार कर मारवाड़ के ओसा नामक स्थान में रहना आरम्भ किया था अतः उस स्थान के नामानुसार ही ओसवाल जाने जाते हैं।

अग्निकुल के पंवार व सोलंकी राजपूत शाखा के लोग ही सर्वप्रथम जैन धर्म में दीक्षित हुए थे।

श्रीलालजी जब बाल्यावस्था में थे तब उनकी माता इन्हें साथ लेकर स्थानक में श्री मोताजी एवं गेंदाजी नामक विदुषी और विशुद्ध चरित्र वाली सतियों के पास शास्त्राध्ययन करने के लिये निरन्तर जाया करती थीं। उनके संवादों का पवित्र असर उनके हृदय पटल एवं मस्तिष्क पर बाल्यावस्था से ही गिरने लग गया था। उस समय टोंक में पूज्य श्री हुक्मचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के सुसाधु तपस्वीजी श्री पन्नालालजी (पूज्य श्री चौथमलजी के गुरु भाई) तथा गंभीरमलजी महाराज विराजते थे। अपने पिता के साथ उनके पास भी जाने का अवसर श्री श्रीलालजी को मिलता रहता था। पन्नालालजी महाराज बड़े आत्मार्थी, सुपात्र, समय के ज्ञाता और विद्वान साधु थे। एक से लगाकर 61 उपवास तक की तपस्या के थोक उन्होंने किये थे। इन दोनों सद्पुरुषों का सत्समागम श्रीलालजी के जीवन को उत्कर्षाभिमुख करने में महान आधार-भूत बना।

बाल्यावस्था से ही उनके हृदय में साधुओं एवं आर्याओं की ओर असीम प्रेमभाव और अनुपम भक्तिभाव था। जब वे पांच वर्ष के थे तब अन्य बालकों की तरह श्रीलालजी भी खेल रचाते थे किन्तु उनका खेल अन्य बालकों से भिन्न होता था। वे कपड़े को झोली बनाते, मिट्टी की कुलड़ियों के पात्र बनाते, मुंह पर वस्त्र बांधते, हाथ में शास्त्र के बदले कागज लेकर व्याख्यान देने का खेल खेलते। ऐसी स्थिति में उनसे कोई प्रश्न करता कि श्रीजी विवाह करोगे अथवा दीक्षा लोगे तो प्रत्युत्तर में वे कहते कि 'मैं तो दीक्षा लेऊंगा शा !' पूर्व जन्म के संस्कारों के बिना इतनी कम उम्र में भी ऐसे विचार होना असम्भव है। जब इस बात की उनके पिता को सूचना मिली तो उन्होंने अपने पुत्र से ऐसा न करने को कहा। विनीत पुत्र ने कुछ वर्षों के लिये वैसा करना छोड़ दिया।

छठे वर्ष के प्रारम्भ में श्रीलालजी को व्यवहारिक शिक्षा देना प्रारम्भ किया गया। जबकि धार्मिक शिक्षा का प्रारम्भ इनकी सं. 1944 में अपनी अठारह वर्ष की अवस्था में हुआ जब उन्होंने अपने मित्र गूजरमलजी पोरवाड़ के साथ स्वयं दीक्षा अंगीकृत की तब अपनी सात तोले की एक सोने की कंठी उन्होंने अपने अध्यापक महाशय को भेंट की थी।

श्री श्रीलालजी का स्कूल में हिन्दी तथा उर्दू अभ्यास जब चल रहा था तब भी उनका धार्मिक अभ्यास भी साथ-साथ चलता रहा और आश्चर्य तो इस बात का है कि तब भी वे स्कूल में हमेशा उच्च स्थान बनाये रखते थे और अभ्यास में भी सब से आगे रहते थे। समय निकाल कर तपस्वीजी पन्नालालजी तथा गम्भीरमलजी महाराज के पास जाकर पच्चीस बोल, नव-तत्व, लघुदंडक गतागत, गुणस्थान, क्रमारोह आदि अनेक विषय तथा साधु का प्रतिक्रमण आदि कंठस्थ करते थे। धार्मिक अभ्यास करने में इनके मित्र बच्छराज जी पोरवाल जो अभी विद्यमान हैं उनके सहाध्यायी थे। श्रीयुत बच्छराजजी का कथन है कि वे साधुओं से प्रतिक्रमण सीखते थे तब महाराज जो पाठ उन्हें देते थे श्रीलालजी की स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि वे उसे सिर्फ सुनकर ही कंठस्थ कर लेते थे जबकि उन्हें उसे याद करने हेतु बारम्बार रटना पड़ता था।

भारत की व्यवसायिक 84 जातियों में, ओसवाल, बहुसंख्यक एवं धनवान हैं। ये एक लाख के लगभग हैं। ओसियाँ स्थान के रहने वाले होने से ओसवाल कहलाये। ये विशुद्ध राजपूत पंवार, सोलंकी, भाटी इत्यादि सब समुदाय के हैं।

श्रीलालजी का जन्म हुए तीन-चार माह ही व्यतीत हुए थे कि एक समय मांजी साहिबा चांदनी में सोई थी। सूर्यास्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था। उस समय उन्हें स्वप्नावस्था में एक देदीप्यामान कांतिवाला गोला दूर से अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया। थोड़े ही समय में वह बिल्कुल समीप आ पहुँचा। ज्यों-त्यों वह समीप आता गया त्यों-त्यों उसका प्रकाश भी बढ़ता गया।

श्रीलालजी का शरीर निरोगी और सुदृढ़ था। जन्म से ही वे उनके दूसरे भाइयों से अधिक स्वस्थ थे। सहनशीलता, निर्भयता, साहसिक वृत्ति, दृढ़निश्चय, कार्य पूर्ण करने की तीव्र उत्कंठा और सत्याग्रह इत्यादि गुण बाल्यावस्था से ही उनमें विद्यमान थे। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति इनकी बुद्धि के विकास के साथ-साथ उपर्युक्त गुणों का भी विकास उनमें उतनी ही ऊर्ध्व गति से होता गया जिसके अनेकानेक उदाहरण इन महापुरुष के जीवन चरित्र में स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं।

श्रीलालजी का स्वभाव अति कोमल एवं स्नेहयुक्त होने के कारण इनके बाल स्नेहियों की संख्या भी अधिक थी। इनके उत्तम गुणों की छाप मित्र समूह पर जादू सा असर करती थी। वच्छराजजी और गूजरमलजी पोरवाल इनके खास मित्रों में से थे। श्रीलालजी के वैराग्य से इन दोनों मित्रों के हृदय-पटल पर भी गहरी छाप लगी और उन्होंने भी संसार परित्याग कर आत्मोन्नति का साधन अपनाने का दृढ़ संकल्प किया परन्तु श्री वच्छराजजी को आज्ञा न मिलने से और प्रतिकूल संयोगों के कारण दीक्षा नहीं ले सके। श्री गूजरमलजी ने श्रीलालजी के साथ ही दीक्षा ली। श्रीलालजी के प्रति इनका अत्यन्त पूज्यभाव था।

श्रीलालजी के स्कूल छोड़कर अलग होने पर इनके सहपाठियों को अत्यन्त दुःख हुआ। आंखों में अश्रु लाकर वे रुदन करने लगे। इससे इनके सहपाठियों का इनके प्रति अगाध स्नेह का परिचय मिलता है। इनके मित्र इनका वियोग सहन नहीं कर सके। इनकी सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, स्नेह भाव के साथ-साथ क्षमागुण के कारण इनके मित्र इनके वशीभूत रहते थे। श्रीलालजी का हृदय इतना अधिक कोमल था कि वे किसी का दिल दुखे ऐसे शब्द भी कहते डरते थे और कभी उन्हें किंचित भी ऐसा आभास हुआ कि उनके वचनों से किसी को दुःख हुआ है तो वे तत्काल जाकर उनसे क्षमा मांग लेते थे। श्रीलालजी की इस उदार प्रवृत्ति के कारण इनके प्रति किसी का द्वेष भाव नहीं था। श्रीलालजी की शत्रुता थी तो सिर्फ मनुष्य के शरीर में मित्र की तरह रह रहे शत्रु आलस्य से थी। श्रीलालजी का क्षमागुण इनकी महत्ता बढ़ाता था। इतना ही नहीं किन्तु ऊपर कहे अनुसार वशीकरण मंत्र की आवश्यकता की पूर्ति करता था। इस उत्तम गुण द्वारा वे परिचित व्यक्तियों के हृदय पर विजय प्राप्त कर लेते थे। (क्षमा वशीकृते लोके, क्षमया किं न सिध्यति) अर्थात् यह संसार क्षमा के द्वारा वशीभूत है अतः क्षमा द्वारा क्या सिद्ध नहीं हो सकता? अर्थात् सब मनोकामना सिद्ध हो जाती थी।

सं. 1932 के भाद्र शुक्ल 5 के रोज जयपुर राज्य के अन्तर्गत दूनी नामक ग्राम निवासी बालाबक्षजी नामक सुश्रावक की पुत्री मानकुंवर बाई के साथ श्रीलालजी का सम्बन्ध किया गया था। उस समय श्रीलालजी की उम्र 6 वर्ष की और मानकुंवर बाई की उम्र 4 की थी।

माजी आश्चर्य चकित हो गई। उन्हें ऐसा लगा जैसे प्रकाश के मध्य में स्थित मूर्ति-मान व्यक्ति कुछ कह रहा हो परन्तु उस असाधारण प्रकाश से उनका हृदय इतना प्रभावित हुआ कि प्रकाश-पुंज के मध्य स्थित व्यक्तित्व ने क्या कहा यह उनकी स्मृति में नहीं रहा। धड़कती-छाती से वे जग पड़ी और अपने पति के पास जाकर यह सारा वृत्तान्त कहा सुनाया।

पुत्र हैं, बड़े पुत्र मणिकलालजी भी उनके जैसे ही सुयोग्य हैं। श्रीयुत् नाथूलालजी के पुत्र-पौत्रों आदि सारे कुटुम्ब का धर्मानुराग प्रशंसनीय है। टोंक में उनकी कपड़े की दुकान बहुत अच्छी चलती है। सेठ नाथूलालजी का इस सांसारिक व्यापार से ज्यादा धर्म व्यापार के प्रति विशेष लक्ष्य रहता है।

अध्याय 2 : विवाह एवं संन्यास

श्री श्रीलालजी सं. 1935 में शाला छोड़ने के वाद धार्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि में ही यादा समय लगाने लगे। सं. 1936 के आषाढ़ माह में इनके पिता श्री चुन्नीलालजी का स्वर्गवास गया। पिता के स्वर्गवास के पांच माह पश्चात् अर्थात् सं. 1936 के मार्गशीर्ष कृष्णा 2 को नका विवाह हुआ। उस समय इनकी उम्र 10 वर्ष व इनकी भार्या की उम्र 8 वर्ष की थी। उस मय राजपूताने में बाल विवाह जैसी कुप्रथा का चलन अधिक था। इस प्रथा को समाप्त करने के लये श्रीलालजी ने भी दीक्षित होने के पश्चात् सतत् प्रयास किया और उसका परिणाम आज जैनियों देखा जा सकता है जहाँ यह प्रथा अब प्रायः समाप्त हो गई है।

श्रीलाल जी की बरात टोंक से ग्राम दूनी आई। संयोग से अथवा अदृश्य की प्रेरणा स्वरूप नके परमोपकारी धर्मगुरु तपस्वी जी श्री पन्नालालजी तथा गंभीरलालजी महाराज भी इधर-उधर से वेहार करते-करते दूनी पधार गए। यह शुभ समाचार सुनते ही श्री श्रीलालजी रोमांचित हो गये और मति-आतुरता के साथ गुरु श्री के दर्शनार्थ उपाश्रय पधारे।

मारवाड़ में वरराजा (दुल्हे) के हाथ में मदनफल के साथ दूसरी चीजें एक वस्त्र में लपेट कर बांधने की प्रथा प्रचलित है। उसमें राई के दाने भी होते हैं। राई संचित वस्तु होने से साधु मुनि-राजों का संचित वस्तु सहित संघट्टी नहीं कर सकते हैं। भक्ति आवेश में आकर श्रीलालजी गुरु के चरण स्पर्श का लोभ संवरण नहीं कर सके। वरराजा ने संचित वस्तु सहित अपने गुरु के चरण स्पर्श किये। इस अपराध के कारण साथ वाले श्रावक भाई एक के पश्चात् एक इन्हें उपालंभ देने लगे। इस पर तपस्वीजी महाराज ने कहा कि आप लोग इनके भक्तिभाव, धर्म-प्रेम और उत्साह की ओर भी तनिक ध्यान दें और वरराजा को इस प्रकार बिलकुल ही हतोत्साहित न करें। इस प्रकार लोगों को शान्त कर वरराजा को सम्बोधन कर कुछ बोधप्रद वचन भी कहे। इन वचनों ने श्रीजी के हृदय पर जादू का सा प्रभाव डाला।

श्रीलालजी के लग्न के समय चुन्नीलालजी के ज्येष्ठ भ्राता श्री हीरालालजी तथा इनके ज्येष्ठ बन्धु श्री नाथूलालजी आदि कुटुम्बी जन आनन्दोत्सव में लीन थे। किन्तु श्री श्रीलालजी के हृदय कमल पर उदासीनता छा रही थी। पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों के प्रभाव से बालवय में ही वैराग्य के बीज उनमें अंकुरित हो चुके थे। अब तो गुरुओं की वाणीरूपी अमृत वर्षा के बार-बार सिंचन से वह वैराग्य वृक्ष विशेष पल्लवित हो बढ़ गया था और उसका मूल भी गहरा पैठ गया था। फिर भी वे बड़ों की आज्ञा शान्त रह कर शिरोधार्य करते रहे। यहाँ शंका उत्पन्न हो सकती है कि श्रीलालजी को यदि वैराग्य का मार्ग पकड़ना था तो उन्हें विवाह ही नहीं करना चाहिये था किन्तु होनहार होकर रहती है। श्रीमती मानकुंवर बाई के श्रेयस् एवं उत्कर्ष का मार्ग भी इसी प्रकार प्रकट होना विधि के विधान में लिखा होगा। तभी तो श्रीमती मानकुंवर बाई को उसकी सास चांदकुंवर बाई जैसी सुशिक्षिता गुरु से उत्तम उपदेश प्राप्त करने का सुयोग प्राप्त हुआ, जिसके परिणामस्वरूप वे पवित्र

जीवन व्यतीत कर दीक्षिता हो छः वर्ष तक संयम पाल पति से पूर्व स्वर्ग सिधारी। कतिपय लोग यह सोच सकते हैं कि यह सब श्री श्रीलालजी द्वारा अल्प वय में दीक्षा ग्रहण करने के भाव के परिणामस्वरूप ही हुआ है मात्र इसी बात को सारे परिणाम का आधार बनाना गलत है। कर्मों के फल-विपाक का ऐसे मामलों में प्रमुख योग होता है ऐसा माना जाना चाहिये। अलबत्ता इतना निश्चित है कि उस समय श्रीलालजी का हृदय वैराग्य के रंग से रंगा हुआ था और निश्चित है कि ज्ञानाभ्यास की उन्हें अपरिमित पिपासा थी, यह बात निर्विवाद है, परन्तु उस समय श्री श्रीलालजी का दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय था, अथवा नहीं यह निश्चयात्मक रीति से नहीं कहा जा सकता है।

विवाह के समय मानकुंवर बाई की वय बहुत कम अर्थात् आठ-नौ वर्ष की ही थी इसलिये वे उसी समय पीहर चली गई और तीन वर्ष तक पीहर में ही रही। मारवाड़ में प्रथा है कि वर-वधू की योग्य वय होने के पश्चात् गोना देते हैं। परन्तु लग्नादि कोई प्रसंग श्वसुर-गृह में हो तो थोड़े दिन के लिये नववधू को बुला लेते हैं। श्रीलालजी के विवाह के पश्चात् ऐसा कोई अवसर न आने के कारण मानकुंवर तीन वर्ष पितृगृह में ही रहीं।

इधर श्रीलालजी का वैराग्य बढ़ता गया। उन्हें संसार के प्रति अरुचि थी। व्यापारादि में उनका चित्त नहीं लगता था अतः वे ज्ञानाध्ययन, संतसमागम और धर्मध्यान में ही निरन्तर दत्तचित्त रहने लगे। तपस्वीजी पन्नालालजी तथा गम्भीरलालजी के सत्संग और सदुपदेश का इनके चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनके पास शास्त्राध्ययन करने में ही वे अपने समय का सदुपयोग करने लगे।

श्रीजी जब बारह वर्ष के थे तब एक दिन वे सामायिक-व्रत अंगीकार कर मुनि श्री गंभीरमलजी का व्याख्यान प्रेमपूर्वक सुन रहे थे। उसी समय बीकानेर निवासी श्रीयुत चुन्नीलालजी डागा भी जो रतलाम वाले सेठ पूनमचंदजी दीपचंद जी की टोंक की दुकान पर मुनीम थे व्याख्यान में आये। चुन्नीलालजी शास्त्र के ज्ञाता, उत्पात बुद्धि वाले विद्वान और वयोवृद्ध श्रावक थे। सामुद्रिक और ज्योतिष-शास्त्र का भी उनका ज्ञान प्रशंसनीय था। वे भी श्रीजी की पंक्ति में ही सामयिक करके बैठे थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि श्रीलालजी पर पड़ी। वे श्रीलालजी के शारीरिक लक्षणों को बार-बार निरखने लगे। व्याख्यान पूर्ण होने पर अपनी कोठी पर गए और भोजनादि से निवृत्त हो दुकान पर आये। थोड़े समय पश्चात् हीरालालजी बम्ब भी कार्यवश चुन्नीलालजी डागा की दुकान पर गए, तब चुन्नीलालजी डागा हीरालालजी से कहने लगे कि 'श्रीलाल आज प्रातःकाल व्याख्यान में मेरे पास ही बैठा था उसके शारीरिक लक्षणों की मैंने जाँच कर ली है। मुझे आश्चर्य है कि यह अब तक तुम्हारे घर में गोदड़ी में गोरख क्यों? यह कोई साधारण पुरुष नहीं है, बड़ा संस्कारी जीव है। सामुद्रिक शास्त्र सच्चा हो और मेरे गुरु की ओर से मिली हुई प्रसादी सच्ची हो तो मैं छाती ठोक कर कहता हूं कि यह तुम्हारा भतीजा आगे चलकर कोई महान पुरुष निकलेगा। जहां तक मेरी बुद्धि की पहुंच है मैंने गहन विचार किया तो यही सार निकला कि यह व्यक्ति तुम्हारे घर में रहना मुश्किल है।' श्री हीरालालजी यह सुनकर स्तब्ध रह गए।

कई बार श्रीजी शहर से निकल कर पास के पर्वतों पर चले जाते और वहां घंटों व्यतीत करते। वहां के नैसर्गिक वातावरण और प्राकृतिक लीला देखते-देखते इनके मस्तिष्क में नये-नये विचार उत्पन्न होते रहते। कई बार तो तत्व चिंतन में ऐसे निमग्न हो जाते कि समय का ध्यान ही नहीं रहता। श्रीजी कहते रहते थे कि उन्हें पर्वत पर का निवास बड़ा भला लगता है। घर में भी वे

पनी तीन मंजिली हवेली में चांदनी पर विशेषतः अपनी बैठक रखते थे। प्रकृति भी अपने आप में हुत बड़ी शान्ति प्रदाता एवं शिक्षक है। आवश्यकता है आंखें खुली रखकर उसके मूक संदेश को ही रूप से ग्रहण कर प्रसन्न एवं शिक्षित होने की। श्रीजी प्रकृति से नित्य प्रति ऐसी शिक्षा एवं तफुल्लता ग्रहण करने को सदैव तत्पर रहते थे।

टोंक शहर के समीप की पर्वत श्रेणियां श्रीजी की हवेली की तीसरी मंजिल से भी ष्टिगोचर होती थीं। टोंक के समीप रसिया की टेकरी के नाम से प्रसिद्ध एक ऊँची ऐतिहासिक करी थी। उसकी बनावट इस प्रकार की थी कि ऐसा लगता है कि मानो तत्ववेत्ताओं का सिंहासन । और चिंतन के लिए श्रीजी को वार-बार आमंत्रित करती हुई प्रतीत होती थी। श्रीजी भी प्रायः सी टेकरी पर विराजते थे। इसके आसपास का अनुपम सौंदर्य उनके तृप्त मस्तिष्क को शीतलता दान करता था। विशाल वृक्षों के पल्लव पंखे का काम कर आतिथ्य करते थे। कोयलों की कुहुक ौर मयूरों की माधुर्ययुक्त आवाज रूपी संगीत आने वाले मेहमान का मनोरंजन करते थे। परिमल लाता हुआ ठंडा स्वच्छ समीर, चारों ओर फैली हुई अपूर्व शान्ति, थके हुए मस्तिष्क को ताजा कर ते थे। आबू से उत्पन्न और अरावली तथा उदयपुर के तालाब का पानी पीकर, (अर्थात् उदयपुर के रोवर से निकली बेडच नदी बनास में आकर मिलती है) पुष्ट हुई बनास नदी अनेक प्राणियों की ष्णा शान्त कर शान्ति प्रदान करती हुई बहती है। अपने दोनों तटों पर खड़े आम्रादि वृक्षों को ोषण करती हुई परोपकार का अमूल्य पाठ सिखाती, टोंक के पास से भी धीमी गति से बहती है। ाम्रवृक्ष फल आने पर अधिक नीचे झुककर विनय का पाठ सिखाते हैं और अपने मिष्ट फलों द्वारा ंसार में परमार्थ के लिये ही उत्पन्न हुए हों ऐसा आभास कराते प्रतीत होते थे। एक ओर लगा वट ृक्ष आभास कराता था कि राई जैसे बीज से उत्पन्न होकर कितना बड़ा आकार प्रकार बन जाता ै। अर्थात् संसार में जरा फंसे तो मोह-माया का जाल इतना फैल जायेगा कि फिर उससे निकलना ंभव नहीं है।

मोह-माया में फंसने से सचेत करते वट वृक्ष का, श्रीजी आभार मानते थे। उनके तात्विक वेचार भावी जीवन की इमारत की नींव सुदृढ़ करते थे। कठिन चट्टानों से टकरा कर आवाज करने ाली सरिता के तट पर तड़फती मछलियों को देखकर उन्हें रसेन्द्रियों की लोलुपता के कारण देह को ाप्त कष्टों का आभास होता था और ऐसा लगता था कि इन्द्रियों को वश में न करने पर मनुष्य की या गति हो जाती है।

सूर्यास्त से पूर्व घर पहुंचने की जल्दी में नीचे उतरते समय सामने के फूलों के झाड़ नजर आते जिनके पराग से मस्तिष्क एकदम ताजा हो जाता। परन्तु फूटे हुए अंकुर, खिली हुई कलियां, ूले हुए फूल और नीचे गिरे हुए एवं मिट्टी में मिले कुम्हलाये हुए पुष्प, जीवन की बाल, युवा, प्रौढ़ और वृद्धावस्था तथा जीवन-मृत्यु का प्रत्यक्ष चित्र प्रस्तुत करते लगते और श्रीजी प्रकृति की इन समस्त क्रियाओं को आत्मसात करते हुए पास के पत्थर पर बैठ जाते थे। आसपास का प्रत्येक पत्ता, पक्षी एवं पत्थर तक मानो स्वार्थमय और परिवर्तनशील संसार का नाटक करते से प्रतीत होते थे। समीप से बहते हुए झरने का कोलाहल ऐसा लगता जैसे पत्थरों से विवाद हो रहा है अथवा उपरोक्त नाटक में संगीत का समावेश किया जा रहा है। 'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' को चरितार्थ करती यह सब घटनाएं श्रीजी को वैराग्य की ही शिक्षा देती थीं।

प्रकृति की इन्हीं रचनाओं की मीमांसा में फंसा श्रीजी का मस्तिष्क राह में भी इन्हीं पर मनन करता चलता था।

'सुशोभित ने सुगंधी छे छता कांटा गुलावे छे,
पूरा प्रेमी पपैया ने, तृषातुर केम राखै छै?
मनोहर कंठनी कोपल करी कां तेहने काली,
हलाहल झेर छे जेमां सफेदी सोमले मूकी?
रुडो रजनी तणों राजा, कलंकित चन्द्र कां कीधो,
बनाल्यों केम ज्ञयरोगी? अरे अपवाद् कां दीधो? (मणिकांत)

प्रकृति की अमूल्य शिक्षा से श्रीजी के हृदय में पलता वैराग्य भाव उनकी कोमलता और सत्यप्रियता के कारण वचन और व्यवहार में भी व्यक्त होने लगा। केवल मित्रों से ही नहीं परन्तु अब तो माता और भ्राता के समक्ष भी मानव जीवन की दुर्लभता, संसार की असारता और साधु जीवन की श्रेष्ठता व्यक्त करने वाले वाक्य ही श्रीजी के मुखारविंद से निकलने लगे। इनका गृहस्थ की ओर तनिक भी ध्यान न जाकर केवल संतसमागम, ज्ञानाध्ययन और एकान्तवास में ही समय बीतने लगा।

श्री श्रीलालजी की प्रवृत्ति संसार की ओर से उदासीन देख उनकी माता आदि संबंधी जन चिन्ता करने लगे। जो माता अपने पुत्र का धर्म के प्रति अति अनुराग देखकर पहले आह्लादित होती थी, वही माता आज पुत्र के वैराग्यमय वचन सुनना तक नहीं चाहती थी। इनका धर्ममय व्यवहार उन्हें अति अरुचिकर एवं अहितकर प्रतीत होने लगा। साधु-साध्वी की सेवा तथा उनकी सत्संगति ही जिसका कर्तव्य रहा है, वही साध्वी स्त्री सांसारिक मोह के कारण अपने पुत्र का साधुओं के सत्संग में रहना ना पसंद करने लगी। माता का अन्तःकरण उन्हें सत्संग छुड़ाना चाहता था। सांसारिक प्रेम उनके मन में चिन्ता जगाये रखता था किन्तु फिर भी वे अपना अभिप्राय स्पष्ट शब्दों में पुत्र के समक्ष व्यक्त नहीं कर सकती थी। अहा! संसार पर मोह की सत्ता कितनी प्रबल है।

अध्यापक गेटे द्वारा किये हुए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि : सारी वृत्तियां पुष्टिकारक रसायनिक तत्व उत्पन्न करती हैं। शरीर के परमाणुओं को शक्ति उत्पन्न करने के लिये उत्तेजित करती रहती हैं। किन्तु क्रोध, घृणा और अन्य दुष्प्रवृत्तियां शरीर में हानिकारक तत्व उत्पन्न करती हैं जिनमें से कितने ही अत्यन्त जहरीले होते हैं। प्रत्येक दुष्प्रवृत्ति शरीर में रसायनिक परिवर्तन करती है। मन में उत्पन्न हर एक विचार मस्तिष्क के परमाणुओं की रचना को प्रभावित करता है और यह परिवर्तन कुछ न कुछ अंश में शरीर पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है।

इनकी माता व भ्राता को विश्वास था कि इनकी पत्नी के आ जाने से इनके विचारों में परिवर्तन आ जायेगा। इसी आशा में दिन व्यतीत होते गये। आशा ही रागपाश में फंसे हुए प्राणियों की प्राणदायिनी बूटी है। यह मनुष्य के मानसिक परिवेश में प्रविष्ट कर भविष्य के लिये सुन्दर-सुन्दर कल्पनाओं का तानाबाना बुनकर कल्पनाओं के महल खड़े करती रहती है।

सं. 1929 में श्रीजी अपनी धर्मपत्नी मानकुंवर बाई को दूनी से गोना कराकर टोंक ले आये। इस समय उनकी धर्मपत्नी की उम्र 12-13 वर्ष की थी। पुत्रवधू के आगमन से सास का

हृदय आनन्द से भर आया और पुत्रवधू के विनयादि गुण और योग्यता देखकर तो श्रीजी की मातुश्री को अपनी आशा के सफल होने के आसार दिखने लगे। श्रीजी के सहाध्यायी मित्र भी उनकी परीक्षा लेना चाहते थे कि श्रीजी का वैराग्य पतंग के रंग जैसा हल्का एवं क्षणिक है अथवा मजीठ के रंग जैसा गहरा एवं स्थाई है। अब हमें यह देखना है कि इस परीक्षा का क्या परिणाम रहता है तथा इनके कौटुम्बिक सदस्यों की आशा कहां तक फलीभूत होती है।

श्रीजी ने कई वचनामृत ध्यान में रखने के लिये छोटी पुस्तिका में उतार लिये थे और उनका बारम्बार स्मरण करते थे, उदाहरणार्थ–

प्रियास्नेहो यस्मिन्निगडसदृशो यानिकभटो

यमः स्वीयो वर्गो धनमभिनवं बन्धनमिव।

सदा में ध्यापूर्ण व्यसनबिल संसर्ग विषमं

भवः कारागेहे तदिह नरतिः क्वापि विदुषाम।।

भावार्थ : संसार में स्त्रियों का स्नेह लोहे की जंजीर के बंधन जैसा है जो स्वच्छ विचरते प्राणी को मोहमाया के बन्धनों में जकड़ लेता है। उसका कुटुम्बी वर्ग यमराज के समान है जो उसे लोभ, मोह, ममता आदि पापकर्मों की ओर ले जाकर नाना प्रकार से दुःख का भागी बनाता है। व्यसनी लोगों के संसर्ग से मेधावी प्राणी की बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है और उसके लिए यह संसार कारागृह समान बन जाता है।

अध्याय 3 : कठोर प्रतिज्ञा

श्रीजी नित्य की भांति अपने परोपकारी गुरुवर का व्याख्यान भी प्रेमपूर्वक सुन रहे थे। वीर प्रभु की अमृतमय वाणी के पान से श्रोतागणों के हृदय भी आनन्दमग्न हो रहे थे। उस रोज के व्याख्यान का विषय ब्रह्मचर्य था। ब्रह्मचर्य समस्त सद्गुणों में श्रेष्ठ है, ब्रह्मचर्य स्वर्ग और मोक्षदायक है। ब्रह्मचारी भगवान के समान है। देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा भी ब्रह्मचारी के चरण कमलों की वंदना करते हैं और उनकी पूजा करते हैं, ऐसी सारगर्भित सूत्र की गाथाओं का एक-एक करके पठन हो रहा था और उनका रहस्य समझाया जा रहा था। बीच-बीच में नेमनाथ, राजीमती, जम्बू कुमार, विजय सेठ, विजयारानी आदि आदर्श ब्रह्मचारियों के दृष्टान्त भी दिये जा रहे थे और उनकी यश गाथाओं का गान किया जा रहा था।

ऐसे ब्रह्मचारी पूज्य पुरुष के मुखारविंद से ब्रह्मचर्य धर्म की ऐसी अपार महिमा सुनकर श्रीजी के हृदय सागर में इच्छा रूपी तरंगें उठने लगीं। तरंगों से युक्त महासागर की तरह उनका अन्तःकरण विचार तरंगों से भर गया और व्याख्यान पूर्ण होते ही खान-पान की चिन्ता छोड़ अपनी पूर्व परिचित प्रिय टेकरी की ओर प्रस्थान किया। वहाँ एकान्त में एक शिला खण्ड पर बैठकर वे चिन्तन करने लगे, 'एक लघु वय की सुकुमार कन्या का हाथ पकड़कर मैं यहाँ ले आया हूँ। लोग मुझे समझाते हैं कि उसका जन्म बिगाड़ना महापाप है और जम्बू कुमार का मोक्ष भी असंभव है। तो फिर तीर्थंकर पद प्राप्त श्री नेमनाथ भगवान ने भी ऐसा क्यों किया। मेरे हृदय में उस पर दया भी है और अनुकम्पा भी। मेरे गृहत्याग से उन्हें कितना महान कष्ट होगा यह भी मैं जानता हूँ, परन्तु एक ही व्यक्ति पर दया के कारण अनन्त पुण्योदय से प्राप्त और अनन्त जन्मों के भ्रमण से मुक्त करने की शक्ति रखने वाला यह मनुष्य जन्म, जो देव दुर्लभ है, क्या मुझे यों ही व्यर्थ में बरबाद कर देना चाहिए? विषय रूपी कीच में इसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालना सुमेरू जैसी भूल है। जीवन तो क्षणभंगुर है और यौवन चार दिन की चांदनी मात्र है। वह तड़ितद्युति के समान क्षणिक है, याने क्षणभर चमक कर लुप्त हो जायेगा। जैसे पुल पर से वेग से जाने वाली ट्रेन को जाते हुए देर नहीं लगती, इसी प्रकार युवावस्था को निकलते देर नहीं लगेगी। यदि काल की अनन्तता पर विचार करें तो सौ वर्ष की आयु भी विद्युत द्युति के समान क्षणिक है। इतने से अल्प समय के लिए मेरे या उसके क्षण भर के सुख दुःख का क्यों विचार करना चाहिये। अस्थि, मांस, चर्म, रक्त से निर्मित इस क्षणभंगुर शरीर के मोह का भाव ही भवबंधन और दुःख का कारण है। जैसे कमल पत्र पर ओस कण कुछ समय तक मोती जैसा दिखाई देकर अदृश्य हो जाता है उसी प्रकार यह शरीर, यौवन, स्त्री और संसार के सर्व वैभव भी निश्चय ही नष्ट हो जाएंगे। इन नाशवान पदार्थों के लिए मैं अपनी अविनाशी आत्मा का हित क्यों नष्ट होने दूँ। यह समस्त संसार स्वार्थी है। जब तक वृक्ष पर फल होते हैं तभी तक पक्षी उसका आश्रय लेते हैं और फलरहित होते ही उसको त्याग कर चले जाते हैं। यदि मैं विषयों

का त्याग न करूँ तो भी यौवन का अन्त होते ही इन्द्रियों का बल क्षीण हो जाएगा और ये विषय भोग भी मेरे लिए दुर्लभ हो जाएंगे तथा मेरी आत्मा को अधोगति के गहन गर्त में ढकेलते जाएंगे। अतः विष रूपी विषयों का अभी से त्याग क्यों न किया जाए। इन विचारों के परिणामस्वरूप श्रीजी ने यही निश्चय किया कि अब विषयों का त्याग करके ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये।

ठीक उसी समय वृक्षों और लताओं से सुन्दर एवं सुगंधित पुष्प श्रीजी के शरीर पर गिर पड़े। वृक्षों पर के पक्षी श्रीजी की दृढ़ता की प्रशंसा और प्रतिज्ञा के निष्ठापूर्वक पालन हेतु आग्रह करते हुए से प्रतीत हुए एवं मधुर संगीत का आलाप कर अपनी स्वीकृति दर्शाते से लगे। सूर्य नारायण की किरणें वट वृक्षों में से होकर श्रीजी के मस्तक पर विजय मुकुट सा पहनाने लगी और ऐसा प्रतीत होने लगा मानों सृष्टि देवी ने श्रीजी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने हेतु ही ऐसी व्यवस्था कर रखी है।

अहा! कैसा मांगलिक शब्द। कैसा अपूर्व व्रत। कैसी दिव्य भावना। कैसा विशुद्ध जीवन। बस अब मैं ऐसा ही पवित्र जीवन बिताऊँगा। यही कल्याणप्रद मार्ग ग्रहण करूँगा और जैन एवं जैनेतर समाज को भी इसी मार्ग पर खींचूँगा। जिसके लिए मेरा हृदय चिंतित रहता है उसके लिए भी यही निर्भय और कल्याणकारी मार्ग खोलूंगा। अखण्ड ब्रह्मचर्य। यही मेरे जीवन की अभिलाषा हो। इंद्रियजनित सुखों की अब मुझे लेशमात्र भी कामना नहीं। इंद्रिय भोग का विचार भी अब मुझे विष तुल्य कष्टदायक प्रतीत होता है। अब मैं इंद्रियों के दमन हेतु तप प्रारंभ करूँगा। संयम का पालन करूँगा, ब्रह्मचारियों के गुणों का गान करूँगा। प्रभु का ध्यान धरूँगा और प्रभु के ज्ञानादि गुणों का प्रकाश अपनी आत्मा में करूँगा। ब्रह्मचर्य की ज्योतिर्मय रत्नमाला को अपने कण्ठ में धारण करूँगा और संसार में ब्रह्मचर्य का दिव्य प्रकाश फैलाऊँगा। विषय-वासना की प्रचण्ड और तप्त लोह श्रृंखला से अपने शरीर, अपनी इंद्रियों और मन को दग्ध नहीं होने दूँगा। शील की संरक्षा हेतु यदि शरीर का नाश होता हो तो भले ही हो जाए। 'नत्थि जीवस्स नासोत्ति' इस वीरवाक्य पर मुझे पूर्ण श्रद्धा है अतः मैं किसी भी स्त्री का स्पर्श तक नहीं करूँगा।

अपने मन से प्रभु की साक्षी में श्री जी ने ऐसे विशद ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने हेतु कठोर प्रतिज्ञा की और वे अपनी आत्मा में नवीन उत्साह और नवीन तेज धारण कर घर की ओर चले। यौवन में ऐसे विचार आना भी पूर्वकृत पुण्यों का उदय होने से ही संभव है।

जरा जन जाळवी लेजे, अरे झेरी जुवानी छे।
कलंकित कीर्ति ने करशे, खरे! बैरी जुवानी छे।।
अभिमाने करे अंधा करावे नीच ना धन्धा।
विचारो फेरवे सन्धा जुवानी तो गुमानी छे।।
बनाव्या कैकने कैदी, नखाव्या शीष कैक छेदी।
जुवानी शत्रु छे भेदी न मानो के मजानी छे।।
विकारो ने वलगनारी, बतावे पापनी बारी।
सुजाडे बुद्धि ना सारी, पीडा कारक पीछानी छे।।

सगझ संसार ना प्राणी जुवानी गान मरतानी।
अरे पण चार दोड़ानी जुवानी जाण फानी छे।।
कथे शंकर झुठी संसार की माया।
जुवानीनी झुठी छाया जुठी आ जिन्दगानी छे।।

मानकुंवर बाई को घर आये थोड़े ही दिन हुए थे। उनके विनय आदि उत्तम गुणों तथा कर्तव्य परायणता ने परिवार के सभी मनुष्यों के मन मोह लिए थे। प्रत्येक व्यक्ति वहू की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता था किन्तु इससे मानकुंवर बाई आनन्दित नहीं होती थी। अपने पति की वैराग्यवृत्ति उनके हृदय को विदीर्ण करती रहती थी। जव-जव वे एकान्त में होती तब-तब वे यही विचार करती रहती कि पति का मन किस प्रकार प्रसन्न किया जाए और किन-किन युक्तियों से उनका प्रीतिपात्र बना जाए। 'विनय महावशीकरण मंत्र है' यह आते ही सास ने उन्हें सिखा दिया था और वे सभी प्रकार से विनय और भक्ति द्वारा पति का मन प्रसन्न करने का प्रयत्न करती थी किन्तु श्रीजी तो प्रायः इससे दूर ही रहना पसन्द करते थे।

वे पृथक हवेली में, पृथक स्थान पर ही सोते, वार्तालाप तो कदाचित् ही करते और अधिक समय पढ़ने-लिखने या धर्मानुष्ठान में ही व्यतीत करते थे। ऐसा होते हुए भी उनकी पत्नी की यह मान्यता थी कि वह धीरे-धीरे अपने पति की मति ठिकाने ला सकेगी। उनकी सासूजी भी यही आश्वासन देती रहती थी किन्तु आज का व्याख्यान सुनने के पश्चात् पर्वत पर की हुई प्रतिज्ञा के कारण श्रीजी के विचारों, वाणी और व्यवहार में एकाएक बहुत परिवर्तन हो गया। पत्नी के साथ एकान्तवास और वार्तालाप आज से सदैव के लिए बन्द हो गया। इस घटना ने मानकुंवर बाई के हृदय में प्रज्वलित चिंताग्नि में मानों घी होम दिया, किन्तु वे न तो निराश हुई और न ही अपनी जीवनदायिनी प्रिय सखी आशा का परित्याग किया।

पति की सेवा करने तथा अपने हृदय के उद्‌गार अपने पति से कहकर हृदय का भार हल्का करने की तीव्र अभिलाषा होते हुए भी मानकुंवर बाई को कितने ही दिनों तक ऐसा अवसर नहीं मिल पाता था और वह केवल अश्रुपात करके ही अपने हृदय का भार हल्का कर लिया करती थी क्योंकि उनके लिए यही एक मार्ग उपलब्ध था। रात को श्रीजी उपाश्रय में या अपनी दूसरी हवेली में सोते थे और दिन में घर पर बहुत कम रहते थे। बड़ा कुटुम्ब होने से दिन के समय एकान्त में वार्तालाप का समय मिलना तो दुर्लभ था ही, श्रीजी भी दूर-दूर भागते थे अतः मानकुंवर बाई के मन की इच्छाएं मन में ही रह जाती। श्रीजी की माताजी और मित्रगण उनसे बार-बार कहते किन्तु श्रीजी के मन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।

एक दिन श्रीजी अपनी तीन मंजिली ऊँची हवेली की चांदनी में बैठे हुए जयपुर निवासी स्वर्गीय कवि जौहरी जेठमलजी चौरड़िया कृत पद्यात्मक जम्बू चरित्र पढ़ने तथा उसके छंद कंठस्थ करने में लीन थे। उस समय अवसर देखकर दबे पैरों मानकुंवर बाई पति के पास आ खड़ी हुई और नम्र एवं भावयुक्त दीन वाणी से, हाथ पकड़कर लाई हुई अबला की ओर कृपादृष्टि से देखने की प्रार्थना करने लगी किन्तु काम को वर्जित फल समझने वाले और प्राण की आहुति देकर भी शीलव्रत के पालन की प्रतिज्ञा लेने वाले दृढ़ व्रतधारी महानुभाव श्री लालजी ने नीचे नेत्र करके मौन धारण कर लिया। एकान्त होते हुए भी युवती के सौजन्य, सौन्दर्य, वाक्पटुता और हाव-भाव का उनके

हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। 'एकान्त में स्त्री के साथ रहना, वार्तालाप करना, उसके करुण वचन सुनना, उसके हावभाव या अंगोपांग देखना ब्रह्मचारियों के लिए अनिष्टकर और अनुचित हैं' ऐसा सोचकर श्रीजी ने तुरंत निकल भागने का निश्चय किया और उठ खड़े हुए किन्तु नीचे उतरने की पत्थर की सीढ़ियों की राह रोककर मानकुंवर बाई खड़ी हुई थी, अतः श्रीजी सीढ़ी के दूसरी ओर चांदनी के दूसरे खण्ड में शीघ्रता से जाने लगे।

हृदय के बोझ को कम करने हेतु प्राप्त अवसर से लाभ उठाने और उन्हें भाग न जाने देने का निश्चय करके मानकुंवर बाई उनके पीछे-पीछे कोमल चरणों से चली और श्रीजी का हाथ पकड़ने के लिए अपना वही कर-पल्लव बढ़ाया जो पिता ने पति को पाणिग्रहण के समय हाथ में सौंपा था। वही हाथ पति को फिर से पकड़ने की विनती करने पर भी श्रीजी का हाथ अपनी अबला पत्नी की ओर नहीं बढ़ सका। 'नाथ! दृष्टिपात कीजिये' इस मौन प्रार्थना का दिव्यनाद श्रीजी के श्रवणयुगल में गिरने ही न पाया। 'किसी भी स्त्री का स्पर्श न करना' इस प्रतिज्ञा का कहीं भंग हो जाएगा, इस डर से और अन्य राह न मिलने से तत्काल श्रीजी वहां से उत्तर की ओर की उस तीन मंजिल की हवेली के बराबर वाली पश्चिमी द्वार की अपनी दूसरी दो मंजिल वाली हवेली की चांदनी पर कूद पड़े। अपने इस व्यवहार पर पश्चात्ताप करती हुई और भय से थर-थर कांपती हुई मानकुंवर बाई एकदम कई सीढ़ियाँ उतर कर नीचे आ गयी। 'यह कैसा शब्द था!' सास के इस प्रश्न का अश्रुपूर्ण नेत्रों से स्पष्टीकरण किया। माता जी तुरन्त नीचे उतर कर दूसरी हवेली की मंजिल चढ़कर दौड़ती हुई पुत्र के पास पहुँची। सूचना मिलने पर नाथूलालजी भी आये।

चांदनी की समतल भूमि कठोर होने से श्रीजी के एक पैर में गहरी चोट लगी और नस पर नस चढ़ गयी। यह देखकर माताजी की आंखों से आँसू बहने लगे। वे कहने लगी, 'बेटा! ऐसा न किया कर। अब तू बालक नहीं है। इतनी ऊँचाई से कूदने पर कभी-कभी जान की जोखिम रहती है।' उत्तर में श्रीजी ने कहा, 'माताजी! संसार की ज्वाला में जलने की अपेक्षा मैं मरना अधिक पसन्द करता हूँ।' उस समय नाथूलालजी, हकीम जी को बुलाने के लिए चले गये थे। हकीम तथा डाक्टर का इलाज कराने से थोड़े दिनों पश्चात् उनका पैर अच्छा हो गया किन्तु पूरा ठीक नहीं हुआ। यह कष्ट उन्हें जीवनपर्यन्त रहा। यह घटना सं. 1940 में घटी। उस समय श्रीजी की उम्र 15 वर्ष की थी किन्तु शरीर का विकास अच्छा होने से वे 18 वर्ष के से दिखाई देते थे।

भोग की लालसा को हृदय से सदैव के लिए विदा कर देने का साहस करना, कुलवती और सुन्दर स्त्री का भरे यौवन में परित्याग करना कोई साधारण बात नहीं है। मगर श्री वीर प्रभु का उपदेश जिनकी रग-रग में भरा हुआ था ऐसे ब्रह्मचारी श्रीलालजी ने यह साहस कर दिखाया। यह कार्य वस्तुतः प्रशंसनीय, वंदनीय और आश्चर्यकारी है जो साधारण मनुष्यों की शक्ति के बाहर है। ऐसे कार्य कई-कई व्यक्ति तो संसार त्याग करके भी नहीं कर पाते। काजल की कोठरी में रहने पर भी वस्त्रों पर काजल की रेख न लगने देना बड़ा कठिन कार्य है। श्री वीर प्रभु की आज्ञा को श्रीजी प्राणों से भी अधिक मानते थे। चांदनी पर से कूदकर श्रीजी ने वीर प्रभु की आज्ञा का अनुसरण कर सच्ची वीरता दिखाई है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि –

जहां विडाला वसहस्स मूले न मूसगाणं वसही पसत्था।

एमेव इत्थीनिलयस्स मण्झे न बंभयारिस्स खमो निवासो।।

अर्थ–जहां बिल्ली रहती हो वहां चूहे का रहना ठीक नहीं इसी तरह जहां स्त्री का निवास हो वहां ब्रह्मचारी का रहना क्षेमकारी नहीं।

श्री दशवै कालिक सूत्र में कहा है कि :

हत्थपायपडिच्छिन्नं कन्नं नासं विकप्पियं।

अविवाससयं नारिं वंभयारी विवज्जए।।

अर्थ–जिसके हाथ पांव छिन्न-भिन्न हैं कान और नाक भी कटे हैं और सौ वर्ष की बुढ़िया है ऐसी स्त्री का भी ब्रह्मचारी को संग न करना चाहिये।

यद्यपि छद्मस्त साधु की जीवन पर्याय की तुलना केवलियों के जीवन चरित्र से नहीं की जा सकती मगर जहां तक पूज्य आचार्य श्रीलालजी के जीवन चरित्र का प्रश्न है, उनका यह अखंड ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करना निश्चित रूप से वड़ी अपूर्व घटना है, जिसके समानान्तर उदाहरण बिरले ही मिल सकते हैं। स्वयं भगवान ऋषभदेव ने 83 लाख पूर्व वर्षों का जीवन संसार में बिता कर सिर्फ एक लाख पूर्व वर्षों तक दीक्षापर्याय एवं ब्रह्मचर्य व्रत पाला था। उनके सौ पुत्र व दो पुत्रियाँ थी। भगवान महावीर ने भी विवाह किया था एवं उनके भी श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार एक पुत्री हुई थी तथा उसके पश्चात् उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। जमाली स्वयं भगवान महावीर के दामाद बताये जाते हैं। भगवान नेमिनाथ के जीवन चरित्र में यह पाया जाता है, कि उन्होंने शादी करने जाते वक्त, पशुओं की हिंसा से संत्रस्त होकर, एक घर बसाने हेतु, अनेक घर उजाड़ने की बात को, अनुचित साबित करने की भावना को, दृष्टिगत रखते हुए, आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत अंगीकार करने, एवं जैन-भगवती दीक्षा पालन करने के मंतव्य से, शादी बिना किये, अपना रथ गिरिनार पर्वत की ओर मोड़ लिया था। मगर, इस तरह की किसी घटना के कारण भी, श्री श्रीलालजी ने, आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण नहीं किया था।

ऐसा भी देखने में आता है, कि बहुत से व्यक्ति बाल वय में ही, दीक्षित हो जाते हैं एवं दीक्षित जीवन पर्याय की पालना के दौरान आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। मगर, ऐसा उदाहरण बिरला ही मिलेगा, कि एक आदमी, सुन्दर एवं सुसंस्कृत पत्नी के घर में रहते हुए एवं उसके द्वारा, हर तरह से अपने पति को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करने के बावजूद, मात्र ब्रह्मचर्य व्रत की महिमा एवं उस व्रत से जीवन चरित्र पर पड़ने वाले प्रभाव का, बौद्धिक एवं भावनात्मक रूप से, गुणावगुण के आधार पर मूल्यांकन कर कोई व्यक्ति आत्म कल्याण हेतु उसे हृदयंगम करने का बीड़ा उठा ले। ऐसे भी उदाहरण देखने को मिलते हैं कि युवा वय में भी स्वयं तीर्थंकरों एवं केवलियों से सासांरिक जीवन की निःसारता का ज्ञान प्राप्त कर व्यक्ति आजीवन ब्रह्मचर्य एवं जैन भागवती ग्रहण करने के लिए अग्रसर हुए हों मगर ऐसे उदाहरण बिरले ही मिलेंगे कि स्वयं की आंतरिक प्रेरणा एवं चारित्रिक निष्ठा एवं दृढ़ता के आधार पर इस तरह का व्रत ठंडे दिमाग से कोई आदमी स्वीकार कर ले। अलबत्ता जम्बू कुमार स्वामी का एक ऐसा उदाहरण जरूर है कि उन्होंने भगवान से उपदेश ग्रहण कर संसार की असारता का ज्ञान प्राप्त किया मगर उनके पिता के आग्रह पर 8 रूपवती कन्याओं से विवाह करने के बावजूद अपने आजन्म ब्रह्मचर्य के व्रत को अक्षुण्ण रखते हुए उन 8 नवयौवन-पत्नियों को एवं प्रभव सहित 500 चोरों को उद्बोधन देकर जैन भगवती दीक्षा एवं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के लिए प्रेरित कर उनके साथ दीक्षा

ग्रहण कर स्व-परकल्याण का उदाहरण प्रस्तुत किया है। अलवत्ता उनके मामले में भी केवलियों से श्रवण किये हुए उपदेश आधार बने थे मगर पूज्य श्रीलाल जी द्वारा इस तरह का व्रत अंगीकार करने में मात्र छद्मस्त मुनियों का ब्रह्मचर्य उपदेश ही प्रेरणा का स्रोत बना एवं फिर उन्होंने स्वयं अपने चरित्र बल के आधार पर इस व्रत की उपादेयता को गुणावगुण के आधार पर तौल कर इसे अंगीकृत किया था एवं वह भी उन परिस्थितियों में जबकि उनका भरा-पूरा एवं समृद्ध परिवार था तथा सुलक्षणा व नवयौवना पत्नी घर वालों की एवं स्व-प्रेरणा से उनको हर तरह से अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए पूरी तरह प्रयत्नशील थी। अतएव इस तरह का अखण्ड एवं आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करने का महानव्रत धारण करना जन साधारण एवं काम की ज्वाला में प्रगाढ़ रूप से जलने वाले हम सांसारिक प्राणियों के लिए निश्चित रूप से स्तुत्य, अनुकरणीय एवं प्रेरणा का प्रबल स्रोत है।

जहां कुक्कुडपोयस्स निच्चं कुललओ भयं।
एवं खु वंभयारिस्स, इत्थिविग्गहो भयं।।

अर्थ—जैसे कुक्कुट के बच्चे को हमेशा बिल्ली का भय रहता है तैसे ही ब्रह्मचारी को स्त्री की देह से भय उत्पन्न होता है।

श्री वीर प्रभु ने पवित्र जिनागम में ब्रह्मचर्य की अत्यधिक प्रशंसा की है और 'ब्रह्मचर्य भंग करने की अपेक्षा मरना अच्छा है' ऐसा साधुओं को संबोधन करके कहा है। श्रीजी भी गृहस्थ के वेष में साधु ही थे।

कामांध और विषयलुब्ध मनुष्यों को यह वृत्तांत पढ़कर सोचना चाहिये, पश्चात्ताप करना चाहिये और अपनी आत्मा के हितार्थ इन महात्मा की सत्प्रवृत्ति का अनुकरण करके अपना जीवन सफल बनाना चाहिये। विषयों के दास न बनकर मन और इंद्रियों पर विजय प्राप्त करना सीखना चाहिये और ऐसा करने के लिए अनेक प्रकार के नियमों का पालन प्राण देकर भी करना चाहिये।

अनादिकाल के अभ्यास से मन और इन्द्रियां स्वभाव से ही शब्द स्पर्शादि विषयों की ओर आकर्षित होकर विषय सुखों में लीन रहती हैं और इसी कारण से आत्मा की अनन्त शक्ति का भान नहीं रहता। मन बंदर की भांति अति चंचल है। जैसे बंदर वृक्षों पर कूदता फिरता रहता है उसी प्रकार मनुष्य का मन भी नाना प्रकार के विषयों में वेग से दौड़ता रहता है। सर्व क्लेशों के क्षय और परमानन्द की प्राप्ति के लिए मन की ऐसी चंचलता और क्लेशप्रद स्वभाव को नष्ट करने की विशेष आवश्यकता है। विरले महाभाग पुरुष ही ऐसा कर सकते हैं। श्री श्रीलालजी ने बालपन से ही विषय सुखों का परित्याग करने में अद्भुत पराक्रम दिखाया। इस कारण से उनका चरित्र प्रत्येक मनुष्य के लिए मननीय, अनुकरणीय और स्मरण रखने योग्य है।

दीक्षा लेने के पश्चातु भी श्रीजी अपने उपदेशों में ब्रह्मचर्य पर खूब जोर देते थे। ब्रह्मचर्य के निर्वाहार्थ शिष्यों के आहार की तरफ भी वे बहुत ध्यान देते थे और यही कारण था कि उनके सम्प्रदाय में कोई ढीला-ढाला साधु नहीं टिक पाता था।

अध्याय 4 : वैराग्य

उपर्युक्तघटना के कुछ दिन पश्चात् ही श्रीजी ने अपनी माता से विनयपूर्वक दीक्षा के लिये अनुमति मांगी। माँजी के कोमल हृदय पर इन शब्दों से वज्राघात हुआ किन्तु फिर भी वे धैर्य धारण किये रहीं क्योंकि इस प्रकार का आशय उनका पुत्र पूर्व में भी कई वार उनके समक्ष प्रकट कर चुका था। उस समय उन्होंने इतना ही उत्तर दिया कि 'संसार में रहकर भी धर्म, ध्यान हो सकता है। हमारी दया न आती हो तो न सही परन्तु इस बिचारी वहूरानी के ऊपर तो तुम्हें दया करनी चाहिये। इसका जन्म बिगाड़कर जाना महा अन्याय है। फिर भी यदि तुम्हें दीक्षा ही लेना है तो मेरा वचन मानकर थोड़े वर्ष संसार में विता।' इतना कहते-कहते उनका हृदय भर आया और आँखों में अश्रुपात होने लगा। श्रीजी ने अपना दृढ़ निश्चय दिखाते हुए कहा कि 'माँजी! आप चाहे कोटि उपाय करें तो भी मैं अब संसार में रहने वाला नहीं हूँ। मुझे अब आज्ञा दें तो संयम आराधन कर अपनी आत्मा का कल्याण करूं। आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है।'

मातुश्री के कहने से इस बात की सूचना श्रीनाथूलालजी को और फिर सेठ हीरालालजी को भी हुई तो सेठ हीरालालजी ने श्रीलालजी को बुलाकर कहा कि 'खबरदार जो दीक्षा का किसी दिन नाम भी लिया तो! आज से तुम्हें किसी साधु के पास भी नहीं जाना है। साधु तो निठल्ले बैठे-बैठे लड़कों को चढ़ा देते हैं।' श्रीलालजी को इस बात का बहुत दुःख हुआ। उन्होंने बोलने का प्रयत्न भी किया परन्तु कुछ बोल न सके। अपने पिता के बड़े भाई हीरालालजी की आज्ञा का उन्होंने कभी उल्लंघन नहीं किया था अतः उनके सामने बोलना भी उनके लिये दुःसाध्य था। सेठ हीरालालजी ने नाथूलालजी से भी कहा कि 'श्रीलालको जरा सम्भाल कर रखना और उसे साधुओं के पास मत जाने देना।'

सेठ हीरालालजी की सख्त हिदायत के बावजूद भी श्रीलालजी चोरी-छिपे अपने गुरु के पास जाते रहते थे । सद्गुरु का वियोग वे सह न सके। सत्संग में जो अनोखी आकर्षण शक्ति है एवं श्रीजी की ज्ञानाभिलाषा के सामने सेठ हीरालालजी की ओर का भय कुछ गिनती में नहीं रह गया था।

एक दिन श्रीजी ने परमप्रतापी पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज के दर्शन करने का अपने मन में निश्चय किया और बड़ों को विनय-पूर्वक अपना अभिप्राय दर्शाया परन्तु उन्होंने उनको जाने की अनुमति नहीं दी। उस समय महाराज श्री रतलाम शहर में विराजते थे। रतलाम जाने के लिये टोंक से 60 मील दूर जयपुर स्टेशन से रेल पकड़नी होती थी। एक दिन मौका देख घर के लोगों से बिना कहे श्रीजी ने टोंक से जयपुर का 20 रुपये किराये पर तांगा किया और जयपुर आकर जयपुर से रेल द्वारा रतलाम पहुंच गये एवं पूज्य श्री के दर्शनों का लाभ लिया व उनके अमृत वचन श्रवण कर जीवन पवित्र किया। जब घर वालों को वास्तविकता का पता चला तो वे बड़े चिन्तित हुए। सेठ हीरालालजी ने घर आकर श्रीजी की माता श्रीमती चांदकुंवर बाई को उपालंभ दिया कि,

'तुमने छोटी वय में अपने पुत्र को जो धर्म का रंग जोर शोर से लगाया था इसी का यह नतीजा आज देख रही हो।' सारांश श्रीलालजी को बचपन से ही धर्म में लगाया उस का यह दारुण परिणाम तुम्हारी आंखों के सामने है।

दूसरे दिन नाथूलालजी टोंक से रवाना हो जयपुर होकर रतलाम पहुंचे। वहां पूज्य श्री की वन्दना कर बैठ गये तब पूज्य श्री ने पूछा 'कहां रहते हो' नाथूलालजी ने बताया 'टोंक रहता हूँ महाराज!' तब पूज्य श्री ने कहा 'कल ही टोंक से एक भाई श्रीधर भी आया है। विशेषता में पूज्यश्री ने फरमाया कि उसका नाम तो श्रीलाल है परन्तु उसके गुणों को देखते हुये मुझे श्रीधर कहना ज्यादा अच्छा लगता है।' अपने छोटे भाई की ऐसे महापुरुष के मुंह से प्रशंसा सुनकर नाथूलालजी को कुछ आनन्द हुआ। परन्तु पूज्य श्री के मुंह से ऐसे शब्द सुनकर उन्हें यह भी लगा कि श्रीजी अब अपने घर में रहेंगे यह असम्भव लगता है।

थोड़ी ही देर में श्रीजी आकर अपने भाई से मिले और मिलते ही प्रश्न किया कि 'भाई! क्या आज ही आपके साथ वापस घर जाना पड़ेगा? मुझे यहां थोड़े दिन पूज्य श्री की सेवा का लाभ नहीं लेने देंगे?' नाथूलालजी ने कहा 'बड़े स्थानक में पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के मोखमसिंहजी महाराज विराजते हैं उनके दर्शन कर रवाना होना है। उस समय कुछ आनाकानी न कर अपने बड़े भाई के साथ वे चल पड़े, यह उनके हृदय की मृदुता और विनय की पराकाष्ठा का द्योतक है। चलते समय उन्होंने अपने बड़े भाई से एक वचन मांगा कि वे घर तो चल रहे हैं किन्तु जिस हवेली में सब लोग रहते हैं उसमें वे नहीं रहेंगे। बाहर की हवेली में वे अकेले रहेंगे। उनके बड़े भाई ने उनकी यह बात मंजूर कर ली।

रतलाम से रवाना होकर वे जावरा आये। वहां मुनि श्रीराजमलजी, कस्तूरचंदजी तथा मगनलालजी महाराज विराजते थे उनके दर्शन किये। मुनि श्री मगनलालजी महाराज, जो कि आचार्य श्रीजवाहिरलालजी महाराज के गुरु थे, की संझाय करने की अनुपम और अति आकर्षक शैली देख कर चरित्रनायक श्री श्रीलालजी चकित हुए और सोचने लगे कि उनकी सेवा में भी थोड़े दिन रहने को मिले तो कितना अच्छा रहे। परन्तु भाई की इच्छा के कारण वे दूसरे दिन जावद आ गये। वहां श्री तेजसिंह जी महाराज आदि मुनिराज विराजते थे। उनके दर्शन कर दोनों भाई टोंक आ गये। नाथूलालजी का अपने छोटे भाई अर्थात् श्रीजी पर विशेष प्रेम था। उन्हें हर प्रकार से खुश रखने की उनकी विशेष कामना थी। इसलिये राह में भी श्रीजी को प्रसन्न रखने के उद्देश्य से उनको सन्तों के दर्शन कराते हुए एवं उनकी वाणी का श्रवण कराते हुये उन्हें टोंक ले आये। उस समय नाथूलालजी की उम्र 20 वर्ष की तथा श्रीजी की उम्र 15 वर्ष की थी।

टोंक आने के पश्चात् श्रीजी बाहर की हवेली में अकेले रहते और पठन-पाठन तथा धर्मानुष्ठान में समय लगाते। उन्हें घर कारागृह के समान लगता था। दीक्षा लेकर आत्म-हित साधने की उनकी प्रबल उत्कंठा थी। इसके विपरीत घर वालों की इच्छा थी कि किसी भी प्रकार या किसी भी युक्ति-प्रयुक्ति से अथवा अंत में जोर जबरदस्ती से भी उन्हें सांसारिक जीवन जीने को मजबूर किया जावे ताकि उनकी दृष्टि में श्री श्रीलालजी की पत्नी के साथ न्याय हो सके। जैन शास्त्र का ऐसा

संझाय करने की ऐसी ही शैली श्रीजी महाराज को भी प्राप्त हो गई थी और उन्हें यह प्रसाद श्री मगनलालजी महाराज की ओर से ही मिला है ऐसा वे कहा करते थे।

नियम है कि जब तक बड़ों की आज्ञा न मिले तब तक कोई भी व्यक्ति दीक्षित नहीं हो सकता। श्रीजी ने कई प्रयत्न किये परन्तु आज्ञा नहीं मिली। इससे श्रीजी को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि अब उन्हें किसी दूर देश में जाकर सन्त-महापुरुषों की सेवा में रहकर जैन-सूत्रों का अभ्यास कर आत्महित साधना चाहिये।

ऐसा विचार कर एक दिन वे चुपचाप घर से निकल कर जयपुर आ रेल में बैठ कर गुजरात-काठियावाड़ की ओर चले गए और वहां कई साधु-महात्माओं से समागम किया। श्रीजी का विनय गुण, ज्ञानवृद्धि के लिये बड़ा सहायक रहा। काठियावाड़ से कच्छ-भुज की तरफ होते हुए रण के रास्ते, थराह होकर, वे गुजरात पहुंचे और वहां से समाचार मिले कि मुनि श्री चौथमलजी महाराज मेवाड़ में विचरते हैं अतः ज्ञानाभ्यास की तीव्र जिज्ञासा से वे मेवाड़ पहुंचे। मेवाड़ में श्री चौथमलजी महाराज नाथद्वारा विराजते थे उनकी सेवा में रह ज्ञानाभ्यास करने लगे। वहां से किसी ने ये समाचार टोंक पहुंचाये।

टोंक छोड़ी तब से श्रीजी ने न तो घर वालों के पत्र लिखा था और न अन्य प्रकार से अपने समाचार भेजे थे। इससे कुटुम्बीजनों पर क्या-क्या बीती इसका थोड़ा सा वर्णन प्रासंगिक रहेगा। श्रीजी के टोंक से रवाना होने के दूसरे दिन उनके बड़े भाई श्रीनाथूलालजी उनकी तलाश में निकले और जयपुर स्टेशन पहुंच कर सोच में पड़ गये कि किधर जाऊँ। बहुत सोच-विचार कर निश्चय किया कि जहां-जहां विद्वान मुनिराज विराजते हैं वहां जाकर ही तलाश करना चाहिए। ऐसा सोच वे अजमेर, नयेशहर (जिसे अब ब्यावर कहकर पुकारा जाता है), रतलाम, बीकानेर, नागौर, जोधपुर, दिल्ली, आगरा आदि-आदि कई शहरों में घूमे, परन्तु किसी भी स्थान पर उनके कनिष्ठ भ्राता का पता नहीं चल सका अतः वे निराश होकर घर लौट आये। माँजी आदि को भी श्रीलालजी का पता न मिलने के समाचारों से बड़ा दुःख हुआ। नाथूलालजी ने रोज चारों ओर पत्र लिखना प्रारम्भ किया। यों दो महिने बीत जाने पर एक दिन माँजी ने सजल नयनों से नाथूलालजी को कहा कि 'श्रीलाल का कहीं पता नहीं लगा, ऐसा कह कर तूं चुपचाप घर में बैठा रहता है यह ठीक नहीं है।' यह सुनकर नाथूलालजी का हृदय भर आया। मातुश्री की ओर उनका अतुलित पूज्यभाव था, उनका दिल किसी भी तरह से नहीं दुखाना यह उनका दृढ़ निश्चय था इसलिये मातुश्री के ये शब्द सुनते ही वे फिर श्रीजी को ढूँढ़ने निकल पड़े। दूसरे ही दिन रवाना होकर कई शहरों और ग्रामों में होते हुए वे नागौर पहुंचे। नागौर में इन्हें एक पत्र मिला जो टोंक से सेठ हीरालालजी के पुत्र लक्ष्मीचन्दजी ने लिखा था। उसमें लिखा था कि नाथद्वारा में मुनि श्रीचौथमलजी महाराज विराजते हैं वहां श्रीजी हैं इसलिये तुम वहां से नाथद्वारा चले जाओ। इस पत्र के पाते ही नाथूलालजी नाथद्वारा के लिए रवाना हो गये। राह में कपासन पर पं. मुनि श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन हुए और कपासन में तपास करने पर मालूम हुआ कि टोंक से लक्ष्मीचन्दजी नाथद्वारा आये थे और श्रीलालजी को ले गए हैं। यह जानकारी मिलते ही नाथूलालजी वहां से ही टोंक लौट गये।

इस समय भी श्रीजी बाहर की हवेली में अकेले रहते थे। किन्तु कहीं भाग न जाय, अतः चौकसी के लिये आदमी रखे हुए थे। इनके लिये भोजन भी वहीं पहुंचाया जाता था। पारिवारिक घर की रसोई में भोजन करने जाना उन्होंने हमेशा के लिये बन्द कर दिया था। उनकी स्थिति एक साधारण कैदी के सदृश थी।

जब-जब अवसर मिलता वे अपनी मातुश्री व भाई को दीक्षा की आज्ञा देने के लिये निवेदन करते। इस पर कई बार आपस में लम्बे समय तक रसमय सुसम्वाद भी हो जाता था। श्रीजी की मान्यता बदलने के लिये चाहे जैसा तर्क दिया जाता उसका उत्तर श्रीजी बहुत उत्तम रीति से देते। मोह की उपशान्तता और उत्कृष्ट वैराग्य आत्मा में स्थितप्रज्ञता को प्रकट करता है। निर्मोही पुरुषों के सामने प्रकृति हमेशा नानावस्था में ही खड़ी रहती है। सत्य को उन्हें कहीं ढूंढ़ने नहीं जाना पड़ता। वे स्वतः ही सत्य की साक्षात् मूर्ति होते हैं। श्रीजी महाराज ने मोह-रिपु को कई अंशों में पराजित कर लिया था इसलिये उनकी मति अति निर्मल हो गई थी और यही कारण था कि श्रीजी के उपदेशात्मक और मार्मिक शब्द-प्रहारों से माँजी के मन पर गहन असर होता था परन्तु सेठ हीरालालजी की इच्छा के प्रतिकूल एवं श्रीजी की पत्नी पर होने वाले असर को ध्यान में रखकर माँजी निश्चयात्मक रीति से कुछ भी कहने का साहस नहीं कर पा रही थीं।

अध्याय 5 : विघ्न पर विघ्न

ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में दो एक वर्ष और बीत गये एवं श्री श्रीलालजी की उम्र 17 वर्ष की हो गयी। आज्ञा के लिए उनके सभी प्रयत्न असफल रहे और दिन प्रतिदिन अधिक सख्ती होने लगी। साधु-मुनिराजों के दर्शन, शास्त्र श्रवण और पठन-पाठन में उनके कुटुम्बीजनों की ओर से उत्पन्न बाधायें उनको अत्यन्त असह्य होने लगी। परिजनों द्वारा उनको बिना अपराध के बन्दी बनाया जाना उन्हें घोर अन्याय प्रतीत हुआ जिसे वे सहन नहीं कर सके। उनकी स्वतन्त्रता-हनन से उनके हृदय को आघात पहुंचा। किसी ने सत्य कहा है कि मुमुक्ष-प्राणी को उन्नति हेतु बाहर निकलने से पूर्व अपनी आंतरिक स्थिति को उन्नत बनाना चाहिये।

एक दिन प्रातः वे शौचक्रिया से निवृत्त होने के बहाने ऊपरी मंजिल से नीचे आये। उस समय कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, तो भी उन्होंने किसी प्रकार के कपड़े न लेकर मात्र एक चादर डाल ली और उसी दशा में वे टोंक से रवाना हो गये। एक दिन में बाईस कोस की कठिन यात्रा करके शाहपुरा के समीप कादेड़ा ग्राम के पास पहुँच गये। भूख, थकावट और ठण्ड के कारण उनका शरीर रुग्ण हो गया और एक कदम चलने की भी शक्ति शेष नहीं रही। पास में न तो एक भी पैसा था और न कोई वहाँ जान-पहचान वाला था। समभाव से कष्ट सहते हुए और ठण्ड से थर-थर काँपते हुए वे कादेड़ा ग्राम में पहुँचे। दुःख, भय और चिन्ता के विचार ही मनुष्य की शक्ति को शिथिल करते हैं। साहस और श्रद्धा से कार्य करने वाले को दैवी सहायता मिलती रहती है। ऐसी कष्टदायक स्थिति में उनको सम्भालने वाला कौन था! परन्तु जिनेश्वरदेव के पुण्य प्रताप से नाथूलालजी के ससुर शिवदासजी ऋणवाल (घटयाली निवासी) किसी कार्यवश कादेड़ा आये हुए थे। उन्होंने श्रीलालजी को मार्ग में चलते हुए देखा और उन्हें आग्रह कर वहाँ ले गये जहाँ वे ठहरे हुए थे। वहाँ उनके खाने-पीने, शयन आदि की व्यवस्था की और रोगशांति हेतु औषधोपचार किया। दैव की गति अकल्पनीय है। पवित्रात्मा पुण्यशाली पुरुषों को अकस्मात् ही अनुकूल संयोग मिल जाते हैं। भर्तृहरि ने सत्य ही कहा है–

वने रणे शत्रुजलाग्नि मध्ये, महार्णवे पर्वत मस्तके वा।

सुप्तं प्रमत्तं विषमास्थितं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि।।

सभी स्थानों पर अपने पूर्व कर्म ही रक्षा करते हैं। जब तक कोई व्यक्ति कसौटी पर न कसा जाए तब तक उसकी सहनशक्ति की परीक्षा नहीं हो सकती। आवश्यकता पड़ने पर ही स्वाभाविक क्षमता के प्रदर्शन व निरीक्षण का अवसर प्राप्त होता है। शिवदासजी ऋणवाल श्रीलालजी तथा उनके कुटुम्बीजनों से पूर्णतः परिचित थे और इस कारण वे सब बातें जानते थे, अतः उन्होंने दूसरे दिन एक ऊँट किराये पर लिया और श्री जी को समझा-बुझाकर टोंक की तरफ रवाना कर दिया और जब तक स्वास्थ्य में सुधार न हो जाए तब तक टोंक में ही रहने की हिदायत दी। ऊँट वाले से भी व्यक्तिगत रूप से कह दिया कि तुम इन्हें टोंक पहुँचाकर चिट्ठी लाओगे तभी भाड़ा मिलेगा। श्रीजी उसी दिन शाम को टोंक पहुँच गये।

श्रीजी एक कपड़े में भाग खड़े हुए हैं, इसकी सूचना नाथूलालजी को मिलते ही वे तुरन्त उन्हें ढूँढ़ने निकले। वे कपासन, निम्बाहेड़ा होते हुए सूचना मिलते ही तुरन्त टोंक आये। उस समय तक श्री जी भी टोंक आ पहुँचे थे। नाथूलालजी ने श्रीजी से गद्गद् स्वर से कहा— 'भाई! तुम इस प्रकार बार-बार चले जाते हो इससे हम भी हैरान होते हैं और तुम भी कष्ट पाते हो।

श्रीजी ने उत्तर दिया यह कष्ट दूर करना तो आपके हाथ में ही है। दीक्षा की आज्ञा दो। इससे सारे कष्ट दूर हो जाएंगे। माताजी वहीं थी। उन्होंने कहा-'दीक्षा लेनी थी तो विवाह क्यों किया! तेरे जाने के बाद इस बेचारी का रक्षक कौन होगा!'

श्रीजी ने उत्तर दिया-'माताजी! क्षमा करना। आठ-दस वर्ष के लड़के का, बिना उससे पूछे माता-पिता विवाह कर देते हैं और फिर पूछा जाए कि विवाह क्यों किया तो ऐसा कहने का उनको कोई अधिकार नहीं है। मेरे विवाह में ऐसी जल्दी न की होती तो यह परिणाम भाग्य से ही आता, फिर भी मैं इसमें आपका दोष नहीं मानता। सब कुछ कर्म के अनुसार ही हुआ करता है और मैं किसी के रक्षक होने का दावा भी नहीं करता। रक्षा करना या न करना प्राणी के शुभ कर्मों से ही होता है। कादेड़ा में भी मेरी रक्षा उसी ने की थी।

माताजी ने कहा-'जब तक मैं बैठी हूँ तब तक तो संसार में रह। उसके बाद सुखपूर्वक संयम का पालन करना। महावीर स्वामी ने भी माताजी को दुःखी न करने के सद्-उद्देश्य से उनके जीवन काल में संयम नहीं लिया था। भगवान् जैसों ने भी माता की इच्छा का मान रखा था।

इसी बीच नाथूलालजी ने कहा-'और भगवान् ने बड़े भाई की इच्छा का भी क्या मान नहीं रखा था! माता के लिए 28 वर्ष रहे तो अपने बड़े भाई नंदीवर्द्धन के लिए भी दो वर्ष और रहे।

श्रीजी ने उत्तर दिया-'महावीर प्रभु तो तीन ज्ञान के स्वामी थे और मुझे तो यह भी पता नहीं कि एक पल के पश्चात् क्या होने वाला है! महावीर ही कह गये हैं कि क्षण मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

माताजी ने कहा-'पुत्र! यदि मैं तुझे एक दिन भी नहीं देखती हूँ तो मेरा आधा खून जल जाता है और मुझे तेरी अत्यधिक चिंता रहती है। और तुझे तो अपने शरीर की जरा भी परवाह नहीं है। ऐसी तेज ठंड पड़ रही है और तू उसमें एक ही कपड़े से भूखा प्यासा 22 कोस तक चला गया और इतना दुःख उठाया। यह कहते-कहते माताजी की आँखों में आसूँ आ गये।

श्रीजी ने उत्तर दिया-'यदि किसी के एक ही बालक हो और वह प्राणों से भी प्रिय हो, उसके सिवाय कोई और दूसरा आधार न हो तो भी क्रूर काल उसे उठा ले जाता है। इस प्रकार के कई उदाहरण अपने सामने दिखाई देते हैं। पुत्र अपना शरीर छोड़कर चला जाता है। जब उसका दुःख भी माता को सहन करना पड़ता है तब मैं तो केवल घर ही छोड़कर जा रहा हूँ। यहाँ पर आप मेरी सार-सम्भाल करती हैं। वहाँ पर मेरे गुरु मेरी सार-सम्भाल करेंगे। आप केवल मेरे शरीर ही की चिंता करती हैं, जबकि वे मेरे शरीर की, मन की और मेरीं अविनाशी आत्मा की भी सार-सम्भाल करेंगे। अतः आपको दुःखित होने का कोई कारण नहीं है। आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे अनुमति दीजिये। आपके आशीर्वाद से मैं सुखी होऊँगा।'

माताजी ने उत्तर दिया-'मैं प्रसन्न होकर किसी को अपने नेत्र निकाल लेने की अनुमति दे सकूँ तो तुझे भी राजी-खुशी से दीक्षा की अनुमति दे सकती हूँ। तू चतुर है। इसी से सब कुछ समझ

ले। यदि मेरे ऊपर दया आती हो तो मेरी आँखों के सामने रहकर चाहे जितना धर्म ध्यान कर। तुझे मैं कमाने के लिए नहीं कहती। प्रभु की दया है और भाई जैसा भाई है। तुझे कुछ दुःख नहीं देगा।'

श्रीजी ने कहा–'माताजी! आगे या पीछे मुझे यह घर छोड़ना ही पड़ेगा और लम्बे पैर पसार कर परायेवश दूसरों के कंधों पर चढ़कर इस हवेली से निकलना तो पड़ेगा ही। ऐसी दशा में अभी ही समर्थ पैरों से मुझे स्वयं ही इस वंदीखाने से छूटने दो और सिंह की भाँति स्वतंत्र विचरण करने दो तो इसमें क्या वुरा है।

श्री मृगापुत्र ने अपनी माता से कहा है कि–

जहा किंपाग फलागं परिणामों न सुंदरों।

एवं भुत्राण भोगाणं परिणामों न सुंदरों।।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र,19 अ.

किंपाक वृक्ष के फल देखने में बड़े सुन्दर होते हैं किन्तु उनके उपयोग के परिणाम भयंकर है, उसी प्रकार संसार के सुख भोग भोगने में मीठे हैं किन्तु परिणाम भयंकर दुर्गतिकारक है।

श्री कीर्तिधर मुनि ने भी अपने संसार पक्ष के पुत्र सुकौशलकुमार को कुटुम्ब और संसार का सार समझाया और उसका जन्म सार्थक किया था। जिस कार्य से पुत्र का श्रेय हो उसमें माता को अंतराय उत्पन्न नहीं करना चाहिये।

माताजी कुछ बोल न सकी। उनका हृदय भर आया, आँखों से अश्रुप्रवाह प्रारम्भ हो गया। नाथूलालजी की आंखों ने भी माताजी का अनुसरण किया। इस करुण रसपूरित अवसर के समय श्रीजी के हृदयसागर में ऐसी ही तरंगें उठ रही थीं जैसा कि निम्न श्लोक में वर्णन है–

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।

नित्यं सन्निहितो मृत्युस्तमादुर्प च साधयेत्।।

श्रीजी बाहर की हवेली में जाने के लिए उठ खड़े हुए और माताजी को आश्वासन देते हुए कहने लगे –'मातेश्वरी! आपके संसार मोह के आँसू मस्तिष्क की उष्णता को शातं करते हैं फिर भी उन्हें देखकर मुझे दुःख होता है।

परन्तु मातेश्वरी! क्या आप नहीं जानती कि बार-बार होने वाले जन्म, जरा और मृत्यु के अनन्त दुःखों के सामने यह दुःख कितना सा है! आपको दुःख हुआ इसलिए क्षमा चाहता हूँ। माताजी! यह तो आपका अनुभव किया हुआ है और आप इसे भूल जाती हैं कि–

'नो मे मित्रकलत्रपुत्रनिकरा नो मे शरीरं त्विदम्' मित्र, कलत्र, पुत्र शरीर आदि में से कोई भी अपना नहीं है।

'संबंधीजन स्वार्थी अर्थी सघला अंते रहे बेगला'

'व्याध्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयंती

रोगाच शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्

आयु परिस्त्रति भिन्न घटादिवाम्भो

लोकस्तथाप्यहित माचरतीति चित्रम्'

जरा रूपी बाघिनी और रोग रूपी शत्रुओं के सदा प्रहार होते हुए भी स्वार्थ से अंधे मनुष्य गफलत में पड़े रहते हैं और परिणाम यह होता है कि छिद्रयुक्त घड़े के जल की भाँति आयु घटती जाती है और मन की लालसाएं मन में ही रह जाती हैं।

माताजी! आप सत्य समझिये कि मेरा वैराग्य मोम, लाख या लकड़ी के गोले जैसा नहीं है बल्कि मिट्टी के गोले जैसा है। उपसर्ग की अग्नि से वह अधिकाधिक परिपक्व होगा इसलिए जो परिसह प्राप्त होंगे उनको प्रसन्नतापूर्वक सहन करूँगा।' यह बात पत्थर की लकीर हैं, ऐसा कहकर श्रीजी चले गये।

इन शब्दों ने माताजी और भाई के मन पर बिजली जैसा असर किया और उसके परिणाम स्वरूप उन्हें उपाश्रय जाने की अनुमति मिली और किसी प्रकार का परिसह न दिये जाने का निश्चय किया गया।

एक समय बातचीत में श्रीजी ने प्रकट किया था–

लल्मी तणो आ बास, ऐबी राज्य गादी ने तजी

भावे थकी भिक्षुक थई, भागी गया का भरतजी।

हम लोग तो किस गिनती में हैं। अपने भगवान का यही उपदेश है कि क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो क्योंकि–

इंद्रिय सर्व अखंडित छे, तन साव निरोगी अने बल पूरूं।

बुद्धि विचार, विवेक, सहायक, साधन, अन्य न कोई अधरूं।

उठ अरे! अभिमान तजी कर उद्यम केम रह्यो करजोड़ी।

वेश घणा घरवा तुजने पण पाछल रात रही बहु थोड़ी।

सुंदर आ तन से क्षण भंगुर भाई! अचानक छे पड़यानुं।

'केशव' आलस आज करो पण पाछल थी नहीं कोई थवानुं।

उनके श्वसुर पक्ष के और माता-पिता के पक्ष के कितने ही संबंधी उन्हें संसार में न रहने के निश्चय के लिए लज्जित करते और समय-समय पर उन पर जोर भी डालते किन्तु श्रीजी इन उपालंभों एवं जोर जबरदस्ती से डरने वाले नहीं थे।

वे शांतिपूर्वक सबको प्रसन्न करने वाले प्रत्युत्तर दे देते थे। उनके कितने ही मित्र उनसे आग्रह करते कि वे अपने माँ-बाप की आज्ञा का पालन करें और अधिकाधिक आदर प्रदर्शित कर उनको अपने निश्चय पर पुनर्विचार करने का आग्रह करते थे। उनके इस स्नेहग्रह के जवाब में कि वे यही कहते थे कि, 'मैं जानता हूँ कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है क्योंकि वे ही मेरे जन्मदाता हैं और पालनकर्ता हैं। पिता की गोद में मैं खेला हूँ और माता के दूध से पला हूँ। उनके इशारे से मैं विष का प्याला तक पी सकता हूँ, तलवार की धार पर चल सकता हूँ और अग्नि में भी कूद सकता हूँ किन्तु उनका दुराग्रह मेरे श्रेय कार्य में बाधक है इसलिए लाचार हूँ।'

यहाँ लोकमान्य तिलक के हेतु कहे गये शब्द स्मरण हो आते हैं 'नर रंक के पुत्र रत्नों को निराश होना योग्य नहीं। ज्वलंत धर्माभिमान, अचूक सावधानता, अचल श्रद्धा, अडिग धैर्य, अखण्ड

शौर्य और अनन्य भक्ति हो तो शेष सब कुछ सरल है.....पास खड़े रहने वाले तक भी नहीं थे। सहायता करने वाले कम थे। ऐसी परिस्थितियों में भी तिलक जी निराश नहीं हुए, दुःखी नहीं हुए, विश्राम लेने नहीं ठहरे, अनेक संकट सहे, अनेक यातानाएं सहन की किन्तु अपना मंत्र जप-तप तो निभाते ही रहे। काल उनके घावों को भर देगा। दुःख की रात व्यतीत होकर प्रातः काल भी होगा।'

उस समय (सं.1943 में पूज्य श्री छगनलालजी महाराज टोंक में विराजते थे। उनके पास श्रीजी शास्त्राध्ययन करने लगे, परन्तु उन्हें दीक्षा की आज्ञा नहीं मिली और जब तक दीक्षा की आज्ञा न मिले तब तक श्रीजी जैन सिद्धान्तों के अनुसार स्वयंमेव, मात्र अपनी इच्छा से दीक्षित होने के लिये सक्षम नहीं थे। जैन शास्त्र सम्मत दीक्षा तभी मान्य की जाती है जबकि वह बड़ों की आज्ञा, अनुमति एवं साक्ष्य पर आधारित हो।

एक दिन श्रीजी हवेली में आये और अपनी माताजी की चरण वंदना की। माताजी उस समय मानिकलाल को दुलराती हुई खड़ी थी। श्रीजी ने छः मास के बालक मानिकलाल को प्रेमपूर्वक माता के पास से ले लिया और अपनी गोद में बिठा लिया। थोड़े समय तक उससे खेलते रहे और पुनः माताजी के हाथ में देकर श्रीजी बोले, 'इसको अच्छी तरह रखना'। माताजी बोली, 'बेटा!' इसकी और हमारी सम्भाल करने का काम तो तुम्हारा है।' श्रीजी मौन रहे। वैराग्य के विचार स्फुरित होने लगे।

प्रिय पाठकगण ! हम लोग भी एक तत्ववेत्ता के इन विचारों पर मनन करें कि 'इच्छुक हृदय नहीं बोल सकते, अगर बोल सकते होते तो उन्हें कोई सुन भी नहीं सकता था। किसी को परवाह भी नहीं, शोक पूर्ण नेत्र दुःख से रो भी नहीं सकते। अगर रोते हैं तो लोग हँसी करते हैं.....'

'आवाज और गति' का यह संसार तथा भिन्न-भिन्न होने पर भी बहुत पास-पास है....गुप्त जीवन की कई इच्छाएं हृदय के उभरते हुए अनेक आंसू, बुद्धि की कितनी ही प्रबल तरंगें हमें निष्फल होती प्रतीत होती हैं। इच्छाओं के पूर्ण होने के लिए संसार में स्थान नहीं, अश्रु प्रवाह रोकने के लिए संसार की सहायता की आवश्यकता नहीं, तरंगों को मूर्तिमान बनाने के लिए संसार उपयुक्त नहीं है।

अध्याय 6 : साधु वेश और सत्याग्रह

'कितनी उन्नति करने के लिये हम जन्मे हैं ? कितनी उन्नति की हमसे आशा की गई है ? और प्रायः हम कितने अंश तक अपनी इन्द्रियों के स्वामी बन सकेंगे ? यह हम नहीं जान सकते। अगर हम चाहें तो अपने स्वयं के भाग्य पर सम्पूर्ण अधिकार जमा सकते हैं, जो-जो कार्य करने योग्य हों अपनी आत्मा से करा सकते हैं और हम जैसे होना चाहें वैसे बन सकते हैं।'

ओ.स्वे.मार्डन

श्रीजी के वैराग्य का वेग बढ़ता जा रहा था और शास्त्राभ्यास से उसमें योगदान मिल रहा था। प्रथम तो वीर योद्धा के समान उनका विचार था कि 'न दैन्यं न पलायनम्' परन्तु जब निराशा के प्रवाह में सब प्रयास असफल होने लगे तब इस महासागर में नाव की अपेक्षा एक लकड़ी की पटिया के सहारे पर ही प्रवाह में उतरने तक इन्तजार करने का निश्चय किया। अनेक आघात और घाव सहन करते हुए वे अपने निश्चय को और भी दृढ़ बनाते रहे। दृढ़ निश्चय एवं आत्मविश्वास दोनों का अलौकिक मेल है। ये दोनों जिनमें पैदा हो जाते हैं वे वीर सच्चे नायक बन जाते हैं एवं चक्रवर्ती के समान सब देशों पर विजय प्राप्त करते हैं। उन्हें ही चतुर्विध-संघ प्रीति-कलश से प्रक्षाल कर ताज पहनाता है।

अन्तिम निश्चय कर अपने मित्र गूजरमलजी पोरवाड़ के साथ श्रीजी एक दिन टोंक से गुप-चुप निकल गये। अपनी पूर्व परिचित प्रिय रसिक पहाड़ी को देख उस पर बैठ मनन किये अमूल्य तत्वों को याद कर यह दृढ़ निश्चय किया कि बगैर दीक्षा लिये वे टोंक में पैर ही नहीं रखेंगे। मन के इस संकल्प का संदेश जैसे वृक्षों व प्रकृति को अपने कुटुम्बियों को देने का भार सौंप कर श्रीजी रानीपुर (बूंदी स्टेट) की तरफ चले गए। खबर मिलते ही नाथूलालजी बम्ब, उनकी माता, गूजरमलजी की मां तथा गूजरमलजी की बहू उनके पीछे-पीछे रानीपुर पहुँचे। वहां पूज्य छगनलालजी महाराज विराजमान थे। पूछताछ पर पता चला कि ये दोनों यहां आये थे और एक रात रहकर चले गए हैं। यह समाचार सुन सब लोग वहां से रवाना हुए। राह में खबर मिली कि एक नाले के नीचे उन दोनों ने साधु वेश पहिन लिया है और साधु के भंडोपकरण लेकर कोटा की तरफ गए हैं। यह घटना सं.1944 में मिगसर माह के कृष्णपक्ष की है।

फिर श्रीजी की माता इत्यादि सब कोटा गये मगर वहां भी श्रीजी एवं उनके साथी श्रीगूजरमलजी पोरवाड़ का पता नहीं चला अतः वे निराश होकर टोंक वापस आ गये एवं जब उन्होंने चारों और पत्र व्यवहार शुरू किया तब उन्हें खबर मिली कि रामपुरा (भानपुरा) में मुनिश्री किशनलालजी, विसनलालजी और बलदेवजी महाराज बिराज रहे हैं। उनके पास वे दोनों अभ्यास कर रहे हैं।

यह समाचार पढ़कर नाथूलालजी तथा गूजरमलजी के भाई हरदेवजी दोनों उन्हें लिवा लाने को रामपुरा गए परन्तु वे वहां नहीं मिले। घर वालों को खबर मिल गई है अतः वे उन्हें वापस

लिवा लाने को आयेंगे इस परिस्थिति से उवरने हेतु वे सुनहेल (इन्दौर स्टेट) चले गए थे। इस पर नाथूलालजी व हरदेवजी भी सुनहेल गये। वहां एक कुनवी के मकान में दोनों साधु के वेश में नजर आये। इस समय श्रीजी सदुपदेश सुना रहे थे। श्रोताओं की संख्या 100 से 150 के करीव थी। सदुपदेश पूर्ण होने तक दोनों आगन्तुक चुप बैठे रहे। व्याख्यान समाप्त होने पर उन्होंने कहा–

'हमारी आज्ञा के विना तुमने यह वेश पहन कर ठीक नहीं किया है। अव हमारे साथ टोंक चलो।' उत्तर में उन्होंने कहा, 'अव वापस तो आयेंगे नहीं। कृपा कर आज्ञा दो तो हम संतों की सेवा में रह सकेंगे और हमारे ज्ञानाभ्यास में भी वृद्धि हो सकेगी। चाहे जितना मथो मक्खन निकलने की आशा नहीं है, व्यर्थ मोह के वश हो अन्तराय कर्म क्यों वांधते हो।'

नाथूलालजी ने कहा', 'आप एक वार टोंक चलें जैसा आप कहेंगे वैसा करेंगे।' श्रीजी तथा गूजरमलजी ने आज्ञा देने के लिये आग्रह किया और उनके भाईयों ने इन्कार किया और दोनों को टोंक ले जाना निश्चित किया।

नाथूलालजी तथा हरदेवजी जब टोंक से रवाना हुए थे तब टोंक रियासत से दोनों को पकड़ लाने के लिये वारन्ट निकलवाया था। वे वारन्ट के साथ सुनहेल के सूबा साहिब से मिले। सूबा साहिब ने कहा तुम एक बार फिर समझाकर कहो कि सूबा साहिब का हुक्म है इसलिये चल पड़ो। अगर न माने तो फिर मुझे कहो।

उन्होंने आकर वैसा ही किया परन्तु श्रीजी न माने। इसलिये फिर सूबा साहिब से मिले। उन्होंने श्रीलालजी और गुजरमलजी को कचहरी में बुलाया। सुनहेल के बहुत से श्रावक भी उनके साथ हो लिये। स्वाभाविक रीति से उन श्रावकों का श्रीजी पर पूज्यभाव प्रकट हो रहा था। अल्प परिचय से तथा अल्प वय में ऐसी प्रभावशाली सदुपदेश की शैली से श्रीजी ने उनके मन को जीत लिया था। विषय की मलिनता से निर्मल होकर निकले हुए शान्ति के प्रभावशाली नर रत्नों की और उनके सम्पर्क में रहने वालों की अंतरात्मा में गहन-भक्ति पूर्णता से भरी हुई थी।

प्राकृतिक नियम है कि मानव जाति के सहायक, शुभेच्छुक और सदुपदेशक बनना चाहने वालों को याद रखना चाहिए कि यह मार्ग बड़ा कठिन है। महात्मा क्राइस्ट के क्रॉस की तरह उन्हें भी अपना गंतव्य प्राप्त करने हेतु हर बलिदान जो उनकी ईह लीला समाप्ति के रूप में भी हो सकता है के लिए तैयार रहना चाहिये। जीवन का सच्चा सुख आत्म-त्याग की बलिवेदी पर ही तपे हुए सोने के समान निखरता है। महात्मा गांधी की जीवनी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। विजय जब द्वार पर खड़ी होती है तो उसी राह उससे पहले सबसे अधिक संकट आते हैं। इस संसार में आज तक किसी को भी सामान्यतया विजय अनेक झंझावतों, प्रलोभनों एवं संकटों का मुकाबला करने की असाधारण क्षमता के बिना नहीं मिली है। प्रकृति की कसौटी बड़ी कठिन होती है। शैतान की ओर से लालच या प्रलोभन सबसे अधिक लुभाने वाला होता है। जिसे स्वतन्त्रता प्यारी हो वह इस कसौटी व लालच से पार पा लेता है।

श्रावक समुदाय सहित श्रीजी तथा गूजरमलजी सूबा साहिब के कार्यालय के चौक में खड़े रहे। उन्हें देखकर सूबा साहिबा ने आज्ञा दी कि तुम दोनों इनके साथ टोंक जाओ इनके पास टोंक स्टेट का वारंट है। तुम नहीं जाओगे तो नियमानुसार तुम्हें गिरफ्तार कर टोंक पहुंचाया जायगा।

यह सुन कर अभय की प्रतिमूर्ति श्री श्रीलालजी ने पग पर पग चढ़ा एक पाव से खड़े होकर सूबा साहिब से कहा कि–

'मैं यहां खड़ा हूँ टोंक भेजना तो दूर रहा परन्तु मुझे इस स्थान से हटाना भी दुष्कर है। हम साधु हैं, बुलाने से नहीं आये। भेजने से नहीं जाते, बैठते हैं तो लोहे की कील की तरह और जाते हैं तो पवन के वेग की तरह। आप राजा के अमलदार हैं परन्तु साधुओं को सताने का अधिकार आपको भी नहीं हो सकता।'

एक विद्वान के विचार सत्य हैं कि 'किसी आपत्ति में तुम अपनी श्रद्धा कभी विचलित मत होने दो, जब तक तुम्हारे में आत्मविश्वास रहेगा तब तक तुम्हारे लिये आशा है। यदि तुमने आत्मविश्वास नहीं खोया और आगे बढ़ते ही रहे तो संसार देर-सवेर कभी न कभी तुम्हारे लिये मार्ग देगा ही। श्रद्धा श्रद्धा को जन्म देती है मनुष्य चरित्रबल से और अपने मस्तिष्क की शक्ति से अत्यंत प्रतिकूल संयोगों में भी सफलता प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा मानसिक सेना का महावीर है। यह अन्य अनेक शक्तियों को दुगुना-तिगुना बल अर्पण करती है। जब तक श्रद्धा विद्यमान है व उसमें अपार मानसिक शक्ति है तब तक प्रत्येक व्यक्ति में असीम गुप्त मानसिक बल होता है।'

भाग्यदेवी के लाडले पुत्र की दृढ़ता और साहस से कहे गये वचन सुनकर सूबा साहिब अवाक् रह गये और 'राजा का हुक्म तुम्हें सिर चढ़ाना ही पड़ेगा' इतना कहकर भय से कांपते वे ऊपर के मकान में चले गए। लगभग एक पहर तक श्रीजी एक पांव से खड़े रहे। अन्त में नाथूलालजी को ऊपर बुलाकर सूबा साहिब ने कहा, 'भाई! इस व्यक्ति को हम टोंक नहीं पहुंचा सकते, इन्होंने चोरी या अपराध किया होता तो हम चाहे जैसा कर सकते थे, परन्तु साधु का वेश पहनने मात्र से कोई अपराध नहीं बनता इसलिये तुम्हें योग्य लगे वैसा करके इसे ले जाओ और हमें इस फंद से अलग रखो।'

नाथूलालजी निराश हो श्रीजी के पास आये और घर आने के लिये नम्रता से प्रार्थना की तब श्रीजी ने कहा, 'आप मोहमाया को हटाओ जिससे यह सब संताप मिट जाये।'

अपने भाई को बहुत समय तक एक पांव से खड़े देखकर नाथूलालजी गद्‌गद् हो गये और कहा कि आप अपने स्थान पर पधारो और आहार-पानी करो फिर हम वार्तालाप करेंगे। तत्पश्चात् श्रीजी वगैरह वहां से रवाना होकर उसी कुनबी के घर पर जहां पहले से ठहरे हुए थे आये। धोवण पानी तथा गोचरी लाये आहार-पानी किये पश्चात् नाथूलालजी ने श्रीजी से कहा कि अभी टोंक से चिट्ठी आई है उसमें लिखा है कि चि. कुंवरीलालजी का ब्याह रुक गया है इसलिये आप श्रीजी को लेकर जल्द आओ।

श्रीजी ने कहा, 'अभी टोंक आने की इच्छा नहीं है, आप आज्ञा देंगे तो ठीक है नहीं तो ऐसी ही स्थिति में हम विचरते रहेंगे, परन्तु बिना संयम लिये टोंक में पांव नहीं धरेंगे।'

अन्त में निराश हो नाथूलालजी तथा हरदेवजी टोंक रवाना हो गये और जाते समय टोंक निवासी बालजी नामक ब्राह्मण को वहीं छोड़ गए कि जहां-जहां श्रीजी विचरे वह साथ रहे और इनकी सार-सम्भाल लेता रहे तथा उनके कुशल वृत्तान्त तथा स्थान के समाचार टोंक लिखता रहे।

नाथूलालजी ने टोंक आकर मांजी आदि को सब समाचार कहे और कहा कि संसार में रहने की श्रीजी की बिल्कुल इच्छा नहीं है। मांजी ने कहा कि उनके लिये यह बात नई नहीं है। उन्हें सब मालूम है और अब और अधिक उसे सताना भी ठीक नहीं लगता है।

श्रीजी तथा गुजरमलजी साधु के वेश में विचरने लगे। सुनहेल मुकाम पर किशनलालजी, विसनलालजी महाराज (पूज्य श्री अनूपचंद जी महाराज की संप्रदाय के) से समागम हुआ और उनके पास शास्त्राध्ययन करना प्रारम्भ किया। वहां से पांचों ठाणों के साथ-साथ विहार कर रामपुर (हो. स्टे.) में चातुर्मास किया। यह संवत् 1945 की बात है।

रामपुरा के केशरीमलजी नामक श्रावक, सूत्र के अच्छे जानकार और विद्वान थे उनसे परिचय हो जाने पर श्रीजी के सूत्र ज्ञान में और अधिक वृद्धि हुई। उनके साथ विचार-विमर्श में श्रीजी को अपार आनन्द प्राप्त होता था और ज्ञान का भी वर्धन होता था।

रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण कर झालावाड़ व कोटा आदि की ओर होते हुए पांचों महात्मा माधोपुर पधारे। माधोपुर में श्रीजी का ननिहाल था। उनके ननिहाल पक्ष का धर्मानुराग अधिक गहरा एवं प्रशंसनीय था। श्रीजी को कैसे-कैसे संकट सहन करने पड़ रहे थे यह सब वे जानते थे। श्रीजी के मामा के पुत्र लक्ष्मीचन्दजी (देवबक्षजी के पौत्र) एवं माधोपुर निवासी मायाचन्दजी पोरवाड़ आदि ने श्रीजी तथा गूजरमलजी की आज्ञा के लिये कोशिश की। टोंक आकर उनके कुटुम्बियों को सब प्रकार से समझा कर दीक्षा की आज्ञा देने बाबत कहा।

श्रीजी की माता श्री चांदकुंवर बाई को अर्ज करने पर उन्होंने कहा कि पहले बहू को (श्रीजी की पत्नी) पूछने दो। उनका क्या उत्तर मिलता है।

मांजी ने अपनी पुत्रवधू को बुलाकर पूछा कि दीक्षा की आज्ञा देने में तुम्हारी क्या राय है? मानकुंवर बाई ने विनय तथा धैर्यपूर्वक उत्तर दिया, 'आपने उनके संसार में रहने के लिये जितने प्रयत्न हो सकते थे सब किये परन्तु निष्फल गए। अब तो आपको और उन्हें, सबको कष्ट होता है इसलिये आप जो फरमायेंगे मैं उसे शिरोधार्य करूँगी।' अपने पति को अपने पास से न जाने देने वाली मोह फांस में लिप्त वर्तमान काल की महिलाओं को इस तरह की स्थिति में जो विवेकपूर्ण निर्णय श्रीजी की पत्नी ने किया उसका सहज अनुमान लगाना चाहिये। मानकुंवर बाई का यह उत्तर सुनकर माँजी का हृदय भर आया। आंखों से अश्रुधारा बह चली। थोड़े समय तक विचार निमग्न रह फिर लक्ष्मीचन्दजी तथा नाथूलालजी से कहा कि चि. मानिकलाल (नाथूलालजी का पुत्र) को श्रीलालजी के नाम कर दो।' नाथूलालजी ने मांजी की आज्ञा शिरोधार्य की फिर मांजी ने कहा, सुख से तुम आज्ञा देने जाओ। मेरा आशीर्वाद है कि 'श्रीजी सुन्दर रीति से संयम पालें।' धन्य है ऐसी उत्कृष्ट निर्णय ले पाने वाली माताओं को।⁕

इसी तरह गुजरमलजी पोरवाड़ की माता तथा उनकी स्त्री तथा उनके भाई मांगीलालजी को समझा उनकी दीक्षा की आज्ञा भी प्राप्त की। पहले से ही साधु का वेश पहिन लिया होने से किसी प्रकार की धूमधाम की आवश्यकता नहीं हुई। टोंक से पूर्व 7 कोस दूर वणेठा ग्राम में उन्हें दीक्षा

⁕ माता के सम्बन्ध में एक कथा पूज्य श्री कहते हैं कि पांच पुत्र वाली माता के एक पुत्र की इच्छा दीक्षा लेने की होने पर गुरु श्री ने माता को सदुपदेश देकर अपने पुत्र की भिक्षा देने का कहा इस पर उस धर्म शीला एवं श्रद्धालु माता ने अपने अहोभाग्य समझ एक के बदले दो पुत्रों को गुरुजी के शिष्य बना दिये।

का पाठ पढ़ाया जाने वाला था। माधोपुर वाले लक्ष्मीचन्दजी तथा मुनिराज वगैरह पहिले से ही वहां पहुंच गए थे। और टोंक से श्रीजी की माताजी की आज्ञा ले उनके भाई नाथूलालजी तथा सेठ हीरालालजी के पुत्र रामगोपालजी, लक्ष्मीचन्द्रजी आदि तथा गूजरमलजी की माता की आज्ञा लेकर उनके भाई मांगीलालजी पोरवाड़ वगैरह चार कपड़े आदि लेकर वणेठा आये।

सम्वत् 1945 के माघ कृष्णा 7 गुरुवार के दिन सुबह आठ बजे पूज्य श्री अनूपचन्दजी महाराज की संप्रदाय के पूज्य श्री किशनलालजी महाराज ने श्रीलालजी तथा गूजरमलजी दोनों को विधिपूर्वक दीक्षा दी। यहां यह बात सिद्ध हो जाती है कि 'हम परिस्थिति के दास नहीं हैं' परन्तु हम जिस किसी काम, बात या विचार का दृढ़ संकल्प कर लें और उसके लिये निरन्तर उद्योग करते रहे तो वह प्रत्यक्ष फलीभूत होकर रहती है। पाठक देखेंगे कि किस तरह हमारे चरित्र नायक श्रीजी ने इस कलि काल में बिना किसी बाह्य आधार के मात्र अपनी अन्तरप्रेरणा से प्रेरित होकर समस्त सुख-सुविधाओं के होते हुए उन्हें लात मार कर और परिवार द्वारा घोर बाधायें उत्पन्न करने के बावजूद दीक्षा लेने के अपने संकल्प को मात्र निजी चरित्र की दृढ़ता के आधार पर अमली जामा पहनाया है। इस तरह की दीक्षा के उदाहरण द्वापर व त्रेता युग में तो कई देखने को मिलेंगे मगर वर्तमान युग में इस तरह के उदाहरण बिरले ही देखने को मिलते हैं। लोग अभाव से ग्रसित होकर, किसी शोक से त्रस्त होकर, परिवार में अन्य कोई दीक्षित होने से प्रेरणा लेकर, माता-पिता की मृत्यु के कारण, अन्य परिवारजनों या परिजनों के द्वारा सताये जाने के कारण, आर्थिक कठिनाइयों के कारण व सन्तों व सतियों द्वारा संसार की असारता के लिए प्रेरित किये जाने पर दीक्षा लेते हुए देखे गये हैं मगर इस तरह से स्वःप्रेरणा से बिना किसी कठिनाई के एवं समस्त सुख-सुविधाओं के उपलब्ध होने के बावजूद एवं परिवारजनों द्वारा संसार में रोके रखने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने के बावजूद दीक्षा अंगीकार करने के उदाहरण मुश्किल से देखने को मिल पायेंगे। दीक्षा लेने के पूर्व गूजरमलजी ने श्री श्रीलालजी से कहा कि मैं आपकी नेश्राय में विचरूंगा अर्थात् आपका शिष्य रहूंगा। तब श्रीजी ने कहा कि, मुझे शिष्य करने का त्याग है।

परस्पर थोड़े-बहुत वाद-विवाद के पश्चात् जब गूजरमलजी ने श्रीजी से शिष्य के समान अपने को स्वीकार करने की बहुत विनय की तो श्रीजी ने कहा कि तुम मेरी आज्ञा में चलोगे ?

गुजरमलजी– (सबके समक्ष) मैं सर्वदा आपकी आज्ञा में ही विचरूंगा।

श्रीजी– बस, तो अभी ही मेरी आज्ञा है कि हम दोनों पूज्य बलदेवजी महाराज की नेश्राय में रहें।

गूजरमलजी ने यह आज्ञा शिरोधार्य की और दोनों बलदेवजी मुनि (किसनदासजी महाराज के शिष्य) के शिष्य बन गये। श्रीजी की इच्छा न होते हुये भी किशनलालजी महाराज बोले कि हम तो गूजरमलजी को आपकी नेश्राय में समझते हैं यह सुनकर गूजरमलजी को अपार आनन्द हुआ और वे बोले कि मुझे सम्यक्त्व रत्न की प्रीति कराने वाले, धर्म के मार्ग पर लगाने वाले सच्चे उपकारी गुरु तो श्रीजी महाराज ही हैं।

यद्यपि श्रीजी की इच्छा पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पास दीक्षा लेने की थी, तो भी उनके माता-पिता के आग्रह से अपने गुरु आमनाय की सम्प्रदाय में अर्थात् कोटे वालों की सम्प्रदाय में दीक्षा लेनी थी और इसी शर्त पर आज्ञा

मिली थी इसलिये कोटा सम्प्रदाय में उन्होंने दीक्षा लेने के पहिले ही आचार सम्वन्धी कितनी ही कठिन शर्तें अपने गुरु से श्रीजी ने मंजूर करवाली थीं।

श्रीजी को दीक्षित होने के पश्चात् श्री किशनलालजी महाराज से नाथूलालजी ने विनय की कि आप श्रीजी के साथ टोंक पधार कर हमारी मातुश्री के दर्शन की अभिलाषा पूर्ण करें। महाराज ने कहा जैसा अवसर होगा करेंगे।

तत्पश्चात् महाराज साहिब टोंक पधारें। वहां एक ही रात रह दर्शन दे हाड़ोती की ओर विहार किया जहां से वे झालरापाटन पधार गये।

सम्वत् 1946 का चातुर्मास झालरापाटन में किया। वहां धर्म का बहुत प्रचार हुआ। परन्तु श्रीजी महाराज के गुरु के भी गुरु श्री किशनलालजी महाराज की, जो उनके ज्ञानादि गुणों की अभिवृद्धि करने वाले आलंबन थे, उनका इसी चातुर्मास में स्वर्गवास हो गया। इस कारण श्रीजी को बहुत दुःख हुआ। परन्तु जीवन की अस्थिरता और संसार का असारपन समझने वाले वे तुरन्त उसे सहन करने के लिये कटिबद्ध हो गए और वीर-वचनामृत की मरहम-पट्टी द्वारा इस घाव को भरने लगे।

अध्याय 7 : सरिता का सागर में प्रवेश

पूर्व अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि श्रीजी की अभिलाषा ज्ञान वृद्धि और चरित्र विशुद्धि विषय में अपनी इष्ट सिद्धि साधनार्थ श्रीमान् हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय में सम्मिलित होने की थी। चातुर्मास पूर्ण होते ही अपना मनोरथ गुरु की सेवा में निवेदन किया। मुनिश्री विसनलालजी तथा बलदेवजी ने कहा एक तो गुरु वियोग से पहले ही हमारा हृदय जल रहा है और ऊपर से तुम भी हम से अलग होकर जले पर नमक छिड़कना चाहते हो।

उत्तर में श्रीजी महाराज ने विनयपूर्वक निवेदन किया कि जिस हेतु मैंने घर-द्वार और कुटुम्ब-परिवार त्यागा है उस हेतु को पूर्णतया प्राप्त करना मेरा परम ध्येय है।

श्रीजी महाराज अपने उच्चाशय से नहीं डिगे और अपने दृढ़ निश्चय के अनुसार गुरुजी की शुभाशीष प्राप्त कर रामपुरा पधारे। वहां सुयोग्य केसरीमलजी सुराना का समागम शास्त्राध्ययन में अत्यन्त उपयोगी रहा। श्रीजी अविरल रीति से शास्त्राध्ययन करने लगे एवं ज्ञान में काफी उन्नति की। उनकी व्याख्यान शैली भी उत्तम और आकर्षक होने से श्रावकों में भी ज्ञानरुचि और धर्म भावना बढ़ने लगी।

चातुर्मास पूर्ण कर रामपुरा से बिहार कर श्रीकानोड़ जहाँ पर पंडित मुनिश्री चौथमलजी महाराज विराजते थे वहां पधारे और अपना अभिप्राय कहा। टोंक में नाथूलालजी बम्ब को भी यह खबर मिलते ही वे भी कानोड़ आये और श्रीजी महाराज की इच्छानुसार उन्हें अपनी नेश्राय में लेने के लिये श्रीमान् चौथमलजी महाराज को आज्ञापत्र लिख कर दिया। तब उन्होंने अपने बड़े शिष्य वृद्धिचन्दजी महाराज के शिष्य बनाकर श्रीजी महाराज को अपनी सम्प्रदाय में ले लिया। यह घटना डूंगरा (मेवाड़) में सम्वत् 1947 के मिगसर शुक्ला एकम शनिवार की है। इसके पश्चात् वे श्रीमान् चौथमलजी महाराज की आज्ञा में विचरने लगे। यहां उनकी आत्मिक शक्ति का अधिक विकास हुआ। ज्ञानी गुरु के समागम से सूत्र ज्ञान में आशातीत उन्नति हुई। निरतिचार चरित्र पालन से वे गुरु के प्रीतिपात्र होकर लोगों में पूजनीय और कीर्ति के केलिग्रह सदृश हो गये। 'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुर्साम् ?'

सं. 1949 का चातुर्मास सद्गुरुवर्य श्री चौथमलजी महाराज के साथ कानोड़ में किया। यहां विशेषतया व्याख्यान श्रीजी महाराज फरमाते थे। पत्थर हृदय भी पिघल जावे ऐसा उपदेश और उसका अद्भुत असर देख सबको बड़ा आश्चर्य होता और श्रोतागण अवर्णनीय उपकार मानते।

एक चातुर्मास में वे जिस मकान में ठहरे थे वहां एक बड़ा विकराल सर्प रहता था। एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जिस दिन सर्प देखने में न आता हो। आहार-पानी के पाट पर वह कई बार गरल डाल जाता था। रात के समय रास्ते में पैर देते या पात्र डालने जाते तो रजोहरण के साथ ठुकरा जाता था। तब दूसरी राह से आकर फूंफकार मारता और सामने होता था। तथा कभी-कभी पाद-प्रहार भी करता था। दिन में भी वह निडर हो उस मकान में फिरता रहता था। जिस तरह यह

सांप साधुजी से निर्भय था उसी प्रकार साधु भी सांप से निर्भय थे। श्रावकों ने मकान बदलने के लिये महाराज से कई वार विनय की, परन्तु यह निष्फल गई। महाराज का कथन था कि पहिले के मुनि सिंह की गुफा, सर्प के विल और घोर श्मशान भूमि में स्वेच्छापूर्वक जाकर उपसर्गों को निमंत्रित करते थे। यह सर्प हमारी कसौटी के लिये बिना आमंत्रित किये यहां आया है सो बेशक हमारे सत्संग का लाभ उठाकर पवित्र जिनवाणी का श्रवण करे उसमें हम वाधक कैसे वन सकते हैं। पूर्ण चातुर्मास संतों ने इसी स्थान पर सांप के साथ रहकर व्यतीत किया परन्तु पुण्य प्रसाद से तथा तप के प्रभाव से सांप किसी साधु को कोई हानि नहीं पहुंचा सका और साधुओं की धैर्य तथा निर्भयता की कसौटी का समय निर्विघ्न समाप्त हुआ। इस युग में भी चरित्र बल अपना प्रभाव तिर्यचों पर दिखा सकता है, इसके अनेक उदाहरण पूज्य श्री के जीवन चरित्र में देखने को मिलेंगे।

सम्वत् 1950 का चातुर्मास श्रीमान् चौथमलजी महाराज के चरण कमलों के समीप रह कर जावद में किया। श्रीजी के समागम तथा सद्उपदेश से जैन-अजैन सब लाभान्वित हुए।

सम्वत् 1951 का चातुर्मास निम्बाहेड़ा (मालवा) सम्वत् 1952 का छोटी सादड़ी (मेवाड़) और सम्वत् 1953 का चातुर्मास जावद में किया। श्रीजी महाराज चातुर्मास अथवा शेष काल जहां-जहां विराजते थे वहां के लोग उनके अपरिमित-ज्ञान, निर्मल-चरित्र, वाक्पटुता इत्यादि असाधारण गुणों से मुग्ध होकर श्रीजी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। दिन पर दिन उनका विमल यश देश-देशांतरों में फैलने लगा।

सागर वर गंभीरा

सम्वत् 1953 में तपस्वीजी श्री हजारीमलजी महाराज के साथ श्रीजी महाराज ठाणा उरामपुरा पधारे। वहां समाचार मिले कि आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। आचार्य श्री की ओर श्रीजी का अनुपम भक्ति-भाव जब गृहस्थाश्रम में थे तब से ही था। उपरोक्त समाचार मिलते ही उनके चिन्तातुर हृदय और दर्शनातुर नेत्रों ने शीघ्र विहार करने की प्रेरणा प्रदान की और थोड़े ही दिनों में वे आचार्य उदयसागरजी महाराज की सेवा में रतलाम पधार गये।

श्रीलालजी महाराज का ज्ञानाभ्यास की ओर विशेष लक्ष्य एवं तद्नुसार उत्तम आचार-विचार देख कर आचार्यजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए और श्रीजी से पूछा कि अब कौन से सूत्र का अभ्यास कर रहे हो? श्रीजी ने उत्तर दिया 'कृपानाथ! अभी मैं श्री ठाणांगजी सूत्र का अभ्यास कर रहा हूँ।' यह सुनकर आचार्यजी के मुख कमल से सहज ही ऐसे शब्द निकल पड़े कि ठाणांग समवायंग सूत्र का अभ्यास करने से 'सागर वर गम्भीरा' हो जाओगे। इस आशीर्वचन को सुन श्रीजी ने आदरपूर्वक शिरोधार्य कर कहा कि 'कल्प वृक्ष की सेवा करने पर इच्छित मनोकामना पूरी होती है उसमें आश्चर्य नहीं है।'

हम पहले लिख चुके हैं कि जब श्रीजी गृहस्थावास में थे तब उन्हें श्रीधर नाम देने वाले भी यही महापुरुष थे। ज्ञान और संयम रूपी श्री(लक्ष्मी) को धारण कर सचमुच श्रीधर बन फिर जब उन्हीं महापुरुष की सेवा में उपस्थित हुए तो उन्हें 'सागर समान गम्भीर होओगे' ऐसी शुभाशीष दी और वह कुछ ही अंतराल में फलीभूत भी हुई। सतत् सत्य का सेवन करने वाले महापुरुषों के वचन कदापि निष्फल नहीं जाते। योग दर्शन के प्रणेता पतंजलि मुनि (जिन्होंने हरिभद्र सूरी को मार्गानुसारी

कहा है) कहते हैं कि –

'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्'

सूत्रार्थ –(साधक योगी के चित्त में) सत्य की प्रतिष्ठा एवं स्थिरता होने पर क्रिया तथा फल उसके आधीन हो जाते हैं।

अर्थात् अपनी इच्छानुसार अन्य को धर्माधर्म तथा स्वर्ग-नरकादि प्राप्त करा देने की उस योगी की वाणी में सामर्थ्य होती है। सत्य जिसे सिद्ध हो गया है ऐसे योगी की वाणी अमोघ अप्रतिहत होती है। इसलिये ऐसा योगी किसी को कहे कि तू धार्मिक बन जा तो वह पापी हो तो भी उनके वचन मात्र से ही धार्मिक हो जाता है। किसी को कह दें कि तू स्वर्ग प्राप्त करेगा तो उनके आशीर्वाद मात्र से वह अधार्मिक हो तो भी स्वर्ग नहीं देने वाले संस्कारों को दूर कर स्वर्ग प्राप्त कर लेता है।

आयार्य श्री के शरीर में व्याधि बढ़ती देख शरीर का क्षणभंगुर स्वभाव समझ उन्होंने सम्प्रदाय की रक्षा और उन्नति के लिये श्रीमान् चौथमलजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त किया। (सम्वत् 1952) तत्पश्चात् वेदनीय कर्म के क्षयोपशम से पूज्य श्री को कुछ आराम होने पर उनकी आज्ञा ले श्रीजी ने रतलाम से विहार किया और सम्वत् 1953 का चातुर्मास युवाचार्यजी महाराज के साथ जावद में किया।

अध्याय 8 : मेवाड़ के मुख्य प्रधान को प्रतिबोध

श्रीजी की अपूर्व ख्याति सुन मेवाड़ की राजधानी उदयपुर के श्रीसंघ ने चातुर्मास उदयपुर में करने का उनसे आग्रह किया। इसलिये सं. 1953 का चातुर्मास उदयपुर में किया।

मेवाड़ की प्रसिद्धि में अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं। अपनी टेक रखने के लिये राणा प्रताप ने हजारों संकट सहन किये। समस्त हिन्दुस्तान में उदयपुर के राजपूत अग्रणीय माने जाते हैं। चित्तौड़ के मुसलमानों के हाथों में चले जाने के पश्चात् सिसोदिया राजवंश ने उदयपुर को अपनी राजधानी बनाया। पुरुषों ने अपनी स्वतंत्रता बनाये रखने और स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिये प्राणों की भी परवाह नहीं की। उनके स्मारक अभी भी चित्तौड़ में कायम हैं। भारत के इतिहास में मेवाड़ की कीर्ति स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इतना ही नहीं आज भी अपने उस मान के लिये उन्हें गर्व है। सम्राट जार्ज के दिल्ली दरबार के समय भी हिन्दुस्तान के दूसरे राज्यों की तुलना में वहाँ के महाराणा के लिये विशेष व्यवस्था हुई थी और उदयपुर राज्य अपने सिक्के में 'दोस्त ए लंदन' लिखते थे। उदयपुर शहर के चारों ओर की ऊँची पहाड़ियां प्राकृतिक कोट के रूप में विद्यमान हैं। यहां की जमीन ऊंची होने से कई स्थानों के लिये यहां से जल प्रवाहित होकर जाता है किन्तु कहीं से भी उदयपुर की ओर जल का प्रवाह नहीं आता मानो जल का प्रवाह भी उदयपुर की उच्चता को बनाये रखने को कृत संकल्प है। मेवाड़ की भूमि को पवित्र माना जाता है। जैनियों के श्री ऋषभनाथजी (श्रीकेशरियाजी), वैष्णवों के श्री श्रीनाथजी और शैवों के श्री एकलिंगजी इन तीनों धामों का राज्य की तरफ से पूर्ण मान-सम्मान किया जाता है। श्री ऋषभदेव स्वामी के पाटवी खानदान में होने से अभी तक ये 'धर्मरक्षक' के समान अपना धर्म अदा करते हैं। इस राज्य का मूल सिद्धांत है कि 'जो दृढ़ राखे धर्म को तिह राखे करतार'। चक्रवर्ती राजाओं की सेवा में सोलह हजार और बत्तीस हजार राजा रहते थे वैसा ही हाल श्री उदयपुर के महाराणा साहब का है। वे भी अपने सोलह और बत्तीस उमरावों में सूर्य के समान शोभा पाते निकलते हैं। कचहरी, सवारी तथा राज्य के दूसरे रीति-रिवाज भी शास्त्रानुसार ही होते थे। जगन्माता गाय को मेवाड़ की सीमा के बाहर कोई नहीं ले जा सकता था। बैल, भैंस, पाडे इत्यादि जानवर भी अनजान आदमी या कसाई के हाथ बेचने की सख्त मनाही थी। मोर, कबूतर व मछली मारने की भी मनाही थी। वृद्ध जानवरों को नीलाम नहीं करने दिया जाता था और न कसाई को बेचने दिया जाता था। राज्य की ओर से सरकारी पशुशाला में उनका पालन किया जाता था। वर्ष के कई महिनों में अमुक-अमुक दिनों पर कसाइयों, तेलियों, हलवाइयों व कुम्हारों इत्यादि से अगते रखवाये जाते थे।

पूज्य श्रीजी के व्याख्यान में हिन्दू-मुसलमान सभी हजारों की संख्या में आने लगे। कई मन्दिर मार्गी भाई भी नित्य प्रति व्याख्यान श्रवण का लाभ लेने लगे और उनमें से कितने ही ने श्रीजी से सम्यकत्व भी ग्रहण की। श्रीजी महाराज के अनुपम गुणों से सब लोग मुग्ध होते और कहते कि सचमुच इस महात्मा का जन्म जैन-शासन के पुनरुत्थान के लिये ही हुआ है।

इस चातुर्मास में उदयपुर में संवर और तपश्चरण इतना अधिक हुआ कि जितना पहिले कभी भी नहीं हुआ था। स्कंध-त्याग-प्रत्याख्यान इत्यादि इतने अधिक हुए कि जिनकी कदाचित् नामवार तफसील दी जाये तो एक पुस्तक बन जाये।

कई श्रावक श्राविकाओं ने बारह व्रत अंगीकार किये। कई श्रावकों ने मांस मदिरापान त्याग दिया और काफी लोगों ने शिकार खेलना छोड़ दिया। कसाइयों को मुंह माँगे दाम देकर पशु को छुटकारा दिलाने की अपेक्षा मांसाहरियों को समझाने में विशेष लाभ है। शहर में ओसवालों की एक पंचायती हवेली है जिसे नोहरा भी कहते हैं उसी विशाल जगह में साधु मुनिराज चातुर्मास करते हैं। वहां हमेशा 200 से 300 व्यक्ति श्रीजी के व्याख्यान में एकत्रित होते थे। दोनों बड़ी-बड़ी धर्मशालाएं भर जाने पर तीसरी भोजनशाला में बैठना पड़ता था। श्रीजी की आवाज़ बुलन्द थी अतः सब श्रोता समुदाय बराबर श्रवण कर सकता था।

चातुर्मास के दौरान आमेट के रावतजी साहिब पंचायती नोहरे में पधारे थे। श्रीजी महाराज के सदुपदेश में उन्हें बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ। अहिंसा-धर्म में रुचि हुई। व्याख्यान के पश्चात् खड़े होकर श्रीजी महाराज के पास उन्होंने प्रतिज्ञा की कि, नवरात्रों में बलिदान होता है उसमें दो पाडे और चार बकरे हमेशा के लिये कम करता हूँ। इसी प्रकार कोठारिया के रावतजी साहिब ने भी दो पाडे और चार बकरे नवरात्रों के बलिदान में से हमेशा के लिये कम करने की महाराज के पास प्रतिज्ञा ली। इनके अतिरिक्त अन्य जागीरदारों तथा राज्य कर्मचारियों ने श्रीजी के अनुपम उपदेश से नाना-विधि की प्रतिज्ञाएं ली।

चातुर्मास पूर्ण कर कार्तिक कृष्णा एकम के रोज प्रस्थान कर श्रीजी महाराज आहड़ ग्राम, जो उदयपुर से $1\frac{1}{2}$ मील दूर है वहाँ पधारे। यहाँ श्रीमान् बलवंत सिंहजी कोठारी श्रीजी की अतीव प्रशंसा सुन कर दर्शनार्थ पधारे।

श्रीमान् कोठारीजी उस समय उदयपुर के मुख्य दीवान थे। वे विद्वान, सत्यवक्ता एवं विचलक्षण प्रशासनिक प्रतिभा के धनी और सब धर्मों पर सम-भाव रखने वाले थे। श्रीमान् मेवाड़ाधीश हिन्दूवा सूर्य महाराणा साहिव की वे अन्तःकरण से सच्ची एवं प्रशंसीय सेवा बजाते थे। उनकी अनुकरणीय राज्य भक्ति के कारण महाराजा श्री के प्रीतिपात्र और विश्वास पात्र हो गए थे। राज्य में उनकी मान-मर्यादा बड़ी प्रशंसनीय थी। उनको मेवाड़ राज्य से पांव में सोना पहनने की इज्ज़त बक्शी हुई थी और पीढ़ी-दर-पीढ़ी भोगी जाने वाली जागीर मिली हुई थी।

दीवान साहब बलवंतसिंह जी ने दर्शन कर श्रीजी से वार्तालाप किया। कितनी ही शंकाओं के निराकरणार्थ विविध प्रश्न किये। उनको महाराज श्री की तरफ से अपनी शंकाओं का जो संतोषप्रद समाधान मिला उससे उनका मन प्रफुल्लित हो उठा एवं महाराज श्री के प्रति श्रद्धा से भर उठा।

फिर दूसरे दिन दीवान साहिब आहड़ पधारे। उनके साथ श्रीमान् महेताजी श्री गोविन्दसिंहजी साहिव भी पधारे। दर्शन कर एकान्त स्थान में पूज्य श्री के पास बैठ अनेक बातें बहुत समय तक करते रहे और उसी दिन से श्रीमान् कोठारीजी साहिव के हृदय पर महाराज श्री के वचनामृतों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जैन धर्म पर उनकी दृढ़ श्रद्धा हो गई और श्रीजी महाराज के वे अनन्य भक्त बन गए। तत्पश्चात् वहां से विहार कर श्री जी महाराज मेवाड़ के ग्रामानुग्राम विचरते हुए लोगों से हजारों की संख्या में स्कंध, तपश्चर्या तथा व्रत, प्रत्याख्यान करवाये।

अध्याय 9 : पति की राह पर पत्नी

मेवाड़ से मालवा होते हुए श्रीजी महाराज रतलाम पधारे। श्रीमान् युवाचार्य जी महाराज भी जावद से विहार कर रतलाम पधार गए थे। रतलाम श्री संघ ने अत्यन्त उत्साह, भक्ति और हर्षपूर्वक उनका स्वागत किया। लगभग दो हजार व्यक्ति उनके स्वागतार्थ सामने आए। उस समय आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज की बीमारी के समाचार फैलते ही हजारों लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ भी आने लगे। टोंक से नाथूलाल जी बम्ब उनके पुत्र मानिकलाल और श्रीमती मानकुंवर बाई (श्रीजी की संसारावस्था की घर्मपत्नी) भी आई। हजारों मनुष्यों के बीच सिंह गर्जना से धर्म घोषणा करते श्रीलाल जी महाराज की अपूर्व वाणी सुनकर मानकुंवर बाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ। पति की राह ग्रहण कर आत्मोन्नति साधने की उत्कंठा हुई। अर्द्धांगिनी का दावा रखने वाली प्रत्येक स्त्री को ऐसी सद्‌बुद्धि आना स्वभाविक है। श्रीमान् आचार्य जी महाराज के पास प्रतिज्ञा ली कि मुझे एक मास से अधिक समय तक संसार में रहने के प्रत्याख्यान हैं। उपरोक्त प्रतिज्ञा ले मानकुंवर बाई सबकी आज्ञा लेने टोंक गई।

सं. 1954 माघ शुक्ला 10 के दिन आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। उनकी दैहिक क्रिया रतलाम के श्री संघ ने बहुत ही उदारतापूर्वक की।

1954 के फाल्गुन शुक्ला 5 के दिन श्रीमती मानकुंवर बाई ने रतलाम में श्रीमती रंगूजी महासती जी की सम्प्रदाय की सतीजी श्रीमती राजाँजी के पास दीक्षा अंगीकार की। उस समय श्रीजी महाराज भी रतलाम विराजते थे और एक ही दिन तीन दीक्षाएँ हुई। दीक्षा उत्सव भी बड़ी धूमधाम से किया गया। रतलाम का श्री संघ संत-सतियों की सेवा और धर्मोन्नति के कार्य में समय-समय पर अतुलित धन व्यय कर जैन धर्म का प्रचार करने अपने कर्तव्य के पालन का निर्वहन बखूबी करता है। रतलाम श्रीसंघ का यह धर्म प्रेम, धार्मिक प्रभावना के प्रति श्रद्धा एवं दान भावना प्रशंसनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।

पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् श्रीमान् चौथमलजी महाराज आचार्य पद पर विराजे और संप्रदाय की सब तरह सार-संभाल करने लगे किन्तु स्वयं वयोवृद्ध होने से तथा नेत्र शक्ति भी क्षीण हो जाने से उनसे विहार होना सम्भव नहीं था। अतः वे रतलाम में ही स्थिर वास करने लगे और श्रीजी महाराज को आज्ञा दी कि, शेष काल में निकटवर्ती ग्रामों में विहार करते हुए चातुर्मास रतलाम में ही करें। उनके पश्चात् अगर सम्प्रदाय का भार उठा सके इतने गुण वाले व योग्यता वाले साधु कोई थे तो ये श्रीलालजी ही थे। इसी कारण उन्हें अपने पास रख शिक्षित करने की उनकी इच्छा थी। सं. 1955-56-57 के तीनों चातुर्मास श्रीजी महाराज ने पूज्य श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में रह कर रतलाम में किये। पवित्र पुरुष जिस स्थान को अपनी

चरण रज से पवित्र बना देते हैं वही स्थान तीर्थ भूमि कहलाता है। उस समय रतलाम शहर सचमुच तीर्थ क्षेत्र था। श्रीजी महाराज के सद्बोधामृत का प्रवाह रतलामवासियों के अन्तःकरण के मैल को धोकर उन्हें पावन कर रहा था। तीन वर्ष में जो-जो महान कार्य हुए वे अवर्णनीय हैं। अन्य देश-देशान्तरों से भी बहुत लोग दर्शनार्थ रतलाम आते और श्रीजी महाराज के व्याख्यान से बहुत संतुष्ट होते थे। इससे श्रीजी महाराज का यश दशों दिशाओं में फैलने लगा।

अध्याय 10 : आचार्य पद

श्रीमान् आचार्य श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में विराजते हुए श्रीजी अपने अमूल्य वचनामृत द्वारा जन-समूह का अपार उपकार कर रहे थे। सम्वत् 1957 के कार्तिक मास में आचार्य श्री चौथमलजी महाराज के शरीर में व्याधि उत्पन्न हुई। क्षमासागर उसे समभाव से सहन करते रहे। कार्तिक शुक्ला 1 के दिन रात को 10-11 बजे व्याधि बढ़ने लगी। श्रीजी महाराज पूज्य श्री की सेवा में तन-मन से लगे हुए थे। उनके हाथ में नाड़ी न आने से वे बाहर आये और श्री ऋषभदास जी श्रीमाल जो उस दिन वहीं पर सोए थे को स्थिति से अवगत कराया और कहा कि वे तुरन्त श्रीसंघ के अग्रगण्य सेठ अमरचन्दजी पीतलिया तथा श्रीयुत तेजपाल जी संचेती इत्यादि को खबर कर आयें। इस समाचार के पाते ही वे दोनों तथा अन्य श्रावक पूज्य श्री की सेवा में उपस्थित हो गये। सेठ अमरचंदजी साहिब ने नाड़ी देखी और पूज्य श्री को आवाज़ दे सचेतन किया। सचेतन हो उन्होंने उपस्थित साधु श्रावकों के समक्ष प्रकट आलोचना निवंदना की। पुनः महाव्रत आरोपण कर शुद्ध हुए। उस समय सेठ श्री अमरचन्दजी पीतलिया व श्रीयुत् तेजपालजी इत्यादि श्रावकों ने अर्ज की कि, 'श्रीमान्! आपने तो आलोचनादि करके शुद्धि कर ली है परन्तु अब हमें और चतुर्विध संघ को किस का आधार रहेगा।' उत्तर में पूज्य महाराज ने फरमाया कि, 'मेरे पश्चात् सम्प्रदाय की सार-संभाल श्रीलालजी करें।' श्रीजी महाराज के अनुपम गुणों से श्रावक लोग पूर्णतया परिचित थे और इसीलिये आचार्यपद को श्रीजी महाराज ही सुशोभित करें ऐसा वे पहिले से ही चाहते थे अतः समस्त लोगों ने पूज्य श्री की उपर्युक्त आज्ञा को अति-आनंद एवं उल्लास के साथ शिरोधार्य किया।

दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला 2 के रोज दोपहर में चतुर्विध संघ एकत्रित हुआ और श्रीमान् सेठ अमरचन्दजी साहिब पीतलिया ने आचार्य श्री की सेवा में पुनः चतुर्विध संघ के समक्ष अर्ज की कि, 'जिन शासन रूप आकाश में आप सूर्यवत् प्रकाश कर रहे हैं। यह सूर्य चिरकाल तक प्रकाशित रहे, हमारे हृदय में व्याप्त अज्ञान अन्धकार को दूर करता रहे यह हमारी हार्दिक भावना है। परन्तु आपके शरीर में व्याधि है इसलिये सम्प्रदाय में जो मुनिराज आपको योग्य लगे उन्हें युवाचार्य पद प्रदान करने की कृपा करें ऐसी मैं श्री संघ की तरफ से नम्र प्रार्थना करता हूँ।' इस पर आचार्य श्री ने पुण्यपुंज सर्वदा सुयोग्य मुनिश्री श्रीलालजी महाराज को युवाचार्य पद प्रदान करने का हुक्म फरमाया। तब श्रीलालजी महाराज ने अति नम्र भाव से आचार्य की सेवा में सबके सामने यह अर्ज किया कि 'सम्प्रदाय में कई मुनिराज मुझ से दीक्षा में, वय में, ज्ञान में एवं गुणों में अधिक हैं इसलिये मुझ पर यह भार न रखा जाय ऐसी मेरी अन्तःकरण से प्रार्थना है।'

यह सुनकर श्रीजी महाराज के गुरु और आचार्य श्री के शिष्य श्री वृद्धिचन्द्रजी महाराज जो वहां विराजमान थे ने श्री जी से कहा कि 'श्रीलालजी! तुम्हें आनाकानी नहीं करनी चाहिये। श्रीमान् आचार्यजी महाराज बहुत ही दीर्घ दर्शी, पवित्रात्मा, समय के ज्ञाता और चतुर्विध संघ के परम हितैषी हैं उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर श्रीसंघ की सेवा करो और जैन-शासन का प्रचार करो।' इन

वचनों का चतुर्विध संघ ने भी अनुमोदन किया। तब श्रीलालजी महाराज दोनों हाथ जोड़ सिर नमा मौन रहे। पश्चात् आचार्यजी महाराज ने श्री चतुर्विध संघ की सहमति से श्रीजी महाराज को युवाचार्य पद प्रदान किया और चतुर्विध संघ को उनकी आज्ञा पालन करने का हुक्म फरमाया। तब चतुर्विध संघ ने हर्ष ध्वनि के साथ खड़े होकर अत्यन्त भक्ति-भाव सहित नव-नियुक्त युवाचार्यजी महाराज की सेवा में वंदना की।

श्रीमान् आचार्य श्री चौथमलजी महाराज ने अपना अवसानकाल समीप समझ कर संथारा किया। संथारे की खबर बिजली की तरह चारों और फैल गई। श्रावक-श्राविकाएँ बाहर के ग्रामों से पूज्य श्री के दर्शनार्थ बहु संख्या में आने लगे। कार्तिक शुक्ला 8 की रात को पूज्य श्री चौथमलजी महाराज शांतिपूर्वक औदारिक देह त्याग स्वर्ग सिधारे।

दूसरे दिन अर्थात् सं. 1957 के कार्तिक शुक्ला 9 के दिन सवेरे ही रतलाम श्री संघ आचार्यश्री का निर्वाण महोत्सव मनाने को एकत्रित हुआ। दर्शनार्थ आये हुए अन्य ग्रामों के श्रावक बड़ी संख्या में वहां उपस्थित थे। उस समय चतुर्विध संघ ने श्रीमान् युवाचार्यजी महाराज को आचार्य पद पर विराजमान करने के लिये उनके गुरु श्री वृद्धिचन्द्रजी महाराज से निवेदन किया।

आचार्य श्री की मृत देह को विमान में रखा गया। पश्चात् चतुर्विध संघ की विनय पर उनके पाट पर श्रीमान् श्रीलालजी महाराज को बिठाया गया और उनके गुरु श्री वृद्धिचन्द्रजी महाराज ने आचार्य श्री की पछेवड़ी उनको धारण कराई और चतुर्विध संघ आनन्द और भक्तिभाव सहित आचार्यश्री की वंदना कर जयनाद करने लगा। शास्त्र और सम्प्रदाय की रीति के ज्ञाता श्रीमान् सेठ अमरचन्दजी ने खड़े होकर बुलन्द आवाज में कहा कि 'आज से श्रीमान् श्रीलालजी महाराज आचार्य पद पर विराजे हैं इसलिये अब सब छोटे-बड़े संतों को, आचार्यों को और उसी प्रकार समस्त श्रावक-श्राविकाओं को उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए और सम्प्रदाय की रीति के अनुसार दीक्षा में बड़े मुनिराजों को वे वंदना करेंगे। और छोटे मुनिराज उन्हें वंदना करेंगे परन्तु सबको उनकी आज्ञा में चलना चाहिये।' ये शब्द सुनकर सब ने एक ही आवाज में पूज्य श्री को विश्वास दिलाया कि आज से आपकी आज्ञा को प्रभु आज्ञा समान समझ कर हम आपकी आज्ञा में चलेंगे।

पश्चात् सद्गति प्राप्त आचार्य श्री चौथमलजी महाराज की मृत देह को हजारों मनुष्यों के समूह ने मनोहर विमान में विराजमान कर बड़े धूमधाम से जय जय नन्दा जय जय भद्रा के शब्दों से आकाश को गुंजाते हुए शहर के मध्य में होकर श्मशान भूमि में ले गए एवं वहां चन्दन, काष्ठ इत्यादि से अग्नि संस्कार किया।

आचार्य श्री चौथमलजी महाराज अन्तिम तीन वर्षों से रतलाम में ही स्थिरवास कर रहे थे उनकी नेत्र ज्योति क्षीण हो गई थी और वृद्धावस्था के कारण साधुओं की बहुत संख्यावाली इस बड़ी सम्प्रदाय की वे भली-भांति सम्भाल नहीं कर पा रहे थे अतः उन्होंने अपनी आज्ञा में विचरते साधुओं में से चार साधुओं को प्रवर्तक की तरह नियुक्त कर सब अधिकार उन्हें सौंप दिये थे। वे चार प्रवर्तक निम्नांकित हैं :

1. श्रीमान् कर्मचन्दजी महाराज
2. श्रीमान् मुन्नालालजी महाराज

3. श्रीमान् श्रीलालजी महाराज
4. श्रीमान् जवाहरलालजी महाराज
(वर्तमान आचार्य)

आचार्यश्री श्रीलालजी महाराज दीक्षा में उस समय कई मुनिवरों से छोटे थे, उनकी वय भी सिर्फ 31 वर्ष की था। परन्तु उन्होंने ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप की अपरिमित वृद्धि की थी। उनमें उदात्त विचार, धैर्य, शांतिप्रियता, क्षमा, मनोनिग्रह, जितेन्द्रियता, न्यायप्रियता, वाक्पटुता, विनय, वैराग्य आदि उत्तम गुण शुक्ल पक्ष के चन्द्र की भांति दिन प्रतिदिन वृद्धि पा रहे थे। उनकी आचार्यपद पर नियुक्ति से श्रीमान् हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय की उन्नति होगी और उसका गौरव बढ़ेगा ऐसी चतुर्विध संघ को पूर्ण आशा थी अतः सबके मन सन्तुष्ट थे।

श्रीजी महाराज को उन्हें प्राप्त अधिकार की महत्ता और उत्तरदायित्व का सम्पूर्ण ज्ञान था। सम्प्रदाय की उन्नति करने की उनकी तीव्र अभिलाषा थी इसलिए वे आचार्य पद प्राप्त होते ही अति सावधानी से प्रमाद को त्याग पूर्व से भी विशेष पुरुषार्थ करने लगे। ज्ञान, दर्शन, चरित्र के पर्यायों में वे विशेष कर वृद्धि करने लगे जिसके परिणामस्वरूप उनका मति-श्रुत-ज्ञान अधिक निर्मल हो गया। चाहे जैसा मनुष्य चाहे जैसा विकट प्रश्न करता उसे वे ऐसी सफाई और खूबी तथा संतोषप्रद उत्तर देते कि प्रश्नकर्ता को पुनः शंका उठाने की प्रायः आवश्यकता न रहती। इस प्रकार जैन शास्त्रों की व्याख्या करते हुए लोगों के दुःख-दर्द को हरते हुए श्रीलालजी भारत भू-मंडल पर विचरने लगे।

रतलाम का चातुर्मास पूर्ण कर पूज्य श्रीलालजी महाराज शेषकाल में वहां से विहार कर मालवा और मेवाड़ की भूमि को पावन करते-कराते एवं अपने पुण्य का प्रकाश फैलाते हुए और श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाते हुए उदयपुर पधारे। उस समय उदयपुर के मुख्य दीवान श्रीमान् कोठारीजी साहिब उनके व्याख्यान का पूरा लाभ लेते थे। वे पूज्य श्री से व्याख्यान के बीच में खड़े होकर सं. 1958 का चातुर्मास उदयपुर करने के लिए प्रार्थना करने लगे। इसके उत्तर में पूज्य श्री ने फरमाया कि इस वर्ष तो यहां चातुर्मास करने की अनुकूलता नहीं है परन्तु तुम्हारे लिये जवाहर (जवाहरात) की पेटी समान श्री जवाहरलालजी महाराज को उदयपुर चातुर्मास करने भेज दूंगा। उनके चातुर्मास से आनन्द मंगल होता रहेगा। तदनुसार उन्होंने सं. 1958 में श्रीमान् जवाहरलालजी महाराज को उदयपुर चातुर्मास करने को भेजा। वहां उनके उपदेश से बड़ा उपकार हुआ। कई कसाइयों ने जीव हिंसा करने तथा मांस भक्षण करने का त्याग किया। इस वर्ष मोतीलालजी तपस्वीजी महाराज ने 45 उपवास किये थे। उस मौके पर श्रावण कृष्णा सप्तमी से भाद्रपद कृष्णा सप्तमी तक कसाई खाने बन्द रहे। हजारों जीवों को अभयदान दिया गया। कई जीव सुलभ बोधी हुए। महाराज श्री के व्याख्यान की अद्भुत छटा से जैन-अजैन श्रोतागण पर अपूर्व प्रभाव पड़ता था। उदयपुर का श्रावक समुदाय चातुर्मास के दौरान पूज्य श्री के वचनों को पुनः याद कर उनका उपकार मानता और कहता था कि सचमुच जवाहरात की पेटी ही हमारे लिये पूज्यश्री ने भेजी है। ये जवाहरलालजी महाराज वे ही हैं जो पूज्य श्रीलालजी महाराज के बाद आचार्य पद पर आसीन हुए थे। उन्होंने दक्षिण प्रवास में संस्कृत का अच्छा अभ्यास किया था।

अध्याय 11 : सदुपदेश का प्रभाव

भीलवाड़ा–पूज्य श्रीलालजी महाराज उदयपुर से भीलवाड़ा पधारे और कुछ समय वहाँ ठहरे। भीलवाड़ा के हाकिम मेहता जी श्री गोविन्दसिंहजी साहिब ने श्रीमान् के सदुपदेश से सम्यकत्व प्राप्त किया। वे व्याख्यान में पधारते। जैन धर्म का रंग उनके रोम-रोम में समा गया था। वे पूज्यश्री के अनन्य भक्त बन गये। मेहताजी ने जीवदया के अनेक कार्य किये और जैन धर्म का बहुत प्रचार किया। श्रीयुत करोड़ीमलजी सुराणा जो भीलवाड़ा के एक सद्गृहस्थ थे को पूज्यश्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने धन, माल, जमीन इत्यादि का त्याग कर सं. 1958 के चैत्र-वैशाख कृष्णा एकम के रोज आचार्यश्री के सान्निध्य में धूमधाम से दीक्षा ग्रहण की।

श्रीजी के व्याख्यान में स्वमती, अन्यमती हिन्दू-मुसलमान सभी आते थे। डाक्टर हसमत अलीजी श्रीजी के पास बड़ी श्रद्धा से आते थे। जीवदया में उनकी पूर्ण रुचि एवं श्रद्धा थी।

भीलवाड़ा से नागौर होते हुए पूज्यश्री ग्राम देह पधारे। वहाँ के ठाकुर साहिब श्री कालूसिंहजी राठौड़ पूज्य श्री के व्याख्यान में आते थे। पूज्य श्री की प्रभावशाली वाणी सुनकर उन्हें अपरिमित आनन्द होता था। उन्होंने दारू, मांस व रात्रि भोजन का त्याग किया और जैनधर्म में आस्था करने लगे। उनकी नवकार महामंत्र पर अतुल श्रद्धा जम गई थी। ठाकुर साहिब प्रतिदिन छः सामायिक करते थे और महिने के छह पौषध करते थे। यह सब पारसमणि-समान प्रतापी पूज्य श्री के सत्संग और सद्बोध का परिणाम था।

पूज्यश्री ने जोधपुर में चातुर्मास सं. 1957 में किया। इस चातुर्मास में पूज्यश्री की अमृतमयी वाणी से अनहद उपकार हुआ। वैष्णव धर्मानुयायी लगभग 40-50 घर पूज्य श्री के अपूर्व उदेशामृत का पान कर जैन धर्मानुयायी बन गये जिनमें खास तौर पर श्रीयुत् गुलाबदास जी अग्रवाल तो व्रतधारी श्रावक ही बन गये थे।

जोधपुर से विहार कर सं. 1958 के मगहर महिने में अपने दीक्षागुरु श्रीमान् वृद्धिचन्द जी महाराज के साथ पूज्यश्री जावद पधारे। वहां पूज्यश्री के उपदेशामृत-पान कर संसार की असारता के तत्व को आत्मसात करने वाले सुश्रावक मोड़ी लालजी और गब्बूलालजी ने मगहर कृष्णा दसवीं के दिन जैन भागवती दीक्षा ग्रहण की।

सं. 1958 का चातुर्मास पूज्य श्री ने वीकानेर में किया। वहां धर्म का अपूर्व प्रचार हुआ। यहाँ के अपने स्वधर्म परायण भाईयों ने अभयदान, ज्ञानदान, आतिथ्य-सत्कार इत्यादि परमार्थिक कार्यों में पर्याप्त धन लगाया जिससे पूज्यश्रीजी की कीर्ति दशों दिशाओं में फैलने से दूर-दूर से लोग भारी संख्या में दर्शनार्थ आने लगे। उनका स्वागत वीकानेर का संघ लगन व उदारता से करता था। साधु-साध्वियों के तपश्चर्या तथा ज्ञानध्यान की धूम मच गई थी। अनेक श्रावक और श्राविकाएं भी व्रत, प्रत्याख्यान, दया, पौषध, पंचरंगी इत्यादि से अपनी आत्मा का कल्याण कर रहे थे। व्याख्यान में स्वमती व अन्यमति जन समुदाय की भारी भीड़ आने लगी और हजारों पशुओं को अभयदान मिला।

कितने ही अन्य मतावलंबियों ने जैन धर्म अंगीकार किया। सुप्रसिद्ध सुश्रावक गणेशीलालजी मालू जो साधुमार्गी जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे पूज्यश्री के परिचय और सदुपदेश से दृढ़ श्रावक बन गए। और चातुर्मास में श्रीजी के दर्शनार्थ आने लगे। सैकड़ों श्रावक-श्राविकाओं के स्वागत तथा भोजन इत्यादि का तमाम प्रवन्ध उन्होंने अपने खर्च से किया था। इतना ही नहीं किन्तु जैन धर्म के प्रचार के लिये तथा जन समूह के हितार्थ-परमार्थ कार्य में उन्होंने लाखों रुपये लगाये और वर्तमान में उनके दत्तक पुत्र को भी यह सद्गुण प्राप्त है।

इस चातुर्मास के दौरान एक वैश्या वख्तावर ने पूज्य श्री के सदुपदेश से वैश्यावृत्ति का बिलकुल परित्याग कर दिया तथा वह श्राविका वृत्ति धारण कर पवित्र और धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगी। वह उसके बाद लम्बे समय तक जीवित रही एवं अपने संकल्प का दृढ़ता से पालन करती रही।

बीकानेर में चातुर्मास के पश्चात् पूज्य श्री ने जोधपुर की तरफ विहार किया। वहां श्री मुन्नालालजी महाराज का समागम हुआ। परन्तु किसी आचार्यश्री की इच्छा के विपरीत वे पृथक् विचरने लगे। इस कारण से श्रीमान् के हृदय में जावरा वाले संतों को अपने साथ शामिल करने की प्रेरणा हुई। फिर वहां से वे क्रमशः विहार कर मेवाड़ में पधारे। उदयपुर संघ की कई वर्षों से चातुर्मास के लिये विनती थी अतः सं. 1959 का चातुर्मास उदयपुर किया।

अध्याय 12 : अपूर्व-उद्योत

पूज्य श्री का चातुर्मास होने के कारण उदयपुर संघ में आनन्दोत्सव छा गया। पहिले कभी किसी स्थान पर पच्चीसरंगी सामयिक होने का वृतान्त नहीं सुना था। वह पच्चीसरंगी सामायिक यहां पर हुई। इस संवर-करणी में 625 पुरुषों की उपस्थिति की आवश्यकता होती हैं। लोगों का उत्साह इतना अधिक बढ़ा था कि चित्तौड़ निवासी मोड़सिंहजी सुराना ने एक ही आसन पर एक साथ 151 सामायिक किये एवं दिन रात खड़े रहकर सामायिक का समय व्यतीत किया। इसी भांति घेरीलालजी मेहता ने 131 तथा कन्हैयालालजी भंडारी ने 131 खड़े होकर किये और अति उत्साह-पूर्वक पच्चीसरंगी के ऊपर सामायिक की पचरंगी तथा नवरंगी की। इस चौमासे में 108 अठाइयां हुई थीं। इसके सिवाय सैकड़ों स्कंध त्याग तथा अन्य प्रकार की बहुत सी तपश्चर्यायें भी हुई थीं।

पूज्यश्री के उपदेशामृत से प्रभावित होकर कई खटीकों (कसाइयों) ने हमेशा के लिये जीव हिंसा करने का त्याग किया। इस प्रकार त्याग करने वाले खटीकों में से किशोर, गोकुल, बरधा और नन्दा वे चारों भाई तथा दूसरे भी कई खटीक और उनकी स्त्रियाँ, साधु-मुनिराजों के पास उनके व्याख्यान (उपदेश) सुनने आती थीं। पूज्यश्री की प्रेरणा से कसाईपने का धंधा छोड़ने के बाद किशोर आदि की आर्थिक-स्थिति अच्छी हो जाने से वे बहुत सुखी हो गये थे। वर्तमान समय में भी उनका परिवार ब्याज-बट्टा तथा हुण्डी-पत्री का धंधा करते हैं, और बाजार में उनकी साख (पेठ) इतनी बढ़ गई है कि उनकी हजारों रुपयों की हुण्डियां बिक जाती हैं। इनके सिवाय दूसरी भी कई (शूद्र) कहलाने वाली जातियों के लोगों ने जिनके लिये मांस, मदिरा का सेवन जीवन का अभिन्न अंग माना जाता है ने आजीवन मांस, मदिरा का उपयोग करना छोड़ दिया और कितने ही अन्यमतावलम्बी जैन-धर्मावलम्बी हो गये।

गोचरी करने हेतु पूज्य श्री स्वयं जाते और सामुदायी गोचरी करते थे। अन्य धर्म (जैनेतर) तथा दीनावस्था वाले मनुष्यों के यहां जाकर मक्की तथा जौ की रोटी वेहर कर लाते थे। शास्त्रों में जिन-जिन जातियों के यहां का आहार ग्रहण करने की आज्ञा है उन के यहाँ से आहार ले आने में पूज्य श्री अपने मन में जरा भी संकोच नहीं करते थे।

इस वर्ष भी बाहर से सैकड़ों लोग पूज्यश्री के दर्शनार्थ आये थे। उन सभी के भोजन आदि का प्रबंध संघ की ओर से भली-भांति होता था।

अमीर, उमराव, अधिकारी एवं राज्यकर्मचारीगण काफी संख्या में व्याख्यान का लाभ उठाते थे, उनमें से कई जैन धर्म के प्रेमी भी हो गये थे। उन सभी में श्रीमान् महाराणाजी साहिब के ज्यूडिशियल सेक्रेटरी लाला केशरीलालजी साहिब का नाम उल्लेखनीय है। पूज्य श्री के सदुपदेश से प्रभावित हो न सिर्फ उन्होंने जैन-धर्म को ही स्वीकार किया, बल्कि उन्होंने जैन शास्त्रों का उच्च कोटि का ज्ञान सम्पादन करके, एक उत्तम श्रावक को शोभा दे, उस प्रकार का अनुकरणीय पारमार्थिक

जीवन भी व्यतीत किया एवं हजारों पशुओं को अभय-दान दिया है। लाला साहिब उसके बाद भी दीर्घकाल तक जीवित रहे व (संवत्) 1977 के अधिक श्रावण की 3 के दिन वीकानेर की सभा में जाने पर पुस्तक लेखक श्री दुर्लभजी भाई के उनसे भेंट करने का उन्हें लाभ प्राप्त हुआ था। आचार्य महोदय श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज का चातुर्मास उस समय वीकानेर में था अतः उनके सत्संग का लाभ उठाने के लिए ही संवत् 1977 के चातुर्मास में लालजी केशरीलालजी बीकानेर में आकर रहे थे। उन महानुभाव का संक्षिप्त जीवन-चरित्र उनके ही मुँह से श्रवण करने की लेखक की अभिलाषा होने से उन्होंने अपना निम्नलिखित जीवन परिचय दिया था। 'मेरा नाम केशरीलाल है और मेरी जाति कायस्थ माथुर है। मेरा निवास स्थान उदयपुर है। मैंने 50 वर्ष तक मेवाड़ दरबार की नौकरी की है। जिनमें से 24 वर्ष तक ज्यूडिशियल सेक्रेटरी के पद पर रह कर स्वयं महाराणा साहिब श्री फतेसिंहजी बहादुर के समक्ष मुकदमों की पेशी की है, और अब 3 वर्ष से पूज्य 1008 पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के 16 वर्ष के सत्संग और सदुपदेश से निवृत परायण-जीवन व्यतीत करता हूँ।

किशनगढ़ महाराज के संबंधी (कुटुम्बी) सरदारसिंहजी राठौड़ राजपूत, वैष्णव धर्मावलम्बी थे। वे विरक्त दशा में रहते थे; एवं योग विद्या के पूर्ण अभ्यासी थे। मैं उनके पास उदयपुर मुकाम पर, योगाभ्यास करने के हेतु संवत् 1953 में जाता था। एक दिन उन्होंने मुझे सामने के बगीचे में से मेंहदी के पौधे का फूल तोड़कर ले जाते देखा। उसी समय उन्होंने तुरन्त ही आवाज देकर मुझे बुलाया और कहा कि 'तुमने डाली के ऊपर से यह फूल किसलिए तोड़ा ? यदि कोई तुम्हारी अंगुली काटकर ले जाये तो तुम्हें कितना दर्द होगा ? क्या तुम नहीं जानते कि जिस प्रकार तुम्हारे शरीर में दर्द होता है, उसी प्रकार वृक्ष में भी जीव होने से उसको भी दर्द होता है?' इसके सिवाय उन्होंने फूल में कितने ही चलते-फिरते जीव भी प्रत्यक्ष रूप से उन्हें बतलाये और कहा कि 'मुझे मालूम होता है कि, 'तुमने किसी जैन साधु महात्मा की संगति नहीं की है तभी तुम मूर्ख के समान इन जीवों को कष्ट पहुँचाते हो।' मैंने यह सुनकर विस्मित हो अपने योगी गुरु से प्रार्थना की कि 'हम वैष्णव धर्मी है, हमको जैन साधु महात्माओं का सत्संग करने की क्या आवश्यकता?' इसके सिवाय मैंने यह भी सुना है कि 'हस्तिना ताड्यमानाऽपि न गच्छेञ्जेनमिन्दिरम्।'

यह सुनकर उन योगी ने उत्तर दिया कि 'यह वचन तो किसी मूर्ख का है अब तुम अवश्य किसी जैन साधु-महात्मा की संगति करो।' उन्हीं महात्मा की कही हुई बात है कि तीर्थंकर सब से बड़े हैं और उन्होंने जो वाणी फरमाई है वह सत्य ही सत्य कही है क्योंकि, वे सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी हुए हैं और इस बात का मुझ को पूर्ण विश्वास दिलाने के लिए जैन की कई एक धर्मकथाएं उदाहरण स्वरूप समय-समय पर फरमाते रहे। मुझे उनकी कृपा से योग के अभ्यास में अत्यन्त लाभ हुआ था और उनके वचनों पर मेरी पूर्ण श्रद्धा व आस्था जम गई थी। उनकी प्रत्येक बात को मैं अन्तःकरण पूर्वक सत्य मानता था। इस कारण उसी दिन से जैन साधु-महात्माओं के दर्शन और सत्संग की उत्कट अभिलाषा हो गई।

इसी अरसे में एक दिन एक मनुष्य गोभी का फूल लेकर जा रहा था। उसके पास से मेरे योगी गुरु ने गोभी मंगाई और एक थाली में बिखेरी तो उसमें से बहुत चलते-फिरते जीव निकले वे प्रत्यक्ष बताये और गोभी खाने की मुझे शपथ (सौगंध) भी दिलाई।

उपरोक्त कथनानुसार जैन साधुओं के दर्शन के लिए मेरी अभिलाषा दिनोंदिन विशेष बलवती (अधिक) होती गई, और सौभाग्य से संवत् 1959 में श्रीमान् पूज्यश्री 1008 श्रीश्री श्रीलालजी महाराज का चातुर्मास उदयपुर होने से उनका पधारना हुआ। यह खबर मिलते ही मैंने उनके चरणकमलों में जाकर वन्दना की और व्याख्यान भी सुना। पूज्यश्री पूर्ण दयादृष्टि से मेरे समान अन्य धर्मी अजान को प्रत्येक बात व्याख्यान द्वारा पूर्ण प्रेम के साथ स्पष्टीकरण करके समझाने लगे। पूज्यश्री ने मेरे मन को जीत लिया और उसी दिन मैंने अपनी पहले योगी महात्मा को यह सब वृत्तान्त निवेदन किया, तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक फरमाया कि, तुम प्रतिदिन व्याख्यान सुनते रहो और जो सुनो वह मुझे भी यहाँ आकर कहते रहो। चौमासे के चार महिनों में प्रायः सदैव मैंने व्याख्यान सुना, तब से आज तक लगभग 17 वर्ष हुए, पूज्य महाराज तथा अन्य मुनिराजों का जब-जब उदयपुर में पधारना होता रहा, तब-तब मैं बराबर उनकी सेवा करता रहा हूँ तथा व्याख्यान सुनता रहा हूँ और खास करके पूज्य महाराज जहाँ विराजते हों वहाँ देश-परदेश में रहकर उनकी वाणी श्रवण करने का लाभ लेता रहा हूँ। उनकी कृपा से मुझे अलभ्य लाभ होने लगा है।'

प्रिय पाठक! उक्त शब्द स्वयं लालाजी के ही कहे हुए हैं। जब उनकी आयु 68 वर्ष की थी! तब भी वे एक युवा के समान काम कर सकते थे। धर्मान्नति के काम में हमेशा आगे रहते थे। वे एक ही बार भोजन करते थे, और 7 पदार्थों के सिवाय सब पदार्थों का उन्होंने त्याग कर दिया था। मूंग की दाल, रोटी, दूध, चावल, जल, एक शाक यह उनकी खुराक थी। सब प्रकार की मिठाई खाना भी उन्होंने छोड़ दिया था।

संवत् 1863 में आचार्य महोदय श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज का चातुर्मास था। उस समय उनके सदुपदेश से लालजी ने अपनी पत्नी के साथ जोड़ी से आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था।

लालजी को अंग्रेजी, फारसी तथा कायदे-कानून का उच्च ज्ञान प्राप्त था। उनकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल थी। उनका जैनशास्त्र का ज्ञान भी प्रशंसनीय था। वे उत्तम-वर्ग के श्रोता थे। प्रति वर्ष वे सैकड़ों रुपये पशुओं को अभयदान देने आदि धार्मिक कार्यों में खर्च करते थे और गत कुछ वर्षों से उन्होंने अपना जीवन परोपकार कार्य करने में ही लगा दिया था। वे पूज्यश्री के परमभक्तों में से थे।

संवत् 1960 के उदयपुर चातुर्मास में उपरोक्त लिखे अनुसार, लालजी केशरीलालजी जैन धर्म के पूरी तरह अनुरागी बन गये। उसी प्रकार उदयपुर के एक बड़े वकील श्रीयुत् हीरालालजी ताकड़िया को जिनके पास हजारों रुपयों की चल तथा अचल सम्पत्ति थी उनको पूज्यश्री के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हो गया। उस कारण उन्होंने तथा जावरा वाले एक गृहस्थ श्रीयुत् हीराचन्दजी ने पूज्यश्री के पास 'दीक्षा' लेने का निश्चय किया।

चातुर्मास पूर्ण होते ही संवत् 1960 की मगहर कृष्णा 3 के दिन उन दोनों ने कविराज श्री शामलदासजी की बाड़ी में आचार्यश्री के सान्निध्य में बड़ी धूमधाम के साथ दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार का दीक्षा-महोत्सव इससे पहले उदयपुर में कभी नहीं हुआ था।

वकील श्री हीरालालजी पूज्यश्री के पास दीक्षा ले रहे हैं, ऐसी खबर मिलते ही श्रीमान् हिन्दवां-सूर्य महाराणा साहिब ने कृपापूर्वक एक हाथी दीक्षा लेने वाले को बैठाने के लिए तथा एक हाथी आगे रखने के लिए तथा सरकारी बाजे इत्यादि सरकार की तरफ से भेज दिये तथा नवदीक्षित

को पछेवड़ी ओढ़ाने के लिए दो थान उत्तम मलमल के भेज दिये।

श्रीयुत् हीरालालजी ताकड़िया हाथी पर बैठे और दूसरे हीराचन्दजी जावरा वाले पालकी में बैठे। एक हाथी निशान समेत आगे चलता था। हजारों मनुष्यों की भीड़ लगी हुई थी। श्रीयुत् हीरालालजी ताकड़िया ने रुपयों की एक थैली अपने पास रख ली थी। वे उसमें से मुट्ठी भर-भर कर भीड़ में फेंकते जाते थे। श्रद्धावान मनुष्य इस प्रकार के पैसों को पवित्र मानकर इकट्ठा कर रखते हैं। दीक्षा का वरघोड़ा बाजार के बीच में होकर घंटाघर के पास होता हुआ हाथीपोल (दरवाजा) के बाहर स्थित श्री कविराजजी की बाड़ी में आ पहुंचा और वहाँ पर पूज्य श्री ने दोनों महानुभावों को विधिपूर्वक दीक्षा दी। पूज्यश्री को शिष्य करने का त्याग होने के कारण उन्होंने दोनों मुनि श्रीडालचन्द्रजी महाराज के नेश्राय में दे दिये।

तत्पश्चात् पूज्यश्री उदयपुर से विहार करके 'कणपुर' होकर उदयपुर से 20 मील दूर ऊँटाला ग्राम की ओर पधार रहे थे। रास्ते में ऊँटाला ग्राम की हद में उन्हें एक कसाई 80 बकरों सहित सामने मिला। यह खटीक-कसाई ग्राम 'कपासन' में से बकरे खरीद करके, उदयपुर के कसाइयों के हाथ बेचने के लिए ले जाता था। पूज्यश्री की दृष्टि उन बकरों पर पड़ी और करुणा भाव की छाया उनके मुखकमल पर छा गई। 'ऊँटाला' के लोगों ने इसी समय उस खटीक को 175 रुपये देने का ठहरा कर, 80 बकरों को अभयदान दिया और उनको उदयपुर के नगरसेठ के पास भिजवा देने का प्रबन्ध किया। खटीक के हृदय में स्वाभाविक रीति से ही, पूज्यश्री पर अतुलनीय पूज्य भाव प्रकट हुआ और वह पूज्यश्री के पैरों में पड़कर पुनः पुनः अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा। पूज्यश्री ने समयानुसार उसको अत्यन्त प्रभावपूर्ण तरीके से उपदेश देकर जीव-दया का महत्व समझाया। पूज्यश्री के उपदेश का उस पर ऐसा असर पड़ा कि उसने स्वयं महाराज श्री के पास आकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि 'महाराज! में आसपास के ग्रामों में से बकरे खरीद करके, उदयपुर के खटीकों के हाथ बेचता हूँ, मेरा यही धंधा है, किन्तु आज से मैं जीऊँगा वहां तक यह धंधा नहीं करुंगा। कुछ मास पहिले उदयपुर वाले जीतमलजी भटा भी हमको कहते थे कि उपरोक्त खटीक ने यह धंधा बिल्कुल छोड़ दिया है।*

---

*वहां से पूज्यश्री कानोड़ पधारे। कानोड़ के रावजी साहिब ने कानोड़ पट्टे के गांवों में जहां-जहां नदी, नाले और तालाब हो वहां और उसी प्रकार उनका खालसा गांव 'कुणनी' के पास जो नदी है वहां मच्छी मारने की हमेशा के लिए मनाही कर दी। उस आज्ञा का आज तक पालना होती है। इसके सिवाय पूज्यश्री के उपदेश से कानोड़ में 50 के लगभग 'स्कंध' हुए।

अध्याय 13 : उपसर्ग को निमंत्रण

कानोड़ से क्रमशः विहार करते हुए आचार्य श्री चित्तौड़ होते हुए 'माँडलगढ़' पधारे और वहां से कोटा की ओर विहार किया। कोटा जाने के दो रास्ते हैं। एक मार्ग जंगल में होकर जाता है वह महाभयंकर है। दूसरा रास्ता जंगल को चक्कर देकर जाता है। पूज्य श्री ने सीधा जाने वाला (पहला) रास्ता पसन्द किया और मांडलगढ़ से विहार करके सिंगोली पधारे। वहां के लोगों ने पूज्य श्री से प्रार्थना की कि 'इस रास्ते यदि आप न पधारो तो उत्तम हो क्योंकि यह रास्ता भूल-भूलैया वाला है याने इस रास्ते में मार्ग भूल जाने का डर है और लगभग 10-12 कोस का जंगल है और उसमें सिंह, चीते, रीछ आदि मनुष्य को फाड़ कर खा जाने वाले हिंसक पशु बहुतायत से बसते हैं। दूसरे रास्ते होकर यदि आप कोटा पधारेंगे, तो केवल 15 कोस आपको अधिक चलना पड़ेगा किन्तु उस रास्ते में किसी प्रकार का भय नहीं है। अपने शरीर की परवाह नहीं करने वाले और आपत्तियों को आनन्दपूर्वक आमंत्रण देने वाले पूज्य श्रीलालजी महाराज ने लोगों की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया और सीधा मार्ग पकड़ा। यह दुराग्रह नहीं किन्तु आत्म श्रद्धा का दृष्टान्त है। पूज्य श्री के साथ आठ साधु थे। उनमें से अधिकांश साधुओं का उस दिन उपवास था। थोड़ा मार्ग व्यतिक्रम (गुजरते) करते ही पहाड़ों में रास्ता भूल गये और दूसरी पगडंडी से चढ़ गये। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों बहुत ही भयावना और घना जंगल आने लगा। हिंसक पशुओं के पैरों के चिह्न दिखाई देने लगे। सिंह-बाघ इत्यादि की गगनभेदी हुंकार सुनाई देने लगी। इस कारण एक साधु ने पूज्य श्री से अर्ज की कि 'महाराज यह जंगल सचमुच ही महा भयंकर है।' महाराज ने कहा 'भाई अपने साधुओं को किस बात का डर है? भय तो उसे होना चाहिये जो मृत्यु को अपने जीवन का अन्त समझता हो, शरीर के विनाश के साथ में अपना नाश मानता हो अथवा मृत्यु के पश्चात् के जीवन को भय और आपदा का स्थान मानता हो। जो सद्गुरु के प्रताप से जिनवाणी का ठीक-ठीक रहस्य समझता हो उसको जीवन और मरण में कुछ भी न्यूनाधिक नहीं समझना चाहिये। जीने की आशा और मरने का भय इन दोनों को हृदय से निकाल कर विचरने में ही अपने संयम-जीवन की सच्ची कसौटी है। माया-ममता को हवा में फेंक दो और दृढ़ता धारण करो।' इतने में एक अन्य साधु ने कहा 'महाराज! दूसरा तो कुछ नहीं किन्तु रास्ता भूल गये हैं इससे बहुत ही हैरान होना पड़ेगा।' श्रीजी महाराज ने फर्माया 'कुछ परवाह नहीं, यकीन रखो और श्री नवकार मंत्र का ध्यान धरो। इस पर सभी ने आगे चलना शुरू किया। डाबी फलका से रास्ता भूले थे लेकिन पूज्य श्री ने जो दिशा साधी थी उसको वे चूके नहीं थे। वहाँ से छः कोस दूर बड़दा नामक गांव है वहां पर सब पहुंचे। वहां उन्हें मात्र छाछ मिली। सबके पैर तो थक गये थे मगर उनका आशा एवं उत्साह नहीं थका था। आशा पैरों को नया बल देती जाती थी। उस दिन कम से कम आचार्यश्री सहित सभी संतों ने 12 कोस यानी 24 मील करीब की यात्रा सम्पूर्ण की।

मनुष्य-स्वभाव का विवेकपूर्ण अध्ययन एवं विश्लेषण करने वाले एक अनुभवी का यह कथन सत्य है कि : 'जिस मनुष्य की वाणी, व्यवहार, चालचलन विजय का विश्वास बंधाने वाले

होते हैं वहीं मनुष्य विजय के विश्वास का प्रचार कर सकता है और स्वयं के प्रारंभ किये हुए कार्यों को पूर्ण करने की क्षमता एवं सामर्थ्य रखता है। जो मनुष्य आत्म-श्रद्धा वाला निश्चयी एवं आशावादी है वह अपना कार्य सफलता मिलने के अटूट विश्वास के साथ प्रारंभ करता है। वह महान आकर्षण शक्ति भी रखता है। शिथिल महत्वाकांक्षा अथवा अपूर्ण उद्योग से कभी भी कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ है। अपनी आशा, श्रद्धा, निश्चय और उद्योग को बल देना चाहिये। अपने कार्य को सिद्ध करने वाली अन्तर-शक्ति को आधार वनाकर ही कार्य संपादन का निश्चय करना चाहिये।

मिट्टी के बर्तनों को पकाव खाने के लिये, सुवर्ण को शुद्ध कुन्दन होने के लिये और धातुओं को आकृति के रूप में आने के लिये अग्नि की आंच में होकर निकलना पड़ता है। इस दृष्टांत अथवा उदाहरण को आधार वनाकर अनेकों विषयों की बातों पर विचार कर सकते हैं। साधु-ज्ञान, आत्म-श्रद्धा वाले और मन को दृढ़ रखने वाले हों तो विचारा हुआ कार्य पूर्ण कर सकते हैं। आधि, व्याधि और उपाधि के दास बने हुए डरपोक साधुओं को बिल्कुल समीप के गांवों को परसने हेतु अच्छे एवं सुविधाजनक जलवायु के दिनों में भी विहार या भ्रमण करते हुए साथ में कोई न कोई मनुष्य रखना पड़ता है जो उनकी मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक निर्बलता का सूचक है।

विशुद्ध संयम के प्रभाव से प्रकृति पर भी अदृश्य असर पड़ता है। कई बार सूर्य की ऊष्णता से संरक्षण प्रदान करने हेतु आकाश में गहरे बादलों का आगमन हो जाता है जिससे तप्त जन-समुदाय शीताल छाया का अनुभव करता है। ठीक इसी तरह कभी दुपहरी (मध्यान्ह के समय) में शीतल वायु का अनुभव होता है और जंगली जानवर भी छुप कर महात्माओं के दर्शन से अपने को धन्य-धन्य (कृतार्थ) मानते हैं। रत्नगर्भा वसुन्धरा श्री तीर्थंकरों के समोवसरण में बाघ, सिंह, बकरे व मैंढ़े एक साथ बैठकर क्रीड़ा करते हैं। उन्हीं तीर्थंकरों के आज्ञानुवर्ती आचार्यों एवं साधु-महात्माओं में उन जितनी न सही कुछ आंशिक शक्ति दृष्टिगोचर हो तो इसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। यह योगनिष्ठ साधुओं की अपार लीला है। दूसरे में प्राचीन समय में सब प्रकार की सुविधा होते हुए भी संयमी मुनिराज विकट श्मशान, सर्प की बांबी (बिल, दर) और सिंह की गुफाओं के पास चातुर्मास करते थे। इन सब शास्त्रीय मर्यादाओं को ताक पर रख कर अपने मनचाहे स्थान पर जहां समस्त सुख-सुविधा उपलब्ध हो वहीं विराजना या विचरना और परिसह कसौटी का अवसर ही न आने देना एक प्रकार से कालदोष की भीरुता ही है।

अध्याय 14 : जन्मभूमि में धर्म जागृति—टौंक चातुर्मास

माण्डलगढ़ से क्रमशः विहार करते हुए कोटा होकर पूज्य श्रीजी टोंक पधारे और संवत् 1961 विक्रमी का चातुर्मास अपनी जन्मभूमि टोंक में किया। यहां धर्म का अत्यन्त उद्योत हुआ। अजमेर से दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी साहिब लोढ़ा आचार्य श्री के दर्शनार्थ टोंक पधारे थे। वे वहां नवाब साहिब से भी भेंट करने को गये। उन्होंने नवाब साहिब के समक्ष आचार्य श्री की अनुपम देव-वाणी एवं उनके अन्य उत्तमोत्तम गुणों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि 'यह रत्न आपकी ही राजधानी में उत्पन्न होने से जैन इतिहास में टोंक का नाम भी स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा।' यह सुन कर नवाब साहिब अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने भी पूज्य श्री की प्रशंसा की।

पूज्य श्री की अपूर्व प्रशंसा सुनकर खान साहिब मोहम्मद युनूस खान पूज्य श्री के पास आने लगे और उनके हृदय पर श्रीजी के उपदेश का इतना प्रभावोत्पादक असर पड़ा की, उन्होंने आजीवन शिकार नहीं खेलने तथा मांस नहीं खाने की प्रतिज्ञा की।

एक गृहस्थ कायस्थ लाला बद्रीलालजी ने अपनी स्त्री विद्यमान होते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया एवं श्रावकों के अन्य व्रतों को भी स्वीकार किया। उन्होंने सामायिक प्रतिक्रमण भी करना शुरू किया और दृढ़ धर्मी जैन बन गये। पूज्य श्री के हंसते-चेहरे से उनका मुख-मण्डल भव्य मालूम होता था। ज्ञान के प्रभाव से आँखें चमकती थी। चेहरे पर माधुर्य, गांभीर्य, भव्यता, सामर्थ्य और दैवी-शक्ति का प्रकाश झलकता था जिससे उनके सामने प्रस्तुत होने वाले मनुष्य पर इच्छानुसार प्रभाव पड़ता था।

सरकारी मैम्बर बाबू दामोदरदासजी साहिब जो कि काठियावाड़ के ब्राह्मण गृहस्थ थे वे श्रीजी के मुखारविन्द की अमृतवाणी सुनकर अत्यन्त हर्षित होते थे। अतः वे समय-समय पर पूज्य श्री के पास आते थे। कितनी ही वार तो वे व्याख्यान के आरंभ में ही उपस्थित होकर पूज्यश्री द्वारा मंद-मंद स्वर से उच्चरित निम्न सवैया वड़ा सिलोक सुनते एवं भाव विभोर हो जाते–

सवैया– वीर हिमाचल से निकसी, गुरु गौतम के श्रुत कुंड ढली है।

मोह महाचल भेद चली, जग की जड़ता सब दूर करी है।

ज्ञान पयोदधि माँहि रली, वहु भग तरंगन से उछली है।

ता शुचि शारद गंग नदी, प्रणमी अंजली निज शीश धरी है।।

जब पूज्यश्री यह स्तुति शुरू करते एवं श्रोता वर्ग उसको झेल कर सामूहिक रूप से गाते, उस समय दामोदरदासजी को बहुत ही रस आता। किसी भी धर्म की निन्दा नहीं करते हुए सर्व-धर्म वालों को सन्तोष देने वाली ग्राह्य पद्धति से पूज्य श्री उपदेश प्रदान करते थे। वे जहां-जहां अपने भक्तों में जाते श्री दामोदरदासजी भी वहीं पहुंच जाते एवं पूज्य श्री जी के मुखारविन्द से धर्म श्रवण करते। इस गृहस्थ ने भी पूज्य श्री के सदुपदेशों से प्रभावित होकर अनेक प्रकार के नियम लिये थे।

एक वैष्णव सज्जन सदालाल जी अग्रवाल ने पूज्य श्री के समीप सम्यकृत्व ग्रहण करके त्याग पच्चक्खाण किये। प्रतिवर्ष संवत्सरी का उपवास करने की प्रतिज्ञा की और जैन-धर्म के पूर्ण श्रद्धावान श्रावक बन गये। उनके जीवनपर्यंत उनमें जैन-धर्म के प्रति वैसी ही धर्म-श्रद्धा बनी रही।

टोंक में लगभग 50 घर तेलियों के हैं जिन्होंने पूज्य श्री के सदुपदेश से चौमासे में घाणी बंद रखने का ठहराव किया था। वे आज तक इस नियम का पालन करते आ रहे हैं।

सांसारिक लोगों में कहावत है कि 'घर इस दुनियां का अन्त है।' मातृभूमि के उपकार अवर्णनीय है। संसार के सब प्राणियों का हित चाहने वाले अपनी जन्मभूमि को किस प्रकार भूल सकते हैं? किसी ने ठीक ही कहा है :

क्या ऐसा नर शून्य हृदय का, इस जग में पाता विश्राम।
जो यह कभी नहीं कहता है, यही हमारा देश-ललाम।।
'मेरी प्यारी जन्मभूमि है', इस विचार से जिसका मन।
नहीं उमंगित हुआ वृथा है, उसका पृथ्वी पर जीवन।।

Breathes there the man, with soul so dead,
Who never to himself hath said,
This is my own, my native land ?

Sir Walter Scott

उपकार का बदला न दे सकने के कारण सांसारिक दृष्टि से कृतघ्न गिने जाने की परवाह वे नहीं रखते थे किन्तु जहां भी उपकार होने की सम्भावना होती थी वहां वे सब से पहले विचरते थे। पूज्य श्री के टोंक चातुर्मास काल में जैनशासन का बहुत प्रकार से उद्योत होने के साथ-साथ यह चातुर्मास अजैन, हिन्दू-मुसलमान एवं राजा-प्रजा को व्याख्यान के निमित्त से परस्पर नजदीक लाने वाला एवं दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करने का हेतु-रूप भी साबित हुआ। धर्म जैसे नाजुक विषय में पृथक्-पृथक् धर्म की प्रजा और राजा द्वारा परस्पर सहानुभूति रखना यह दोनों के कल्याण के लिए आवश्यक है। एक वणिक का युवा-जवान पुत्र, परमार्थ (परोपकार) के रास्ते पर कहां तक प्रयास कर सकता है यह प्रत्यक्ष अनुभव होने से वृद्ध लोगों की मंडली अकसर यह चर्चा किया करती थी कि 'पुरुषों के प्रारब्ध के आगे पत्ता है', उसका प्रत्यक्ष प्रदर्शन पूज्य श्रीलालजी महाराज है। रसिया के शिखर पर अकेले फिरते हुए श्रीलालजी में और इस समय के पूज्य श्रीलालजी में कीड़ी और कुंजर जैसा अन्तर पड़ गया था, इस समय बड़े राजा-महाराजा और नवाब रसिया के शिखर के प्यारे लाल के पैरों में मस्तक झुकाते थे।

जिस व्यक्ति को हजारों-लाखों मनुष्य मस्तक झुकाते हों, वैसा राजपुरुष जब जैन धर्म में दीक्षित एक वणिक-युवा के पैरों की रज अपने मस्तक पर चढ़ाने को अपना सौभाग्य समझे तो समझना चाहिए कि चरित्र की दृढ़ता, वीतरागता एवं ओझपूर्ण वीरवाणी क्या-क्या शक्ति एवं सामर्थ्य अपने भीतर संजोये हुए है।

एक अनुभवी ने सत्य कहा है कि 'श्रद्धा गिरिशृंगों पर परिभ्रमण करती है', इस कारण उसकी दृष्टि-मर्यादा बहुत सुदूरगामी होती है। अन्य मनुष्य जिस वस्तु को देखने में असमर्थ होते हैं

वही वस्तु श्रद्धावान मनुष्य को आसानी से दृष्टिगोचर होती है। जिस कार्य का प्रयत्न करना दूसरों को असंभव प्रतीत होता है उसी कार्य को करने में श्रद्धावान मनुष्य विशेष प्रयत्न करता है। पूज्य श्रीजी ने इसी प्रकार का प्रयत्न अपने स्थाई धैर्य से प्रारंभ करने का निश्चय किया।

हम पहिले कह चुके हैं कि किस प्रकार जावरा के संतों को सम्मलित करने (अपने में मिलाने) की पूज्य श्री की इच्छा थी। पूज्य श्री जब रतलाम पधारे तब अपना यह अभिप्राय वहां प्रकट किया। यह समाचार, जावरा के संतों तथा उनके भक्त श्रावकों को विदित होते ही वे आनंदित हुए, क्योंकि उनकी भी इच्छा थी कि पूज्य श्री की आज्ञा में विचरें। ये संत हुक्मीचंदजी महाराज की ही संप्रदाय के थे किन्तु श्री उदयसागरजी महाराज के समय उनके साथ सहभोजन का व्यवहार आदि बंद करने में आया था जो आज तक कायम था। जब पूज्य श्री रतलाम विराजते थे उस समय उनकी सेवा में जावरा के संतों की ओर से मुनि श्री देवीलालजी उपस्थित हुए। पूज्य श्री के पास यथोचित समाधान का वार्तालाप होने के बाद उनको साधु-सहभोज में शामिल किया गया। उस समय उन संतों की ओर से मुनि श्री देवीलालजी ने कहा, कि भूतकाल में जो हुआ सो हुआ किन्तु भविष्य काल में वैसा न हो इस बात का मैं सब संतों की ओर से विश्वास दिलाता हूँ। उत्तर में आचार्य श्री ने न्यायानुसार फरमाया कि अपने धर्म की सगाई है। अणगार धर्म की मर्यादा में रहने वाले साधुओं को ही मैं मेरे साधु मान सकता हूँ। यदि इस मर्यादा का कोई उल्लंघन करे तो उसके साथ समाचारी के संबंध को भंग करने में मैं तनिक भी संकोच नही करूंगा। इसका कारण यह है कि जिस कर्त्तव्य के लिए कुटुम्वियों और संसार के सम्बन्धों को छोड़ा है उस कर्त्तव्य में अन्तराय करने वालों का साथ और सम्बन्ध त्याज्य है। परस्पर प्रेमपूर्वक वार्तालाप करने से समस्या का समाधान हो गया।

उचित रीति से विचारें तो मालूम होगा कि सहयोग की भी सीमा हो सकती है। शास्त्र की प्रतिष्ठा और चारित्र्य के आदर्श जब तक उज्ज्वल रहें तब तक ही सहयोग संभव रह सकता है। उसकी सीमा का उल्लंघन होते ही असहयोग भी उतना ही आवश्यक है। छाती पर पत्थर बांधकर समुद्र नहीं तैर सकते। किस हेतु न्याय और कौन सी धर्म-नीति साधने से सहकार या असहकार करना पड़ सकता है इसका गंभीरतापूर्वक विचार किये बिना हम सही व्यवहार प्रक्रिया का अनुमान भी नहीं कर सकते। दृढ़ एवं व्यवस्थित शासन के बिना प्रगति संभव नहीं है। जैसे ही किसी कार्य में अव्यवस्था घुसी, अंधा-धुंधी और गड़बड़ बढ़ती ही चली जाती है। विष प्रचारक चेप को रोकने का उत्तम रामबाण उपाय असहकार ही है। समाचारी इस सहकार को नापने का थर्मामीटर यंत्र है।

व्यक्ति शरीर से साधु होने के साथ ही मन से भी साधु हो। मस्तक मुंडाने के साथ ही मन को भी मुंडा हुआ समझे तभी त्याग का शुद्ध आनन्द ले सकते हैं। 'श्वेत कपड़े पहिने है और सफेद दिल कीना नहीं। सत्य कहता हूं मैं यारो! निज धर्म को चिह्ना नहीं।'

जिन्होंने समाज को एकता का सबक सिखाने के लिए संसार त्यागा है उनके स्वयं के दिलों से पृथकता रूपी क्रीड़ा निकल जाये और पूर्ववत् सुख-शान्ति के साथ शासन एकता की विजय पताका फहरे ऐसी स्थिति की पुनर्स्थापना के शुभ समाचारों से किसका हृदय हर्ष से प्रफुल्लित नहीं होगा। किन्तु इस हर्ष को सदैव प्राणवंत रखने के लिए महात्मा गांधी के निम्नांकित वचनामृत मुनिराजों को अपने हृदयपटल पर अमिट रूप से अंकित कर लेने चाहिए। ये वचन ऐसे हैं जिनसे

स्वयं श्री महावीर प्रभु की आज्ञायें प्रतिध्वनित होती हैं 'समाधान कर्ता को बदले या सौदे के रूप में मत समझो। मैत्री यह कोई सौदा नहीं है। यह तो केवल धर्म और प्रेम संबंध है। जो सेवा है *वही* धर्म है और जो धर्म है वही फर्ज है। यदि उस ऋण को नहीं चुकाना है तो पाप के *भागी होइये।* अपने सामने वाले के व्यवहार की जिम्मेवारी उसी पर डालना योग्य है क्योंकि, *जितना विशेष* दबाव डाला जावेगा उतना ही विशेष विरोध और वैर होना संभव है। इसलिये प्रतिपक्षी यानी सामने वाले के वर्ताव की जिम्मेवारी उसके खानदान और कर्त्तव्य का ख्याल करके यह विषय उसी पर छोड़ देने में ही सबसे बड़ी सेवा भरी हुई है। यह आत्म शुद्धि का मार्ग है। यह तपश्चर्या-आत्मयज्ञ है।'

पूज्य श्री फरमाते थे कि, जैसे जहाज का निरापद संचालन उसके योग्य कमाण्डर पर, रेलवे ट्रेन के संचालन का आधार ईजन के ब्रेक पर, और घड़ी के उचित संचालन का आधार उसकी मुख्य कमानी पर निर्भर है उसी प्रकार मुनि जीवन का आधार शुद्ध चरित्र पर निर्भर है। जैसे आकाश में चन्द्र, सूर्य ग्रहादि अपनी नियमित चाल से चल रहे हैं उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप भी नियमानुसार ही साधु जीवन में गतिशील होने चाहिए।

पूज्य श्री सच्चे समय सूचक थे। उन श्रीमान् की गुण-ग्रहण करने की बुद्धि कभी भी किसी के अवगुणों को याद करने का अवकाश ही नहीं देती थी। पूज्य श्री की यह मान्यता थी कि दीर्घ दृष्टि से शान्तिपूर्वक समाधान करके समाज की रक्षा करना यह पहला धर्म है। आवेश के वेग में और पक्षापक्ष रूपी अंधेरे में पड़कर अपना लक्ष्य नहीं चूकना चाहिये। अपने विपक्षी के दोषों (अवगुणों-ऐबों) का प्रदर्शन करना और उसकी निर्बलता के गीत गाते रहना यह सब कुछ विवेकपरक विचारशीलता नहीं है। सांसारिक लोगों की दृष्टि में किसी को गिरा देने की अपेक्षा, वह उस प्रकार की भूलों को पुनः न दोहरावें ऐसा धार्मिक या नैतिक दबाव देना यही बात साधुओं को शोभा देती है और अपने पूर्वजों की महापरिश्रम से रक्षा करके रखी हुई चारित्र-कीर्ति विशेष उज्ज्वल बनाती है।

शुद्ध संयम का पालन तलवार की धार पर चलने के समान है। घोड़े पर चढ़ने वाला पड़ता भी अवश्य है। भोजन बनाने वाला अग्नि में जलता भी है, तैराकी का काम करने वाले को डूबने का डर भी पहले है उसी प्रकार सैन्य में आगे चलने वाले सेनापति को तीर, भाले, बन्दूक, तलवार आदि शस्त्रों के आघात भी सहन करने पड़ते हैं। आगे चलने वाले की हिम्मत, धैर्य एवं बहादुरी पर ही पीछे वालों की विजय निर्भर करती है। आगे चलने वालों की बुद्धि की, पीछे वाले लोगों के हृदय पर परछाई पड़ती है।

आचार्यश्री का जावरा के संतों को शामिल कर लेने का यह कार्य, सभी मुनिवृन्दों की सम्मति एवं सहमति से नहीं हुआ था, इस कारण से संप्रदाय के स्वामी श्री मुन्नालालजी आदि कितने ही मुनिराज इससे अप्रसन्न हुए। इसका कारण यह था कि वे उनको पूरी तौर से प्रायश्चित दिये बिना संघ में सम्मिलित नहीं करना चाहते थे। इससे कई संतों ने पूज्य श्री के इस कार्य को स्वीकार करने से इन्कार किया। किन्तु पूज्य श्री की समय को पहचानने की क्षमता, सबको संतुष्ट रखने की अद्भुत दक्षता और समझाने की अपूर्व योग्यता से सभी को शान्त कर, जावरा वाले संतों के साथ सहभोज आदि का व्यवहार शुरू करा कर संप्रदाय में सब जगह शान्ति स्थापित की। संसार-व्यवहार में फंसा हुआ प्राणी वैसा दृष्टिकोण नहीं अपना सकता है, जैसा एक अपूर्व त्यागी मुनि अपना सकता

है। उनके अलिप्त रहने से वे सामान्य मनुष्यों से ऊपर उठकर ऐसे भी कुछ पदार्थों का अनुभव कर सकते हैं जो सामान्य जन के अनुभव में नहीं आते। प्रकृति के नियमों को स्वयं समझने एवं समझाने को उन्हें पूरा अवकाश मिलता है। वे मात्र स्वयं अपने ही आत्मकल्याण का विचार नहीं करते किन्तु संप्रदाय के सिंहासन पर विराजित आचार्यवर, उसके श्रेय एवं उन्नति के लिए भी प्राणपण से जीतोड़ कई प्रकार प्रयत्न करते रहते हैं। सम्प्रदायाधिपति की जवाबदारी दूसरे सभी संतों की अपेक्षा सदैव विशेष रहती है।

जोधपुर चातुर्मास – संवत् 1962 का चातुर्मास पूज्य श्री ने जोधपुर में किया। जैन जैनेतर, हिन्दू, मुसलमान हजारों की संख्या में धर्म जिज्ञासु सदैव श्रीजी महाराज के वचनामृत का श्रवण कर न सिर्फ मानसिक रूप से संतुष्ट होते थे बल्कि त्याग, प्रत्याख्यान, तपश्चर्या एवं संवर द्वारा आत्म-कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करते थे। कई मांसाहारी लोगों ने मांस भक्षण और मदिरापान का त्याग कर दिया और हजारों पशुओं को अभयदान दिया गया।

जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके श्रीमान् पूज्य श्रीजी महाराज ने प्रथम मेवाड़ भूमि पवित्र की। मार्ग में पड़ने वाले कई ग्रामों में कई धार्मिक उपकार, और काफी मात्रा में त्याग पच्चक्खाण हुए। श्रीजी घाणेराव (मारवाड़ का एक ठिकाना) व सादड़ी की ओर से होते हुए श्रीचारभुजाजी तथा नाथद्वारा पधारे। उस समय कोठारिया के श्रीमान् रावतजी साहिब भी श्रीजी के दर्शनार्थ पधारे थे और उन्होंने पूज्यश्री से अर्ज की कि 'मैंने प्रथम आपके पास जो प्रतिज्ञा की थी उसका मैं यथार्थ पालन कर रहा हूँ।'

अध्याय 15 : रत्नपुरी में रत्नत्रयी की आराधना

कोठारिया नाथद्वारा से लगातार विहार करते हुए पूज्यश्री कुछ समय के लिए रतलाम पधारे। रतलाम श्रीसंघ ने पूज्यश्री से अगला चातुर्मास वहीं करने के लिये अति आग्रहपूर्वक प्रार्थना की, किन्तु वह अस्वीकृत हुई। रतलाम से विहार करके श्रीजी पंचेड़ पधारे। रतलाम संघ के कई अग्रगण्य श्रावक भी दर्शनार्थ पंचेड़ गये और वहां के स्वर्गीय कैप्टिन साहिब** रघुनाथसिंह जी ने पूज्यश्री से अर्ज की कि, 'यदि श्रीमान् रतलाम में चातुर्मास करें तो मैं जीवन-पर्यन्त हिरण का शिकार करने की सौगंध करता हूँ और मेरी सरहद में कोई भी मनुष्य हिरण, खरगोश इत्यादि का शिकार नहीं करे इसका दृढ़ बंदोबस्त करने को तैयार हूं।'

मलवासा के ठाकुर साहिब की ओर से भी मलवासा का जो बड़ा तालाब है, वहाँ पर कोई भी मच्छी न मार सके इस बात का पक्का बन्दोबस्त हमेशा के लिये करने संबंधी आदेश भी तुरंत प्रभाव से जारी किये गये।

इस प्रकार जीव-दया का अत्यन्त उपकारी कार्य सम्पन्न होता जानकर श्रीजी ने रतलाम में चातुर्मास करने की रतलाम श्री संघ की प्रार्थना को स्वीकृति प्रदान कर दी। इससे सब लोगों के संतोष, प्रफुल्लता एवं आनन्द का पारावार नहीं रहा।

रतलाम चातुर्मास : मेवाड़ में से क्रमशः विहार करते हुए श्रीजी महाराज मालवदेश में पधारे और रतलाम के श्रीसंघ की प्रार्थना स्वीकार कर संवत् 1963 विक्रमी का चातुर्मास रतलाम नगर में किया। इससे पहिले जितने चातुर्मास हुए उन सबकी अपेक्षा यह चातुर्मास अत्यन्त उपकारी सिद्ध हुआ। रतलाम श्रीसंघ के बड़े-बड़े बुजुर्ग श्रावकों के मुख से बार-बार इस प्रकार के वाक्य सुनने को मिलते थे कि 'श्रीमान् उदयसागरजी महाराज आदि महापुरुषों के आगमन और उपस्थिति के समान ही इस बार भी लोगों के हृदय पर उग्र प्रभाव तथा उत्कृष्ट उत्साह दृष्टिगोचर होता है।' धर्म, ध्यान, त्याग-प्रत्याख्यान आदि करने के लिए श्रीमान् कदापि किसी को भी आग्रहपूर्वक नहीं कहते थे, उसी प्रकार न किसी को मजबूर करते थे, ऐसी स्थिति में भी उनके उत्तम चरित्र और आत्मिक शक्ति का आकर्षण एवं प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि लोग स्वयं ही त्याग-पच्चक्खाण, धर्मध्यान, जप, तप, स्कंध आदि विशेष उत्साह एवं हार्दिक उमंग के साथ करने लगे। इस समय संवर करणी, धर्म जागृति और ज्ञानवृद्धि इतनी अधिक हुई की उसे पिछले वर्षों से चौगुनी कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

**ये स्वर्गीय ठाकुर साहिब तथा उनके भाई साहिब वर्तमान ठाकुर साहिब श्री चैनसिंहजी साहिब दोनों पूज्यश्री पर इतनी अधिक श्रद्धा एवं प्रेम भाव रखते थे कि उन श्रीमानों के फोटो इस पुस्तक में यहां पर देना उचित होगा। 'पंचेड़' यह ग्राम मार्ग में ही होने के कारण पूज्य श्री का वहां पर समय-समय पर पधारना होता रहता था और श्रीमान् ठाकुर साहिब पूज्य श्री के उपदेश का लाभ उठाकर शांत स्वभाव के हो गये थे। वे पूज्यश्री के दर्शनों का लाभ जिस समय आप रतलाम में आते उस समय भी लिया करते थे।

इसके अलावा चित्त को अपनी ओर आकर्षित करने और लुभाने वाली बात यह थी कि राज्य कर्मचारीगण साधु-महात्माओं के सत्संग का लाभ बहुत कम उठाते थे, किन्तु श्रीमान् के वहाँ विराजने से एवं आपश्री की अनुपम प्रशंसा सुनकर राज्य के बड़े-बड़े पदों पर कार्य करने वाले अमीर, उमराव, वकील इत्यादि पूज्यश्री की सेवा में आने लगे और उनके ऊपर पूज्यश्री का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे सब पूज्यश्री के पूर्ण गुणानुरागी और प्रशंसक बन गये थे।

रतलाम स्टेट के मुख्य दीवान श्रीमान् पी.बाबूराय साहिब, बी.ए.एल.एल.बी. जो कि, उस समय इन्दौर स्टेट में मुख्य कार्यकारी अधिकारी के पद पर सुशोभित हुए थे, उन्होंने पूज्य श्री के सत्संग का बहुत अच्छा लाभ लिया था। पूज्यश्री के विषय में तथा जैन धर्म के मूल सिद्धांतों के विषय में उनको बहुत अच्छी दिलचस्पी जागृत हो गई थी। श्रीमान् दीवान साहिब केवल व्याख्यान में ही नहीं किन्तु मध्याह्न-काल में भी किसी-किसी दिन पूज्य श्री के पास सत्संग हेतु आया करते थे। वे खुद तो प्रेमपूर्वक पूज्यश्री के प्रवचनों का रसास्वादन करते ही थे मगर साथ-साथ अपनी धर्मपत्नी तथा बाल-बच्चों को भी पूज्य श्री का धर्मोपदेश सुनाने के लिए अपने साथ लेकर आते थे। उनकी विमल निर्मल बुद्धि और स्मरण-शक्ति तीव्र होने के कारण थोड़े ही समय में जैन-धर्म के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का उन्होंने उत्तम ज्ञान सम्पादन कर लिया जिसके कारण तत्वज्ञान पर उनकी इतनी अधिक अभिरुचि उत्पन्न हो गई थी कि वे पूज्यश्री के विहार करके जाने के पश्चात् भी (रतलाम से) वे श्रीमान् सर्वसाधारण की सभा के सम्मुख नय, निक्षेप, सप्तभंगी आदि महत्वपूर्ण विषयों पर विचारोत्पादक एवं योग्य भाषण देते थे। ऐसे ही रतलाम स्टेट के चीफ जज साहिब श्रीमान् पण्डित वृजमोहननाथजी बी.ए.एल.एल.बी. भी पूज्यश्री के उपदेश का लाभ उठाते थे।

रतलाम के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मेहताजी श्री तख्तसिंहजी साहिब तो दिन में कई बार पूज्यश्री की सेवा में पधारते थे और अपनी तरफ से पूरी संतुष्टि एवं आश्वस्त हो जाने के बाद चातुर्मास के अन्त में पूज्य श्री के पास से सम्यकत्व रत्न प्राप्त करके दृढ़धर्मी श्रावक बन गये थे। संवत् 1963 की मार्गशीर्ष वदी 1 के दिन, रतलाम से विहार करने के समय श्री जी से उन्होंने इस प्रकार अर्ज की कि 'हुजूर! आज तक मैंने किसी को भी गुरु नहीं किया था, इसका कारण यह है कि जहां तक आत्म-परितोष (आत्मा का समाधान) न हो जाय वहाँ तक गुरु के समान किसी भी व्यक्ति को किस प्रकार स्वीकार कर सकते हैं? आज मैं आपको अन्तःकरण से शुद्ध श्रद्धापूर्वक गुरु के समान स्वीकार करता हूँ।' उस समय से वे श्रीजी के अनन्य भक्त बन गये थे। श्रीजी महाराज से उनका सत्संग होने के पूर्व उनकी श्रद्धा किसी भी सम्प्रदाय पर नहीं थी।

संस्थान 'अमलेठा' के स्वर्गस्थ रा.ब. महाराज रघुनाथसिंहजी तथा पंचेड़ के ठाकुर साहिब केप्टन रघुनाथसिंह जी सदैव पूज्यश्री के व्याख्यान में पधारते थे।

उपरोक्त चातुर्मास में हिन्दू, मुसलमान इत्यादि लोग सहस्रों की संख्या में एकत्रित होकर पूज्यश्री के व्याख्यान का अपूर्व लाभ उठाते थे। 'वोहरा' मुसलमान जाति के भी एक सद्गृहस्थ 'हिफ्जुल्लाजी' कभी-कभी पूज्यश्री के व्याख्यान में आते थे। एक दिन व्याख्यान समाप्त होने के बाद वे खड़े होकर परिषद् (उपस्थित श्रोतागण) के सामने कहने लगे 'आप जैन लोग ऐसे महात्मा पुरुषों के उपदेश सुनने वाले सचमुच भाग्यवान हो, आचार्य महाराज के आज के उपदेश से मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा है वह ऐसा है जो कि, आजीवन स्मरण रहेगा। आज से मैं कभी भी पशु को नहीं

मारूंगा, कभी किसी प्रकार का मांस भक्षण भी नहीं करूंगा, इतना हीं नहीं, किन्तु अपने भाई-बन्धु, इष्ट मित्रों को भी यही मार्ग बतलाऊँगा। मेरे समान वे भी पूज्यश्री के ऐसे अमूल्य उपदेश का लाभ लेते हों तो कितना अच्छा हो।'

यह भाई दूसरे ही दिन अपनी जाति के तीन-चार भाईयों को अपने साथ पूज्यश्री के व्याख्यान में बुला लाये थे। और वे अपने साथ के बैठने-उठने वाले मित्रों को 'अहिंसा-धर्म' का महत्व समझाने को अपना कर्तव्य समझने लग गये थे।

चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्यश्री ने यात्रा की, उस समय जैन व अन्य धर्मो के हजारों मनुष्यों के अलावा पुलिस सुपरिण्टेंडेंट साहिब अपनी पूरी पल्टन के साथ जन-समुदाय के आगे-आगे चल रहे थे। और जैन शासन की प्रभावना करके पूज्यश्री के प्रति अपूर्व श्रद्धा का दिग्दर्शन करा रहे थे।

आचार्य श्री जैसे ही नगर के बाहर पहुँचे, उस समय श्रीमान् दीवान साहिब की ओर से मेहताजी साहिब (पो. सु.) ने सरकारी बाग में विराजने हेतु विनती की जिसे स्वीकार कर महाराज श्री उस रोज अपने संत समुदाय के साथ सरकारी बाग में विराजे। दूसरे दिन सुबह के समय पूज्यश्री विहार करने को रवाना हुए इतने में दीवान साहिब आ पहुँचे एवं पूज्यश्री से प्रार्थना की 'यदि आप एक-दो दिन और विराजें तो बड़ी कृपा हो।' इस पर से पूज्यश्री दो दिन तक सरकारी बाग में और विराजमान रहे। सरकारी बाग में जैन साधुओं के विराजने का यह पहला ही अवसर था। यहां पर गुलाबचक्र के विशाल भवन में पूज्यश्री व्याख्यान देते, राज्य के अधिकांश आफिसर लोग अपने स्टाफ के सहित व्याख्यान का लाभ उठाते थे। इसके सिवाय जैन-जैनेतर सहस्रों की संख्या में उपस्थित होते थे। यह प्रसंग भी रतलाम के इतिहास में प्रथम ही था। श्रीमद्महावीर प्रभु के समवसरण का जो वर्णन श्री उववाई सूत्र में है उसकी कुछ-कुछ झांकी इस समय गुलाबचक्र भवन में होती थी।

श्रीमान् रतलाम दरबार ने उस समय यह बात स्वीकार भी की कि 'पूज्यश्री के पुण्य-प्रताप से ही रतलाम शहर पर प्लेग का जोर नहीं चल सका।'

रतलाम के चातुर्मास में अजमेर निवासी साधुमार्गी जैन संघ के माननीय नेता राय सेठ चांदमलजी साहिब तथा जैन समाज के अन्य अग्रगण्य श्रावक लोग श्रीजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे। वे तथा उसी प्रकार वहाँ रतलाम कांफरेंस हेतु विचार करने एवं पूज्यश्री के दर्शनार्थ एकत्र अन्य गणमान्य सज्जन श्रीमान् दरबारश्री की सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया कि 'रतलाम शहर के आसपास सब स्थानों में प्लेग का बड़ा भारी उपद्रव मंच रहा है किन्तु रतलाम में ऐसे महात्मा के विराजने से रतलाम में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है' यह सुनकर श्रीमान् दरबार श्री ने कहा कि 'रतलाम शहर के अहोभाग्य है कि ऐसे महात्मा का यहां विराजना हुआ है। यहां पर शांति रही यह इन्हीं के पुण्य-प्रताप का फल है। इनके गुरुवर्य श्री उदयचंद्रजी महाराज भी यहां पर कई बार विराजे थे और वे भी अत्युत्तम साधु थे।'

संवत् 1963 के रतलाम के चातुर्मास में पूज्यश्री आदि ठाणा 46 से वहां विराजते थे। उस अवसर पर आषाढ़ शुक्ला चवदस से भादों शुक्ला पंचमी तक तपश्चर्या तथा संवरकरणी निम्नांकित हुई :

सत्रह (17) उपवास का थोक

16	15	13	12	11	10	9	8	7	6	5	4	3	2
2	4	5	9	11	15	71	81	21	29	619	749	1300	2700

एक दिन के अंतर से दो माह तक (एकांतर)
351

दो माह तक दो दो दिन के अंतर से (बेले बेले पारना)
21

तीन तीन दिन के अंतर से दो माह तक (तेले तेले पारना)	धर्म चक्र की तपश्चर्या
11	21

स्कंध (चार पंकी)	स्कंध जमीकन्द के	पोषा कुल
74	41	10686

संवत्सरी के पोषा	तपस्या की पंचरंगी	दया की पंचरंगी
1901	27	4

पूज्यश्री ने 1अट्ठाई, 2 तेला, तथा 1 डेढ महीने तक एकांतर उपवास तथा इसके अन्य कई बार उपवास किये थे। श्रीमान् फूलचन्द्रजी महाराज ने एक साथ 34 उपवास का थोक किया था। 34 के पूर के दिन स्वधर्मी, अन्यधर्मी लोगों ने व्यापार-धंधा बन्द करके यथाशक्ति व्रत, नियमादि किये। कसाईखाने की 44 दुकानें बंद रहीं तथा कसेरा, तेली, कंदोई,, धोवी, रंगरेज इत्यादि का भी व्यापार बन्द रहा। इस धार्मिक उत्सव पर 100 बकरों को अभयदान दिया गया। इस काम में सरकार की ओर से बहुत मदद की गई थी।

इस प्रकार रतलाम के चातुर्मास में जैन-धर्म का वहुत ही उद्योत हुआ।

अध्याय 16 : मेवाड़ और मालवे की सफलतापूर्वक यात्रा

रतलाम से विहार करके श्रीमान् आचार्य श्री बड़ी सादड़ी (मेवाड़) पधारे वहां संवत 1963 पौष कृष्णा 3 के दिन श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज सासांरिक अवस्था के पुत्र* पन्नालालजी तथा रतनलालजी दोनों भाई तथा पन्नालालजी की स्त्री हुलास्यांजी, इस प्रकार एक ही कुटुम्ब के तीन शख्सों में धन-धान्य जमीन जायदाद इत्यादि का दान करके प्रवल-वैराग्य के प्रादुर्भाव एवं सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ दीक्षा स्वीकार की।

उन्हीं के साथ ही एक सादड़ी के खानदानी मेहता कुटुम्ब के घर की सावगणजी नाम की एक श्राविका वहिन ने भी दीक्षा ली थी। एक ही दिन चार दीक्षाएं हुई थीं। उस समय बड़ी सादड़ी में साधु, साध्वी मिलाकर कुल 84 ठाणा विराजते थे। पंजाव के पूज्यश्री श्रीचन्दजी महाराज भी इस सम्मेलन के वक्त वहीं विराजमान थे।

सादड़ी क्षेत्र उस समय एक तीर्थ स्थान के रूप में हो गया था। इस शुभ अवसर पर आवागमन के साधनों की तत्कालीन कठिनाइयों के वावजूद 90 ग्रामों के लगभग पांच सहस्त्र मनुष्य सादड़ी में एकत्रित हुए थे। दीक्षा महोत्सव बहुत ही धूमधाम से अत्यन्त समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ था। राज्य की ओर से हाथी, घोड़े, मियाना, चोबदार, चंवर इत्यादि सब प्रकार की सहायता उपलब्ध की गई थी। इस प्रकार की दीक्षा सादड़ी में इससे पहले कभी भी नहीं हुई थी। यह सब पूज्यश्री के बड़प्पन के कारण ही संभव हो पाया ऐसा कहा जाता है कि बहुत से मुनिराजों के एक जगह एकत्रित हो जाने के कारण आहार-पानी की अंतराय न पड़े इसलिए साधु-साध्वियां कई दिन तक केवल सूखे आटे में जल मिलाकर आहार कर 'चलविहार' कर लेते थे।

बड़ी सादड़ी के ओसवाल समाज में शुरू में फूट एवं वैमनस्य विद्यमान था व चार तड़ें बन गई थीं। किन्तु पूज्यश्री के सदुपदेश से सब पुनः एकत्र हो गये मानों चारों तड़ें एक हो गईं और अनेकता का स्थान एकता ने ले लिया। इसके अलावा इस चिरस्मरणीय अवसर पर स्कंध-त्याग पच्चक्खाण जीवों को अभयदान देने आदि के रूप में इतना अधिक उपकार हुआ कि उसका सविस्तार वर्णन करना सम्भव नहीं है।

बड़ी सादड़ी के श्रीमान् राजराणा साहिब दुलेसिंहजी भी पूज्यश्री के दर्शन तथा उनके अमृत वचनों का पानकर अपने को धन्य-धन्य समझते थे और पूज्यश्री की बहुत ही प्रशंसा करते थे। इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने जीव हत्या न करने तथा प्राणियों की रक्षा करने के विषय के अनेक

---

*भाई रतनलालजी की सगाई हो चुकी थी और विवाह होने की तैयारी थी। ऐसी दशा में भी उन्होंने दीक्षा ले ली। रतनलालजी की उमर थोड़ी होते हुए भी वे अत्यन्त प्रतिभाशाली, धीर,वीर, गंभीर और संस्कारी पुरुष थे, और उनकी ज्ञान शक्ति भी अत्यन्त बढ़ी हुई थी। उनकी व्याख्यान शैली भी काफी प्रशंसनीय थी। कई श्रावकों का ऐसा अनुमान था कि श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय को यह महानुभाव प्रकाशमान करेंगे। उनसे श्रद्धेय आचार्यजी महाराज को भी बड़ी आशायें थीं। किन्तु आयुष्य कर्म की स्थिति न्यून होने के कारण 11 वर्ष तक संयम पालकर, संवत् 1974 विक्रमी के मगसर महीने में वे इस असार संसार को छोड़कर स्वर्ग को सिधार गये।

त्याग पच्चक्खाण किये थे। जो कार्य लाखों, करोड़ों रुपयों से नहीं होता, सैनिक बल तथा तोपों की लड़ाइयों से नहीं होता, जो कार्य अंकुश तथा भय से नहीं हो सकता, ऐसा कठिन और असंभव और अत्यन्त दुष्कर कार्य भी निःस्वार्थी शुद्धसंयमी सन्त के वचनमात्र से सिद्ध हो जाता है। पूज्यश्री के सदुपदेश का ऐसा प्रभाव सभी स्थानों में सफल एवं कारगर सिद्ध हुआ। इस प्रकार की सफलता के लिए आत्म-संयम और चरित्र की शुद्धता की पहली आवश्यकता है।

वड़ी सादड़ी से घूमते-विचरते माघ या फाल्गुन मास में पूज्यश्री 19 ठाणा सहित रामपुरा (होल्कर) स्टेट पधारे। उस समय जावरा के संत श्री बड़े जवाहिरलालजी, श्री हीरालालजी, श्री खूबचन्दजी, श्री चौथमलजी आदि भी आचार्य श्री की आज्ञानुसार चलते हुए उनके ठहरने के स्थान में जितने समय तक उनको (धार्मिक नियम से) रहना योग्य था याने कल्पता था वहां तक ठहरे थे। जावरा के उपरोक्त संतों ने उस समय श्रीमान् आचार्य महोदय के गुणानुवाद करते हुए कई स्तवन, लावनी, भजन आदि बनाये थे जिनमें से कईयों को मौखिक रूप से याद करके श्रावक लोग आज भी गाते हैं।

इस अवसर पर श्रीमान् दीवान खुमानसिंहजी साहिव ने दशहरे के दिन जो प्रतिवर्ष इनके यहां पाडे का वध होता था वह हमेशा के लिए पूज्यश्री के सदुपदेश से बन्द कर दिया और इस वावत राजकीय आदेश भी जारी कर दिया था।

राजवहादुर कोठारी हीराचन्दजी साहिव ने भी पूज्यश्री की बहुत ही सेवा भक्ति की थी। इसके अलावा अनेक व्रत, पच्चक्खाण तथा जीवों को अभय दान आदि उपकार के कार्य भी हुए। अनेकों मुसलमान भाईयों एवं अन्य मांसाहारी लोगों ने मास भक्षण तथा मदिरा पान सदैव के लिये बन्द करने की कसम ली।

द्रव्य, क्षेत्र काल के अनुसार सदुपदेश देकर पूज्यश्री ने अपने धर्म और समाज की अच्छी सेवा करके अनेकों निरीह जीवों को अभयदान दिला कर धर्म की दलाली की। शुद्ध संयम का प्रभाव ही ऐसा है कि वह जहां दृष्टिगत होता है वहीं विजय ध्वजा फहरा जाती है। संत समुदाय का यह कर्त्तव्य है कि वे देखें कि धर्म का उद्योत हो और जीव दया का कार्य प्रगति करे। धर्म में निहित सत्य-ज्ञान का सम्पादन हो एवं मन का मैल धुल कर शंकाओं का समाधान हो जावे जिससे उत्साही युवक धर्म को अपने आचरण में जगह देकर उसकी उपादेयता को सही रूप से प्रकाशित करें।

यहां से विहार कर पूज्यश्री कोटा पधारे। कोटा में रामपुरे वाजार में महारानी साहिवा की कन्याशाला है, वहां पूज्यश्री विराजते थे। उस समय व्याख्यान—प्रवचनों में कोटे के महारावजी साहिव भी पधारे थे। पूज्यश्री की अमृत वाणी श्रवणकर वे वहुत संतुष्ट हुए किन्तु सामायिक व्रत लेकर वैठे हुए कई श्रावक महाराजा साहिव को सम्मान देने के लिए खड़े हुए एवं आसन लगाये। सामायिक किये हुए श्रावकों द्वारा इस तरह का व्यवहार आचार्यश्री ने औचित्यपूर्ण नहीं माना एवं इस वावत अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। जिस दिन पूज्यश्री का व्याख्यान श्रवण किया उसी दिन श्रीमान् महारावजी साहव शिकार खेलने के लिए शहर के वाहर निकले। थोड़ी दूर जाने पर एक मुत्सद्दी (सरदार) ने निवेदन किया कि 'हूजूर! आज तो आपने जैन-धर्मी गुरु का व्याख्यान सुना है। उसको स्मरण कर आपको आज तो शिकार नहीं करना चाहिये।' ये शब्द सुनते ही वन्दूक का मुंह रूमाल से वांधते हुए महारावजी साहिव ने कहा, 'अच्छा चलो! आज शिकार नहीं खेलेंगे।' ऐसा कह कर महाराजा साहिव वगैर शिकार किये राजमहल की ओर लौट गये।

अध्याय 17 : मरुभूमि में कल्पवृक्ष

कोटा से विहार करके रास्ते के क्षेत्रों में अत्यन्त उपकार करते हुए पूज्य श्री नसीराबाद होते हुए ब्यावर पधारे! वहाँ पर अजमेर के श्रावकों की विनती पर संवत् 1964 का चातुर्मास उन्होंने अजमेर में करने का निश्चय किया।

अजमेर (चातुर्मास) संवत् 1956 में श्रीमान् पूज्य श्री नानकरामजी महाराज के सम्प्रदाय के प्रतापी मुनियों का वियोग होने से तथा पूज्य श्री विनयचन्दजी महाराज का प्रवास वृद्धावस्था के कारण जयपुर होने से अजमेर के जैन-समाज में धर्म के विषय में कुछ शिथिलता उत्पन्न हो गई थी, किन्तु आचार्य श्री के पधारने से उसे पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। पूज्य श्री के प्रताप से बहुत से मनुष्यों को धर्म-ध्यान की रुचि उत्पन्न हुई, और बहुतसों की धर्म-रुचि विशेष रूप से दृढ़ हुई। त्याग पच्चक्खाण तथा अत्याधिक स्कंध और तपश्चर्या आदि बहुत ही उपकार हुआ। तदुपरांत श्री जी महाराज के सदुपदेश से श्रावक समाज में रात्रि भोजन बिल्कुल बन्दप्रायः हो गया। बनोरे बगैरह जो रात्रि के समय निकलते थे सब भी रात को निकलना बन्द हो गये।

इस वर्ष के संवत्सरी-पर्व के विषय में एक दिन का मतभेद था। श्रीमान् की गुरु आम्नाय के अनुसार एक दिन आगे संवत्सरी थी जबकि दूसरे सम्प्रदाय की एक पहले पीछे थी लेकिन आचार्य श्री ने सबको सम्मिलित करके दोनों ही दिन अत्यन्त ही धर्म-ध्यान कराया। बहुत से छट्ठे हुए, बहुत सी दया एवं पोषे हुए। किसी प्रकार का भेदभाव या राग द्वेष की वृद्धि नहीं होने दी गई। इतना ही नहीं, किन्तु परंपरा से चली आ रही उनके सम्प्रदाय की रीति के अनुसार संवत्सरी पहिले दिन न करके अगले दिन करने के विषय को लेकर जैन पत्रों में पूज्य श्री के ऊपर कितने ही एक पक्षीय आक्षेप पूर्ण (दोषारोपण) लेख भी प्रकाशित हुए किन्तु सागर के समान गंभीर पूज्य श्री ने तनिक भी खेद न करते हुए उनके द्वारा आरोपित दोषों का प्रतिवाद या विरोध नहीं किया। यह क्षमाभाव की तपश्चर्या अत्यन्त ही कठिन है। समर्थ पुरुषों को क्षमा करना, उपशम (शान्ति) भाव धारण करना, ये उनके समान महान आत्मबली महानुभाव का ही काम है। इसका प्रभाव गुजरात एवं काठियावाड़ के जैन बंधुओं के ऊपर ऐसा पड़ा कि वे श्रीमान् को महान उच्चात्मा के समान मानने लगे। इस चातुर्मास में जोधपुर के भाई शोभाचन्दजी को पूज्य श्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने पूज्य श्री के पास दीक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् रतलाम निवासी श्रीयुत छजमलजी चपलोत के भतीजे तख्तमलजी ने भी अल्पायु में ही प्रबल वैराग्य भाव से श्रीमान् के पास दीक्षा अंगीकार की। उनका दीक्षा-समारोह अजमेर के श्रीसंघ ने बहुत ही उत्साहपूर्वक किया। यह उत्सव अजमेर के 'दौलतबाग' में हुआ था।

अजमेर के चातुर्मास में तारीख 3-11-1907 के दिन श्रीमान् मोरवी नरेश सर वाघजी बहादुर जी.सी.एस.आई. तथा अजमेर के ज्युडिशियल ऑफिसर श्रीमान् खांडेकर साहिब पूज्य श्री के व्याख्यान में पधारे थे। श्रीमान् मोरवी नरेश पूज्य श्री के व्याख्यान से अत्यंत ही प्रसन्न हुए और उन

श्रीमान् ने श्रीजी महाराज से अर्ज की कि जो आप काठियावाड़ की तरफ पधारेंगे तो बहुत ही उपकार होगा। श्रीजी ने उत्तर दिया कि जैसा अवसर होगा करेंगे।

अजमेर का चातुर्मास पूर्ण होने पर श्रीजी महाराज नयानगर (ब्यावर) की ओर पधारे। मार्ग में दोराई मुकाम पर स्वामीजी का श्री मुन्नालालजी महाराज जो कि नयानगर से अजमेर की तरफ पधार रहे थे, से समागम हुआ। वहां पर सांयकाल का प्रतिक्रमण करने के बाद स्वामी श्री मुन्नालाल जी महाराज ने श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब से अर्ज की कि मेरी इच्छा पंजाब की ओर विचरने की है, यदि आप की आज्ञा हो तो मैं उस ओर विचरूं? आचार्य श्री ने फरमाया कि 'आपको जिसमें सुख हो, वैसा करो।'

पूज्यश्री ने मुन्नालालजी महाराज को पंजाब में पांच वर्ष तक विचरने की आज्ञा प्रदान की। श्री मुन्नालालजी महाराज सरल स्वाभावी और सूत्रों के अभ्यास में पूर्ण जानकार व विद्वान थे।

तत्पश्चात् आचार्यश्री मरुभूमि-मारवाड़ को पवित्र करते हुए, अनेक प्रकार उपकार करते हुए वीकानेर के श्रीसंघ की विनती पर वहाँ पधारे और संवत् 1965 का चातुर्मास श्रीजी ने वीकानेर में किया।

वीकानेर (चातुर्मास) –संवत् 1965 का चातुर्मास श्रीजी महाराज ने वीकानेर में किया, इस वर्ष वीकानेर के श्रावकों में अपूर्व उत्साह एवं खुशियाँ छा रही थीं। धार्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए श्रावकों ने अधिक उद्योग किया और वालकों तथा नवयुवकों को जैन-धर्म के सर्वोत्कृष्ट (वहुत ही उत्तम) तत्वज्ञ का लाभ मिलता रहे इस उद्देश्य से वीकानेर के संघ ने एक साधुमार्गी जैन पाठशाला की स्थापना की।*

इस चातुर्मास में तपस्वी मुनि श्री धूलचन्दजी महाराज जो कि पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के शिष्य थे ने 61 उपवास किये थे। इस अवसर पर सैकड़ों, सहस्रों मनुष्य दर्शन के लिए आते थे। उनका आतिथ्य सत्कार वीकानेर संघ की ओर से अच्छी तरह से होता था। श्रावकों ने भी वहुत ही तपश्चर्या और वहुत ही व्रत नियम किये थे। पूज्य श्री के सदुपदेश से जावरा निवासी ओसवाल गृहस्थ श्रीयुत् ताराचन्दजी तथा उनके पुत्र चांदमलजी ने तथा वीकानेर के सुप्रसिद्ध सेठ अगरचन्दजी भैरुदानजी के छोटे भाई की विधवा स्त्री रतनकुंवर वाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ और इन तीनों का एक ही दिन दीक्षा-महोत्सव हुआ। श्रीमान् वीकानेर नरेश ने दीक्षा महोत्सव के लिए अपना हाथी तथा लावजमा (घोड़े, नगारा, निशान आदि अन्य सामान) भेज दिया था। संवत् 1965 मगसर वदी 2 के दिन तीनों को एक ही मुहूर्त में पूज्य श्री ने दीक्षा दी थी।

---

* उपरोक्त पाठशाला एक वर्ष तक श्री संघ ने चलाई। इसके बाद श्रीमान् सेठ भैरुदानजी सेठिया ने अपने खुद के खर्चे से पाठशाला चलाना शुरू किया, उसमें दिनोंदिन उन्नति होती गई और इस समय भी यह पाठशाला बहुत अच्छी तरह से चल रही है। पाठशाला को उपयोग के लिए सेठ भैरुदानजी ने अपना मकान दे रखा है। लगभग 80 विद्यार्थी उससे लाभ उठा रहे हैं सात अध्यापक नियत हैं। लगभग 400 रुपये मासिक का खर्चा है। धार्मिक शिक्षा आवश्यक है। इसके अतिरिक्त हिन्दी, अंग्रेजी और महाजनी हिसाब और लेखनकला आदि विषय सिखाये जाते हैं। कन्याओं को भी व्यावहारिक और धार्मिक शिक्षा मिले इस मतलब से एक कन्याशाला भी उपरोक्त सेठ साहिब की ओर से थोड़े ही समय में स्थापित होने वाली है। बालकों से कुछ भी फीस नहीं ली जाती है। धार्मिक शिक्षा में सामायिक प्रतिक्रमण, अर्थ सहित तथा शास्त्रोपयोगी जैन प्रश्नोत्तर इत्यादि सिखाये जाते हैं।

अध्याय 18 : अजमेर में अपूर्व उत्साह

श्रीजी महाराज कुचेरे विराजते थे तब अजमेर निवासी राय सेठ चांदमलजी साहिब ने अर्ज की कि आगामी फाल्गुन मास में अजमेर मुकाम पर कॉन्फ्रेंस अधिवेशन है, इसलिए समस्त हिन्दुस्तान के अग्रसर स्वधर्मी बांधव वहां पधारेंगे, उस समय आपसे समर्थ धर्माचार्य और धर्मोपदेशक वहां विराजते हों तो बड़ा उपकार होने की संभावना है, ऐसी आग्रह पूर्वक विनती की। उस समय पूज्य श्री का दिल वहां उपस्थित रहने का नहीं था, परन्तु सेठजी के बहुत आग्रह और कितने ही साधुओं की इच्छा को जानकर पूज्यश्री ने अपने साधुओं को कहा जो यह शर्त तुम्हें मंजूर हो तो मैं अजमेर की ओर विचरूं। एक तो साधुमार्गी भाइयों के घर से जब तक अधिवेशन होता रहे किसी से आहार-पानी न लाना और दूसरी शर्त यह है कि, अपने को जोधपुर होकर वहां जाना पड़ेगा इससे लम्बे विहार करने से कदाचित् मेरे पांव में तकलीफ हो जाय तो तुम्हें अपने कंधों पर बिठाकर मुझे अजमेर पहुंचाना पड़ेगा। साधुओं ने दोनों शर्तें स्वीकार की और पूज्य श्री ने सेठजी की विनय मंजूर की।

पूज्य श्री को अपने वचन के लिये 80 कोस का विशेष विहार कर जोधपुर जाना पड़ा, कारण कि, जोधपुर श्रीसंघ ने पूज्यश्री की विनय की थी उस समय उन्हें जोधपुर स्पर्शने (पहुंचने) का वचन पूज्य श्री ने दे दिया था।

वहां से पूज्य श्री जोधपुर पधारे वहां भी फिर राय सेठ चांदमलजी साहिब विनती करने पधारे और क्रमशः पूज्यश्री विहार करते सं. 1966 के चैत्र वदी 2 को अजमेर पधारे। पूज्यश्री अजमेर पधारने वाले हैं ऐसी खबर पहले से ही देश-देशांतरों में फैल गई थी इसलिये बाहर के हजारों श्रावक उनके दर्शनार्थ कॉन्फरेंस के अधिवेशन के समय आये थे और साधु-साध्वी भी वहीं बड़ी संख्या में पधारे थे, इसलिए श्रावक राग वश साधु के निमित्त से आहार-पानी अधिक बनावे, अथवा कुछ दोष लगावें इस डर से महाराज श्री ने जाते ही तेला किया और पारणा करते ही दूसरा तेला किया। थोड़े ही साधु आहार-पानी करते थे। उन्हें भी आज्ञा थी कि, अन्य दर्शनियों के वहां से आहार-पानी बाहर लाया करो। ऐसी तपस्या में भी पूज्य श्री बुलंद आवाज से व्याख्यान फरमाते थे।

उस समय सब मिलाकर करीब 150 साधु अजमेर में विराजमान थे व्याख्यान श्रीमान् लोढ़ाजी की कोठी में होता था और वहां हजारों मनुष्य एकत्रित होते थे। पहले दूसरे साधु बारी-बारी से थोड़े समय तक प्रवचन फरमाते थे। उस समय किसी-किसी साधु के व्याख्यान के समय थोड़ा बहुत हो-हल्ला होता रहता तो पूज्य श्री के पाट पर विराजते ही शीघ्र सर्वत्र शांति हो जाती और सब लोग चुपचाप रह बराबर व्याख्यान सुना करते थे। पूज्य श्री का उपदेश श्रावकों को शूरता पैदा करने वाला होता था जब कहीं कुछ गड़बड़ जैसा प्रसंग उपस्थित होता तो उस समय शांति के लिए पूज्य श्री प्रभु स्तुति या भक्तिरस मय काव्य छेड़ देते थे और लोग उसमें शामिल हो जाते थे। महात्मा गांधीजी की भी यही सलाह है कि संगति का असर बिजली जैसा है गायन अर्थात्

सुरीला वातावरण तत्काल कोमलता और मुलायमपन पैदा करता है।

अहमदाबाद कांग्रेस के समय खादी नगर में निवास करने वालों ने भिन्न-भिन्न मण्डलियों के हृदय को उत्तेजित करने वाले भजन जिन्होंने सुने होंगे वे उन्हें जीवन पर्यन्त याद करेंगे, इतना ही नहीं, परन्तु वह भावना कभी भूलेंगे नहीं।

श्रीमान् मोरवी नरेश तथा श्रीमान् लींबड़ी नरेश की जो कि खास तौर से कॉन्फरेंस के अधिवेशन की शोभा बढ़ाने के लिए आये थे वे भी व्याख्यान में पधारते थे। अजमेर कॉन्फरेंस सं. 1966 के चैत्र वदी 3-4-5 तीन रोज हुई थी।

सं. 1966 के चैत्र वदी 6 के रोज जोधपुर के बीसा ओसवाल श्रीयुत् शोभालालजी दोषी ने पूज्य श्री के पास दीक्षा ली। उस दीक्षा महोत्सव में कॉन्फरेंस में आये हुए हजारों मनुष्य शामिल हुए थे। श्रीमान् मोरवी और लींबड़ी नरेश भी विराजमान थे। दीक्षा देने से पूर्व पूज्य महाराज ने फरमाया कि भाई तुम घर कुटुम्ब इत्यादि त्याग कर मेरे पास दीक्षित होने आये हो परन्तु समय का कार्य महान दुष्कर है। अनुभव हुए विना कितनी ही बातें ध्यान में भी नहीं आती, इसलिए पूर्ण विचारकर यह साहस करो। दूसरी यह वात भी याद रखना कि, जव तक तुम पांच महाव्रत शुद्धतापूर्व पालन करोगे वहीं तक मैं तुम्हारा साथी हूँ। अगर उसमें जरा भी दोष या त्रुटि हुई तो मैं तुम्हारा साथ छोड़ दूंगा। तुम्हारे और मेरे धर्म की ही सगाई है। यों पूज्य श्री ने उनको संयम की दुरूहता का दिग्दर्शन कराया। उसके उत्तर में श्रीयुत् शोभालालजी ने अर्ज की कि, महाराज श्री जब तक मेरी देह में प्राण है तव तक मैं वरावर आपकी और आप मुझे जिसकी नेश्राय में सौपेंगे उन मेरे गुरुदेव की आज्ञा का पालन सच्चे दिल से करता रहूँगा। इस पर पूज्य श्री ने उन्हें विधिपूर्वक दीक्षा दी।

शिष्यों की संख्या वढ़ाने का पूज्य श्री को विलकुल लोभ न था। उन्होंने अपनी नेश्राय का एक भी शिष्य नहीं किया। एकदम मुंडन कर देने की पद्धति के वे विलकुल विरुद्ध थे। वे दीक्षार्थी वंधुओं को अपने पास रखकर शास्त्राभ्यास कराते थे। वैरागी वंधु को अनुभव देते और कसौटी पर कसते थे। वैरागी की मानसिक, शारीरिक और सामुद्रिक चिकित्सा किये वाद ही उन्हें मुनि मार्ग में लेते थे। यह दीक्षा-पद्धति महात्मा गांधी के क्रिया पद्धति की याद ताजा करती है वे कहते थे कि मैं अकस्मात् आ खड़े रहने वाले व्यक्ति को पूर्ण स्वयं-सेवक के रूप में दाखिल नहीं करता। ऐसा स्वयं सेवक मदद करने के वदले अड़चन पैदा करने वाला भी सावित हो जाता है। यह अवसर एक अनुभव में आता है कि युद्ध स्थल में खड़े हुए अनुभवी सैनिक की कार्यकुशलता एक अनुभवहीन नये अशिक्षित नये सैनिक की अपेक्षा कई गुना अधिक होगी। ऐसा सैनिक कई वार एक क्षण भर में ही समस्त सेना के अनुशासन में गड़वड़ी पैदा करने वाला सावित हो सकता है।

इस अवसर पर पूज्य श्री की उदार प्रवृत्ति का सभी श्रावकों को परिचय हो गया था। पूज्यश्री ने उचित प्रायश्चित्त लेकर संभोग किये हुए साधुओं को, योग्य आलोचना करने पर पुनः भूल करने वाले साधुओं को सम्प्रदाय में सम्मिलित किया। रतलाम के वयोवृद्ध संसारी वेष में ही साधु जीवन विताने वाले सेठजी अमरचंदजी पीतलिया और राव सेठ चान्दमलजी रीयां वाले ने इस मामले में पूज्यश्री को उचित सलाह दी थी। पूज्यश्री ने श्रोताओं को समझाया था कि गर्मी का सच्चा ताप और त्याग की प्रकाशमान ज्योति आलोचना से ही प्रकाशित हो जाती है। अनावधानी एवं

आलस्य करने से विद्या दूर होने लगती है और विद्या के कम होने से विवेक भ्रष्ट होता है जिससे आत्मिक उत्कर्ष को अंतराय लगती है।

साधु जीवन को भ्रष्ट और क्षीण करने वाली गलतियाँ जो संयम के आदर्शों के विपरीत और श्रमण संस्कृति की विघातक-विनाशक हों उन्हें दूर करने की जगह उनको पुष्टि देने से तो असह्य अनर्थ उत्पन्न होता है। पुष्टि देने वाले और ऐसे साधनों का सरलीकरण करने वाले श्रावक अपने कर्तव्य पथ से गिर पड़ते और साथ में ऐसे कमजोर साधुओं को भी ले पड़ते हैं। कर्तव्य बुद्धि की लापरवाही, सहृदय एवं हिम्मतवर श्रावकों का शैथिल्य एवं ऐसी वातें टाल जाने वाले बेफिक्र श्रावक ऐसे समुदाय को सुधारने का मौका देने की जगह विगाड़ते हैं परिणाम में आत्म जड़ता के पत्थर का सहारा लेने से पत्थर के साथ-साथ आप भी डूबते हैं।

'चलने दो' अपने को क्या करना है, ऐसे मंद विचारों और लापरवाही से श्रमण संस्कृति एवं जैन समाज सड़ जाता है और फिर सड़ी हुई श्रमण एवं समाज व्यवस्था हृदय को खुशी, तृप्ति या पूर्णता न मिलने पर समाज अधोगति में चला जाता है। खेत के अनाज को पूर्ण रूप से फलने देने के लिये आस-पास में उत्पन्न हुए कचरे एवं घासफूस का नाश करना ही चाहिये। समाज को सड़ाने वाले विवेकहीन तत्वों का नाश होना ही चाहिये।

भारत की 'भोली एवं धर्मप्रिय प्रजा साधुओं को ईश्वर का अंश' समझने वाली है। यह दृढ़ता, यह पूज्य भाव प्राचीन समय से प्रचलित है। इस गहन श्रद्धा एवं मान्यता की प्रजा में इतनी गहरी पैठ है कि इसके फलस्वरूप श्रावक लोग समय-समय पर असह्य धार्मिक व्यवहार के बारे में आँख-मूंद लेने को भी धार्मिक श्रद्धा समझा जाता है। जयपुर में ऐसे दृष्टान्त प्रत्यक्ष देखकर लेखक स्वयं घबड़ा जाता है।

भारत अत्यन्त श्रद्धालु, धर्म-प्रेमी एवं आस्तिक देश है। उसमें भी सब जातियों में सर्वाधिक सहिष्णु वणिक-बंधुओं की डरपोक आस्तिकता तो कई बार आश्चर्य में डाल देती है। प्राचीन समय के साधुओं के शुभ संस्कार जो वंश परम्परा से गर्भित होते आये हैं उन्हीं का यह परिणाम है। ये पवित्र संस्कार जाज्वल्यमान बने रहें ऐसा अपन अंतःकरण पूर्वक या मन से चाहते हैं परन्तु अपनी इस भावना के भोलेपन या अंधेपन की आड़ में इस दैवी-हक के अपात्र श्रमण कई बार एक तरह से समस्त समाज को नीचा दिखाने जैसा काम कर बैठते हैं।

बहुत समय से स्थिर ये संस्कार वर्तमान समय में किस हद तक ग्राह्य हैं ऐसे गहन विचार में पैठने से दिल घबड़ा जाता है परन्तु यह बात तो सत्य है कि यह मान्यता जब प्रारंभ हुई होगी तो सबके चरित्र बहुत ही पवित्र और इस दैवी-हक की पूर्णता सांगोपांग रूप से सिद्ध करने वाले होंगे ऐसा प्राचीन साहित्य विश्वास देता है परन्तु साथ ही साथ उसी साहित्य में यह बात भी मिलती है कि इन हकों का दुरुपयोग करने वालों को असाधारण अपराधी से भी विशेष सजा मिलती थी। एक अज्ञानी मनुष्य और एक सभी कानूनों का ज्ञाता (जानकार) द्वारा एक ही गुनाह करने पर अज्ञानी मनुष्य की अपेक्षा कानून जानने वाले को विशेष सजा मिलती है और वही अधिक तिरस्कृत होता है।

अपने सामाजिक नियमों के अनुसार नहीं चलने वालों के सामने सख्त कदम भरने की आज्ञा है क्योंकि उनके प्रति ढिलाई का बर्ताव दूसरों को ढिलाई बर्तने को प्रेरित करता है। एक दो

को माफी दे देने से दूसरे बाईस जनों को इस अधिकार की खुमारी में समाज में नियम विपरीत आचरण का विष फैलाने तक का अधिकार मिलता है। योग्य को योग्य मान देने से हम अपनी श्रद्धा की सीमा नहीं उलांघते। संयम और साधु-धर्म की बहुमान्यता निभाने में हमको विनय धर्म को अंगीकार करना चाहिये परन्तु उस विनय धर्म का ऐसा अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि उस सम्प्रदाय की चाहे जैसी चाल हो निभा लेना या उसकी बड़ाई करना ही हमारा फर्ज बन जावे। कुपात्र मात्र वेषधारी, चरित्रहीन एवं व्यर्थ में घूमते हुए नामधारियों को कभी इस विनय धर्म का दुरुपयोग करने की इजाजत नहीं देनी चाहिये। सत्य सनातन धर्म जिनमें हो, देव जैसे उच्च सात्विक गुण हों उसे ही यह विनय धर्म रूपी दैवी-हक प्रदान करना चाहिये। साधु-वर्ग और श्रावक-समुदाय अपने-अपने कर्तव्य में अपनी-अपनी जवाबदारी समझ कर समय और धार्मिक सिद्धान्त भाव को सन्मुख रख जीवन सार्थक करेंगे ऐसी लेखक की हार्दिक भावना है।

अध्याय 19 : रजवाड़ों में अहिंसा धर्म का प्रचार

अजमेर से विहार कर राह में अनेक भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हुए संवत् 1966 का चातुर्मास पूज्यश्री ने बड़ी सादड़ी मेवाड़ में किया। वहां जीवदया के महान उपकार हुए। साधुमार्गी जैन कॉन्फरेंस के मेवाड़ प्रान्त के प्रान्तिक सचिव नीमच निवासी श्रीमान् सेठ नथमलजी चोरड़िया ने इन उपकारों का विस्तृत विवरण सांवत्सरिक क्षमापना के साथ छपवाकर जन-जन में वितरित किया था। उस विवरण की खास बात नीचे दी गई हैं जो इस प्रकार हैं –

विशेष आनंद देने वाली खवर यह है कि जिस तरह श्रीमान् मोरवी नेरश सर वाघजी बहादुर जी.सी.आई.ई. तथा श्रीमान् लींबड़ी नरेश श्री दौलतसिंह जी बहादुर श्री जिनप्रणीत अहिंसा धर्म की अत्यंत प्रेम एवं स्नेह से सेवा करते थे। और साधु महात्माओं के आने के समय धर्मोपदेश सुनने के लिए प्रवचन में पधार कर सभा को सुशोभित करते थे उसी तरह यहां श्रीमान् बड़ी सादड़ी राजराणा साहिब श्री दुलेसिंहजी जिनकी पीढ़ी दर पीढ़ी इस धर्म की रक्षा करती आई है पूज्यश्रीजी महाराज की असर करने वाली अमृत तुल्य वाणी वर्षा से तृप्त होकर अपने राज्य में निम्नानुसार जीव दया का प्रबंध किया है।

1. नवरात्रि में जो आठ भैंसे तथा 10 बकरों का वध होता था वह हमेशा के लिए बंद किया गया।

पाडों का विवरण – हिंगलाज माता को पाडा 1, पैडेड में पाडा 1, गाजन देवी पाडा 1, लक्ष्मीपुर में पाडा 1, बरदेवरा कुजूं में पाडा 2, उदपुरा फाचर में पाडा दो यों कुल पाडे आठ।

बकरों का विवरण – पालाखेड़ी में बकरे 4, बागला के खेड़े में बकरा 1, रणावतों के खेड़े में बकरे 3, भैतरड़ी में बकरा 1 और बरिया खड़ी में 1 यों बकरे कुल 10।

कुल जानवर अठारह का वध प्रतिवर्ष होता था वह बन्द कर दिया गया।

(2) कसाई खाना बंद, (3) तालाब में मच्छी मारना बन्द, (4) कस्बे में अगते मंजूर।

श्रीमान् रावराणा साहिब की ओर से कसाई खाना बंद करने और तालाब में मच्छी मारने की मनाई करने के आदेशों के अलावा ठाकुर सरदारसिंहजी ने शिकार करने तथा मांस भक्षण करने का हमेशा के लिये त्याग कर दिया। ठाकुर दलेलसिंहजी ने अपनी जागीर के गावों में जो पाडे प्रतिवर्ष में मारे जाते थे वे बंद कर दिये तथा कितने ही जानवरों के शिकार करने तथा मांस भक्षण करने का त्याग किया। उनके अलावा उनकी रियासत के छड़ीदार, हवालदार, दरोगा इत्यादि 70 व्यक्तियों ने शिकार करना तथा माँस भक्षण करना छोड़ दिया।

कस्बे के समस्त तेलियों ने एक मास में नौ-दिन घानी करना बंद किया। इसी प्रकार कस्बे के समस्त सुथारों, लुहारों, कुम्हारों, कलालों, नाईयों एवं धोबियों ने एक मास में 5 दिन यानी ग्यारस 2, चवदस 2, अमावस 1 हमेशा के लिये अपना-अपना प्रारंभ त्याग कर दिया यानी महिने में पांच दिन का अगता रखना स्वीकार किया।

राजस्थान के ठिकाणेदारों की तरफ से जीव-दया प्रबंध संबंधी पट्टे-परवानों (आदेशों) का विवरण।

ठिकाणा वान्सी–के श्रीमान रावतजी श्री 5 तख्तसिंहजी ने अपने इलाके में श्रावण कार्तिक और वैशाख महीनों में शिकार करने अथवा खुराक के लिये जानवर मारने की मुमानियत की व सनद परवाना नम्बरी 382 भेंट फरमाया।

ठिकाना भदेसर– के श्रीमान् रावजी श्री 5 भोपालसिंह जी ने भी अपने इलाके में उपरोक्त हुक्म निकालकर पट्टा नम्बरी 12 भेंट फरमाया।

ठिकाना बोरड़ा–के श्रीमान् रावतजी साहिब श्री 5 नाहरसिंहजी की तरफ से इस चातुर्मास में कसाईखाना वन्द करवा दिया एवं वाहर वालों को कसाईखाने हेतु मवेशी वेचना बन्द करने का हुक्म जारी किया गया।

ठिकाना लूणदा–के श्रीगान् रावतजी साहिव श्री 5 जवानसिंहजी की तरफ से चातुर्मास में कसाईखाना वंद करने का आदेश दिया गया। साथ ही बाहर वालों को मवेशी वेचना वंद किया गया एवं ग्यारस और अमावस को शिकार वंदी के आदेशों का पट्टा दस्तखती नं. 33 भेंट फरमाया गया।

ठिकाना साटोला–के श्रीमान् रावजी साहिब श्री 5 दलपतसिंहजी की तरफ से उपरोक्त आदेशों के अलावा श्रावण-कार्तिक और वैशाख में जानवरों का मारना वंद किया गया और पट्टा नं. 33 भेंट किया गया।

ठिकाना वंवोरी–के श्रीमान् ठाकुर साहिब के यहां समस्त कुम्हार वगैरहों में ग्यारस व अमावस को व्यापार बंद करने का निर्णय किया एवं इस चातुर्मास में शिकार भी वंद करने का पट्टा नं. 16 जारी किया गया।

ठिकाना जलोदिया–के ठाकुर साहिब श्री दौलतसिंहजी ने चंद तरह के जानवरों का शिकार करना छोड़ा।

उपरोक्त ठिकाणों के उमरावों ने मेवाड़ क्षेत्र में अपने-अपने इलाकों में जो परोपकार के कार्यों में सहायता दी है उसके लिये उन्हें कोटिशः धन्यवाद एवं प्रभु से प्रार्थना है कि इन नामदारों को दीर्घायु करें व सदैव उनकी ऐसे परोपकारी कार्यों में उदारवृत्ति बनी रहे।

इलाके वड़ी सादड़ी के जागीरदारान की तरफ से जीव-दया के पट्टे परवाने।

1. गांव तलावदे– के ठाकुरसाहिब अमरसिंहजी ने अपने गांव में सदैव के लिये कार्तिक, वैशाख व चार महीने चातुर्मास में शिकार करना या खुराक के लिये जानवरों का वध करना बंद किया व ठाकुर गिरवर सिंहजी ने सदैव के लिये शिकार करना, मांस भक्षण करना व मदिरा पान करना त्याग दिया।

2. पालखेड़ी–के ठाकुर साहिब श्री चतुरसिंहजी ने नवरात्रों में जीवहिंसा बंद की, नदी में मछलियां मारना बंद करने का हुक्म जारी किया। ठाकुर श्री लालसिंहजी व दूसरे लोगों ने शराब पीने व चंद तरह के जानवरों का वध व शिकार करना छोड़ दिया व जो 2 बकरे मारे जाते थे उनको अमर किया एवं उन्हें न मारने का हुक्म दिया।

3. वागेला–के ठाकुर साहिब श्री मोड़सिंहजी ने नवरात्रों मे जीव हिंसा बंद की और वाह वालों को अपने यहां से मवेशी बेचना बंद किया।

4. गुड़ली–के ठाकुर साहिब श्री प्रतापसिंहजी ने अपने गांव में चातुर्मास में जानवरों क शिकार व वध बिल्कुल बंद कर दिया एवं वैशाख, श्रावण तथा कार्तिक तीनों मासों में खुराक वगैर के लिये प्राणी वध बिल्कुल बंद किया।

5. हड़मतिया–के ठा. सरदारसिंहजी ने अपने ग्राम में चातुर्मास में जानवरों का शिका एवं वध बंद किया व चंद तरह के जानवरों का शिकार करना खुद ने भी छोड़ा।

6. हिंगोरिया–के ठाकुर श्री मोड़सिंहजी,

7. करमद्या खेड़ी–के ठाकुर श्री निर्भयसिंहजी,

8. उम्मेदपुरा–के ठाकुर श्री भभूतसिंहजी, इन तीनों नामदारों ने चंद तरह के जानवरों क शिकार बंद किया व औरों को भी अपने साथ शरीक किया।

9. खेड़े–के ठाकुर साहिब श्री करनासिंहजी ने चातुर्मास में जानवर अपने यहां न मारने व चंद तरह के जानवर सदैव के लिए मारना बंद किया।

10. रणावतखेड़े–के तथा आकोला–के ठाकुर साहिब श्री दलेल सिंहजी ने हमेशा के लिये मांस भक्षण व जानवरों का शिकार बंद किया व नवरात्रों में होती आई जानवरों की कुरबानी (हत्या) को समाप्त किया।

11. नहारजी खेड़ा– के ठाकुर लालसिंहजी।

12. खांखरिया खेड़ी–के ठाकुर मोड़सिंहजी ने ताजिंदगी (उम्र भर) अपने यहां चातुर्मास में जानवर कत्ल न होने देने का आदेश जारी किया व चन्द तरह के जानवरों का शिकार व मांस भक्षण बंद किया।

13. कीरतपुरा–के जागीरदार मीर मोहम्मदखांजी ने मय अपने रिश्तेदारों के जानवरों का शिकार छोड़ दिया। इसके अलावा मेवाड़ क्षेत्र के अन्य ग्रामों की तरफ से जीवरक्षा का विवरण

1. सरतला, 2. लीकोड़ा, 3. चैनपुर, 4. चित्तौड़, 5. मूजब जिला (ग्रामवारा), 6. सरदारपुर, 7. करारण, 8. खोड़ीय, 9. खरदेवरा, 10. करजू, 11. उम्मेदपुर, 12. नाँहोली, 13. खेड़ा, 14. कचूंवरा, 15. जंताई, 16. देवरी, 17. सतीराखेड़ा ग्राम 4, 18. भाणूजा, 19. ऊदपुरा, 20. फतेहसिंहजी का खेड़ा, 21. पारड़ा, 22. वरयाखेड़ा, 23. भेचरड़ीनमाणा, 24. फाचर, 25. बादक्या, 26. चांदखेड़ी, 27. तलाइखेड़ा वगैरह कुल 65 ग्रामों में पांच सौ पच्चीस (525) क्षत्रिय, हिन्दू, मुसलमान, जागीरदारों ने पूज्यश्री महाराज के सदुपदेश के प्रभाव से अनेक जाति के परोपकार व दया के कार्य किये, जिससे सहस्त्रों गूंगे गरीब प्राणियों को दुःखजनक मृत्यु के मुख से बचा अभयदान दिया गया है और भी किसान यानी खेत में हल चलाने वाले लोगों ने जंगल में लाय लगाने व बहुत से लोगों ने मदिरा मांस का त्याग किया था।

व्याख्यान में स्वमति एवं अन्यमति हजारों की संख्या में एकत्रित होते थे। महाराज श्री के अमूल्य शास्त्रोक्त वचन श्रवण करने से जो इस साल उपकार हुए हैं वे संक्षिप्त में ऊपर लिखे हैं उसके बाद कन्या को बेचना, बाल-लग्न, आतिशबाजी इत्यादि व्यर्थ के खर्च न करने की कई लोगों ने

प्रतिज्ञा ली है। इस आनन्दोत्सव में शामिल होने तथा महाराज साहिब के अमूल्य व्याख्यानों का लाभ लेने के लिये वाहर गांवों से हजारों श्रावक-श्राविकाएं आए थे।

तपश्चर्या साधुओं में– श्रीमान् पूज्यश्री महाराज के 1 अठाई, 1 पचोला, 10 तेला तथा एकांतर मास 2 की। अन्य मुनिराजों में भी बहुत ही तपश्चर्या हुई थी।

तपश्चर्या श्रावक श्राविकाओं ने

27	27	16	11	10	9	8	7	6	5	4
1	1	1	1	5	4	25	9	31	121	161

3	2	1	दया	संवत्सरी के पौषध	एकान्तर उपवास	एकांतर वेला
266	331	15051	371	551	81	35

स्कंध	पंचरंगी तपश्चर्या की	पंचरंगी दया पौषध की
301	25	17

कानोड़ा निवासी भाई धनराज जी को पूज्यश्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ और सं. 1966 के मगसर वद 1 के रोज सादड़ी स्थान पर श्रीजी महाराज के पास उन्होंने दीक्षा ली उस समय भी वाहर ग्राम के सैकड़ों स्वधर्मी वंधुजन पधारे थे और दीक्षा उत्सव वड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया गया था।

वहां से शेष काल में आचार्यश्री उदयपुर पधारे। वहाँ भी वहुत धर्मोन्नति हुई।

वहां से विहार करते हुए आचार्यश्री 13 ठाणों से गंगापुर होते हुए कपासन पधारे। वहां श्रीजी के चार व्याख्यान हुए। जैन, वैष्णव, मुसलमान इत्यादि सब धर्म वाले मिलाकर प्रायः 2000 मनुष्य व्याख्यान में उपस्थित होते थे, जीव-दया का पूज्यश्री के मुंह से उपदेश सुनते-सुनते वहां के श्री संघ के दिल में दया आई और जीवों को अभयदान देने के लिये एक स्थायी फंड कायम करने का प्रयत्न किया– तुरन्त ही उस राशि में 1000 रुपये एकत्रित हो गए। व्याख्यान में कोठारीजी वलवंतसिंहजी साहिव तथा हाकिम साहिव जोधसिंहजी तथा चित्तौड़ के हाकिम श्री गोविन्दसिंहजी प्रभृति भी पधारते थे।

वड़ी सादड़ी का चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् आचार्य महाराज रतलाम की ओर पधारे। वहां श्री जैन ट्रेनिंग कॉलेज के विद्यार्थी भाई मोहनलाल मोरवी वाले ने उत्कृष्ट वैराग्य भाव से पूज्यश्री के सान्निध्य में दीक्षा ली, जिनका दीक्षा-महोत्सव रतलाम श्री संघ ने अत्यंत ही खुशी और उत्साहपूर्वक किया वहां से विहार कर मार्ग में अगणित उपकार करते हुए पूज्यश्री मालवा मारवाड़ को पावन करते विचरने लगे। कितने ही भव्य जीवों ने वैराग्योत्पन्न होने से दीक्षा ली।

अध्याय 20 : एक दिन में पांच दीक्षा

ब्यावर चातुर्मास — सं. 1967 का चातुर्मास श्रीजी ने ब्यावर (नये शहर) में किया। साधुमार्गी जैनों की बहुत बड़ी संख्या वाला यह शहर पूज्य श्री के प्रति अतुलनीय पूज्य भाव रखता हुआ भी आज तक चातुर्मास से वंचित रहा था, इसलिये ब्यावर के श्रावकों की तरफ से अत्याग्रह-पूर्वक की गई विनय को स्वीकार कर इस वर्ष पूज्य श्री ने ब्यावर पर अनुग्रह किया। पूज्य श्री का चातुर्मास होने वाला है ऐसी बधाई मिलते ही श्री संघ में आनंद मंगल छा गया। यहां के श्रावकों का धर्मानुराग पहिले से ही प्रशंसा योग्य था फिर आचार्य श्री के आने से अत्यंत वृद्धि हुई। धर्म की बहुत उन्नति हुई। तपस्या, दया, पौषध, व्रत, नियम और ज्ञान-ध्यान की धूम मच गई। दूर-दराज प्रान्तों से भी सैकड़ों लोग पूज्य श्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने आने लगे।

पूज्यश्री की इच्छा कुछ निवृत्ति पाकर संस्कृत के अभ्यास करने की थी। इस समय भिनाय वाले पं. बिहारीलाल शर्मा, जिन्होंने कि 8 वर्ष तक काशी में रहकर सिद्धांत कौमुदी आदि का अभ्यास किया था, ब्यावर में ही थे और पूज्य श्री के पास आते भी थे। उन्होंने महाराज श्री को संस्कृत पढ़ाना अत्यंत हर्षपूर्वक स्वीकार किया और महाराज श्री ने भी पूरी जिज्ञासा से संस्कृत-व्याकरण का अभ्यास किया और चार मास तक अभ्यास कर सारस्वत की तीन वृत्ति पूर्ण की। उपरोक्त पंडितजी श्रावण मास में कमेटी के समय लेखक को बीकानेर में मिले थे। वे वहां पूज्यश्री जवाहिरलालजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे और संघ के आग्रह से चातुर्मास के दरम्यान वहीं रहकर महाराज श्री की सेवा की थी। पंडितजी कहते थे कि, पूज्य श्रीलालजी महाराज की जितनी स्मरण शक्ति और बुद्धि तेज थी वैसी उन्होंने दूसरे व्यक्ति में आज तक नहीं देखी। नित्य-नियम, व्याख्यान, शास्त्र पठन, शास्त्र पर्यटन, स्वास्याय प्रतिलेहना, प्रतिक्रमण आदि-आदि प्रवृत्तियों में से उन्हें थोड़ा ही समय बहुत कठिनाई से मिलता था। दूर-दूर के कई श्रावक उनके दर्शनार्थ आते थे। उनके साथ धर्म संबंधी वार्तालाप करने में तथा जिज्ञासु श्रावकों के साथ ज्ञान चर्चा करने में भी कितना ही समय व्यतीत हो जाता था। इतने पर भी उन्होंने चार महीने में सारस्वत-व्याकरण की तीन वृत्तियां संपूर्ण सीख ली, यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। पंडितजी कहते कि उन्हें उनकी दिव्य शक्ति देख बड़ा आश्चर्य होता था और समय-समय पर ऐसा महसूस होता था कि यह कोई मनुष्य हैं या देव हैं। अपने को अभ्यास करने के लिये विशेष समय नहीं मिलने से वे कई बार लाचारी दिखाकर कहते कि 'मेरी आत्मिक उन्नति के मार्ग में अन्तराय मुझे दीवाल की तरह बाधक मालूम होती है' पूज्य श्री के ये वाक्य कहकर पंडितजी उनकी अतीव निराभिमान-वृत्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया करते थे। राजकवि कलापी यथार्थ कहते हैं कि—

कीर्तिने सुख माननार सुखथी कीर्ति भले मेलवो।
कीर्तिमा मुजने न कांइ सुख छे ना लोभ कीर्ति तणो।।
पोलुं छे जगने नकी जगतनी पोलीज कीर्ति दिसे।
पोलूं आ जग शुंधतां जगतनी कीर्ति सहेजे मले।।

इस चातुर्मास के दौरान एक ही तारीख (तिथि) को पांच सज्जनों ने बहुत वैराग्य भाव से पूज्य श्री के पास दीक्षा ली थी। इन पांचों में से चार तो एक ही ग्राम के निकले हुए थे। जोधपुर स्टेट के वालेशर ग्राम के ओसवाल गृहस्थ (1) हंसराजजी, (2) मेघराजजी, (3) किशनलालजी और (4) गुलावचंदजी ये चार तथा ऊंटाला (मेवाड़) निवासी ओसवाल गृहस्थ श्रीयुत पन्नालालजी इस प्रकार कुल पांच वैरागी वंधुओं ने दीक्षा ली जिनका दीक्षा-समारोह अत्यन्त ही उत्साहवर्धक वातावरण में पूर्ण प्रफुल्लता एवं ठाट-वाट के साथ सम्पन्न हुआ। व्यावर संघ ने इस कार्य में अत्यन्त ही उदारता दिखाई थी।

इसके पूर्व पूज्यश्री हुकमीचंदजी महाराज के पास वीकानेर में एक ही तिथि को पांच जनों ने दीक्षा ली थी। उसके वाद एक साथ पांच पुरुषों द्वारा दीक्षा लेने का यह पहला ही अवसर था। इसके अलावा सं. 1967 के कार्तिक शुक्ल 8 के रोज एक दूसरी दीक्षा भी सम्पन्न हुई थी।

पूज्यश्री के प्रवचन में स्वमति एवं अन्यमति सभी लोग वहुत वड़ी संख्या में भाग लेकर धर्म का लाभ लेते थे और उसके फलस्वरूप महान धार्मिक उपकार होते थे। कई लोगों ने हिंसा करने का तथा मांस भक्षण और मदिरा पान करने का त्याग किया था। इसके अलावा सैकड़ों पशुओं को अभयदान मिला था। श्रीयुत घीसुलालजी चौरड़िया तथा श्रीयुत सतीदानजी गोलेच्छा ने जीवरक्षा के कार्य में पूज्य श्री के सदुपदेश के कारण भारी आत्मभोग दिया था।

अध्याय 20 : एक दिन में पांच दीक्षा

व्यावर चातुर्मास — सं. 1967 का चातुर्मास श्रीजी ने व्यावर (नये शहर) में किया। साधुमार्गी जैनों की बहुत बड़ी संख्या वाला यह शहर पूज्य श्री के प्रति अतुलनीय पूज्य भाव रखता हुआ भी आज तक चातुर्मास से वंचित रहा था, इसलिये व्यावर के श्रावकों की तरफ से अत्याग्रह-पूर्वक की गई विनय को स्वीकार कर इस वर्ष पूज्य श्री ने व्यावर पर अनुग्रह किया। पूज्य श्री का चातुर्मास होने वाला है ऐसी बधाई मिलते ही श्री संघ में आनंद मंगल छा गया। यहां के श्रावकों का धर्मानुराग पहिले से ही प्रशंसा योग्य था फिर आचार्य श्री के आने से अत्यंत वृद्धि हुई। धर्म की बहुत उन्नति हुई। तपस्या, दया, पौषध, व्रत, नियम और ज्ञान-ध्यान की धूम मच गई। दूर-दराज प्रान्तों से भी सैकड़ों लोग पूज्य श्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने आने लगे।

पूज्यश्री की इच्छा कुछ निवृत्ति पाकर संस्कृत के अभ्यास करने की थी। इस समय भिनाय वाले पं. बिहारीलाल शर्मा, जिन्होंने कि 8 वर्ष तक काशी में रहकर सिद्धांत कौमुदी आदि का अभ्यास किया था, ब्यावर में ही थे और पूज्य श्री के पास आते भी थे। उन्होंने महाराज श्री को संस्कृत पढ़ाना अत्यंत हर्षपूर्वक स्वीकार किया और महाराज श्री ने भी पूरी जिज्ञासा से संस्कृत-व्याकरण का अभ्यास किया और चार मास तक अभ्यास कर सारस्वत की तीन वृत्ति पूर्ण की। उपरोक्त पंडितजी श्रावण मास में कमेटी के समय लेखक को बीकानेर में मिले थे। वे वहां पूज्यश्री जवाहिरलालजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे और संघ के आग्रह से चातुर्मास के दरम्यान वहीं रहकर महाराज श्री की सेवा की थी। पंडितजी कहते थे कि, पूज्य श्रीलालजी महाराज की जितनी स्मरण शक्ति और बुद्धि तेज थी वैसी उन्होंने दूसरे व्यक्ति में आज तक नहीं देखी। नित्य-नियम, व्याख्यान, शास्त्र पठन, शास्त्र पर्यटन, स्वास्याय प्रतिलेहना, प्रतिक्रमण आदि-आदि प्रवृत्तियों में से उन्हें थोड़ा ही समय बहुत कठिनाई से मिलता था। दूर-दूर के कई श्रावक उनके दर्शनार्थ आते थे। उनके साथ धर्म संबंधी वार्तालाप करने में तथा जिज्ञासु श्रावकों के साथ ज्ञान चर्चा करने में भी कितना ही समय व्यतीत हो जाता था। इतने पर भी उन्होंने चार महीने में सारस्वत-व्याकरण की तीन वृत्तियां संपूर्ण सीख ली, यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। पंडितजी कहते कि उन्हें उनकी दिव्य शक्ति देख बड़ा आश्चर्य होता था और समय-समय पर ऐसा महसूस होता था कि यह कोई मनुष्य हैं या देव हैं। अपने को अभ्यास करने के लिये विशेष समय नहीं मिलने से वे कई बार लाचारी दिखाकर कहते कि 'मेरी आत्मिक उन्नति के मार्ग में अन्तराय मुझे दीवाल की तरह बाधक मालूम होती है' पूज्य श्री के ये वाक्य कहकर पंडितजी उनकी अतीव निराभिमान-वृत्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया करते थे। राजकवि कलापी यथार्थ कहते हैं कि–

कीर्तिने सुख माननार सुखथी कीर्ति भले मेलवो।
कीर्तिमा मुजने न कांइ सुख छे ना लोभ कीर्ति तणो।।
पोलुं छे जगने नकी जगतनी पोलीज कीर्ति दिसे।
पोलूं आ जग शुंधतां जगतनी कीर्ति सहेजे मले।।

इस चातुर्मास के दौरान एक ही तारीख (तिथि) को पांच सज्जनों ने बहुत वैराग्य भाव से पूज्य श्री के पास दीक्षा ली थी। इन पांचों में से चार तो एक ही ग्राम के निकले हुए थे। जोधपुर स्टेट के बालेशर ग्राम के ओसवाल गृहस्थ (1) हंसराजजी, (2) मेघराजजी, (3) किशनलालजी और (4) गुलाबचंदजी ये चार तथा ऊंटाला (मेवाड़) निवासी ओसवाल गृहस्थ श्रीयुत पन्नालालजी इस प्रकार कुल पांच वैरागी बंधुओं ने दीक्षा ली जिनका दीक्षा-समारोह अत्यन्त ही उत्साहवर्धक वातावरण में पूर्ण प्रफुल्लता एवं ठाट-बाट के साथ सम्पन्न हुआ। ब्यावर संघ ने इस कार्य में अत्यन्त ही उदारता दिखाई थी।

इसके पूर्व पूज्यश्री हुकमीचंदजी महाराज के पास बीकानेर में एक ही तिथि को पांच जनों ने दीक्षा ली थी। उसके बाद एक साथ पांच पुरुषों द्वारा दीक्षा लेने का यह पहला ही अवसर था। इसके अलावा सं. 1967 के कार्तिक शुक्ल 8 के रोज एक दूसरी दीक्षा भी सम्पन्न हुई थी।

पूज्यश्री के प्रवचन में स्वमति एवं अन्यमति सभी लोग बहुत बड़ी संख्या में भाग लेकर धर्म का लाभ लेते थे और उसके फलस्वरूप महान धार्मिक उपकार होते थे। कई लोगों ने हिंसा करने का तथा मांस भक्षण और मदिरा पान करने का त्याग किया था। इसके अलावा सैकड़ों पशुओं को अभयदान मिला था। श्रीयुत घीसुलालजी चौरड़िया तथा श्रीयुत सतीदानजी गोलेच्छा ने जीवरक्षा के कार्य में पूज्य श्री के सदुपदेश के कारण भारी आत्मभोग दिया था।

अध्याय 20 : एक दिन में पांच दीक्षा

ब्यावर चातुर्मास — सं. 1967 का चातुर्मास श्रीजी ने ब्यावर (नये शहर) में किया। साधुमार्गी जैनों की बहुत बड़ी संख्या वाला यह शहर पूज्य श्री के प्रति अतुलनीय पूज्य भाव रखता हुआ भी आज तक चातुर्मास से वंचित रहा था, इसलिये ब्यावर के श्रावकों की तरफ से अत्याग्रह-पूर्वक की गई विनय को स्वीकार कर इस वर्ष पूज्य श्री ने ब्यावर पर अनुग्रह किया। पूज्य श्री का चातुर्मास होने वाला है ऐसी वधाई मिलते ही श्री संघ में आनंद मंगल छा गया। यहां के श्रावकों का धर्मानुराग पहिले से ही प्रशंसा योग्य था फिर आचार्य श्री के आने से अत्यंत वृद्धि हुई। धर्म की बहुत उन्नति हुई। तपस्या, दया, पौषध, व्रत, नियम और ज्ञान-ध्यान की धूम मच गई। दूर-दराज प्रान्तों से भी सैकड़ों लोग पूज्य श्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने आने लगे।

पूज्यश्री की इच्छा कुछ निवृत्ति पाकर संस्कृत के अभ्यास करने की थी। इस समय भिनाय वाले पं. बिहारीलाल शर्मा, जिन्होंने कि 8 वर्ष तक काशी में रहकर सिद्धांत कौमुदी आदि का अभ्यास किया था, ब्यावर में ही थे और पूज्य श्री के पास आते भी थे। उन्होंने महाराज श्री को संस्कृत पढ़ाना अत्यंत हर्षपूर्वक स्वीकार किया और महाराज श्री ने भी पूरी जिज्ञासा से संस्कृत-व्याकरण का अभ्यास किया और चार मास तक अभ्यास कर सारस्वत की तीन वृत्ति पूर्ण की। उपरोक्त पंडितजी श्रावण मास में कमेटी के समय लेखक को बीकानेर में मिले थे। वे वहां पूज्यश्री जवाहिरलालजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे और संघ के आग्रह से चातुर्मास के दरम्यान वहीं रहकर महाराज श्री की सेवा की थी। पंडितजी कहते थे कि, पूज्य श्रीलालजी महाराज की जितनी स्मरण शक्ति और बुद्धि तेज थी वैसी उन्होंने दूसरे व्यक्ति में आज तक नहीं देखी। नित्य-नियम, व्याख्यान, शास्त्र पठन, शास्त्र पर्यटन, स्वास्याय प्रतिलेहना, प्रतिक्रमण आदि-आदि प्रवृत्तियों में से उन्हें थोड़ा ही समय बहुत कठिनाई से मिलता था। दूर-दूर के कई श्रावक उनके दर्शनार्थ आते थे। उनके साथ धर्म संबंधी वार्तालाप करने में तथा जिज्ञासु श्रावकों के साथ ज्ञान चर्चा करने में भी कितना ही समय व्यतीत हो जाता था। इतने पर भी उन्होंने चार महीने में सारस्वत-व्याकरण की तीन वृत्तियां संपूर्ण सीख ली, यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। पंडितजी कहते कि उन्हें उनकी दिव्य शक्ति देख बड़ा आश्चर्य होता था और समय-समय पर ऐसा महसूस होता था कि यह कोई मनुष्य हैं या देव हैं। अपने को अभ्यास करने के लिये विशेष समय नहीं मिलने से वे कई बार लाचारी दिखाकर कहते कि 'मेरी आत्मिक उन्नति के मार्ग में अन्तराय मुझे दीवाल की तरह बाधक मालूम होती है' पूज्य श्री के ये वाक्य कहकर पंडितजी उनकी अतीव निराभिमान-वृत्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया करते थे। राजकवि कलापी यथार्थ कहते हैं कि—

कीर्तिने सुख माननार सुखथी कीर्ति भले मेलवो।
कीर्तिमा मुजने न कांइ सुख छे ना लोभ कीर्ति तणो।।
पोलुं छे जगने नकी जगतनी पोलीज कीर्ति दिसे।
पोलूं आ जग शुंधतां जगतनी कीर्ति सहेजे मले।।

अध्याय 21 : सौराष्ट्र की तरफ विहार

काठियावाड़ के केन्द्र स्थान राजकोट शहर के श्री संघ की ओर से काठियावाड़ में पधारने के निमित्त पूज्य श्री से विनती करने के लिये बारह व्रतधारी सुश्रावक सेठ जयचंद भाई गोपालजी* वडाली वाले ब्यावर आये और उन्होंने पूज्य श्री की सेवा में अत्याग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि राजकोट संघ और काठियावाड़ के कई श्रावक आप के दर्शनों के लिए तड़फ रहे हैं, कितने ही उत्तम साधु-मुनिराजों की भी ऐसी इच्छा है कि यदि पूज्य श्री सौराष्ट्र की भूमि को पवित्र करें तो बड़ा उपकार होगा इत्यादि-इत्यादि।

सेठ जयचंद भाई पहले भी एक बार विनती करने के लिये स्वयं आये थे। इसी तरह सं. 1960 में मोरवी निवासी देसाई कनेचंद राजपाल तथा लेखक जौहरी दुर्लभजी त्रिभुवन जी पूज्य श्री के दर्शनार्थ तथा मोरवी कान्फरेंस में पधारने हेतु उदयपुर श्री संघ को आमंत्रण देने के लिए उदयपुर गये थे तब भी पूज्य श्री को काठियावाड़ में पधारने की विनती की थी। इसके अलावा अजमेर कॉन्फरेंस के समय काठियावाड़ से आये हुए कई श्रावकों ने पूज्य श्री की असाधारण प्रभावशाली वक्तृत्व-प्रतिभा से मुग्ध होकर काठियावाड़ को पवित्र करने की पूज्य श्री से बहुत ही आग्रह के साथ प्रार्थना की थी, जिसमें श्रीमान् मोरवी तथा लींवडी के नरेश भी शामिल थे। श्री जी महाराज ने इन अतिआग्रहपूर्वक की गई विनतियों पर कुछ न कुछ आश्वासन रूप ही उत्तर दिए थे इसलिये इस बार श्रीयुत जयचंद भाई की प्रार्थना स्वीकृत हो गई।

ब्यावर का चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आचार्य महाराज निरंतर विहार करते हुए मरु भूमि क्षेत्र पावन करते-करते पाली पधारे। वहां पर फाल्गुण बदी 13 को श्री मनोहरलालजी की दीक्षा बड़े हर्ष उत्साह के साथ सम्पन्न हुई। पाली से सं. 1967 के फाल्गुण शुक्ला 14 के रोज पूज्य श्री ने 20 ठाणों से गुजरात काठियावाड़ की ओर गमन किया। साधु क्षेत्रों का प्रतिबंध एवं मोह त्याग कर दूर-दराज क्षेत्रों में विचरते रहें तो परस्पर विचार विनिमय और ज्ञान की चर्चा से अत्यंत लाभ हो और श्रावक समुदाय को भी भिन्न-भिन्न संप्रदाय के और पृथक्-पृथक् क्षेत्रों के साधुओं की सेवा का और उनके विविध विषयों पर प्रकाश डालने वाले व्याख्यान-श्रवण करने का अमूल्य लाभ मिलता रहे ऐसी श्रीजी महाराज की मान्यता थी इसलिए प्रथम वे स्वयं गुजरात काठियावाड़ में जाकर वहाँ के विद्वान् मुनिराजों को मालवा मारवाड़ की ओर आकर्षित करना चाहते थे और इसीलिए काठियावाड़ में पधारने के बाद उन्होंने कितने ही मुनिराजों को इसके लिए आमंत्रण भी दिया था।

---

*सेठ जयचंद भाई की राजकोट तथा अदन केंप में बड़ी भारी दुकानें थीं। परन्तु केवल धर्म परायण ज़ीवन बिताने के लिए उन्होंने हजारों की आमदनी का प्रत्यक्ष धंधा त्याग दिया और प्रतिभाधारी श्रावक हो ज्ञानाभ्यास, धर्मानुष्ठान, समाजसेवा, प्राणिरक्षा और उत्तम साधु संतों के सत्संग प्रभृति पारमार्थिक प्रवृत्तियों में ही अपना समय, शक्ति और द्रव्य व धन का सद्व्यय करने लगे थे। वि.सं. 1980 के कुछ वर्ष पहिले ही उन्होंने दीक्षा भी ले ली थी और काफी समय तक वे एक उत्तम क्रियावन्त साधु के रूप में काठियावाड़ को पवित्र करते हुए विचरते रहें थे। वे अत्यंत आत्मार्थी और उच्चस्तर के आचारवान् साधु थे। संसारावस्था में प्रत्येक चातुर्मास में पूज्य श्री की सेवा करते थे।

पाली से जल्दी-जल्दी विहार कर और राह के अनेक विकट परिषह सहन करके वे तारीख 13-3-1911 के रोज पालनपुर पधारे। राह विकट होने से साथ के कितने ही साधु मुसाफिरी के कष्टों से घबरा जाते तो उनको पूज्य श्री समयोचित शास्त्र वचनों से कर्तव्य का भान कराते और प्रोत्साहन देते थे। पालनपुर में पूज्य श्री 22 दिन ठहरे थे। दिल्ली दरवाजे के बाहर पालनपुर के भूतपूर्व दीवान मेहताजी श्री पीतांबरदास हाथी भाई की धर्मशाला के अति विशाल मकान में पूज्य श्री विराजते थे, वहां जैन जैनेतर प्रजा ने पूज्य श्री की दिव्य वाणी श्रवण करने का संपूर्ण लाभ उठाया था। सैयद कौम के एक शिक्षित मुसलमान युवक ने मांस भक्षण करने का सर्वथा त्याग किया था तथा दया, पौषध और तपश्चर्या भी बहुत हुई थी।

वर्तमान की विलास-प्रिय प्रजा वैराग्य और भक्ति के नाम से भड़क कर भाग जाती है। वह आमोद-प्रमोद करने में ही अपना जीवन सफल समझती है। ऐसे लोगों को वैराग्य, भक्ति और परोपकार की खुराक देने में पूज्य श्री अनुभवी वैद्य थे।

उन अरुचिकर औषधियों के जरिये असरकारक और उपदेशात्मक सत्य दृष्टांतों, काव्यों, श्लोकों और श्री महावीर की आज्ञाओं को वे ऐसी रीति से कहते कि, बांसुरी पर नाग के समान लोग पूज्यश्री के व्याख्यान में मस्त हो जाते। लोगों को रुचिकर लगने वाले दृष्टांत संकलन करने में वे पूर्ण कुशल थे और उनके माध्यम से कड़वी से कड़वी धार्मिक औषधि भी वे पूर्ण श्रद्धा से कंठ तक उतार देते थे। लाखों श्रोताओं को धर्म की ओर आकर्षित करने की उनमें चुम्बकीय शक्ति विद्यमान थी। गुजरात की पवित्र भूमि पर पदार्पण करते ही महाराज श्री का उचित आतिथ्य पालनपुर श्री संघ ने किया और 'शुभ प्रारंभ' अर्द्ध-सफलता का सूचक है यह सत्य अन्ततः सही साबित हुआ ऐसा आगे पाठक देखेंगे।

शुभ समय में बोये गये भक्ति के इन बीजों ने अपूर्व वट वृक्षों को उत्पन्न किया। पालनपुर आज भी शुद्ध संयमी और आत्मार्थी साधुओं को हृदय से सन्मान देता है। पूज्य श्री श्रीलालजी की पालनपुर के श्रावकों ने जीवन पर्यन्त सेवा की है। पूज्यश्री के चातुर्मास चाहे जितनी दूर-दूर हुए हों, परन्तु पालनपुर के श्रावक वहां जाने से कभी नहीं रुके। उनमें जौहरी मानिकलाल जकशी, जौहरी मोहनलाल रायचंद, जौहरी अमृतलाल रायचंद इत्यादि तो अलग मकान लेकर सपरिवार एक दो माह के लिये पूज्य श्री के सदुपदेश का लाभ लेने को वहां ठहरते थे और अब भी यही रीति-नीति अक्षुण्ण रखकर वर्तमान पूज्यश्री की ओर भी ऐसे ही भावों से कृतज्ञता दर्शाते रहे हैं। यह बात सिर्फ दुनिया को बताने के लिए ही नहीं है परन्तु वस्तुतः यह भक्ति-भाव से प्रत्यक्ष और अनुकरणीय दृष्टांत है।

नवचेतन के लिए 'नवजीवन' निम्नांकित मंत्र सिखाता है।

'स्वधर्म अग्नि के समान है। इसके सहवास से अपने दुर्गुण जल जाते हैं और फिर वह अपने को अपने समान ही तेजस्वी बना देता है आज इस अग्नि पर कुसंस्कार की क्षार ढक गई है तो भी उसकी परवाह न कर उस पर धार्मिक संस्कारों के पंखे से हवा कर क्षार को उड़ाकर उसे पुनः प्रज्वलित करें। उसे प्राणवंत बनावें।'

अध्याय 21 : सौराष्ट्र की तरफ विहार

काठियावाड़ के केन्द्र स्थान राजकोट शहर के श्री संघ की ओर से काठियावाड़ में पधारने के निमित्त पूज्य श्री से विनती करने के लिये बारह व्रतधारी सुश्रावक सेठ जयचंद भाई गोपालजी* वडाली वाले ब्यावर आये और उन्होंने पूज्य श्री की सेवा में अत्याग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि राजकोट संघ और काठियावाड़ के कई श्रावक आप के दर्शनों के लिए तड़फ रहे हैं, कितने ही उत्तम साधु-मुनिराजों की भी ऐसी इच्छा है कि यदि पूज्य श्री सौराष्ट्र की भूमि को पवित्र करें तो बड़ा उपकार होगा इत्यादि-इत्यादि।

सेठ जयचंद भाई पहले भी एक बार विनती करने के लिये स्वयं आये थे। इसी तरह सं. 1960 में मोरवी निवासी देसाई कनेचंद राजपाल तथा लेखक जौहरी दुर्लभजी त्रिभुवन जी पूज्य श्री के दर्शनार्थ तथा मोरवी कान्फरेंस में पधारने हेतु उदयपुर श्री संघ को आमंत्रण देने के लिए उदयपुर गये थे तब भी पूज्य श्री को काठियावाड़ में पधारने की विनती की थी। इसके अलावा अजमेर कॉन्फरेंस के समय काठियावाड़ से आये हुए कई श्रावकों ने पूज्य श्री की असाधारण प्रभावशाली वक्तृत्व-प्रतिभा से मुग्ध होकर काठियावाड़ को पवित्र करने की पूज्य श्री से बहुत ही आग्रह के साथ प्रार्थना की थी, जिसमें श्रीमान् मोरवी तथा लींबडी के नरेश भी शामिल थे। श्री जी महाराज ने इन अतिआग्रहपूर्वक की गई विनतियों पर कुछ न कुछ आश्वासन रूप ही उत्तर दिए थे इसलिये इस बार श्रीयुत जयचंद भाई की प्रार्थना स्वीकृत हो गई।

ब्यावर का चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आचार्य महाराज निरंतर विहार करते हुए मरु भूमि क्षेत्र पावन करते-करते पाली पधारे। वहां पर फाल्गुण बदी 13 को श्री मनोहरलालजी की दीक्षा बड़े हर्ष उत्साह के साथ सम्पन्न हुई। पाली से सं. 1967 के फाल्गुण शुक्ला 14 के रोज पूज्य श्री ने 20 ठाणों से गुजरात काठियावाड़ की ओर गमन किया। साधु क्षेत्रों का प्रतिबंध एवं मोह त्याग कर दूर-दराज क्षेत्रों में विचरते रहें तो परस्पर विचार विनिमय और ज्ञान की चर्चा से अत्यंत लाभ हो और श्रावक समुदाय को भी भिन्न-भिन्न संप्रदाय के और पृथक्-पृथक् क्षेत्रों के साधुओं की सेवा का और उनके विविध विषयों पर प्रकाश डालने वाले व्याख्यान-श्रवण करने का अमूल्य लाभ मिलता रहे ऐसी श्रीजी महाराज की मान्यता थी इसलिए प्रथम वे स्वयं गुजरात काठियावाड़ में जाकर वहाँ के विद्वान् मुनिराजों को मालवा मारवाड़ की ओर आकर्षित करना चाहते थे और इसीलिए काठियावाड़ में पधारने के बाद उन्होंने कितने ही मुनिराजों को इसके लिए आमंत्रण भी दिया था।

---

*सेठ जयचंद भाई की राजकोट तथा अदन कैंप में बड़ी भारी दुकानें थीं। परन्तु केवल धर्म परायण जीवन बिताने के लिए उन्होंने हजारों की आमदनी का प्रत्यक्ष धंधा त्याग दिया और प्रतिभाधारी श्रावक हो ज्ञानाभ्यास, धर्मानुष्ठान, समाजसेवा, प्राणिरक्षा और उत्तम साधु संतों के सत्संग प्रभृति पारमार्थिक प्रवृत्तियों में ही अपना समय, शक्ति और द्रव्य व धन का सद्व्यय करने लगे थे। वि.सं. 1980 के कुछ वर्ष पहिले ही उन्होंने दीक्षा भी ले ली थी और काफी समय तक वे एक उत्तम क्रियावन्त साधु के रूप में काठियावाड़ को पवित्र करते हुए विचरते रहें थे। वे अत्यंत आत्मार्थी और उच्चस्तर के आचारवान् साधु थे। संसारावस्था में प्रत्येक चातुर्मास में पूज्य श्री की सेवा करते थे।

गुरु हैं। उन्होंने लींबड़ी में प्रथम चातुर्मास सं. 1846 में किया था। बाद में लींबड़ी के सुप्रसिद्ध करमसी प्रेमजी उन्हें बहुत आग्रह कर सं. 1851 में फिर लींबड़ी लाये थे और फिर सं. 1858 उन्होंने तृतीय बार लींबड़ी चातुर्मास किया था। इन तीनों चातुर्मासों में श्री दौलतरामजी तथा रामरजी महाराज साथ ही विराजे थे और दौलतरामजी के आग्रह से अजरामरजी महाराज ने भी चातुर्मास जयपुर नगर में किया था और उस समय जयपुर में अपूर्व आनन्द मंगल छा गया था।

लींबड़ी में भी बढ़वान की तरह दूसरे व्याख्यान बंद थे और सब मुनि पूज्य श्री के ख्यान में पधारते थे। नामदार ठाकुर साहिब (लींबड़ी नरेश), दीवान साहिब, अधिकारी समुदाय ादि श्रीजी महाराज के व्याख्यानों का लाभ प्राप्त कर बहुत संतुष्ट हुए थे। सुनने वालों पर श्रीजी राज के सदुपदेशों का ऐसा उत्तम प्रभाव पड़ा कि हमेशा उनके व्याख्यान का लाभ लेने की प्रबल । हर श्रोता के मन में जागृत हुई इस पर माननीय दरबार साहिब ने ऐसा आदेश प्रदान किया कि ां के दिनों में कोर्ट में सुबह का समय होने से अधिकारी वर्ग को व्याख्यान में आने में तकलीफ ो है अतः कोर्ट तथा स्कूल का समय थोड़े दिनों के लिए दोपहर का रखा जाये। उपरोक्त आज्ञा सबको व्याख्यान सुनने का लाभ मिला। जब तक पूज्यश्री लींबड़ी विराजे तब तक कोर्टों एवं लों का समय दोपहर का ही रहा। ठाकुर साहिब, दीवान साहिब तथा अन्य अमलदारों के साथ रोज व्याख्यान में आते थे। नामदार श्री को आपके उपदेश से अत्यन्त संतोष प्राप्त हुआ और ादिन उपदेश सुनने की इच्छा की बढ़ोतरी होती रही। नामदार जी के साथ उनके उत्तराधिकारी रश्री दिग्विजय सिंहजी भी पधारते थे। पूज्यश्री के समय के अनुकूल और सबके मन को भाने ने उपदेशों से सभी तरह के धर्मावलंबी श्रोता बहुत आनंदित होते थे।

व्याख्यान में आर्य-विद्या और अनार्य-विद्या की समानता, गौरक्षा आदि पर विशेष विवेचन, क्षा से देश को होने वाले अनेक लाभ इत्यादि दृष्टांतों के साथ समझाने से तथा विद्यादान और ासे इस लोक और परलोक में प्राप्त होने वाले महान सुखों से सम्बन्ध रखने वाले असरकारक देश से महाराजा साहिब बड़े प्रसन्न हुए और कई मनुष्यों ने अनजान व्यक्तियों के हाथों गाय, भैंस रह नहीं बेचने की प्रतिज्ञा ली। मृत्यु पर परंपरागत रूप से रोने-पीटने की प्रथा को पूज्यश्री ने सक बुरा बताया। इस पर लींबड़ी श्रीसंघ ने आम-सभा बुला कर सर्वसम्मति से परंपरागत ा-पीटने की प्रथा को बहुत हद तक बंद करने वाला ठहराव पास किया था। लींबड़ी नौ दिन ठहर पूज्य श्री चूड़े पधारे। महाराज श्री उत्तमचंद्रजी के विशाल सूत्र ज्ञान और कितनी ही कुंजियों से जी ने लाभ उठाया और अपनी कई शंकाओं का समाधान किया। महाराज श्री उत्तमचंदजी पर य श्री की आदर बुद्धि होने से समय-समय पर ज्ञान प्रश्नोत्तर होते रहते थे।

ता. 13-5-1911 के रोज पूज्य श्री चूड़े पधारे और दरबारी कन्या पाठशाला में ठहरे। मदार ठाकुर साहिब जो कि जालंधर की अपनी कॉन्फरेंस में भाग लेकर वापस पधारे थे वे अपने वान साहिब तथा अन्य अधिकारी वर्ग के साथ पूज्य श्री का व्याख्यान श्रवण करने पधारते थे। ाख्यान में अनेक धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टांत दिये जाने से एवं मानव कर्तव्यों संबंधी अमूल्य देश दिये जाने से लोगों को व्याख्यान श्रवण करने में अत्यन्त रस व आनन्द आता था। गानुरागी होना, वैरभाव त्यागना, पक्षपात न करना, समभाव करना सीखना एवं सब धर्मों पर मान दृष्टि रखना आदि सामयिक उपदेशों से सभी श्रोता बहुत आनन्दित होते थे एवं अधिकाधिक ख्या में उपस्थित होकर लाभान्वित होते थे।

अध्याय 22 : काठियावाड़ के साधु मुनिवृंद द्वारा किया हुआ स्वागत

पालनपुर से विहार कर सिद्धपुर, मेसाणा, वीरमगाँव और लखतर होकर श्रीजी महाराज चैत्र माह में वढ़वाण पधारे। उस समय वढ़वाण शहर में ढोसा वोरा के उपाश्रय में लींवड़ी सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मुनि श्री उत्तमचंदजी महाराज ठाणा 5, सुंदर वोरा के उपाश्रय में मुनि श्री मोहनलालजी लक्ष्मीचंदजी ठाणा 7 तथा दरियापुरी उपाश्रय में मुनि श्री अमीचंदजी ठाणा 5 कुल मिलाकर 17 मुनिराज ठहरे हुए थे। ये सव मुनिराज पूज्य श्री के व्याख्यान में आते थे। सुनने वालों में देरावासी, श्रावक, गिराशिया, ब्राह्मण आदि सव जाति और सव धर्म के लोग भाग लेते थे। अजमेर के सुप्रसिद्ध करोड़पति सेठ गाढ़मलजी लोढ़ा तथा श्रीयुत् वाड़ीलाल मोतीलाल शाह इत्यादि यहां पूज्य श्री के दर्शन के लिए पधारे थे। जव पूज्य श्री पालनपुर विराज रहे थे तब राजकोट से सेठ जयचंद गोपालजी इत्यादि श्रावक पूज्यश्री को राजकोट की तरफ पधारने की विनय करने आये थे और चातुर्मास राजकोट का ही मंजूर हुआ था।

बढवान से पूज्यश्री को राजकोट जाने की जल्दी थी, परन्तु श्रीमान् पण्डित प्रवर मुनि श्री उत्तमचंदजी महाराज के अधिक आग्रह से श्रीजी महाराज लींबड़ी पधारे। इन दोनों महापुरुषों को इतने अल्प समय में ही एक दूसरे में इतना अधिक धर्म स्नेह-प्रेम हो गया था, कि मानों एक ही सम्प्रदाय के दोनों गुरु भाई हों। इतना ही नहीं लींबड़ी सम्प्रदाय के पूज्य श्री मेघराजजी स्वामी तथा पं. मुनि श्री उत्तमचंदजी स्वामी इत्यादि ने खास तौर पर अग्रसर श्रावकों द्वारा ऐसा प्रबंध कराया कि उस प्रान्त (प्रदेश) में मारवाड़ी मुनि पधारे हैं तो इस सम्प्रदाय के चातुर्मास करने के क्षेत्रों में उन्हें चाहे जिन स्थानों पर चातुर्मास करने की छूट है। काठियावाड़ कच्छ आदि क्षेत्रों में ऐसी रीति प्रचलित है कि किसी ग्राम में किसी एक सम्प्रदाय या धर्म के मुनियों का चातुर्मास हो तो वहाँ दूसरे धर्म या सम्प्रदाय के मुनि चातुर्मास नहीं कर सकते। इतना ही नहीं अपितु श्रावकों को भी उन्होंने यह उपदेश दिया कि इन साधुओं को दूसरी सम्प्रदाय के समझकर उन्हें कोई भेदभाव नहीं रखना चाहिए और सब तरह से उचित सेवा करनी चाहिए। इस प्रकार लींबड़ी सम्प्रदाय के अवसर के जानकर मुनिवृंद ने भेदभाव छोड़कर भाईचारा बढ़ाने का अनुपम और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। शीघ्र ही बढवान में विराज रहे लींबड़ी संघवी सम्प्रदाय के महाराज श्री मोहनलालजी तथा दरियापुरी सम्प्रदाय के महाराज श्री अमीचंदजी ने भी ऐसी ही घोषणा अपने इलाके में कर दी।

बढ़वान से पं. उत्तमचंदजी महाराज आदि लींबड़ी पधारे और उसके दो घंटे बाद ही पूज्यश्री भी लींबड़ी पधारे थे। उस समय लींबड़ी संघ का उत्साह अपूर्व था। पूज्यश्री की अगवानी हेतु श्री उत्तमचंदजी स्वामी आदि कई मुनिराज तथा श्रीसंघ के सैंकड़ों स्त्री-पुरुष स्टेशन तक सामने गए थे।

लींबड़ी हाई स्कूल के बहुत बड़े हाल में पूज्य श्री विराजते थे। वहां पूज्य श्री को पिछले सौ वर्षों में दोनों सम्प्रदायों की विभिन्न गतिविधियों का विवरण जो दौलतरामजी महाराज तथा अजरामरजी महाराज से संबंधित था (जिनका उल्लेख हम पहले गुरुवावली में कर चुके है।) श्री उत्तमचंदजी महाराज ने पढ़ कर सुनाया श्रीजी महाराज ने फरमाया कि पूज्य दौलतरामजी महाराज छठी पीढ़ी में

ावासी, जैन भाइयों के उपरांत दूसरे धर्म के भी संख्याबद्ध सज्जन भी उपस्थित होते थे। यद्यपि जकोट वकील-बेरिस्टरों से भरपूर है ओर बौद्धिक रूप से अग्रणी शहरों की गिनती में है, फिर भी ज्यकर्मचारी एवं अधिकारी वर्ग तथा दूसरे अग्रेसर गृहस्थों, वकीलों एवं बेरिस्टरों व न्यायाधीशों में ायद ही ऐसा कोई निकलेगा कि जिसने पूज्यश्री के व्याख्यान का लाभ न लिया हो। पूज्य श्री रल परन्तु शास्त्रीय पद्धति से ऐसा सचोट उपदेश फरमाते थे कि, मध्य में किसी को कुछ प्रश्न रने की आवश्यकता ही न रहती थी। अनेक शंकाओं का समाधान होता और अनेक प्रश्नों का राकरण होता था।

पूज्य श्री के प्रभाव का डंका समस्त काठियावाड़ में बहुत दूर तक बज चुका था और जकोट काठियावाड़ का केन्द्र स्थान होने से बाहर से आये हुए राज्याधिकारी एवं दरबार, मीर-उमरावों आदि को व्याख्यान श्रवण करने का लाभ मिलता था। नामदार लींबड़ी के ठाकुर ाहिब भी राजकोट पधारे तब व्याख्यान में उपस्थित हुए थे। पूज्य श्री के दर्शनों के लिए बाहर से ाने वाले स्वधर्मी बंधुओं का अतिथि सत्कार करने का खास प्रबंध किया गया था। भिन्न-भिन्न थान उतरने के लिये और भिन्न-भिन्न भोजनालय भोजन के लिये मुकर्रर थे। इसके सिवाय उनको भिन्न-भिन्न श्रावकों की ओर से चाय-पान एवं जलपान द्वारा भी उनका स्वागत किया जाता था। ूज्यश्री के वचनामृतों का श्रवण-पान करने, संतोषकारक आतिथ्य होने और व्याख्यान की धूमधाम था ज्ञानचर्चा की प्रबल प्रसिद्धि होने से आने वाले मन में विचार कर आये हुए दिनों से भी दो-चार दिन सहज ही ज्यादा ठहरते थे। सत्कार के उत्साही कार्यकर्ता भाई श्री चुन्नीलालजी नागजी बोहरा ौर सुप्रसिद्ध आर्टिस्ट (कलाकार) छोटालाल तेजपाल सतत श्रम उठाते रहते थे।

अध्याय 23 : राजकोट का चिरस्मरणीय चातुर्मास

पूज्यश्री रास्ते के विहार में बीमार हो गए थे। पाँव में वायु की व्याधि बहुत बढ़ गई थी परन्तु वे समय-समय पर कहते थे कि 'मुझे चातुर्मास राजकोट करना है यह मेरा निश्चय है बाकी तो केवली गम्य है।' आत्मबल बहुत काम करता है। अष्टावक्र जिनके आठों अंग टेढ़े थे तो भी वे आत्मबल से कितने प्रभावशाली हुए यह सुप्रसिद्ध ही है। आत्मश्रद्धा, आत्मबल के प्रमाण से ही कार्यसिद्ध होता है। यह अनुभव गम्य सत्य है कि भाग्य के भरोसे रहने के बदले हम अपने भाग्य को बदल सकते हैं और आगे क्या होगा उसका निर्णय भी कुछ अंश में हम खुद ही कर सकते हैं। श्रीयुत् मार्डन सत्य का समर्थन करते हुए कहते हैं कि 'शिथिल महत्वाकांक्षी अथवा ढीले-ढाले प्रयत्नों से कभी कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। कार्य को सिद्ध करने वाली शक्ति के साथ-साथ अपना निश्चय भी दृढ़ होना चाहिए।

दूसरे कोई होते तो ऐसे समय विहार की तकलीफ नहीं उठाते 'यहीं द्वारिका' वाली उक्ति चरितार्थ कर लेते, परन्तु राजकोट में व्याप्त जड़वाद को शिथिल करने का प्रकृति का निश्चय था। उस प्रकृति ने पूज्य श्री को राजकोट की ओर प्रयाण कराया। चूड़ा से सुदामड़ा, धाँधलपुर, चोटीला और कुवाडवा होते हुए पूज्यश्री राजकोट पधारे, जिसके छप्पर दूर से ही दृष्टिगत होते थे।

पूज्य श्री राजकोट से चार पांच कोस दूर ही हैं यह बधाई मिलने पर इन मंहगे मेहमान एवं उनके सहयोगी साधुवृंद का आतिथ्य करने के लिए राजकोट में बहुत उत्साह परिलक्षित हो रहा था। राजकोट के हर्ष की प्रतिछाया उनके मुख मण्डल पर भी परिलक्षित होने लगी। राजकोट शहर के ऊपर उस रोज आकाश स्वच्छ था अतः प्रभात के सूर्य की सतरंगी किरणों ने उसे सुनहरी रंग से रंग दिया। किलोलें करते हुए घोंसलों से उड़कर आते हुए पक्षियों ने बधाई दी और लम्बे समय से लगी हुई आशा सफल हुई समझकर श्री संघ सत्कार के लिए प्रस्तुत हुआ। सूर्योदय होते ही जैसे कमल दल प्रफुल्लित होते हैं वैसे ही श्रीजी महाराज के पदार्पण से राजकोट के श्रावकों के हृदय कमल प्रफुल्लित हो गए।

शहर के पास ही वनिक भोजनशाला के मकान में आप ठहरे। सं. 1968 का चातुर्मास पूज्य श्री ने कितने ही संतों के साथ राजकोट में किया। दूसरे मुनिराजों को मूली तथा बोटाद चातुर्मास करने की आज्ञा दी और वहां भेजे। व्याख्यान भोजनशाला में ही होता था और निवास जैन पाठशाला में रखा गया।

महाराज श्री का यह चातुर्मास राजकोट के इतिहास में ही नहीं बल्कि समस्त काठियावाड़ के इतिहास में सुनहरे अक्षरों में अंकित रहेगा। सं. 1968 के चातुर्मास में वर्षा के अभाव में बड़ा दुष्काल पड़ा। प्रारंभ से ही मेघराज की अकृपा देख एवं अकाल की संभावना को दृष्टिगत रखकर दया और परोपकार के विषय पर महाराज श्री ने अपनी अमृत के समान वाणी का अमोघ प्रवाह उपदेश के माध्यम से प्रवाहित किया। महाराज श्री के हर दैनिक व्याख्यान में स्थानकवासी,

देरावासी, जैन भाइयों के उपरांत दूसरे धर्म के भी संख्याबद्ध सज्जन भी उपस्थित होते थे। यद्यपि राजकोट वकील-बेरिस्टरों से भरपूर है ओर बौद्धिक रूप से अग्रणी शहरों की गिनती में है, फिर भी राज्यकर्मचारी एवं अधिकारी वर्ग तथा दूसरे अग्रेसर गृहस्थों, वकीलों एवं बेरिस्टरों व न्यायाधीशों में शायद ही ऐसा कोई निकलेगा कि जिसने पूज्यश्री के व्याख्यान का लाभ न लिया हो। पूज्य श्री सरल परन्तु शास्त्रीय पद्धति से ऐसा सचोट उपदेश फरमाते थे कि, मध्य में किसी को कुछ प्रश्न करने की आवश्यकता ही न रहती थी। अनेक शंकाओं का समाधान होता और अनेक प्रश्नों का निराकरण होता था।

पूज्य श्री के प्रभाव का डंका समस्त काठियावाड़ में बहुत दूर तक बज चुका था और राजकोट काठियावाड़ का केन्द्र स्थान होने से बाहर से आये हुए राज्याधिकारी एवं दरबार, अमीर-उमरावों आदि को व्याख्यान श्रवण करने का लाभ मिलता था। नामदार लींबड़ी के ठाकुर साहिब भी राजकोट पधारे तब व्याख्यान में उपस्थित हुए थे। पूज्य श्री के दर्शनों के लिए बाहर से आने वाले स्वधर्मी बंधुओं का अतिथि सत्कार करने का खास प्रबंध किया गया था। भिन्न-भिन्न स्थान उतरने के लिये और भिन्न-भिन्न भोजनालय भोजन के लिये मुकर्रर थे। इसके सिवाय उनको भिन्न-भिन्न श्रावकों की ओर से चाय-पान एवं जलपान द्वारा भी उनका स्वागत किया जाता था। पूज्यश्री के वचनामृतों का श्रवण-पान करने, संतोषकारक आतिथ्य होने और व्याख्यान की धूमधाम तथा ज्ञानचर्चा की प्रबल प्रसिद्धि होने से आने वाले मन में विचार कर आये हुए दिनों से भी दो-चार दिन सहज ही ज्यादा ठहरते थे। सत्कार के उत्साही कार्यकर्ता भाई श्री चुन्नीलालजी नागजी बोहरा और सुप्रसिद्ध आर्टिस्ट (कलाकार) छोटालाल तेजपाल सतत श्रम उठाते रहते थे।

अध्याय 24 : परोपकारी उपदेश का भारी प्रभाव

गोंडल के भूतपूर्व दीवान साहिब स्वर्गीय खान बहादुर बेजनजी मेहरवानजी भी महाराज के व्याख्यान में पधारे थे, उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक न होने से एक साथ पन्द्रह मिनट भी वे बैठ न सकते थे, तो भी महाराज श्री के व्याख्यान में उन्हें इतना अधिक रस उत्पन्न हुआ कि वे करीब पौन घंटा तक ठहरे और महाराज श्री की दया तथा परोपकार के विषय पर जिसमें 'खासकर दुष्काल पड़ने के डर से उस समय किस तरह दया करनी चाहिए और मनुष्य के साथ कितने अंश तक हर एक मनुष्य को अपना कर्तव्य अदा करना चाहिए' इस विषय पर विवेचन सुनकर तो उन पारसी गृहस्थ की आंखों से अविरल आँसू बहने लग गए।

पूज्य श्री सूत्रों के सिद्धान्तों को आधार बनाकर मनुष्य जन्म के महत्व का बोध कराते थे व यह भी बताते थे कि विशिष्ट समय में की हुई सहायता साधारण समय में की गई सहायता से सहस्रों गुणी विशेष फल देने वाली होती है। इस तथ्य को वे उदाहरण, तर्क एवं दर्शनशास्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित कर ऐसे मार्मिक ढंग से एवं प्रभावोत्पादक शैली में प्रस्तुत करते थे कि उनकी बात बच्चे से बूढ़े तक के आसानी से गले उतर जाती व अपेक्षित प्रभाव डालती थी।

अपने संयम के प्रतिपालने में एवं सम्प्रदाय की मर्यादा में रहते हुए वे उपदेश श्रवण कराते थे। श्रोताओं को उनके कर्तव्य का बोध कराने वाली श्रीजी की कुशल बुद्धि राजकोट जैसे बौद्धिक क्षेत्र में विजय प्राप्त करे यह पूज्य श्री की योग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है। श्री महावीर प्रभु के वचनामृतों को अक्षरशः अनुमोदन देने वाले विद्वान अबूबेन अदम का एक काव्य इस मौके पर पाठकों को अति रस देगा काव्य बड़ा भारी है परन्तु यहां पर उसका थोड़ा सा अनुवाद दिया जा रहा है।

अबूबेन अदम से देवदूत 'यह सत्य है कि मृत्यु लोक ही स्वर्ग लोक का द्वार है। मगर जाना मेरे दूतों ने तुम्हें कभी व्रत या तप करते नहीं देखा, तुमने बड़े-बड़े दान भी न किये, यात्रा करके तुमने देह को सार्थक नहीं किया, प्रभु के मंदिर में भी तुमने कभी पांव नहीं रखा, ऐसे जीवन को क्या मैं क्या मुंह से अपने प्रभु के पास ले जाऊ? नहीं नहीं ऐसा तो कभी नहीं हो सकता।'

'दीनबन्धु-दयालुदेव! दिव्य नयनों से देखो। यों मैंने अपने कल्याणार्थ कोई काम अबूबेन अदम देवदूत से कभी नहीं भी किया हो परन्तु संसार के दुःखी, अज्ञानी और दिल के दुखियों का दुःख दूर करने में मैंने भरसक अपना योग-दान किया है। मैंने व्रत, तप करके भले ही देह दमन नहीं किया हो, परन्तु प्रभो! गरीबों के लिए मैंने अपनी देह सुखादी है, मैं पाप धोनेवाली गंगा मैं नहाया नहीं होऊं परन्तु दीन-गरीबों की मीठी दुआओं से मैंने अपनी आत्मा का मैल जरूर धोया है, मैं पैसे का (धन अन्न-वस्त्र की शक्ति न होने से) दान न किया परन्तु समस्त समाज को अपनी देह दान में दे चुका हूँ। मैंने सिर्फ मंदिर में ही प्रभु को नहीं देखा, परन्तु समस्त विश्व में मैंने प्रभु की तेज-प्रतिमा-मूर्ति को पूजा है। अन्य भक्तों ने पत्थर के पुतले में प्रभु का निवास माना है जबकि मैंने

हर एक मनुष्य को प्रभु के अंश के रूप में देखा है। दुनियां में अनेकों दयानिधि देखे हैं और उनकी सेवा की है। मैंने तथाकथित तीर्थों की तीर्थ यात्रा तो नहीं की परन्तु गरीब-यात्रा, दुःखी-यात्रा, मनुष्य-यात्रा की है, यानी गरीबों की दीनता का, मनुष्य की मनुष्यता का, दुखियों के दुःख का मैंने अहसास एवं साक्षात्कार किया है। भगवान को भजने के बदले मैंने अपने भोले भाइयों का भजन किया है, भक्तों ने तो एक ही भगवान माना होगा, मेंने तो अनेक भगवान माने हैं। मेरी मान्यता है कि प्रत्येक मनुष्य में एक-एक प्रभु प्रतिमा विराजमान है। मनुष्य के हृदय में ही जान्हवी है व्रत, तप की शांति है तीर्थ-यात्रा की महिमा है, और प्रभु के गुण-गौरव का बड़प्पन है एवं माहेश्वर के दान का अनन्त गुणा पुण्य भार है। दूसरों ने पापियों के लिए धिक्कार बरसाया होगा परन्तु वे भी मेरी दया के पात्र बने हैं..... अन्य के आंसू पोंछना ही मेरा धर्म है। सत्य मेरी शक्ति है और सेवा मेरी भक्ति है। क्या फिर भी मैं प्रभु के दरबार में उपस्थिति के योग्य नहीं हूँ।' मेरे भक्त! तेरी सेवा सच्ची सेवा कहा जाता है कि प्रभु ने देवदूत का अपना बाना छोड़कर अपना असली स्वरूप प्रकट कर अबूबेन अदम के सिर पर आशीर्वाद का वरदहस्त रख कर फरमाया कि तेरी भक्ति सच्ची भक्ति है। मेरी प्रतिमा की प्रभु या परमेश्वर के रूप में भक्ति करने की अपेक्षा एक दुखी दीन-हीन अज्ञानी या पापी में मेरे स्वरूप को पहचान उसकी सेवा करना व उसे सन्मार्ग पर लाना मुझे अधिक पसन्द है। गरीब या अनाथों का अनादर मेरा ही अनादर है। उनका सत्कार मेरा सच्चा सत्कार है। मेरा तमाम ऐश्वर्य प्रभु के ऐसे भक्तों को ही समर्पित है।

इस काव्य के विचार भी पूज्य श्री के सदुपदेशों का ही अनुमोदन करते हैं कि जगत में स्व-पर कल्याण का एक भी श्वास लिया हो, दया से एक भी आंसू गिराया हो, तो वही दिन सफल है। आज यदि किसी का भला नहीं किया हो तो प्रायश्चित्त करो और हे जीव! अपनी लापरवाही का बदला देने प्रस्तुत हो। कल यदि गरीब की अथवा समाज की कोई सेवा नाम या दाम के लोभ के बिना की हो तो आज का देना चुकता हो जायगा। जो व्यक्ति अपने पश्चात् कोई दीन-हीन गरीब की सेवा या समाज, स्वधर्मी या मानव मात्र के कल्याण का कोई कार्य न कर पाये अथवा जिसके जीवन से किसी अंधकारमय जीवन को प्रकाश की रेखा न दिखे, जिसके जीवन से किसी प्राणी को संतोष का अहसास नहीं वह जीवन जिया भी ना जिये के समान ही माना जावेगा।

संवत्सरी के दिन पशु-पालन हेतु जीव-दया के मद में अपने जैन भाइयों से रु. पांच हजार की रकम एकत्र की गई थी और राजकोट के नामदार ठाकुर साहिब के सभापतित्व में जो वृहद आम सभा पशु-संकट निवारण निधि के लिए की गई थी उसमें इस रकम का उल्लेख होते ही ना. ठाकुर साहिब ने भी उसी समय रु. 7000 सात हजार की रकम उस निधि में देकर पशु-कल्याण निधि का कार्य प्रारम्भ किया था और सब जाति के नामजद सदस्यों की एक कार्यकारिणी घोषित की थी। ऐसे कठिन समय में अकाल पीड़ित मनुष्यों को मदद करने के साथ-साथ पशुओं की रक्षा करने में भी दूसरों के साथ हमारे जैन भाइयों ने भी आगे होकर भाग लिया था। मारवाड़ से आये पशुपालकों को विशेष सस्ते भाव से अथवा मुफ्त में घास और अनाज देकर उनके जानवरों को जीवित रखने के लिए सम्पूर्ण सहायता की थी। राजकोट के प्रसिद्ध वकील रा.रा. पुरुषोत्तम भाई मावजी ने अकाल के दस महिनों में अपनी वकालत का व्यवसाय त्याग कर महाराज श्री के पास पूर्णरूप से अकाल संबंधी कार्य करने की ही प्रतिज्ञा ली थी। इस अकाल में मनुष्यों एवं पशुओं की सेवार्थ उन्होंने बड़ा श्रेष्ठ कार्य किया था। राजकोट के प्रसिद्ध जैन भाई जैसे रा.रा. जयचंद भाई

गोपालजी (वर्तमान में जयचंद्रजी स्वामी) रा.रा. वेचरदासजी गोपालजी, रा.रा. भाई दास वेचरदास, रा.रा. निहालचंद्र सोमचंद्र, रा.रा. पोपटलाल केवलचंद शाह को साथ लेकर वे उस अकाल कार्य हेतु बम्बई, धरमपुर, रतलाम, इन्दौर, उज्जैन, जावरा, मंदसौर, अजमेर, बीकानेर और उदयपुर इत्यादि स्थानों पर पशु-संकट निवारण के लिए चंदा एकत्र करने गये थे। उस जन सहयोग के यज्ञ में लगभग रुपये 50,000 पचास हजार एकत्रित कर उन्होंने पशुओं का अच्छी तरह बचाव किया था। उपरोक्त सभी सद्-गृहस्थों ने यात्रा-खर्च अपने पास से दिया था और चंदे की रकम में से एक पैसा भी अपने यात्रा खर्च के प्रयोग में नही लिया था। राजकोट में उस समय सेवाधर्म का सिद्धान्त पूज्य श्री ने इतनी श्रेष्ठ एवं प्रभावोत्पादक ढंग से समझाया था कि उनके रूबरू प्रवचन-श्रवणकर्ताओं में इस बात की होड लग गई कि कौन ज्यादा से ज्यादा निस्वार्थ सेवा कर पाता है। उस समय काफी संख्या में पशु बिना मालिक के फिरते थे। पिंजरापोल के अलावा भी शहर के भिन्न-भिन्न स्थानों पर विशेष पशुगृह खोलकर स्वयं सेवकों ने बड़ी कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ सेवा की थी। श्रीमंत हो या सामान्य गृहस्थ सभी ने अपने मान-प्रतिष्ठा अथवा शरीर एवं वस्त्रों की स्वच्छता की परवाह न कर अपने हाथों से बीमार जानवरों को बिठाया। उनके दवाई लगाई और उन्हें पुचकारते एवं हर तरह से उन रुग्ण एवं लावारिस पशुओं की सेवा की।

आज भी यह बात इतनी ही सामयिक है कि सेठ-साहूकार, उच्च पदाधिकारी एवं युवक अपनी मित्र मंडली के साथ मौज-शौक में अपना समय व पैसा बरबाद करने के अथवा कल्बों में जाने या गपशप में अपना समय व्यर्थ बरबाद करने के बजाय अवकाश के समय में सच्चे सेवाधर्म को अपनाने को अपने जीवन का लक्ष्य बनावें। आप उस दृश्य की कल्पना करें जहां एक व्यक्ति कमीज की बाहें चढ़ाकर जानवर का मुंह पकड़े दूसरा व्यक्ति नाल से उसके मुंह में दूध डाले तृतीय व्यक्ति दवाई की शीशी में से दवा निकाल कर अपने हाथ से उसके लगावे और चोथा व्यक्ति अपने रुमाल से उस पशु की घावों पर बैठने वाली मक्खियां उडावे। यह दृश्य दूसरों को सेवाधर्म में लगाने के लिए काफी है। राजकोट 'केटल केम्प' का एक फोटो मिल गया है वह पास के पृष्ठ पर देखें जिसमें सोनी मोहनलाल केशवजी, कंसारा ठाकुर श्री केशवजी आदि स्वयं सेवकों का परिचय मिलेगा।

अकेले राजकोट में ही मानव सेवार्थ एवं पशु रक्षार्थ कार्य के लिए लगभग रुपये 1,25,000 (एक लाख पच्चीस हजार) खर्च हुए थे।

काठियावाड़ में 'छाछ' खाने का रिवाज दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। छाछ बनाने के लिए कई जगह परिवारों में गाय-भैंस रखने की पद्धति प्रचलित है। अगर किसी परिवार में ऐसी व्यवस्था नहीं हो तो 'छाछ' अपने संगे-संबंधी या पड़ोसियों के यहां से लाने का रिवाज भी प्रचलित है। अकाल में 'छाछ' यदि सुलभता से उपलब्ध करा दी जावे तो लोगों को बड़ी राहत महसूस होती है। राजकोट के सोनी मोहनलाल इत्यादि स्वयंसेवकों ने छाछ सुगमता से उपलब्ध कराने का भी उत्तम प्रबंध कर दिया था। बम्बई की एक पारसी बाई ने 'छाछ' कितने ही महिनों तक अपने खर्च से ही उपलब्ध कराने की इच्छा प्रकट की थी, अतएव इस कारण से भी बहुत सी छाछ बनती थी। छाछ बांटने की संस्था की कितनी आवश्यकता थी यह पास का चित्र देखने से ही पाठकों को सहज समझ में आ जावेगी।

तारीख 10.9.1911 के दिन पूज्य श्री के प्रवचन का लाभ लेने के लिए राजकोट के ठाकुर साहिब भी पधारे थे, और डेढ़ घंटे तक पूरी तन्मयता के साथ उन्होंने पूज्य श्री के प्रवचन का श्रवण किया था। उस समय उपस्थित दो से तीन हजार श्रोताओं को पूज्य श्री ने 'मनुष्य के कर्त्तव्य' विषय पर अपना सारगर्भित उद्‌बोधन दिया था। प्रभु-प्रार्थना के पश्चात् उन्होंने फरमाया कि देवता मनुष्य तिर्यच एवं नारकी इन चार गतियों में मनुष्य क्यों विशेष उत्तम है और इन चार गतियों में से मात्र एक मनुष्य की गति ही से क्यों मोक्ष प्राप्त हो सकता है यह बात उन्होंने सविस्तार समझाई। मनुष्य जन्म की दुर्लभता का आभास करवाया एवं यह व्याख्या की कि जब मनुष्य जन्म दस बोलों सहित प्राप्त हो गया है तो इसे किस तरह सफल कर सकते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पांचों यमों के विषय पर महाभारत के शांतिपर्व में से कितने ही उदाहरण देकर मनुष्य के कर्तव्यों में वे किस रीति से गिने गऐ हैं यह स्पष्ट किया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के वर्ण-धर्म पर प्रकाश डालते हुए क्षत्रिय राजाओं का चरित्र कैसा निर्मल होना चाहिए यह भी बताया। उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों के आपसी टकराव व शुद्ध धर्म को मत-मतान्तरों, शाखा प्रशाखाओं व सम्प्रदायवाद के घेरे में बांध कर लोगों में धर्म के प्रति भ्रांति उत्पन्न करने एवं उनमें विष-वमन कर वैर-विरोध को बढ़ावा देने की प्रवृत्तियों की खुलकर निन्दा की एवं जीवन में समता एवं समन्वय प्रतिस्थापना को महत्वपूर्ण बताते हुए मनुष्यों को कर्त्तव्य निष्पादन एवं प्रेमपूर्ण सहयोग की महत्ता को अंगीकार करने का उदाहरण देकर उद्‌बोधन दिया एवं निम्न श्लोक का विवेचन कर तत्व, व्रत, दान और वाणी इन विषयों का विशेष स्पष्टता के साथ विवेचन किया।

शुद्धेः फलं तत्वविचारणंच देवस्य सारं व्रतधारणंच।

वित्तस्य सारं करपात्रदानं, वाचांफलं प्रीतिकरं नराणाम् 11.1.11

गौरक्षा* एवं प्रजा के चरित्र निर्माण की तरफ अधिक लक्ष्य रखने के कारण उन्होंने ठाकुर साहिब की यथायोग्य प्रशंसा कर सब सुनने वालों को जीवरक्षा संबंधी प्रभावोत्पादक उपदेश देकर अपना प्रवचन पूरा किया था। श्रीमान् ठाकुर साहिब राजकोट ने प्रवचन समाप्त होने के बाद ही अपनी जगह छोड़ी। उपस्थित सज्ज्नों ने ठाकुर साहब का उपदेश श्रवणार्थ पधारने का उपकार माना। फिर सब लोग उपरोक्त प्रवचन की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए यथा स्थान प्रस्थान हेतु विसर्जित हो गये।

गोंडल संघाणी संघाड़े की पवित्र पुण्यशाली तपस्विनी महासतीजी जीवीबाई महासती ने मंदवाड़ में आचार्य श्री के श्रीमुख से धर्म सुनने की इच्छा प्रकट की, जिसे श्रीयुत पोपटलाल केवलचंद शाह ने आचार्य श्री की सेवा में निवेदित की, तब पूज्यश्री वहां पधारे परंतु परंपरानुसार उपाश्रय में बैठने में अनिच्छा प्रकट की परन्तु इससे बीमार महासतीजी को मानसिक कष्ट न हो अतएव शास्त्रानुसार दूसरे दरवाजे पर महासतीजी का पाट रखने पर वहीं से आचार्यश्री ने उन्हें साधुधर्म की अपेक्षा से बहुत सरल उपदेश दिया। महासतीजी बहुत गुणवती और सिद्धान्त रस की प्यासी थीं। उन्होंने 'तहेत्ति' कहकर यह उपदेश सिर चढ़ाया। ऐसी महासती वर्तमान समय में होना मुश्किल है। गोंडल संघाड़े के आचार्य श्री जसराजजी महाराज जो उपाश्रय में विराजते थे, वह

---

*राजकोट नरेश जब सिंहासनारूढ़ हुए तब आपने अपने समस्त राज्य में तथा राजकोट सिविल स्टेशन के एजेंट टु दी गवर्नर को लिखकर गोवध हमेशा के लिए बंद कर दिया।

गोपालजी (वर्तमान में जयचंद्रजी स्वामी) रा.रा. बेचरदासजी गोपालजी, रा.रा. भाई दास वेचरदास, रा.रा. निहालचंद्र सोमचंद्र, रा.रा. पोपटलाल केवलचंद शाह को साथ लेकर वे उस अकाल कार्य हेतु बम्बई, धरमपुर, रतलाम, इन्दौर, उज्जैन, जावरा, मंदसौर, अजमेर, बीकानेर और उदयपुर इत्यादि स्थानों पर पशु-संकट निवारण के लिए चंदा एकत्र करने गये थे। उस जन सहयोग के यज्ञ में लगभग रुपये 50,000 पचास हजार एकत्रित कर उन्होंने पशुओं का अच्छी तरह बचाव किया था। उपरोक्त सभी सद्-गृहस्थों ने यात्रा-खर्च अपने पास से दिया था और चंदे की रकम में से एक पैसा भी अपने यात्रा खर्च के प्रयोग में नही लिया था। राजकोट में उस समय सेवाधर्म का सिद्धान्त पूज्य श्री ने इतनी श्रेष्ठ एवं प्रभावोत्पादक ढंग से समझाया था कि उनके रूबरू प्रवचन-श्रवणकर्ताओं में इस बात की होड लग गई कि कौन ज्यादा से ज्यादा निस्वार्थ सेवा कर पाता है। उस समय काफी संख्या में पशु बिना मालिक के फिरते थे। पिंजरापोल के अलावा भी शहर के भिन्न-भिन्न स्थानों पर विशेष पशुगृह खोलकर स्वयं सेवकों ने बड़ी कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ सेवा की थी। श्रीमंत हो या सामान्य गृहस्थ सभी ने अपने मान-प्रतिष्ठा अथवा शरीर एवं वस्त्रों की स्वच्छता की परवाह न कर अपने हाथों से बीमार जानवरों को बिठाया। उनके दवाई लगाई और उन्हें पुचकारते एवं हर तरह से उन रुग्ण एवं लावारिस पशुओं की सेवा की।

आज भी यह बात इतनी ही सामयिक है कि सेठ-साहूकार, उच्च पदाधिकारी एवं युवक अपनी मित्र मंडली के साथ मौज-शौक में अपना समय व पैसा बरबाद करने के अथवा कल्बों में जाने या गपशप में अपना समय व्यर्थ बरबाद करने के बजाय अवकाश के समय में सच्चे सेवाधर्म को अपनाने को अपने जीवन का लक्ष्य बनावें। आप उस दृश्य की कल्पना करें जहां एक व्यक्ति कमीज की बाहें चढ़ाकर जानवर का मुंह पकड़े दूसरा व्यक्ति नाल से उसके मुंह में दूध डाले तृतीय व्यक्ति दवाई की शीशी में से दवा निकाल कर अपने हाथ से उसके लगावे और चोथा व्यक्ति अपने रुमाल से उस पशु की घावों पर बैठने वाली मक्खियां उडावे। यह दृश्य दूसरों को सेवाधर्म में लगाने के लिए काफी है। राजकोट 'केटल केम्प' का एक फोटो मिल गया है वह पास के पृष्ठ पर देखें जिसमें सोनी मोहनलाल केशवजी, कंसारा ठाकुर श्री केशवजी आदि स्वयं सेवकों का परिचय मिलेगा।

अकेले राजकोट में ही मानव सेवार्थ एवं पशु रक्षार्थ कार्य के लिए लगभग रुपये 1,25,000 (एक लाख पच्चीस हजार) खर्च हुए थे।

काठियावाड़ में 'छाछ' खाने का रिवाज दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। छाछ बनाने के लिए कई जगह परिवारों में गाय-भैंस रखने की पद्धति प्रचलित है। अगर किसी परिवार में ऐसी व्यवस्था नहीं हो तो 'छाछ' अपने संगे-संबंधी या पड़ोसियों के यहां से लाने का रिवाज भी प्रचलित है। अकाल में 'छाछ' यदि सुलभता से उपलब्ध करा दी जावे तो लोगों को बड़ी राहत महसूस होती है। राजकोट के सोनी मोहनलाल इत्यादि स्वयंसेवकों ने छाछ सुगमता से उपलब्ध कराने का भी उत्तम प्रबंध कर दिया था। बम्बई की एक पारसी बाई ने 'छाछ' कितने ही महिनों तक अपने खर्च से ही उपलब्ध कराने की इच्छा प्रकट की थी, अतएव इस कारण से भी बहुत सी छाछ बनती थी। छाछ बांटने की संस्था की कितनी आवश्यकता थी यह पास का चित्र देखने से ही पाठकों को सहज समझ में आ जावेगी।

तारीख 10.9.1911 के दिन पूज्य श्री के प्रवचन का लाभ लेने के लिए राजकोट के ठाकुर साहिब भी पधारे थे, और डेढ़ घंटे तक पूरी तन्मयता के साथ उन्होंने पूज्य श्री के प्रवचन का श्रवण किया था। उस समय उपस्थित दो से तीन हजार श्रोताओं को पूज्य श्री ने 'मनुष्य के कर्त्तव्य' विषय पर अपना सारगर्भित उद्‌बोधन दिया था। प्रभु-प्रार्थना के पश्चात् उन्होंने फरमाया कि देवता मनुष्य तिर्यच एवं नारकी इन चार गतियों में मनुष्य क्यों विशेष उत्तम है और इन चार गतियों में से मात्र एक मनुष्य की गति ही से क्यों मोक्ष प्राप्त हो सकता है यह बात उन्होंने सविस्तार समझाई। मनुष्य जन्म की दुर्लभता का आभास करवाया एवं यह व्याख्या की कि जब मनुष्य जन्म दस बोलों सहित प्राप्त हो गया है तो इसे किस तरह सफल कर सकते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पांचों यमों के विषय पर महाभारत के शांतिपर्व में से कितने ही उदाहरण देकर मनुष्य के कर्तव्यों में वे किस रीति से गिने गऐ हैं यह स्पष्ट किया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के वर्ण-धर्म पर प्रकाश डालते हुए क्षत्रिय राजाओं का चरित्र कैसा निर्मल होना चाहिए यह भी बताया। उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों के आपसी टकराव व शुद्ध धर्म को मत-मतान्तरों, शाखा प्रशाखाओं व सम्प्रदायवाद के घेरे में बांध कर लोगों में धर्म के प्रति भ्रांति उत्पन्न करने एवं उनमें विष-वमन कर वैर-विरोध को बढ़ावा देने की प्रवृत्तियों की खुलकर निन्दा की एवं जीवन में समता एवं समन्वय प्रतिस्थापना को महत्वपूर्ण बताते हुए मनुष्यों को कर्त्तव्य निष्पादन एवं प्रेमपूर्ण सहयोग की महत्ता को अंगीकार करने का उदाहरण देकर उद्‌बोधन दिया एवं निम्न श्लोक का विवेचन कर तत्व, व्रत, दान और वाणी इन विषयों का विशेष स्पष्टता के साथ विवेचन किया।

शुद्धेः फलं तत्वविचारणंच देवस्य सारं व्रतधारणंच।

वित्तस्य सारं करपात्रदानं, वाचांफलं प्रीतिकरं नराणाम् 11.1.11

गौरक्षा* एवं प्रजा के चरित्र निर्माण की तरफ अधिक लक्ष्य रखने के कारण उन्होंने ठाकुर साहिब की यथायोग्य प्रशंसा कर सब सुनने वालों को जीवरक्षा संबंधी प्रभावोत्पादक उपदेश देकर अपना प्रवचन पूरा किया था। श्रीमान् ठाकुर साहिब राजकोट ने प्रवचन समाप्त होने के बाद ही अपनी जगह छोड़ी। उपस्थित सज्जनों ने ठाकुर साहब का उपदेश श्रवणार्थ पधारने का उपकार माना। फिर सब लोग उपरोक्त प्रवचन की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए यथा स्थान प्रस्थान हेतु विसर्जित हो गये।

गोंडल संघाणी संघाड़े की पवित्र पुण्यशाली तपस्विनी महासतीजी जीवीबाई महासती ने मंदवाड़ में आचार्य श्री के श्रीमुख से धर्म सुनने की इच्छा प्रकट की, जिसे श्रीयुत पोपटलाल केवलचंद शाह ने आचार्य श्री की सेवा में निवेदित की, तब पूज्यश्री वहां पधारे परंतु परंपरानुसार उपाश्रय में बैठने में अनिच्छा प्रकट की परन्तु इससे बीमार महासतीजी को मानसिक कष्ट न हो अतएव शास्त्रानुसार दूसरे दरवाजे पर महासतीजी का पाट रखने पर वहीं से आचार्यश्री ने उन्हें साधुधर्म की अपेक्षा से बहुत सरल उपदेश दिया। महासतीजी बहुत गुणवती और सिद्धान्त रस की प्यासी थीं। उन्होंने 'तहेत्ति' कहकर यह उपदेश सिर चढ़ाया। ऐसी महासती वर्तमान समय में होना मुश्किल है। गोंडल संघाड़े के आचार्य श्री जसराजजी महाराज जो उपाश्रय में विराजते थे, वह

---

*राजकोट नरेश जब सिंहासनारूढ़ हुए तब आपने अपने समस्त राज्य में तथा राजकोट सिविल स्टेशन के एजेंट टु दी गवर्नर को लिखकर गोवध हमेशा के लिए बंद कर दिया।

गोपालजी (वर्तमान में जयचंद्रजी स्वामी) रा.रा. वेचरदासजी गोपालजी, रा.रा. भाई दास वेचरदास, रा.रा. निहालचंद्र सोमचंद्र, रा.रा. पोपटलाल केवलचंद शाह को साथ लेकर वे उस अकाल कार्य हेतु बम्बई, धरमपुर, रतलाम, इन्दौर, उज्जैन, जावरा, मंदसौर, अजमेर, बीकानेर और उदयपुर इत्यादि स्थानों पर पशु-संकट निवारण के लिए चंदा एकत्र करने गये थे। उस जन सहयोग के यज्ञ में लगभग रुपये 50,000 पचास हजार एकत्रित कर उन्होंने पशुओं का अच्छी तरह बचाव किया था। उपरोक्त सभी सद्-गृहस्थों ने यात्रा-खर्च अपने पास से दिया था और चंदे की रकम में से एक पैसा भी अपने यात्रा खर्च के प्रयोग में नही लिया था। राजकोट में उस समय सेवाधर्म का सिद्धान्त पूज्य श्री ने इतनी श्रेष्ठ एवं प्रभावोत्पादक ढंग से समझाया था कि उनके रूबरू प्रवचन-श्रवणकर्ताओं में इस बात की होड लग गई कि कौन ज्यादा से ज्यादा निस्वार्थ सेवा कर पाता है। उस समय काफी संख्या में पशु बिना मालिक के फिरते थे। पिंजरापोल के अलावा भी शहर के भिन्न-भिन्न स्थानों पर विशेष पशुगृह खोलकर स्वयं सेवकों ने बड़ी कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ सेवा की थी। श्रीमंत हो या सामान्य गृहस्थ सभी ने अपने मान-प्रतिष्ठा अथवा शरीर एवं वस्त्रों की स्वच्छता की परवाह न कर अपने हाथों से बीमार जानवरों को बिठाया। उनके दवाई लगाई और उन्हें पुचकारते एवं हर तरह से उन रुग्ण एवं लावारिस पशुओं की सेवा की।

आज भी यह बात इतनी ही सामयिक है कि सेठ-साहूकार, उच्च पदाधिकारी एवं युवक अपनी मित्र मंडली के साथ मौज-शौक में अपना समय व पैसा बरबाद करने के अथवा क्लबों में जाने या गपशप में अपना समय व्यर्थ बरबाद करने के बजाय अवकाश के समय में सच्चे सेवाधर्म को अपनाने को अपने जीवन का लक्ष्य बनावें। आप उस दृश्य की कल्पना करें जहां एक व्यक्ति कमीज की बाहें चढ़ाकर जानवर का मुंह पकड़े दूसरा व्यक्ति नाल से उसके मुंह में दूध डाले तृतीय व्यक्ति दवाई की शीशी में से दवा निकाल कर अपने हाथ से उसके लगावे और चोथा व्यक्ति अपने रुमाल से उस पशु की घावों पर बैठने वाली मक्खियां उडावे। यह दृश्य दूसरों को सेवाधर्म में लगाने के लिए काफी है। राजकोट 'केटल केम्प' का एक फोटो मिल गया है वह पास के पृष्ठ पर देखें जिसमें सोनी मोहनलाल केशवजी, कंसारा ठाकुर श्री केशवजी आदि स्वयं सेवकों का परिचय मिलेगा।

अकेले राजकोट में ही मानव सेवार्थ एवं पशु रक्षार्थ कार्य के लिए लगभग रुपये 1,25,000 (एक लाख पच्चीस हजार) खर्च हुए थे।

काठियावाड़ में 'छाछ' खाने का रिवाज दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। छाछ बनाने के लिए कई जगह परिवारों में गाय-भैंस रखने की पद्धति प्रचलित है। अगर किसी परिवार में ऐसी व्यवस्था नहीं हो तो 'छाछ' अपने संगे-संबंधी या पड़ोसियों के यहां से लाने का रिवाज भी प्रचलित है। अकाल में 'छाछ' यदि सुलभता से उपलब्ध करा दी जावे तो लोगों को बड़ी राहत महसूस होती है। राजकोट के सोनी मोहनलाल इत्यादि स्वयंसेवकों ने छाछ सुगमता से उपलब्ध कराने का भी उत्तम प्रबंध कर दिया था। बम्बई की एक पारसी बाई ने 'छाछ' कितने ही महिनों तक अपने खर्च से ही उपलब्ध कराने की इच्छा प्रकट की थी, अतएव इस कारण से भी वहुत सी छाछ बनती थी। छाछ बांटने की संस्था की कितनी आवश्यकता थी यह पास का चित्र देखने से ही पाठकों को सहज समझ में आ जावेगी।

तारीख 10.9.1911 के दिन पूज्य श्री के प्रवचन का लाभ लेने के लिए राजकोट के ठाकुर साहिब भी पधारे थे, और डेढ़ घंटे तक पूरी तन्मयता के साथ उन्होंने पूज्य श्री के प्रवचन का श्रवण किया था। उस समय उपस्थित दो से तीन हजार श्रोताओं को पूज्य श्री ने 'मनुष्य के कर्त्तव्य' विषय पर अपना सारगर्भित उद्‌बोधन दिया था। प्रभु-प्रार्थना के पश्चात् उन्होंने फरमाया कि देवता मनुष्य तिर्यंच एवं नारकी इन चार गतियों में मनुष्य क्यों विशेष उत्तम है और इन चार गतियों में से मात्र एक मनुष्य की गति ही से क्यों मोक्ष प्राप्त हो सकता है यह बात उन्होंने सविस्तार समझाई। मनुष्य जन्म की दुर्लभता का आभास करवाया एवं यह व्याख्या की कि जब मनुष्य जन्म दस बोलों सहित प्राप्त हो गया है तो इसे किस तरह सफल कर सकते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पांचों यमों के विषय पर महाभारत के शांतिपर्व में से कितने ही उदाहरण देकर मनुष्य के कर्तव्यों में वे किस रीति से गिने गऐ हैं यह स्पष्ट किया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के वर्ण-धर्म पर प्रकाश डालते हुए क्षत्रिय राजाओं का चरित्र कैसा निर्मल होना चाहिए यह भी बताया। उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों के आपसी टकराव व शुद्ध धर्म को मत-मतान्तरों, शाखा प्रशाखाओं व सम्प्रदायवाद के घेरे में बांध कर लोगों में धर्म के प्रति भ्रांति उत्पन्न करने एवं उनमें विष-वमन कर वैर-विरोध को बढ़ावा देने की प्रवृत्तियों की खुलकर निन्दा की एवं जीवन में समता एवं समन्वय प्रतिस्थापना को महत्वपूर्ण बताते हुए मनुष्यों को कर्त्तव्य निष्पादन एवं प्रेमपूर्ण सहयोग की महत्ता को अंगीकार करने का उदाहरण देकर उद्‌बोधन दिया एवं निम्न श्लोक का विवेचन कर तत्व, व्रत, दान और वाणी इन विषयों का विशेष स्पष्टता के साथ विवेचन किया।

शुद्धेः फलं तत्वविचारणंच देवस्य सारं व्रतधारणंच।

वित्तस्य सारं करपात्रदानं, वाचांफलं प्रीतिकरं नराणाम् 11.1.11

गौरक्षा* एवं प्रजा के चरित्र निर्माण की तरफ अधिक लक्ष्य रखने के कारण उन्होंने ठाकुर साहिब की यथायोग्य प्रशंसा कर सब सुनने वालों को जीवरक्षा संबंधी प्रभावोत्पादक उपदेश देकर अपना प्रवचन पूरा किया था। श्रीमान् ठाकुर साहिब राजकोट ने प्रवचन समाप्त होने के बाद ही अपनी जगह छोड़ी। उपस्थित सज्ञनों ने ठाकुर साहब का उपदेश श्रवणार्थ पधारने का उपकार माना। फिर सब लोग उपरोक्त प्रवचन की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए यथा स्थान प्रस्थान हेतु विसर्जित हो गये।

गोंडल संघाणी संघाड़े की पवित्र पुण्यशाली तपस्विनी महासतीजी जीवीबाई महासती ने मंदवाड़ में आचार्य श्री के श्रीमुख से धर्म सुनने की इच्छा प्रकट की, जिसे श्रीयुत पोपटलाल केवलचंद शाह ने आचार्य श्री की सेवा में निवेदित की, तब पूज्यश्री वहां पधारे परंतु परंपरानुसार उपाश्रय में बैठने में अनिच्छा प्रकट की परन्तु इससे बीमार महासतीजी को मानसिक कष्ट न हो अतएव शास्त्रानुसार दूसरे दरवाजे पर महासतीजी का पाट रखने पर वहीं से आचार्यश्री ने उन्हें साधुधर्म की अपेक्षा से बहुत सरल उपदेश दिया। महासतीजी बहुत गुणवती और सिद्धान्त रस की प्यासी थीं। उन्होंने 'तहेस्ति' कहकर यह उपदेश सिर चढ़ाया। ऐसी महासती वर्तमान समय में होना मुश्किल है। गोंडल संघाड़े के आचार्य श्री जसराजजी महाराज जो उपाश्रय में विराजते थे, वह

---

*राजकोट नरेश जब सिंहासनारूढ़ हुए तब आपने अपने समस्त राज्य में तथा राजकोट सिविल स्टेशन के एजेंट टु दी गवर्नर को लिखकर गोवध हमेशा के लिए बंद कर दिया।

[illegible] मार्ग में होने से [illegible] प्राप्त हुए थे।

महाराज श्री के शिष्य मुनि श्री [illegible] महाराज ने इस [illegible] ठाकुर साहिब के [illegible]।

[illegible] आती है। आधुनिक शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का अभाव होने से नई रोशनी वालों के हृदय में आर्यों के अध्यात्मवाद की अपेक्षा पाश्चात्य [illegible] की ओर विशेष ध्यान होने से ऐसे कई दृष्टांत देखने को मिलते हैं। वर्तमान शिक्षा से शिक्षित हुए नई [illegible] धर्म से विमुख (दूर) होने जा रहे थे। ऐसे शिक्षितों को पूज्य श्री के धर्म का उपदेश सुन कर [illegible] की उन्नति के मार्ग पर चलने लगे। पूज्यश्री के चरित्र और वाणी का प्रभाव ही ऐसा अलौकिक है। 'सत्संगति' [illegible] अर्थात् [illegible] है तब फिर पढ़े-लिखे पुरुषों को सत्संग से [illegible] है।

पूज्य श्री की प्रशंसा सुनकर उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वकील, बैरिस्टर और सरकारी ऑफिसर इत्यादि उनके पास आने लगे। पूज्य श्री को अंग्रेजी का बिल्कुल अभ्यास नहीं था फिर भी वे नई रोशनी वाले शिक्षित समाज पर अपने चारित्र बल से अपूर्व छाप डालते थे और धीरे-धीरे वे पूज्य श्री के प्रशंसक, अध्यात्म मार्ग के अनन्य उपासक और धर्म पर सम्पूर्ण श्रद्धा रखने लग जाते थे। यों पूज्य श्री के संसर्ग से कई विद्वानों ने बड़ा भारी लाभ उठाया। श्रीमती स्टीवेनसन नामक एक अंग्रेज युवती भी पूज्य श्री के प्रवचन का लाभ कुर्सी पर नहीं परन्तु नीचे बैठकर लेने लगी। पूज्य श्री के साथ धर्मचर्चा में उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था।। संवत्सरी के प्रतिक्रमण में भाग लेकर वह सब विधियों की ज्ञाता बनी थी। यह महिला कई प्रवचनों में मुंहपत्ति बांधकर बैठती थी। प्रवचन के अंशों को लिख या उतार लेती थी इस विदुषी अंग्रेज युवती ने जैन धर्म पर 'हार्ट ऑफ जैनिज्म' नामक एक पुस्तक लिखी है उसमें उसने पूज्य श्री के सम्बन्ध में उल्लेख किया वह यों है।

The present writer had the pleasure of meeting the Acharya of the Sthankwasi sect a gentle-man named Shrilalji, whom his followers hold to be the 78th Acharya in direct succession to Mahavira. Many Subsects have risen amongst the Sthankwasi Jains and each of these has its own Acharya but they unite in honouring Shrilalji as a true Ascetic...........when the writer for instance had the pleasure in Rajkot of meeting Shrilalji Maharaja (who is considered the most learned Sthankwasi Acharya of the present time) had travelled thither with 21 attendants 'Sadhoos.'

भावार्थ– लेखक को स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक आचार्य श्री श्रीलालजी की मुलाकात का आनन्द प्राप्त हुआ था। जिन्हें उनके अनुयायी श्री महावीर के द्वारा प्ररूपित जैन परंपरा प्रशाखा में के 78वें आचार्य मानते हैं। यद्यपि स्थानकवासी जैनों में कई शाखाएं हैं फिर भी इस वात पर सब सहमत है कि श्रीलालजी महाराज एक सच्चे त्यागी संत-महात्मन हैं।.....लेखक को श्रीलालजी महाराज (जिन्हें

वर्तमान समय के स्थानकवासी सम्प्रदाय के सर्वाधिक ज्ञानवन्त आचार्य माना जाता है) से राजकोट में मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब वे 21 संत-मुनिराजों के साथ वहाँ विराजमान थे।

इसके अलावा गुजराती भाषा के अद्वितीय कवि 'जय जयंत' 'इंदुकुमार' आदि अनुपम काव्यों के रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान श्रीमान् नानालाल दलपतराम कवीश्वर एम. ए. जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की स्वीकृति प्रसन्नतापूर्वक दी है वे तथा उनके सन्मित्र अनेक लोकोपयोगी ग्रंथों के रचयिता उत्तम चरित्र-धारक श्रीयुत अमृतलाल सुंदरजी पढ़िहार आदि जैनेतर विद्वान भी मुनिराज के सत्संग का प्रेमपूर्वक लाभ उठाते थे। परस्पर ज्ञानचर्चा से अपूर्व आनन्द प्रवाहित होता था। उक्त विद्वानों के अतिगहन और तात्विक प्रश्नों के उत्तर आचार्य श्री अत्यन्त बुद्धिमत्ता-पूर्वक और जैन-शास्त्रानुकूल देते कि, जिन्हें सुनकर प्रश्न करने वाले आनंद एवं आश्चर्य में निमग्न हो जाते थे। श्रीकृष्ण जन्म महिमा पूज्य श्री के मुख से सुनकर जैनेतर भाई यह महसूस करते थे कि श्रीकृष्ण वासुदेव को जैन शास्त्रों में कितनी उच्च श्रेणी पर स्वीकृत किया गया है। कवि श्री नानालाल भाई कहते हैं कि उन्हें एवं सौराष्ट्र के सद्गत साधु अमृतलाल सुंदरजी पढ़िहार को ये महात्मा एक परिव्राजकाचार्य से भी अधिक महान, अधिक उदार और अधिक क्रियावान, अधिक तपस्वी एवं अधिक वैराग्यवान मालूम होते थे। ऐसा कहा जाता है कि पूज्य श्री के विहार के समय कवि श्री काफी समय उनके साथ बिताते और पूज्य श्री एवं उनके अनुगामी संत समुदाय का कठिन क्रिया पालन एवं संयम के नियमों की पालना की दृढता को देख कर आनन्दित होते थे।

काश्मीर राज्य के दीवान श्रीमान् अनन्तराम जी साहिब एल. एल. बी. जो एक स्थानकवासी जैन गृहस्थ थे वे काश्मीर राज्य से एक प्रतिनिधिमंडल लेकर किसी कार्यवश राजकोट आये थे। दीवान अनन्तरामजी के सभापतित्व में आये हुए इस प्रतिनिधिमंडल में कितने ही राजपूत, अमीर तथा वजीर भी थे। अपने चार दिन के प्रवास के दौरान वे हर रोज आचार्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे।

पूज्य श्री की संप्रदाय के महाराज श्री मुन्नालालजी जो उस समय पंजाब में विचरण कर रहे थे, के संबंध में पूज्य श्री ने दीवान साहिब के साथ बातचीत की थी एवं उनके मार्फत बीमार मुनिराजों की सुख-साता पुछवाई थी और फरमाया था कि यदि वहां विराजित मुनियों की मदद की आवश्यकता हो तो पूज्य श्री ने यहां से संतों को उनकी सेवा में भेजने की पेशकश की थी परन्तु दीवान साहिब के जम्मू पहुंचने पर समाचार भिजवाया कि किसी मुनि को सहायता के लिए भेजने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे समाचार आ जाने से दूसरे मुनियों को उधर नहीं भेजा गया था।

राजकोट इत्यादि स्थानों में एक जाति या धर्म के नहीं परंतु जैन एवं जैनेतर सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष उनके व्याख्यान में आते थे एवं हर श्रोता यह महसूस करता था कि उसे उसका ही धर्म हमें समझा रहे हैं।

वे आत्म-कल्याण की ही बातें कहते थे। उनका ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम, धर्म का अखंड पालन, हृदय की विशालताएं ये सब सद्गुण जन-समूह को स्वाभाविक रीति से श्रीजी की तरफ आकर्षित कर लेते थे।

सैकड़ों अनपढ़ गांव वालों की सभा को कथा, कविता या अशक्य गप्पों से रिझा लेना सरल है परन्तु वाक्य-वाक्य, शब्द-शब्द पर विवेचन और आशंका करने वाले बुद्धिशाली मनुष्यों को समझाकर धर्म का मर्म उनके कंठ के नीचे उतारना विना विशाल ज्ञान व अनुभव के नहीं हो सकता।

[illegible] पूर्ण होने के [illegible] पर आचार्यश्री बहुत प्रसन्न हुए थे।

महाराज श्री के शिष्य मुनि श्री रामचन्द्रजी महाराज ने इस चातुर्मास में बैंतीस उपवास की तपश्चर्या की थी और उनके अंतिम उपवास के दिन तथा पारणे के दिन राजकोट ठाकुर साहिब के हुक्म से कसाईखाने बंद रखे गए थे।

काठियावाड़ में राजकोट शहर अंग्रेजी शिक्षा में सबसे अग्रिम आगे है। आधुनिक शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का अभाव होने से नई रोशनी वालों के हृदय में आचार्यों के आचारविचार की अपेक्षा पाश्चात्य आडम्बर की ओर विशेष लगाव होने के कारण कई दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं। वर्तमान शिक्षा से शिक्षित हुए नई रोशनी वाले धर्म से विमुख (दूर) होते जा रहे थे। ऐसे शिक्षितों को पूज्य श्री के धर्म का उपदेश सुन कर तथा सत्समागम से धर्मप्रेमी बन कर आत्मा की उन्नति के मार्ग पर चलने लगे। पूज्यश्री के चरित्र और वाणी का प्रभाव ही ऐसा अलौकिक है। 'सत्संगति' यथाति हीं सत्पुरुष संगमात्' अर्थात् सत्संग से पशु पुरुषों में भी साधुता प्रकट हो जाती है तब फिर पढ़े-लिखे पुरुषों को सत्संग से अपूर्व लाभ प्राप्त हो इसमें क्या आश्चर्य है।

पूज्य श्री की प्रशंसा सुनकर उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वकील, बैरिस्टर और सरकारी अधिकारी इत्यादि उनके पास आने लगे। पूज्य श्री को अंग्रेजी का बिल्कुल अभ्यास नहीं था फिर भी वे नई रोशनी वाले शिक्षित समाज पर अपने चरित्र बल से अपूर्व छाप डालते थे और धीरे-धीरे वे पूज्य श्री के प्रशंसक, अध्यात्म मार्ग के अनन्य उपासक और धर्म पर सम्पूर्ण श्रद्धा रखने लग जाते थे। यों पूज्य श्री के संसर्ग से कई शिक्षितों ने बड़ा भारी लाभ उठाया। श्रीमती स्टीवेन्सन नामक एक अंग्रेज युवती भी पूज्य श्री के प्रवचन का लाभ कुर्सी पर नहीं परन्तु नीचे बैठकर लेने लगी। पूज्य श्री के साथ धर्मचर्चा में उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था।। सांवत्सरी के प्रतिक्रमण में भाग लेकर वह सब विधियों की ज्ञाता बनी थी। वह महिला कई प्रवचनों में मुंहपत्ति बांधकर बैठती थी। प्रवचन के अंशों को लिख या उतार लेती थी इस विदुषी अंग्रेज युवती ने जैन धर्म पर 'हार्ट ऑफ जैनिज्म' नामक एक पुस्तक लिखी है उसमें उसने पूज्य श्री के सम्बन्ध में उल्लेख किया वह यों है।

The present writer had the pleasure of meeting the Acharya of the Sthankwasi sect a gentle-man named Shrilalji, whom his followers hold to be the 78th Acharya in direct succession to Mahavira. Many Subsects have risen amongst the Sthankwasi Jains and each of these has its own Acharya but they unite in honouring Shrilalji as a true Ascetic...........when the writer for instance had the pleasure in Rajkot of meeting Shrilalji Maharaja (who is considered the most learned Sthankwasi Acharya of the present time) had travelled thither with 21 attendants 'Sadhoos.'

भावार्थ– लेखक को स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक आचार्य श्री श्रीलालजी की मुलाकात का आनन्द प्राप्त हुआ था। जिन्हें उनके अनुयायी श्री महावीर के द्वारा प्ररूपित जैन परंपरा प्रशाखा में के 78वें आचार्य मानते हैं। यद्यपि स्थानकवासी जैनों में कई शाखाएं हैं फिर भी इस बात पर सब सहमत है कि श्रीलालजी महाराज एक सच्चे त्यागी संत-महात्मन हैं।.....लेखक को श्रीलालजी महाराज (जिन्हें

वर्तमान समय के स्थानकवासी सम्प्रदाय के सर्वाधिक ज्ञानवन्त आचार्य माना जाता है) से राजकोट में मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब वे 21 संत-मुनिराजों के साथ वहाँ विराजमान थे।

इसके अलावा गुजराती भाषा के अद्वितीय कवि 'जय जयंत' 'इंदुकुमार' आदि अनुपम काव्यों के रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान श्रीमान् नानालाल दलपतराम कवीश्वर एम. ए. जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की स्वीकृति प्रसन्नतापूर्वक दी है वे तथा उनके सन्मित्र अनेक लोकोपयोगी ग्रंथों के रचयिता उत्तम चरित्र-धारक श्रीयुत अमृतलाल सुंदरजी पढ़िहार आदि जैनेतर विद्वान भी मुनिराज के सत्संग का प्रेमपूर्वक लाभ उठाते थे। परस्पर ज्ञानचर्चा से अपूर्व आनन्द प्रवाहित होता था। उक्त विद्वानों के अतिगहन और तात्विक प्रश्नों के उत्तर आचार्य श्री अत्यन्त बुद्धिमत्ता-पूर्वक और जैन-शास्त्रानुकूल देते कि, जिन्हें सुनकर प्रश्न करने वाले आनंद एवं आश्चर्य में निमग्न हो जाते थे। श्रीकृष्ण जन्म महिमा पूज्य श्री के मुख से सुनकर जैनेतर भाई यह महसूस करते थे कि श्रीकृष्ण वासुदेव को जैन शास्त्रों में कितनी उच्च श्रेणी पर स्वीकृत किया गया है। कवि श्री नानालाल भाई कहते हैं कि उन्हें एवं सौराष्ट्र के सद्गत साधु अमृतलाल सुंदरजी पढ़िहार को ये महात्मा एक परिव्राजकाचार्य से भी अधिक महान, अधिक उदार और अधिक क्रियावान, अधिक तपस्वी एवं अधिक वैराग्यवान मालूम होते थे। ऐसा कहा जाता है कि पूज्य श्री के विहार के समय कवि श्री काफी समय उनके साथ बिताते और पूज्य श्री एवं उनके अनुगामी संत समुदाय का कठिन क्रिया पालन एवं संयम के नियमों की पालना की दृढ़ता को देख कर आनन्दित होते थे।

काश्मीर राज्य के दीवान श्रीमान् अनन्तराम जी साहिब एल. एल. बी. जो एक स्थानकवासी जैन गृहस्थ थे वे काश्मीर राज्य से एक प्रतिनिधिमंडल लेकर किसी कार्यवश राजकोट आये थे। दीवान अनन्तरामजी के सभापतित्व में आये हुए इस प्रतिनिधिमंडल में कितने ही राजपूत, अमीर तथा वजीर भी थे। अपने चार दिन के प्रवास के दौरान वे हर रोज आचार्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे।

पूज्य श्री की संप्रदाय के महाराज श्री मुन्नालालजी जो उस समय पंजाब में विचरण कर रहे थे, के संबंध में पूज्य श्री ने दीवान साहिब के साथ बातचीत की थी एवं उनके मार्फत बीमार मुनिराजों की सुख-साता पुछवाई थी और फरमाया था कि यदि वहां विराजित मुनियों की मदद की आवश्यकता हो तो पूज्य श्री ने यहां से संतों को उनकी सेवा में भेजने की पेशकश की थी परन्तु दीवान साहिब के जम्मू पहुंचने पर समाचार भिजवाया कि किसी मुनि को सहायता के लिए भेजने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे समाचार आ जाने से दूसरे मुनियों को उधर नहीं भेजा गया था।

राजकोट इत्यादि स्थानों में एक जाति या धर्म के नहीं परंतु जैन एवं जैनेतर सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष उनके व्याख्यान में आते थे एवं हर श्रोता यह महसूस करता था कि उसे उसका ही धर्म हमें समझा रहे हैं।

वे आत्म-कल्याण की ही बातें कहते थे। उनका ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम, धर्म का अखंड पालन, हृदय की विशालताएं ये सब सद्गुण जन-समूह को स्वाभाविक रीति से श्रीजी की तरफ आकर्षित कर लेते थे।

सैकड़ों अनपढ़ गांव वालों की सभा को कथा, कविता या अशक्य गप्पों से रिझा लेना सरल है परन्तु वाक्य-वाक्य, शब्द-शब्द पर विवेचन और आशंका करने वाले बुद्धिशाली मनुष्यों को समझाकर धर्म का मर्म उनके कंठ के नीचे उतारना विना विशाल ज्ञान व अनुभव के नहीं हो सकता।

अध्यात्म मार्ग में होने से दान पद से पूज्य सन्त पूज्य महाराज श्री का स्वीकार कर आचार्यश्री बहुत प्रसन्न हुए थे।

महाराज श्री के शिष्य मुनि श्री छगनलालजी महाराज ने इस चातुर्मास में तैंतीस उपवास की तपश्चर्या की थी और उनके अन्तिम उपवास के दिन तथा पारणे के दिन राजकोट ठाकुर साहिब के हुक्म से कसाई खाने बंद रखे गए थे।

काठियावाड़ में राजकोट शहर अंग्रेजी शिक्षा में सबसे अधिक आगे है। आधुनिक शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का अभाव होने से नई रोशनी वालों के हृदय में आर्यावर्त के अध्यात्मवाद की अपेक्षा पाश्चात्य जड़वाद की ओर विशेष लक्ष्य होने के अनेक कई दृष्टांत देखने को मिलते हैं। वर्तमान शिक्षा से शिक्षित हुए कई व्यक्ति धर्म से विमुख (दूर) होते जा रहे थे। ऐसे कितने ही युवा पूज्य श्री के धर्म का उपदेश सुन कर तथा सत्समागम से धर्मप्रेमी बन कर आत्मा की उन्नति के मार्ग पर चलने लगे। पूज्यश्री के चरित्र और वाणी का प्रभाव ही ऐसा अलौकिक है। 'सत्संगति' भवति ही साधुता खलानाम्' अर्थात् सत्संग से दुष्ट पुरुषों में भी साधुता प्रकट हो जाती है तब फिर पढ़े-लिखे पुरुषों को सत्संग से अपूर्व लाभ प्राप्त हो इसमें क्या आश्चर्य है।

पूज्य श्री की प्रशंसा सुनकर उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वकील, बैरिस्टर और सरकारी ऑफिसर इत्यादि उनके पास आने लगे। पूज्य श्री को अंग्रेजी का बिल्कुल अभ्यास नहीं था फिर भी वे नई रोशनी वाले शिक्षित समाज पर अपने चारित्र बल से अपूर्व छाप डालते थे और धीरे-धीरे वे पूज्य श्री के प्रशंसक, अध्यात्म मार्ग के अनन्य उपासक और धर्म पर सम्पूर्ण श्रद्धा रखने लग जाते थे। यों पूज्य श्री के संसर्ग से कई विद्वानों ने बड़ा भारी लाभ उठाया। श्रीमती स्टीवेनसन नामक एक अंग्रेज युवती भी पूज्य श्री के प्रवचन का लाभ कुर्सी पर नहीं परन्तु नीचे बैठकर लेने लगी। पूज्य श्री के साथ धर्मचर्चा में उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था।। संवत्सरी के प्रतिक्रमण में भाग लेकर वह सब विधियों की ज्ञाता बनी थी। वह महिला कई प्रवचनों में मुंहपत्ति बांधकर बैठती थी। प्रवचन के अंशों को लिख या उतार लेती थी इस विदुषी अंग्रेज युवती ने जैन धर्म पर 'हार्ट ऑफ जैनिज्म' नामक एक पुस्तक लिखी है उसमें उसने पूज्य श्री के सम्बन्ध में उल्लेख किया वह यों है।

The present writer had the pleasure of meeting the Acharya of the Sthankwasi sect a gentle-man named Shrilalji, whom his followers hold to be the 78th Acharya in direct succession to Mahavira. Many Subsects have risen amongst the Sthankwasi Jains and each of these has its own Acharya but they unite in honouring Shrilalji as a true Ascetic...........when the writer for instance had the pleasure in Rajkot of meeting Shrilalji Maharaja (who is considered the most learned Sthankwasi Acharya of the present time) had travelled thither with 21 attendants 'Sadhoos.'

भावार्थ– लेखक को स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक आचार्य श्री श्रीलालजी की मुलाकात का आनन्द प्राप्त हुआ था। जिन्हें उनके अनुयायी श्री महावीर के द्वारा प्ररूपित जैन परंपरा प्रशाखा में के 78वें आचार्य मानते हैं। यद्यपि स्थानकवासी जैनों में कई शाखाएं हैं फिर भी इस बात पर सब सहमत है कि श्रीलालजी महाराज एक सच्चे त्यागी संत-महात्मन हैं।.....लेखक को श्रीलालजी महाराज (जिन्हें

वर्तमान समय के स्थानकवासी सम्प्रदाय के सर्वाधिक ज्ञानवन्त आचार्य माना जाता है) से राजकोट में मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब वे 21 संत-मुनिराजों के साथ वहाँ विराजमान थे।

इसके अलावा गुजराती भाषा के अद्वितीय कवि 'जय जयंत' 'इंदुकुमार' आदि अनुपम काव्यों के रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान श्रीमान् नानालाल दलपतराम कवीश्वर एम. ए. जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की स्वीकृति प्रसन्नतापूर्वक दी है वे तथा उनके सन्मित्र अनेक लोकोपयोगी ग्रंथों के रचयिता उत्तम चरित्र-धारक श्रीयुत अमृतलाल सुंदरजी पड़िहार आदि जैनेतर विद्वान भी मुनिराज के सत्संग का प्रेमपूर्वक लाभ उठाते थे। परस्पर ज्ञानचर्चा से अपूर्व आनन्द प्रवाहित होता था। उक्त विद्वानों के अतिगहन और तात्विक प्रश्नों के उत्तर आचार्य श्री अत्यन्त बुद्धिमत्ता-पूर्वक और जैन-शास्त्रानुकूल देते कि, जिन्हें सुनकर प्रश्न करने वाले आनंद एवं आश्चर्य में निमग्न हो जाते थे। श्रीकृष्ण जन्म महिमा पूज्य श्री के मुख से सुनकर जैनेतर भाई यह महसूस करते थे कि श्रीकृष्ण वासुदेव को जैन शास्त्रों में कितनी उच्च श्रेणी पर स्वीकृत किया गया है। कवि श्री नानालाल भाई कहते हैं कि उन्हें एवं सौराष्ट्र के सद्गत साधु अमृतलाल सुंदरजी पड़िहार को ये महात्मा एक परिव्राजकाचार्य से भी अधिक महान, अधिक उदार और अधिक क्रियावान, अधिक तपस्वी एवं अधिक वैराग्यवान मालूम होते थे। ऐसा कहा जाता है कि पूज्य श्री के विहार के समय कवि श्री काफी समय उनके साथ बिताते और पूज्य श्री एवं उनके अनुगामी संत समुदाय का कठिन क्रिया पालन एवं संयम के नियमों की पालना की दृढता को देख कर आनन्दित होते थे।

काश्मीर राज्य के दीवान श्रीमान् अनन्तराम जी साहिब एल. एल. बी. जो एक स्थानकवासी जैन गृहस्थ थे वे काश्मीर राज्य से एक प्रतिनिधिमंडल लेकर किसी कार्यवश राजकोट आये थे। दीवान अनन्तरामजी के सभापतित्व में आये हुए इस प्रतिनिधिमंडल में कितने ही राजपूत, अमीर तथा वजीर भी थे। अपने चार दिन के प्रवास के दौरान वे हर रोज आचार्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे।

पूज्य श्री की संप्रदाय के महाराज श्री मुन्नालालजी जो उस समय पंजाब में विचरण कर रहे थे, के संबंध में पूज्य श्री ने दीवान साहिब के साथ बातचीत की थी एवं उनके मार्फत बीमार मुनिराजों की सुख-साता पुछवाई थी और फरमाया था कि यदि वहां विराजित मुनियों की मदद की आवश्यकता हो तो पूज्य श्री ने यहां से संतों को उनकी सेवा में भेजने की पेशकश की थी परन्तु दीवान साहिब के जम्मू पहुंचने पर समाचार भिजवाया कि किसी मुनि को सहायता के लिए भेजने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे समाचार आ जाने से दूसरे मुनियों को उधर नहीं भेजा गया था।

राजकोट इत्यादि स्थानों में एक जाति या धर्म के नहीं परंतु जैन एवं जैनेतर सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष उनके व्याख्यान में आते थे एवं हर श्रोता यह महसूस करता था कि उसे उसका ही धर्म हमें समझा रहे हैं।

वे आत्म-कल्याण की ही बातें कहते थे। उनका ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम, धर्म का अखंड पालन, हृदय की विशालताएं ये सब सद्गुण जन-समूह को स्वाभाविक रीति से श्रीजी की तरफ आकर्षित कर लेते थे।

सैकड़ों अनपढ़ गांव वालों की सभा को कथा, कविता या अशक्य गप्पों से रिझा लेना सरल है परन्तु वाक्य-वाक्य, शब्द-शब्द पर विवेचन और आशंका करने वाले बुद्धिशाली मनुष्यों को समझाकर धर्म का मर्म उनके कंठ के नीचे उतारना विना विशाल ज्ञान व अनुभव के नहीं हो सकता।

उपाश्रय मार्ग में होने से द्वार पर से सुख साता पूछ सहज ही धर्मालाप कर आचार्यश्री बहुत प्रसन्न हुए थे।

महाराज श्री के शिष्य मुनि श्री छगनलालजी महाराज ने इस चातुर्मास में पैंतीस उपवास की तपश्चर्या की थी और उनके अन्तिम उपवास के दिन तथा पारणे के दिन राजकोट ठाकुर साहिब के हुक्म से कसाई खाने बंद रखे गए थे।

काठियावाड़ में राजकोट शहर अंग्रेजी शिक्षा में सबसे अधिक आगे है। आधुनिक शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का अभाव होने से नई रोशनी वालों के हृदय में आर्यावर्त के अध्यात्मवाद की अपेक्षा पाश्चात्य जड़वाद की ओर विशेष लक्ष्य होने के अपने कई दृष्टांत देखने को मिलते हैं। वर्तमान शिक्षा से शिक्षित हुए कई नवयुवक धर्म से विमुख (दूर) होते जा रहे थे। ऐसे कितने ही युवा पूज्य श्री के धर्म का उपदेश सुन कर तथा सत्समागम से धर्मप्रेमी बन कर आत्मा की उन्नति के मार्ग पर चलने लगें। पूज्यश्री के चरित्र और वाणी का प्रभाव ही ऐसा अलौकिक है। 'सत्संगति' भवति ही साधुता खलानाम्' अर्थात् सत्संग से खल पुरुषों में भी साधुता प्रकट हो जाती है तब फिर पढ़े-लिखे पुरुषों को सत्संग से अपूर्व लाभ प्राप्त हो इसमें क्या आश्चर्य है।

पूज्य श्री की प्रशंसा सुनकर उच्च आंग्ल शिक्षा प्राप्त वकील, बैरिस्टर और सरकारी ऑफिसर इत्यादि उनके पास आने लगे। पूज्य श्री को अंग्रेजी का बिल्कुल अभ्यास नहीं था फिर भी वे नई रोशनी वाले शिक्षित समाज पर अपने चरित्र बल से अपूर्व छाप डालते थे और धीरे-धीरे वे पूज्य श्री के प्रशंसक, अध्यात्म मार्ग के अनन्य उपासक और धर्म पर सम्पूर्ण श्रद्धा रखने लग जाते थे। यों पूज्य श्री के संसर्ग से कई विद्वानों ने बड़ा भारी लाभ उठाया। श्रीमती स्टीवेनसन नामक एक अंग्रेज युवती भी पूज्य श्री के प्रवचन का लाभ कुर्सी पर नहीं परन्तु नीचे बैठकर लेने लगी। पूज्य श्री के साथ धर्मचर्चा में उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था।। संवत्सरी के प्रतिक्रमण में भाग लेकर वह सब विधियों की ज्ञाता बनी थी। यह महिला कई प्रवचनों में मुंहपत्ति बांधकर बैठती थी। प्रवचन के अंशों को लिख या उतार लेती थी इस विदुषी अंग्रेज युवती ने जैन धर्म पर 'हार्ट ऑफ जैनिज्म' नामक एक पुस्तक लिखी है उसमें उसने पूज्य श्री के सम्बन्ध में उल्लेख किया वह यों है।

The present writer had the pleasure of meeting the Acharya of the Sthankwasi sect a gentle-man named Shrilalji, whom his followers hold to be the 78th Acharya in direct succession to Mahavira. Many Subsects have risen amongst the Sthankwasi Jains and each of these has its own Acharya but they unite in honouring Shrilalji as a true Ascetic...........when the writer for instance had the pleasure in Rajkot of meeting Shrilalji Maharaja (who is considered the most learned Sthankwasi Acharya of the present time) had travelled thither with 21 attendants 'Sadhoos.'

भावार्थ– लेखक को स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक आचार्य श्री श्रीलालजी की मुलाकात का आनन्द प्राप्त हुआ था। जिन्हें उनके अनुयायी श्री महावीर के द्वारा प्ररूपित जैन परंपरा प्रशाखा में के 78वें आचार्य मानते हैं। यद्यपि स्थानकवासी जैनों में कई शाखाएं हैं फिर भी इस बात पर सब सहमत हैं कि श्रीलालजी महाराज एक सच्चे त्यागी संत-महात्मन हैं।.....लेखक को श्रीलालजी महाराज (जिन्हें

वर्तमान समय के स्थानकवासी सम्प्रदाय के सर्वाधिक ज्ञानवन्त आचार्य माना जाता है) से राजकोट में मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब वे 21 संत-मुनिराजों के साथ वहाँ विराजमान थे।

इसके अलावा गुजराती भाषा के अद्वितीय कवि 'जय जयंत' 'इंदुकुमार' आदि अनुपम काव्यों के रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान श्रीमान् नानालाल दलपतराम कवीश्वर एम. ए. जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की स्वीकृति प्रसन्नतापूर्वक दी है वे तथा उनके सन्मित्र अनेक लोकोपयोगी ग्रंथों के रचयिता उत्तम चरित्र-धारक श्रीयुत अमृतलाल सुंदरजी पड़िहार आदि जैनेतर विद्वान भी मुनिराज के सत्संग का प्रेमपूर्वक लाभ उठाते थे। परस्पर ज्ञानचर्चा से अपूर्व आनन्द प्रवाहित होता था। उक्त विद्वानों के अतिगहन और तात्विक प्रश्नों के उत्तर आचार्य श्री अत्यन्त बुद्धिमत्ता-पूर्वक और जैन-शास्त्रानुकूल देते कि, जिन्हें सुनकर प्रश्न करने वाले आनंद एवं आश्चर्य में निमग्न हो जाते थे। श्रीकृष्ण जन्म महिमा पूज्य श्री के मुख से सुनकर जैनेतर भाई यह महसूस करते थे कि श्रीकृष्ण वासुदेव को जैन शास्त्रों में कितनी उच्च श्रेणी पर स्वीकृत किया गया है। कवि श्री नानालाल भाई कहते हैं कि उन्हें एवं सौराष्ट्र के सद्गत साधु अमृतलाल सुंदरजी पड़िहार को ये महात्मा एक परिव्राजकाचार्य से भी अधिक महान, अधिक उदार और अधिक क्रियावान, अधिक तपस्वी एवं अधिक वैराग्यवान मालूम होते थे। ऐसा कहा जाता है कि पूज्य श्री के विहार के समय कवि श्री काफी समय उनके साथ बिताते और पूज्य श्री एवं उनके अनुगामी संत समुदाय का कठिन क्रिया पालन एवं संयम के नियमों की पालना की दृढता को देख कर आनन्दित होते थे।

काश्मीर राज्य के दीवान श्रीमान् अनन्तराम जी साहिब एल. एल. बी. जो एक स्थानकवासी जैन गृहस्थ थे वे काश्मीर राज्य से एक प्रतिनिधिमंडल लेकर किसी कार्यवश राजकोट आये थे। दीवान अनन्तरामजी के सभापतित्व में आये हुए इस प्रतिनिधिमंडल में कितने ही राजपूत, अमीर तथा वजीर भी थे। अपने चार दिन के प्रवास के दौरान वे हर रोज आचार्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे।

पूज्य श्री की संप्रदाय के महाराज श्री मुन्नालालजी जो उस समय पंजाब में विचरण कर रहे थे, के संबंध में पूज्य श्री ने दीवान साहिब के साथ बातचीत की थी एवं उनके मार्फत बीमार मुनिराजों की सुख-साता पुछवाई थी और फरमाया था कि यदि वहां विराजित मुनियों की मदद की आवश्यकता हो तो पूज्य श्री ने यहां से संतों को उनकी सेवा में भेजने की पेशकश की थी परन्तु दीवान साहिब के जम्मू पहुंचने पर समाचार भिजवाया कि किसी मुनि को सहायता के लिए भेजने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे समाचार आ जाने से दूसरे मुनियों को उधर नहीं भेजा गया था।

राजकोट इत्यादि स्थानों में एक जाति या धर्म के नहीं परंतु जैन एवं जैनेतर सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष उनके व्याख्यान में आते थे एवं हर श्रोता यह महसूस करता था कि उसे उसका ही धर्म हमें समझा रहे हैं।

वे आत्म-कल्याण की ही बातें कहते थे। उनका ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम, धर्म का अखंड पालन, हृदय की विशालताएं ये सब सद्गुण जन-समूह को स्वाभाविक रीति से श्रीजी की तरफ आकर्षित कर लेते थे।

सैकड़ों अनपढ़ गांव वालों की सभा को कथा, कविता या अशक्य गप्पों से रिझा लेना सरल है परन्तु वाक्य-वाक्य, शब्द-शब्द पर विवेचन और आशंका करने वाले बुद्धिशाली मनुष्यों को समझाकर धर्म का मर्म उनके कंठ के नीचे उतारना विना विशाल ज्ञान व अनुभव के नहीं हो सकता।

अंग्रेजी या फारसी तो क्या परन्तु जिन्होंने अपनी मातृभाषा की भी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी ऐसे पूज्य श्री को अपने गुरु से और अनुभव से प्राप्त शास्त्रीय और ऐतिहासिक ज्ञान से बैरिस्टरों और विद्वानों को भी संतोष होता था यह पूज्य श्री के उत्कृष्ट संयम और ज्ञान की गहनता का प्रभाव था।

राजकोट के उपशिक्षा निरीक्षक श्रीयुत् पोपटलाल केवलचंद शाह अपना अनुभव लिखते हैं कि –

आचार्य श्री जब धर्मध्यान में एकाग्र होकर बैठते थे तब वे अन्य कार्यों को सचमुच भुला ही देते थे। जब वे एकान्त में समाधिस्थ रहते तब बहुत नगण्य लोग ही उनके दर्शन का लाभ उठा पाते थे। क्योंकि उनके शिष्य द्वार को रोक कर बैठते थे। ताकि कोई उनके समाधि में विघ्न नहीं डाल सके। आचार्यश्री की कुछ तो मुझ पर कृपादृष्टि थी व कुछ उनमें ऐसा विश्वास था कि मैं उनके एकाग्र धर्मध्यान में विक्षेप नहीं डालूँगा अतः किसी-किसी समय मुझे ऐसी स्थिति में भी उनके दर्शन का लाभ मिलता था। कई लोग कहते हैं कि जैन धर्म में सिर्फ उपवासादि तपस्या ही रही है परन्तु योग-समाधि तो उनके यहां प्रायः लुप्त प्रायः है परन्तु इन आचार्य ने एवं एक-दूसरे सुपात्र साधु-महात्मा ने मेरे दिल में विश्वास बिठा दिया है कि जैनियों में भी योगनिछ महात्मा पुरुष उपलब्ध हैं।

दीपावली के दिन वे छठ (दो उपवास) करते। एक अहोरात्रि धर्मध्यान में बिताते, व्याख्यान के अलावा बाकी दिन के समय में और विशेष कर रात्रि को वे योग समाधि में रहते थे। राजकोट में दिवाली की पिछली रात को संवर पौषध में रहे हुए तथा दूसरे सुनने वालों को पूज्यश्री ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र पूरे तीन घंटे अपने श्रीमुख से सुनाया था। दिपावली का दिन श्री श्रमण भगवान महावीर प्रभु के निर्वाण का पवित्र दिन है। श्री महावीर प्रभु ने अपने निर्वाण के समय अपने शिष्यों को सोलह प्रहर तक जो धर्मदेशना दी थी उस देशना को गूंथ कर गणधरों ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र की रचना की है। यदि दिवाली की पिछली रात्रि को समर्थ-पवित्र आचार्य के श्री मुख से उत्तराध्ययन सूत्र सुना जाये तो अति उत्तम रहता है। इसी इच्छा से प्रेरित हो जब उनका दूसरा चातुर्मास मोरवी हुआ तब दिवाली के दिन मैं (लेखक) मोरवी गया। वहां पता लगा कि आचार्य श्री श्रवणार्थियों को उत्तराध्ययन सूत्र की वाचना सुबह यानी कार्तिक शुक्ला को करने वाले हैं। इससे मैं कुछ-कुछ निराश हुआ, क्योंकि, श्रमण भगवंत दिवाली की पिछली रात्रि को निर्वाण पाये थे, अतः उत्तराध्ययन सूत्र पिछली रात्रि को पूर्ण हुआ था जिससे यदि यह उस समय सुनाया जाये तो सूत्र ज्यादा सामयिक गिना जावे। अतः मैंने अपनी निराशा आचार्य श्री से निवेदन की। आचार्य श्री ने समझाया, कि राजकोट के सुनने वालों को मालूम हो गया था कि पिछली रात को उत्तराध्यय को सुनाया जावेगा जिससे कितने ही सुनने वाले घर से शीघ्र उठ एकेन्द्रियादि जीवों की घात करते हुए उत्तराध्ययन-वाचना सुनने मेरे पास आये थे, जिसकी दूसरे दिन गुलाबचन्द्रजी ने टीका-टिप्पणी की कि इसमें तो लाभ की अपेक्षा हानि अधिक है। गुलाबचन्द्रजी की टीका मुझे योग्य जचीं, इसलिए यहां मैंने आपको ये स्पष्ट कह दिया कि मैं सुबह व्याख्यान के समय ही उत्तराध्ययन सुनाऊंगा, परन्तु हां तुम राजकोट से खास इसीलिए आये हो तो संवर या पौषध करना और धर्म जागरण करते हुए जगो तब ऊपर आकर करीब 3 बजे चांदमलजी को कहना, फिर मैं अपने ध्यान से निवृत्त होकर तुम्हें तुरंत बुलाऊँगा। इस उत्तर को सुनकर मैं बहुत खुश हुआ, परन्तु कहे विना न

रहा कि, पूज्यजी साहिब इससे आप को दो वक्त उत्तराध्ययन सुनाना पड़ेगा और दूसरा श्रम होगा। तब पूज्यश्री ने फरमाया कि 'मुझे स्वाध्याय का दुगुना लाभ होगा। हमेशा की रीति के अनुसार दिवाली की पिछली रात्रि को उत्तराध्ययन स्वाध्याय रूप मुंह से कहूंगा और श्रावक-श्राविकाओं को सुनाने के लिए फिर सुबह याद करूंगा।

दिवाली की संध्या को मोरवी की श्री निर्मला बहिन ने महाराज साहिब के गुणगान की कविता परिषद् में गाई थी। मैंने शास्त्रीजी के श्लोक गाये थे और मेरी ओर से महाराज श्री के जीवन चरित्र की कुछ रूपरेखाएं दिखाने वाली कवितायें सुनाई तत्पश्चात् श्रीयुत् मगनलाल दफ्तरी, भाई दुर्लभजी जौहरी और मैंने समय के अनुसार कुछ विवेचन किया एवं आचार्यजी के काठियावाड़ में और खासकर हालार में चातुर्मास करने से कितना उपकार हुआ यह बताया। पिछली रात को मुझे तो उत्तराध्ययन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और सुबह भी लाभ मिला। सुबह जब कितने ही अध्यायों का स्वाध्याय हो गया तब मैंने अपने समीप बैठे हुए श्रीयुत् जौहरी से कहा कि महाराज साहिब यह दूसरी वक्त स्वाध्याय कर रहे हैं इसलिये दूसरे वक्त के श्रम को मान देने के लिए समस्त परिषद् खड़ी हो गई और जब महाराज ने सुना कि खड़े-खड़े सुनने का यह कारण है तब वे भी शिष्यों सहित खड़े हो गए। जिस तरह तीर्थंकर भी 'नमोतित्थस्स' कह चतुर्विध संघ को मान देते हैं उसी तरह खड़े होकर पूज्यश्री ने अपने श्री मुख से पूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र सुनाया। इतनी सी वस्तुस्थिति ही आचार्य श्री कितने गुणों की खान थे उसका दिग्दर्शन कराती है।

गोंडल, जैतपुर, जामनगर, पोरबंदर जैसे शहरों में या थोराला जैसे ग्रामों में जहां-जहां लेखक को महाराज साहिब के विहार में उनके दर्शनों के लिए दूसरों के साथ-साथ जाने का प्रसंग आया वहां-वहां हिन्दू-मुसलमान सभी धर्मावलंबियों की ओर से पूज्य श्री के लिए जो प्रशंसात्मक और पूज्यता प्रदर्शित करने वाले शब्द बोले जाते थे उन्हें सुनकर लेखक को बड़ा आनन्द होता और वे यही प्रार्थना जिनेश्वर देव से करते थे कि अपनी जैन समाज में ऐसे प्रामाणिक प्रभावक महापुरुष और अधिक संख्या में हों तो क्या ही अच्छा हो ? ताकि अहिंसा धर्म का कितना अधिक प्रसार हो जाय। पोरबंदर से हम राजकोट पिंजरापोल के लिए चंदा इकट्ठा करने को मारवाड़ की तरफ गए थे तब पोरबंदर के भाइयों ने तथा मार्ग में पालनपुर के भाइयों ने और उसी तरह मालवा मेवाड़ एवं मारवाड़ प्रान्तों में जो हमारा आदर-सत्कार हुआ उसकी लेखक ने सदैव कृतज्ञतापूर्वक भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह सारा आदर-सत्कार और उस दौरान प्राप्त आर्थिक मदद समस्त उस निर्लोभ महानुभाव आचार्यश्री के प्रभाव का ही प्रताप है ऐसा कहा जावे तो कुछ असत्य न होगा।

राजकोट जैन-वणिक बोर्डिंग हाउस के स्थानकवासी विद्यार्थी हमेशा पूज्यश्री के दर्शनार्थ और छुट्टी वगैरह की अनुकूलता से व्याख्यान सुनने का लाभ उठाते थे। पश्चिम के जड़वाद की शिक्षा लेने वाले युवा वर्ग में स्वधर्म-प्रेम की प्रेरणा प्रस्फुटित करने वाले सद्गृहस्थ त्रिभुवन प्रागजी पारेख का यहां स्मरण किये विना नहीं रहा जाता। सच्ची हार्दिक इच्छा से चुपचाप पर्दे के पीछे रहकर परोपकार के कार्य करने वाले ऐसे नर-रत्न विरले मिलेंगे। अपने परोपकारी जीवन से अनुकरणीय परिपाटी छोड़ जाने वाले पूज्यश्री के इस भक्त के जीवन पर प्रकाश डालना यहां अनुचित नहीं होगा।

अन्य गांवों से राजकोट में पढ़ने के लिए आने वाले विद्यार्थियों की तकलीफ का अनुभव

कर राजकोट में वणिक जैन बोर्डिंग प्रारंभ करने वाले यही सद्गृहस्थ हैं जिन्होंने जीवन पर्यन्त इसके लिए श्रम उठाया है। इतना ही नहीं, परन्तु साढ़े तेरह हजार वर्गगज जमीन हालाती में छात्रावास के लिए उन्होंने ही दी है। और उस पर रुपये 25,000/- खर्च कर छात्रावास का मकान तैयार किया गया है। इस संस्था से आज अनेकानेक विद्यार्थी लाभ ले रहे हैं और अपने धर्म तत्वों का भी पालन कर भाग्यशाली बन रहे हैं।

वे अनाथ या बेसहारा विद्यार्थियों को अपने यहां रखकर एवं भोजन खिलाकर एवं अन्य सेवा-चाकरी करके पढ़ाते थे और उनकी पत्नी भी इस कार्य में उन्हें मदद देती थी। जहां-जहां उनकी बदली हुई वहां-वहां उन्होंने परोपकार के कई कार्य किये हैं। उनका इसके साथ दिया हुआ फोटो उनके शांत और निराभिमानी परोपकारी जीवन की झलक पाठकों को देगा। उनकी स्वधर्म पर बहुत गहरी श्रद्धा थी और वे पौषध-संवर बहुत करते थे। अपने धर्म के ज्ञान के लाभ के साथ व्यवहारिक ज्ञान की सुविधा हो जाय तो अत्यन्त लाभ हो, इसलिये उन्होंने एक बड़ी संस्था कायम करने का प्रयास भी किया था। रतलाम जैन ट्रेनिंग कॉलेज वहां से उठाकर राजकोट लाने के लिए वे रतलाम कमेटी में गए थे और कमेटी ने बहुत खुशी से यह संस्था उन्हें सौंपी थी, परन्तु समाज को यह सेवा देने की उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई और सं. 1974 के वैशाख वदी 11 के रोज उनका स्वर्गवास हो जाने से रतलाम स्टेशन पर गया हुआ कॉलेज का सामान वापिस लाना पड़ा था। परोपकार के कार्य के लिए ही उन्होंने भविष्य की शुभ आशाएं होते भी नौकरी से छुट्टी लेकर परोपकारी जीवन बिताया था। उनके स्मरण के लिए उनके मित्रों ने रुपये 3,000/- एकत्रित कर उनके नाम का राजकोट पिंजरापोल में एक शिलापट्ट लगवाया था जिसकी नींव धर्मपुर के स्वर्गीय महाराणा श्री मोहनदेवजी ने रखी थी।

सद्गृहस्थ त्रिभुवन भाई के जेष्ठ (बड़े-अग्रज) स्व.बंधु देवजी भाई का अनुकरण कर वे सदैव अपने धन का सदुपयोग करते। लेखक का उनके साथ स्वाधार्मिक संबंध था और समय-समय पर उनका परस्पर मिलना-जुलना होता था। वे संत समागम के लिए जयपुर भी पधारे थे और जहां-जहां पूज्यश्री का चातुर्मास होता था वहां-वहां पहुंचते थे।

इन सद्गृहस्थ की प्रेरणा के अनुसार छात्रावास का अपना मकान और एक 'सनीटोरियम' राजकोट में शीघ्र तैयार होते हुए हम देखेंगे। उनका अनुकरण करने को प्रेरित करने के लिए ही इतने विस्तार से उनके जीवन क्रम का उल्लेख आवश्यक माना गया है।

पूज्यश्री ने राजकोट का चातुर्मास पूर्ण कर जब विहार किया तब वहां धर्मप्रेमी श्रोताओं एवं श्रावकों को बहुत धक्का पहुंचा था। श्रीयुत् सौभागचंद वीरचंद मोदी जो 'सुभागी' के नाम से प्रसिद्ध हैं उन्होंने गद्गद् कंठ से निम्न काव्य पाठ कर श्रोताओं को धैर्य बंधाया था।

सवैया

बुलबुल बाग भी उडी जशे, पण रागथी रागीजनों रिझवीने,
इंद्रधनुष समाई जशे, पण रंगथी सर्वनी आंख भरीने।
केशरी अन्य अरण जशे, वीर हाकथी जंगल नेगजबी ने,
तेमज संत श्रीलाल जशे, बहुभेख अलेख अहिं जगवी ने।।

अध्याय 25 : सौराष्ट्र का सफल प्रवास

राजकोट का चातुर्मास पूर्ण होने के बाद संवत् 1968 के मगसर बदी 1 के रोज विहार करके पूज्यश्री गोंडल पधारे। गोंडल में श्रीजी महाराज के प्रवचन में बहुत से मुसलमान भाई भी आते थे। पूज्य श्री के सदुपदेश का सुंदर असर उनके हृदय पर इतना अधिक हुआ था कि जीव दया के लिये जो रुपया (फंड) एकत्र किया गया था उसमें मुसलमान भाइयों ने भी अच्छी रकम दी थी। पूज्यश्री ने गोंडल से विहार किया तब मुसलमान भाइयों ने गोंडल में और ठहर कर आपकी अमृतवाणी सुनने का लाभ देने की बहुत आग्रहपूर्वक अर्ज की थी।

गोंडल से विहार कर गोमटा, वीरपुर, पीठड़िया, जैतपुर और जेतलसर हो पूज्यश्री धोराजी पधारे। यहां दशा श्रीमाली जाति के भव्य मकान में पूज्यश्री विराजते थे। और व्याख्यान में स्व-परमति हिन्दू, मुसलमान तथा सरकारी कर्मचारी इत्यादि हजारों की संख्या में उपस्थित होते थे। धोराजी से जल्द ही विहार करने का पूज्यश्री का विचार था परन्तु पैर में तकलीफ हो जाने से एक माह धोराजी में रुकना पड़ा था जिसके फलस्वरूप वहां धर्म की बहुत ही उन्नति हुई थी। बाहर से भी लोग बड़ी संख्या में पूज्यश्री के दर्शनों के लिए आये और आते थे।

कंठाल के श्रावक-श्राविकाओं का अत्यन्त आग्रह देख एवं उनके धर्म के प्रति अनुराग व प्रेम की प्रशंसा सुनकर पूज्यश्री की इच्छा कंठाल (वेरावल, मांगरोल और पोरबंदर) में विचरने की थी इसलिये धोराजी से विहार कर पूज्यश्री जूनागढ़ पधारे। वहाँ भी धर्म का बहुत उद्योत हुआ। वहां से अनुक्रम से विहार करते-करते श्रीजी महाराज वेरावल पधारे और वहां बहुत धार्मिक उपकार हुआ।

वेरावल से विहार कर चोरवाड़ हो श्रीजी महाराज माघ बदी 10 के रोज मांगरोल पधारे। उस समय मांगरोल में गोंडल संप्रदाय के मुनि श्री जयचन्द्रजी स्वामी विराजते थे। वे आचार्यश्री के पधारने के समाचार सुन बहुत आनन्दित हुए और उन्हें लेने के लिए मांगरोल शहर के बाहर कितनी ही दूर तक आये। श्रावक भी बहुत संख्या में सन्मुख आये थे। यहां भी स्वमति-अन्यमति लोग बड़ी संख्या में पूज्यश्री के व्याख्यान का लाभ उठाते थे और मुनि श्री जयचन्द्रजी स्वामी इत्यादि भी आपके व्याख्यान में पधारते थे। पूज्यश्री यहां 15 दिन ठहरे थे।

वहां से विहार कर श्रीजी महाराज पोरबंदर पधारे थे और अपने अमूल्य सदुपदेश से पोरबंदर निवासी जैन-अजैन प्रजा पर सुन्दर असर डाला था। मांगरोल, पोरबंदर और वेरावल के लोगों के धर्म-प्रेम की पूज्यश्री ने अत्यन्त प्रशंसा की थी और श्राविकाओं का ज्ञानाभ्यास बहुत संतोषकारक देख कर पूज्यश्री को सानंदाश्चर्य हुआ था। स्त्री शिक्षा की ओर विशेष लक्ष्य होना चाहिए और उन्हें जैन-धर्म के रहस्यों को बहुत सुन्दर रीति से समझाना चाहिये ऐसी पूज्यश्री की मान्यता थी।

पोरबंदर से क्रमशः विहार करते हुए भाण्वड़ हो श्रीजी महाराज जामनगर पधारे और वहां एक मास तक विराजमान रहे। जामनगर में शास्त्रों के ज्ञाता श्रावकों के साथ की गई चर्चा में पूज्य श्री को बड़ा आनन्द आता था और पूज्य श्री के प्रताप से श्रावकों के ज्ञान में बहुत अभिवृद्धि हुई थी।

अध्याय 26 : मोरवी का मंगल चातुर्मास : 'कुएं में हाथी'

मोरवी नरेश और श्रावकों के बहुत समय से चले आ रहे सत्याग्रह एवं विनती अन्ततः सफल हुई। पूज्यश्री का सं. 1969 का चातुर्मास मोरवी में हुआ। पूज्यश्री की अगवानी हेतु कितने ही शिष्य पहले से ही पधार गये थे एवं जैनशाला में ठहरे थे। पूज्य साहिब का स्वागत मोरवी के अनगिनत श्रावक-श्राविकाओं ने सामने जाकर किया था। वे मन्दिर मार्गी भाइयों की धर्मशाला में ठहरे थे। जैनशाला के मकान में तथा एक दूसरे भव्य मकान में उनके ठहरने की व्यवस्था हेतु कुछ रिपेअर का काम हुआ यह सुन पूज्यश्री को बड़ा खेद हुआ और उन्होंने उसमें उतरे हुए शिष्यों को (अकल्प) प्रायश्चित दिया। ये दोनों मकान चातुर्मास के लिए शास्त्रानुसार अनुपयुक्त हो जाने से वे सेठ सुखलालजी मोनजी के मकान में पधारे, परन्तु श्रीजी के प्रभावशाली व्याख्यान के श्रवणार्थ और दर्शनों के लिए बड़ी भारी भीड़ होने लगी।

मोरवी में पधारते ही पूज्यश्री ने पचीस लाख गाथाओं का स्वाध्याय करने का प्रण किया था। बहुत समय तक पूज्यश्री एकांत स्वाध्याय में ही अपना समय लगाते थे। मोरवी में दो हजार तो स्थानकवासी संघ के ही श्रावक-श्राविकाएँ थे। इसके अलावा मंदिर मार्गी तथा अन्य जैनेतर प्रजा भी व्याख्यान का लाभ लेने के लिए आतुर थी। इन सबको व्याख्यान का लाभ मिले इसलिये बड़े मकान की आवश्यकता थी जो रा. रा. हेमचन्द दामजी भाई मेहता एल.सी.ई. इंजीनियर के अथक परिश्रम से सफल हुई। उन्होंने महाराज साहिब को अर्ज कर दरबारगढ़ के पास के स्कूल के विद्यार्थियों को दूसरे मकान में भिजवाया। और स्कूल में पूज्य श्री के द्वारा चातुर्मास किया गया।

यह चातुर्मास इतना सफल हुआ कि वृद्ध से वृद्ध श्रावकों के मुंह से मैंने सुना है कि ऐसा चातुर्मास हमारी जिन्दगी में हमने नहीं देखा। इन वृद्धों में से एक संघवी सांकलचंदजी जो रतलाम युवराज पदवी के महोत्सव के समय भी उपस्थित थे, वे समय-समय पर कहते थे कि 'कुएं में हाथी किसने डाल दिया' अर्थात् मोरवी जैसे कोने में पड़े हुए ग्राम में पूज्य साहिब जैसे प्रसिद्ध विदेशी मुनिराज का चातुर्मास कैसा सफल हुआ? विशेष आनन्द की बात तो यह थी कि दर्शनार्थ आने वाले तमाम श्रावकों का स्वागत करने का पूरा खर्च एक ही सद्गृहस्थ सेठश्री सुखलालजी मोनजी ने उठा लिया था। दूर दराज प्रान्तों से आने वाले स्वधर्मी बंधुओं के लिये स्वयंसेवक सब प्रकार की सुविधा उपलब्ध कर देते थे। इतना ही नहीं मोरवी के नगर-सेठ स्वयं दूसरे सेठों के साथ हमेशा मेहमानों के निवास स्थानों पर उनकी खबर लेने पधारते थे और भिन्न-भिन्न घरों पर पधारने का निमंत्रण देकर अपने को (अहोभाग्यशाली) समझते थे।

संवत् 1968 के आषाढ़ में मोरवी में हैजे का उपद्रव प्रारंभ हुआ। कितने ही श्रीमंत ग्राम छोड़कर बाहर जाने की तैयारी में थे, परन्तु पूज्य साहिब के पधारने से यह बीमारी नरम हो गई थी। एक दिन संध्या समय खिड़की के पास स्वाध्याय करते पवन बदला हुआ देख ऐसे प्राकृतिक परिवर्तन का अनुभव रखने वाले पूज्य साहिब ने समीप में बैठे हुए मनुष्यों को तुरंत समझाया कि

यह पवन का परिवर्तन सुधरने की आशा दिलाता है। ऐसे समय श्री शांतिनाथजी के जाप से कई जगह शांति हुई है। मित्र-मण्डल के साथ युवावर्ग बहुत रात तक पूज्यश्री के पास धर्म चर्चा कर धर्मज्ञान बढ़ाते थे। दूसरे दिन सोमवार की आज्ञा होने से श्री शांति जाप की योजना तय की गई और 51 उत्साही श्रावकों ने उसी स्कूल में नीचे के शांत भाग में बराबर 12 बजे सामायिक ग्रहण कर जाप करने की व्यक्तिगत सूचना इस पुस्तक के लेखक को मिली। परिणाम स्वरूप बारह बजते ही श्री शांतिनाथ का जाप प्रारंभ हुआ। सवा लाख जाप होने के बाद सब साथ मिलकर पूज्यश्री के पास मंगलिक सुनने गये। इस जाप के समय का शांतिपूर्ण अलौकिक दृश्य तथा उसके पीछे निहित पवित्र जन कल्याण भावना ने उपस्थित महानुभावों के मन-मस्तिष्क को इतना अधिक प्रभावित किया कि वे कहने लगे कि उनकी जिंदगी में ऐसा अपूर्व अवसर प्रथम बार ही देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। शुभ शकुन समझ सब साधकों को नारियल दिये गये थे। पूज्य श्री के अनुमान के अनुसार पवन के बदलाव एवं शान्ति जाप की अपूर्व महिमा से वह भयंकर बीमारी शांत हो गई और श्रेष्ठी वर्ग से तो इस बीमारी के टलने तक एक भी व्यक्ति इस बीमारी का शिकार नहीं हुआ।

अपनी जन्मभूमि में सद्भाग्य से प्राप्त पू. श्री जी के उपदेश के अमृत का पान करने को लेखक भी चातुर्मास के दौरान मोरवी ही रहा था। देश-देश के रीति-रिवाजों की भिन्नता के कारण मुझे अवगत कराने के पूज्यश्री ने अनेक बार मुझे संकेत देकर सावधान किया था तद्नुसार पूज्यश्री प्रसंगवत् की हुई प्रत्येक विनय को सहर्ष स्वीकृति देते थे। पूज्यश्री की वाणी इतनी मीठी और सरल थी कि उनके व्याख्यान की भाषा हिन्दी होते हुए भी अनपढ़ स्त्रियाँ भी उस उपदेश को बराबर समझ सकती थीं। एक बार गोचरी के समय एक दरजी भाई ने पूज्यश्री को अपने यहां पधारने के लिए आग्रह किया। मोरवी में छः सौ घर वणिकों के एवं उसके अलावा काफी घर सोनी, कंदोई, वणिकों और ब्राह्मणों इत्यादि के होने से किसी दरजी के यहाँ हमारे धर्मगुरु वहरने (गोचरी के लिये) जायें ऐसा इस तरफ गौरव पूर्ण नहीं गिना जाता है ऐसा समझ कर पूज्य श्री ने फिर ऐसे वर्ग की गोचरी खासकर नहीं की। राजकोट में भी वस्त्र संवंधी सहज अर्ज की थी जिसके फलस्वरूप शुद्ध वैष्णव भी पूज्य श्री के पास बैठकर उनके कपड़े का स्पर्श करने में नहीं हिचकते थे।

मोरवी की अनुकूलता को दृष्टिगत रखकर एक मुनि सुबह साढ़े छ बजे व्याख्यान प्रारंभ कर देते थे। और पूज्य श्री सेवा सात बजे से नौ बजे तक अखंडित रूप से उपदेश रूपी अमृत बरसाते थे। जैन और जैनेतर प्रजा व्याख्यान में से अपने-अपने ग्रहण योग्य वहुत सी धर्म सामग्री हृदयगंम कर लेती थी। लोग मुक्तकण्ठ से यह स्वीकार करते थे कि यहां तो अभी 'चौथा आरा' वर्तता है। श्री जम्बू चरित्र पर पूज्य श्री का व्याख्यान थोड़े-वहुत मनुष्यों की आंखें तो हमेशा गीली कराता ही था, मगर तरह-तरह के असरकारक ऐतिहासिक दृष्टान्त जैसे चलती मां चीलती, खांडो-पापड, उदयपुर के राणाओं, जोधपुर के महाराजाओं एवं जयपुर के महाराज पर एक कवि की लिखी हुई हुंडी, कच्छ के लाखा फूलाणी इत्यादि का श्रोताओं पर वड़ा भारी असर होता था और व्याख्यान के लाभ से वंचित रहने वाले लोग अपने अंतराय कर्म के लिए वड़े दुःखी होते थे। श्रावकों की दुकानें तो व्याख्यान वाद ही खुलती थीं।

वनावटी और कल्पित कथाओं के वे कायल नहीं थे। सत्यकथा से या वने जहाँ तक अपने अनुभव में आई हुई घटनाओं या ऐतिहासिक दृधांतों से ही पूज्य श्री अपने सिद्धांतों को पुष्टि देते थे।

उन्होंने अपने काठियावाड़ के प्रवास में इसके प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास का अभ्यास किया था। भिन्न-भिन्न राज्यों के अनुभवी अमलदारों और विद्वानों से काठियावाड़ की कीर्ति का पान किया था। खुद दुर्लभजी भाई हमेशा एक घंटे भर तक पूज्य श्री को इतिहास पढ़कर सुनाते थे। प्रसिद्ध वक्ता रा.रा. दफ्तरी मगनलाल 'साधना' नामक पुस्तक समझाते और देसाई वनेचंद राजपाल जैसे श्रीमन्त श्रावक दोपहर की निद्रा को एक तरफ रख दोपहर को 12 से 2 बजे तक इतिहास इत्यादि की पुस्तकें पढ़कर सुनाते थे। जो हमेशा खस की टट्टी की हवा में दोपहर में विश्रान्ति लिया करते थे वे निद्रा को भुला कर पूज्य श्री के प्रताप से भर दोपहरी में पढ़ने में लीन हो जाते थे, उनकी सुपत्नी अ.सौ. नानूबाई तथा उनकी विद्याविलासी पुत्रियां भी पूज्य श्री की सेवा कर विविध रीति से ज्ञान की वृद्धि करती थी। गोंडल संप्रदाय की आर्याजी मणिवाई ने पूज्यश्री को सूत्र सिखाये थे, मारवाड़ से जो श्रावक-श्राविकायें दर्शन करने आते थे उनके लिए पूज्य श्री के सामने की प्रथम पंक्ति में ही जगह रिजर्व रखी जाती थी और देसाई वनेचंद भाई जैसे श्रीमन्त आने वाले श्रावकों का खड़े होकर सम्मान करते व उन्हें आगे बिठाते थे। श्रीमती नानूवाई ने पूज्यश्री से निडर होकर निवेदन किया था कि, 'मारवाड़ी श्रावकों को आप चाहे जितने दृढ़ सम्यकृत्वधारी गिनें परन्तु उनमें से सौ में से 90 तो गले में या हाथ में या किसी जगह डोरियाँ या तावीज बांधने वाले हैं। श्री जिनेश्वरदेव की श्रद्धा या सम्यकृत्व के मादलिये ही धारण किये हो तो हमें कुछ कहना नहीं है परन्तु यदि वे दूसरों के हों तो स्वधर्म पर उनकी पूर्ण श्रद्धा या विश्वास नहीं है ऐसा हम मानेंगे। श्रीमती नानूबाई की पुत्रियां विभिन्न प्रसंगों पर पूज्यश्री की स्तुति संस्कृत काव्य बनाकर कहतीं और जितना भी लाभ लूट सकती थीं लूटती थीं। पूज्य श्रीजी साहिब ने उनके शास्त्री के पास से मुनिश्री चांदमलजी आदि को संस्कृत का अभ्यास कराया था।

पूज्य श्री पंद्रह साधुओं सहित चातुर्मास कर रहे थे। पूज्य श्री का शिष्य मंडल स्वाध्याय और ध्यान में इतना अधिक लीन रहता था कि उनमें से दो-चार को भी कभी एकत्रित हो गप-शप करते या व्यर्थ हँसी-दिल्लगी करते हमने नहीं देखा। स्वाध्याय और शास्त्र वचनों की धुन लगी रहती थी। संध्या को प्रतिक्रमण किये बाद ज्ञान-चर्चा और प्रश्नोत्तरों की धूम मचती थी। प्रतिक्रमण पूर्ण होते ही जैनशाला के विद्यार्थी पूज्य श्री को वंदना करते और सब हाथ जोड़ स्तुति बोलते थे। पूज्य श्री को प्रिय नीचे की स्तुति हमेशा की जाती थी। उस समय पूज्य श्री नयन मूंद कर उसमें तल्लीन हो जाते थे। पूज्य श्री ने उसे कंठस्थ याद किया था और पूज्य श्री के साथ के मुनि मण्डल ने भी इस स्तुति को कंठाग्र कर लिया था।

गुणवंती गुजरात (यह राग)

जयंवता प्रभु वीर, अमारा जयवंता प्रभु वीर।

शासन नायक धीर, अमारा जयवंता प्रभु वीर।

शास्त्र सरोवर-सरस आपनुं, तत्व रसे भरपूर।

तैमां न्हातां तरतां नित्ये, शुद्ध थाय अम उर। अमारा

सात्विक भावे जेह प्रकाश्युं, वास्तविक तत्व-स्वरूप।

आस्तिकतामां रमिये [illegible] अनूप। अमारा

आप प्रकाशित ज्ञान-बगीचे, खील्या छे बहू फूल।
सुगंधी वायुनी सरस लहरथी, अमे छीए मश्गूल। अमारा
आप विशाल-विचार भूमिए, उछर्या कल्प अंकूर।
रस-भर तेना फल चाखीने, रहीशुं आप हजूर। अमारा
नाम आपनुं निशिदिन प्यारूं, रमी रह्यू अम ऊर।
तेनी खातर प्राण अर्पवा, अपने छे मंजूर। अमारा
मार्ग वतावा अम ऊपरजे, कर्यो महा उपकार।
अर्पण करिये सर्व तथापि, थाय न प्रत्युपकार। अमारा
चरण आपनां शरण हमारे, मरण जन्म भय दूर।
(रत्नचंद्र) जेम लोभी चातक, तम दर्शन आतुर। अमारा

–शतावधानी पं. रत्नचंद्रजी

जैन शाला के विद्यार्थी जिन पर कि पूज्य श्री का बड़ा स्नेहभाव था उन विद्यार्थियों को आप पास के चित्र में देख सकेंगे।

नामदार मोरवी महाराज साहिव के समीप के संवंधी शिवसिंहजी व्याख्यान में समय-समय पर पधारते थे उनका निम्नांकित काव्य उनके मनोभावों की अभिव्यक्ति देता है–

कवित्त

मालवदेश पवित्र करी श्री मुनीशजी, मोरबी मांहि पधार्या।
मोरवी संघ तणी जोइ लागणी दीनदयाल दिले हरषाया।
श्रीलालजी स्वामी छो विद्या विशारद शास्त्र तणा प्रभु पार ने पाम्या।
अधम उधारी करीने कृपा मुनि आशीर्वाद अनेक पाम्या।
महान् आभार 'मयुरपुरी' संघ आपतणो स्वामी दिलमां माने-
दर्शन आप तणों शिष्य-मंडली सहित थयां घणे पूरव दाने।
एवा ग्रहरूप शिष्य संघाते चन्द्र-तुल्य गुरु पूर्ण-प्रकाशी।
मोरवी संघ हृदय कुमुदो दर्शन थी प्रभु थाय विकाशी।
पावन करी भूमि पाद-पद्मश्री सहज दयालु दया दिले लावी
धर्मांकुरो करो जीवित, उपदेशमृत-वारि वरसावी।
एज इच्छ आगमनथी आपना कल्याण-कारक अम उर भावी।
संसार-सागर तारो 'शिव' कहे अरिहंत अरिहंत मुक भजावी।

अध्याय 27 : मोरवी में तपश्चर्या महोत्सव

सोमवार या अवकाश के दिन मोरवी में विराजते मुनियों के पास जैन और जैनेतर विद्वान् वकील और अमलदार मिल कर ज्ञान चर्चा चलाते थे और मुख्याध्यापक एवं राज वैद्य के अलावा महामहोपाध्याय साक्षरोत्तम श्रीयुत शंकरलाल माहेश्वर भी विभिन्न-प्रसंगों पर पूज्य श्री के पास आते थे।

पूज्य श्री के पधारने से हैजा बिल्कुल बंद हो गया था इसलिये तमाम नगरवासियों की पूज्यश्री की ओर पूज्य-बुद्धि हो गई थी और आबाल वृद्ध सबकी यह मान्यता थी कि महात्माओं के पधारने से ही यह दुःख दूर हुआ है। मार्ग में निकलते तब राजा-महाराजाओं को भी न मिले ऐसा आंतरिक मान सब जातियों और सभी धर्मों के अनुयायियों की ओर से आपको मिलता था। तपस्वी मुनि श्री छगनलाल जी ने 61 उपवास किये थे। ऐसी तपश्चर्या मोरवी में प्रथम ही होने से सुनने वालों में भी बहुत उत्साह था। सुबह और दोपहर दोनों प्रवचन के समय लगातार 61 दिन तक प्रभावना अखंडित रूप से चालू रही जिसमें सच्चा प्रभाव तो यह था कि प्रभावना के लिये किसी को कुछ कहना नहीं पड़ता था। पारणे के दिन पूज्य श्री तपस्वीजी के साथ गोचरी पधारे थे और चार घंटे तक फिर कर बीच में किसी घर को न टालते हुए सूझता मिला वह आहार-पानी लेकर सबको लाभ पहुंचाया था। कितने ही मनुष्यों ने पारणे का प्रथम लाभ मुझे मिले तो मैं अमुक प्रतिज्ञा करता हूं ऐसी पूज्य श्री से विनय की थी परंतु पूज्य श्री तो पक्षपात छोड़कर रंक-श्रीमंत सभी के यहां समान रूप से गोचरी का लाभ देने पधारे थे।

तपस्वीजी के दर्शन करने के लिये दूर-दूर प्रान्तों से कई दर्शनार्थी लोग इकट्ठे हुए थे। उनका योग्य स्वागत हुआ था। तपश्चर्या के पूर्ण होने के अंतिम दिन अनेक संवर पौषध आदि हुए थे, और पारणे के दिन उत्सव जैसा दृश्य था। जीवों को अभय-दान दिया गया एवं लूले-लंगड़े जानवरों को गुड़ खिलाया गया और अनेक प्रकार के दान पुण्य हुए। जीव-दया के लिये चंदा एकत्रित हुआ था जिससे कई जीवों को राहत पहुंचाई गई थीं।

पूज्य श्री का शिष्य-मण्डल हमेशा संयम से संबंध रखने वाली क्रियाओं और स्वाध्याय में तल्लीन रहता था और पत्र व्यवहार करना काल्पनिक होने से ज्ञान चर्चा के सिवाय अन्य प्रवृत्ति में पड़ने का कोई कारण ही न था।

प्रतिक्रमण किये पश्चात् खास दोष या पाप के प्रायश्चित्त के लिए साष्टांग नमन हुए बाद दोनों हाथ जोड़ शुद्ध हृदय से आत्म विशुद्धि की औषधि की याचना (मांग) होती थी और पूज्य श्री उपवास, बेला, तेला इत्यादि प्रायश्चित्त फरमाते थे, तब इस पदवी का प्रभाव और शिष्यों की दोष-मुक्त होने की आकांक्षा आंखों से देखने वाले का राजा-महाराजाओं से भी विशेष प्रभावशाली पूज्य पदवी की ओर पूज्य-भाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता था। अपनी बारी से नया पाठ लेने आने वाले और प्रश्न पूछने वाले का मन संतुष्ट हो ऐसा पूज्य श्री समाधान कर देते थे और अपने नित्य

नियम में व्यस्त रहते थे। पूज्य श्री के सुबह के चार बजे से रात 11 बजे तक के कार्यक्रम को जितने मुनिराजों ने हृदयस्थ कर लिया होगा वे चौथे आरे की सी बानगी की बड़ाई किये बिना नहीं रहेंगे। इस पवित्र भारतभूमि में अनेक धर्मात्मा होंगे परन्तु श्वे.स्था: जैन समाज में पूज्य श्री जी की समानता में खड़े रहने वाले इस समय बिरले मुनिराज ही होंगे। ऐसा होते हुए भी पूज्य श्री की विशेषता यह थी कि प्रवचन में या बातचीत में कभी किसी साधु की आचार शिथिलता या निंदा का एक अक्षर भी पूज्य श्री के मुंह से नहीं निकलता था। गुण-ग्राहक बुद्धि उनका यह आदर्श गुण हर एक को उनकी अपनी ओर खींच लेता था। आहार लेते समय वे खास चेतावनी देते थे और युवा शिष्यों को तो कई दिन तक रूखा-सूखा खाना ही खाने देते थे। इंद्रियों को वश में करने के लिए भोजन की बहुत सावधानी रखने का उनका आदेश था। काठियावाड़ और खासकर मोरवी में गरमागरम बाजरी का रोटला और उड़द की दाल वे बहुत पसंद करते थे और कहते थे कि श्रावक अपने आप पेट में नहीं खाते हैं परन्तु मुनिराजों के पात्र घी, दूध से या मिष्ठान की पौष्टिक खुराक से भर देते हैं यह उनका साधुओं की ओर अपनापन का भाव है परन्तु परिणाम हमेशा विचारते रहना चाहिए। ऐसा पौष्टिक आहार करना, आलसी हो लेटना और फिर इंद्रियां मस्ती करें, तब अपने वेष को भूल इंद्रियों का दास होना इसकी बजाय शुरू से ही सादा भोजन करना साधुओं का पहला धर्म है और कभी-कभी अगर पौष्टिक भोजन कर लिया गया तो तपश्चर्या के द्वारा उसका वेग कम कर देना चाहिए।

जो खुद अपने आप तपश्चर्या नहीं कर सकता है तो उसकी ओर से दूसरों को यह उपदेश कैसे मिल सकता है ? पहेल आप ऐसा करें और अपना बर्ताव उसके अनुसार रखें तब ही उपदेश दिया जा सकता है पाट पर बैठ ललाकरने वाले तो लाखों हैं परन्तु कहने जैसे रहने वाले ही धन्य हैं। वे ही वंदनीय हैं, उन्हीं का संयम सफल है।

पूज्य श्री फरमाते थे कि रोगियों को सुधारने की औषधियों के बदले इस जड़वाद के समय में अनीतिवान, आलसी, व्यर्थ जीवन बिताने वालों को सुधारने की संस्थाएं कायम या स्थापित होनी चाहिए। शास्त्र सदुपदेश के श्रवण रूपी औषधि का सहज नीतिमय जीवन विता कर अनुपालन करना चाहिए।

मोरवी के उस समय के नगर सेठ अमृतलाल वर्द्धमान की नम्रता और कार्य निपुणत की पूज्य श्री तारीफ करते और मोरवी के आपसी सौहार्द का अनुकरण करने के लिये वे सवको उपदेश देते थे। सवा पांच सौ घरों का इतना वड़ा श्री संघ सिर्फ एक ही अग्रेसर की आज्ञा में चले इसका अनुभव पूज्यश्री को मोरवी में ही हुआ। नगरसेठ की प्रमुखता के नीचे दूसरे चार सभ्य श्रीसंघ की ओर से चुने हुए रहते हैं। समाज ने इन पांचों को सारी सत्ता दे रखी थी। ये पांचों पंच जो करते हैं वह संपूर्ण संघ (पांच सौ घर ही) शिरोधार्य करते थे।

अजमेर से राय वहादुर सेठ छगनमलजी भी मोरवी में पूज्य श्री के दर्शनों के लाभ हेतु पधारे थे और अपनी तरफ से स्वामी वत्सल कर एक ही स्थान पर सव भाइयों के दर्शन का लाभ लिया था। उस समय सेठ वर्द्धमाणजी पीतलिया भी वहां उपस्थित थे उन्होंने भी शक्कर की लहाणी कर लाभ लिया था। दर्शन करने आने वाले विभिन्न श्रीमंतों ने भी जीव-दया इत्यादि में अच्छा खर्च किया था।

पूज्य श्री ने एक दिन 'ज्वार के मोती बनने' का दृष्टांत दिया था। उस समय का ला लेकर दुर्लभजी भाई के रिश्तेदार ने सजोड़ शीलव्रत का व्रत लिया था और इस धार्मिक वृत्ति खुशी में 'नक्कारशी' का जीमन करने का हमें अवसर मिला था। पूज्य श्री को प्रातःकाल के सम आज्ञा देने का मुझे सौभाग्य प्राप्त होता था और इसी कारण कुछ न कुछ त्याग व्रत का भी ला मिलता था। पूज्य श्री ने चातुर्मास में चारों स्कंध मुझे कराये थे और आत्म प्रशंसा के लिये मु माफी दी जाय तो मुझे यहां कहना ही पड़ेगा कि पूज्य श्री ने मुझे विशेष प्रवृत्तियां त्याग निवृत्तिम जीवन बिताना सिखाया था। विस्तार वाला कुटुम्ब और विशाल व्यापार होने से दौड़ादौड़ कर पड़ती थी, परन्तु पूज्य श्री की अभिदृष्टि से इस चातुर्मास में आराम के साथ आनन्द का अनुभ लिया था। पूज्य श्री के प्रवचन में हमेशा कुछ न कुछ नया ज्ञान मिलता था। शास्त्रों के अर्थ सर कर खूबी से समझाते और बीच-बीच में काव्य और उदाहरणों से ऐसा अद्भुत रस उत्पन्न होता कि चाहे जितनी देर हो जाय तो भी उठने की इच्छा न होती थी।

पूज्य श्री के विहार के समय का दृश्य मुझे जीवन भर याद रहेगा। बाजार में उच्च स्वर 'जय-जय' के गगन भेदी आवाज और 'घणी खम्मा' के मारवाड़ी पुकार जो बड़े-बड़े महाराणाओं सवारी में भी न सुने जायें, पूज्य श्री की कीर्ति को प्रसारित करते थे। मारवाड़ी स्त्रियां जहां पूज्य श्र के पांव गिरे हों वहां की रज अपनी झोली में लेकर सिर चढ़ाती थी और मानो वह अमूल्य प्रसा हो उसे ले जाने के लिए रुमाल में बांधती थी। पूज्यश्री ने मोरवी को इतना अधिक अपने में ली बना दिया था कि पूज्य श्री से विदा होते समय अनेकानेक विभिन्न अवस्थाओं के श्रावक आँखों आंसू बहाने लगे थे। नगरसेठ के भाई दुर्लभजी वर्द्धमान को तो मूर्छा तक आ गई थी। दुर्लभजी पिता दो चार दिन पूरे जीमे भी न थे और पीछे-पीछे सनाला, टंकारा तथा जामनगर तक गये थे स्वर्गवासी इंजीनियर गोकुलदास भाई भी सनाले में पूज्य श्री से विदा होते समय अश्रुपात करने ल गए थे। इन सरल स्वभावी भोले भक्तों को फिर से लाभ देने के लिए पूज्यश्री को काठियावाड़ कुछ और समय ठहराने की सबकी इच्छा थी परन्तु वह पूरी न हो सकी।

अध्याय 28 : परिचय

ले. शतावधानी पं. रत्नचंद्रजी महाराज

पूज्य प्रवर श्री श्रीलालजी महाराज काठियावाड़ में पधारे तब हम कच्छ में थे। परन्तु वहां उनकी स्तुति सुनकर उनसे मिलने के लिये मन में इच्छा जागृत हुई। सं. 1968 के साल में कच्छ का रण पार कर झालावाड़ में आये। लींबड़ी साधु परिषद का कार्य पूर्ण होने पर हमारा चातुर्मास धोराजी होना निश्चित था, अतएव इस तरफ प्रयाण किया। तब श्रीलालजी महाराज बांकानेर विराजते हैं ऐसा समाचार सुन सं. 1969 के आषाढ़ वदी 13 के रोज महाराज श्री गुलाबचन्द जी स्वामी, महाराज श्री वीरजी स्वामी आदि ठाणे चार से बांकानेर पहुँचे। वहां पूज्यपाद के दर्शन हुए। हम उपाश्रय में ठहरे। वे भी ठाणे 10 से उपाश्रय के पास दशा-श्रीमाली की धर्मशाला में ठहरे थे। तमाम दिन और रात के दस बजे तक इधर-उधर की ज्ञान की बातें चलती थी। उपाश्रय और धर्मशाला एक दूसरे के इतने पास थे कि रात को भी खिड़की में से भी आमने-सामने एक-दूसरे की बातचीत सुनी जा सकती थी।

काठियावाड़ के दूसरे शहरों की तरह यहां भी पूज्यपाद ही प्रवचन दें, यह पहले दिन ही ठहराव हो चुका था इसीलिये धर्मशाला में व्याख्यान होता था। वहां हम पूज्यपाद की वाणी को सुनने उपस्थित रहते। किसी समय जब पूज्य श्री मुझे फरमाते, तब मैं भी चालू विषय पर बोलता था। सभा में बहनों और भाइयों से हॉल खचाखच भर जाता था। लोगों को पूज्य श्री की वाणी इतनी रस दे रही थी कि दो तीन घंटे तक या इससे भी अधिक समय तक प्रवचन होता रहता था, तो भी किसी की इच्छा जाने की नहीं होती थीं एवं और भी अधिक व्याख्यान होता रहे तो ठीक रहे ऐसी प्रत्येक की जिज्ञासा-रुचि रहती थी। व्याख्यान में शास्त्रीय तात्विक उपदेश के बाद ऐतिहासिक उदाहरण बड़े प्रमाण में आते, उनका शास्त्रीय विषयों के साथ ऐसा मिलान किया जाता था कि सुनने वाले उस समय तल्लीन बन जाते और करुण रस उपस्थित होने के समय आंसुओं की धारा बहने लग जाती थी तथा वीर रस के समय रोमांच खड़े हुए दिखाई देते थे। व्याख्यान की इस शैली से क्या जैन तथा क्या जैनेतर बंधु सब इतने मोहित होते थे कि सबकी यही लालसा रहती थी कि दूसरे दिन की सुबह कब हो, और कब फिर से व्याख्यान प्रारंभ हो। व्याख्यान का समय हर एक आतुरता से देखता था। सत्रह दिन हम साथ रहे, उनमें प्रथम दिनांक से अन्तिम दिनांक तक वृद्धिगत उत्साह ही देखने में आया था।

हम गए उसी दिन पूज्य श्री ने फरमाया कि मुझे चन्द्रपन्नत्ति सूत्र पढ़ना है। मैंने कहा आपको पढ़ाने योग्य मैं नहीं। उन्होंने कहा तुमने गुरुमुख से सुना है तो मुझ पढ़ाओ। मेरा यह नियम है कि कोई भी सूत्र एक समय किसी से पढ़ फिर खुद अपने आप पढ़ूं जिसमें भी चंद्रपन्नत्ति जैसा शास्त्र गुरुगम्य से ही पढ़ना है ऐसा मेरा इरादा है। तब मैंने कहा, बेशक, आपका आग्रह है तो आप और हम दोनों साथ पढ़ेंगे। इसी दिन से पढ़ना प्रारंभ किया। शास्त्र की एक-एक प्रति तो उनके पास

रखते दूसरी एक प्रति टीकावाली लेकर दोपहर को एक वजे से संध्या के पांच बजे तक पढ़ना प्रारंभ रखते थे। लगभग प्रंद्रह दिन में चंद्रपन्नत्ति सूत्र पूर्ण किया। पूज्य श्री की समझ और प्रज्ञा (वुद्धि) इतनी तो सरस थी कि चंद्रपन्नत्ति से भी कदाचित् कोई गहन विषय होता तो भी वे स्वतः अच्छी तरह समझ लें, और दूसरों को समझा दें,परन्तु एक साधारण सूत्र भी आप स्वतः न पढ़ें यह भावना कितने अधिक विनय और विवेक से भरी हुई है यह सहज ही ध्यान में आ जाता है इसीलिये उनकी स्तुति में कहा गया है कि,

'विद्याविवादरहिता विनयेनयुक्ता'

प्राचीन या अर्वाचीन अच्छा हो सो मेरा।

कितने ही वृद्ध प्राचीन पद्धति को ही मान देते हैं तो कितने ही युवा जो नया-नया हो उसे ही स्वीकार करते हैं। सचमुच में ये दोनों विचार भूल से भरे हुए हैं। प्रशंसा या नया चाहे जो हो, अच्छा हो, उसे स्वीकार और खराब हो उसे त्याग देना यह समझदार मनुष्य का गुण है। पूज्यपाद पुरानी या नई पद्धति का आग्रह करने वाले न थे, परन्तु 'भला सो मेरा' इस मंत्र को स्वीकारने वाले होने से वृद्ध एवं युवावर्ग दोनों को एक से प्रिय हो गए थे। राजकोट के युवकों का बड़ा भाग धर्म की ओर अश्रद्धा रखने वाला गिना जाता है, परन्तु पूज्यश्री के राजकोट के चातुर्मास में नास्तिक कोटि में गिना जाने वाला युवावर्ग पूज्यपाद की ओर आकर्षित हो आस्तिक बन गया था, ऐसा कई लोगों के मुंह से सुना। बांकानेर में तो मुझे स्वयं को ही अनुभव हुआ है। बांकानेर की प्रजा की ओर से पब्लिक-व्याख्यान के लिये मुझसे जब आग्रह हुआ तब बांकानेर के जैन युवोंओं ने स्कूल में आम व्याख्यान देने के लिये व्यवस्था की। बांकानेर महाराज साहिब को भी आमंत्रण दिया। तब दरबार अपने स्टाफ सहित वहां पधारे। तमाम सरकारी अफसरों तथा प्रत्येक वर्ग के लोगों से सभा खूब भर गई। इस क्षेत्र में कुछ अंशों में और मारवाड़ में विशेष रूप से पुराने विचार वाले आम व्याख्यान की पद्धति (रीति) को नई कह कर ढकेल देते हैं। जब पूज्यपाद उस रास्ते से निकले उनसे स्कूल में पधारने की प्रार्थना की गई। आप स्वयं वहां पधार गए इतना ही नहीं परंतु चालू विषय को प्राणवान बनाने के लिए आप इतने सुरसमय बोले थे कि सुनने वाली सभा पूरी तरह तल्लीन हो गई थी। पुराने शास्त्रीय विषय की नई शैली से चर्चा करने की उनमें ऐसी खूबी थी कि पुराने तथा नये दोनों वर्गों को ये रुचिकर हो जाती थी। दरबार तथा अन्य श्रोताओं ने दूसरे दिन फिर व्याख्यान के लिए आमंत्रण दिया, तब दूसरा व्याख्यान बीसा श्रीमाली की धर्मशाला में दिया गया था। दोनों व्याख्यानों का असर आम प्रजा पर अच्छा हुआ। सारांश सिर्फ इतना ही है कि पूज्य श्री रूढि को चाहे मान देते तो भी आंतरिक योग्य-अयोग्य का विचारकर रूढ़ि से आत्मा के श्रेयाश्रेय विचार को अधिक मान देते थे। इसीलिये नई और पुरानी दोनों पद्धतियों को पसंद करने वाले उनके जल्दी ही अनुकूल हो जाते थे और पूज्य श्री जिसमें अधिक श्रेय हो उसका अनुकरण कर लोगों को लाभ देते थे।

पूज्यपाद का साहित्य प्रेम

पूज्य श्री जैन-शास्त्र के समर्थ विद्वान् थे। बहुसूत्री, गीतार्थी, शास्त्रवेत्ता, आगमवेत्ता जो-जो उपनाम उन्हें लगाये जायें वे उनके योग्य हैं। मारवाड़ की ओर मुनिवर्ग में संस्कृत का अभ्यास करने की प्रथा प्रचलित होती तो आचार्य श्री संस्कृत के समर्थ पंडित होते, परन्तु उस तरफ इसका प्रचलित न होने से उनकी यह इच्छा मन में ही रह गई थी। बाँकानेर के थोड़े दिन के परिचय के

पश्चात् पूज्य श्री ने फरमाया कि यदि अपना भावी चातुर्मास साथ हो तो आपके पास बन सके तो चांदमल जी छोटे साधु को संस्कृत का अभ्यास कराऊं और मैं भी संस्कृत में न्याय की पुस्तकें सुनूं तथा उन पर विचार करूं। पूज्य श्री की इस अभिव्यक्ति से मेरे मन में भी अत्यंत उत्साह बढ़ा परन्तु हमारी सांप्रदायिक रूढ़ियां और सुनने वालों की रूढ़िवादिता का बंधन न होता तो एक चातुर्मास तो क्या परन्तु प्रति वर्ष का चातुर्मास साथ करके शास्त्र-विचार और साहित्य सेवा का लाभ परस्पर लेते-देते परन्तु वर्तमान समस्या के बाबत तीन कठिनाइयों पर विचार करना था। एक तो धोराजी और मोरवी के चातुर्मास में हेरफेर करना कि जिसके लिये समय बहुत थोड़ा रहा था, दूसरा इसमें लींवडी के संघ की ओर से पूज्य श्री की सम्मति प्राप्त करना व तीसरा जिस ग्राम में रहना वहां के श्रावकों की भी सम्मति लेना चाहिए। मध्य के कारण के लिये तो पूज्य श्री ने यहां तक फरमाया था कि मैं अपने ही साधु लींवडी भेज कर मंजूरी मंगाऊं और मुझे विश्वास है कि लींवडी संघ के अग्रेसर (प्रमुख) मुझे मान देने के लिये जरूर मंजूरी देंगे तो वह कठिनाई दूर हो जायगी, परन्तु बीच में एक तकलीफ यह थी कि धोराजी खाली न रहे और सबके चातुर्मास तय हो गए थे इसलिये वहां जाने वाला कोई नहीं था, तब पूज्य श्री ने फरमाया था कि मेरे चार ठाणों में से दो ठाणा धोराजी पधारें और दो ठाणा मोरवी चलें। मोरवी का चातुर्मास बदल सके ऐसी बात नहीं थी, इसीलिये एक तीसरी कठिनाई दूर करने की थी, जिसके लिए कोशिश की गई परन्तु अन्तराय के योग से वह इच्छा पार नहीं पड़ी अतः चातुर्मास पूर्ण करने के बाद एकत्रित होकर और अमुक समय तक साथ रह अभ्यास करने का विचार मन में निश्चित कर प्रथम आषाढ़ कृष्णा एकम को पूज्य श्री ने मोरवी चातुर्मास करने के लिये बाँकानेर से विहार किया और हमने धोराजी की ओर विहार किया। मोरवी का चातुर्मास पूर्ण हुए बाद कितने ही कारणों से पूज्य श्री का मारवाड़ की ओर पधारना हो गया। अंतराय के योग से फिर संगम नहीं हुआ सो नहीं हुआ। मन की इच्छा मन में ही रह गई। इससे पूज्य श्री की विद्या की ओर कितनी चाहना थी उसका कुछ अंदाजा हो सकेगा।

मिलनसार वृत्ति

इस संवंध में इस तरफ के कई लोगों से मैंने सुना है और स्वयं भी अनुभव किया है कि चाहे कितना ही अनजान व्यक्ति आया हो तो भी वह मानो पूर्व का परिचित ही हो इसी तरह उसके साथ पूज्य श्री बातचीत करते थे। आचार-विचार में चाहे जमीन आकाश का अन्तर हो तो भी वे उसके साथ पूर्ण मैत्री भाव व विना किसी छल-कपट के इस तरह वातचीत करते कि वह मनुष्य अपने मन में रही हुई भिन्नता को दूर करना अपना कर्तव्य ही समझने लगता था।

गुण-ग्राहकता

इस तरफ मारवाड़ के कितने ही साधु आते हैं परन्तु उनमें अपने आचार की विशेपता वताने के साथ दूसरों की निन्दा करने का दोष खासतौर से देखा जाता है। पूज्य श्री में आचार इत्यादि की विशेषता होते हुए भी अपने मुंह से उसे दर्शाना या उसकी दूसरों से तुलना करके उनकी शिथिलता बताना या किसी की निन्दा करने का स्वभाव उन्होंने बिल्कुल नहीं पाया गया। उसके प्रतिकूल उनकी गुण-ग्राहक वृत्ति का कई बार परिचय हुआ है प्रवचन के समय भी अपने परिचित साधु-साध्वी श्रावक या अन्य कोई गृहस्थ के गुणों का आपको परिचय हुआ हो तो उस गुण के कारण आप अपने मुक्तकंठ से उसकी प्रशंसा करते थे। चाहे वह अन्य रीति से अपने से हल्के हों

तो भी वे उसके गुण विशेष को ले कर उसकी प्रशंसा करने में तनिक भी नहीं हिचकते थे। यह गुण ग्राहक वृत्ति सचमुच प्रशंसनीय है। इस वृत्ति को हमारे मुनिवृंद और श्रावकगण मान दें तो समाज के (कलह) बहुत अंशों में दूर हो जाएँ। इन सभी गुणों के कारण हमारा सहवास इतना रसमय हो गया था कि विदा होते समय दोनों के हृदय भर आये थे और पुनः साथ रहने का आनंद कब मिलेगा यही एक मात्र विचार मन को कोंच रहा था। उस समय थोड़े ही दिनों में फिर मिलने की आशा का आश्वासन था परन्तु 'देवी विचित्रा गतिः' मनुष्य क्या सोचता है और क्या होता है उसी तरह हुआ। विदा होने पर स्थूल शरीर रूप से तो इकट्ठे न हुए परंतु 'गिरौ मयूरा गगने पयोदा' इस कहावत के अनुसार जिसका जिस पर प्रेम है वह इससे दूर नहीं है अर्थात् आंतरिक गुण स्मरण रूप सान्निध्य पूरी तरह उपलब्ध था। फिर कभी दुबारा साथ रहेंगे यह आशा भी अवशेष थी, परन्तु अंतिम समाचार ने यह आशा भी निराशा में परिणत कर दी। अब तो सिर्फ उनके गुणों का स्मरण करके उनके लगाए हुए बीजों का सिंचन कर उन्हें फलने फूलने एवं पुष्पित व पल्लवित होते हुए देखना है। उनकी यादगार में सबसे पहिले तो यह काम करना है कि सम्प्रदाय में फैला हुआ क्लेश किसी भी तरह का त्याग अपेक्षित हो उसे करके दूर करना चाहिये। संयुक्त बल बढ़ा कर उनके लगाये हुए ज्ञान और आनन्दरूपी बाग में से सुवासित पुष्पों की परिमल सुगंध दिगंत पर्यंत प्रसरती रहे उसमें हाथ बंटाना है। पूज्यपाद के गुण अनेक हैं। मुझ में वे सब वर्णन करने का सामर्थ्य नहीं। अवकाश भी कम है अर्थात् इतने ही से संतोष मान पूज्यपाद की आत्मा को परमशांति मिले, ऐसी इच्छा करता हुआ यहां विराम लेता हूँ, 'सुज्ञेषु किं बहुना' औ३म् शांतिः।

अध्याय 29 : काठियावाड़ के लिये दिया हुआ अभिप्राय

काठियावाड़ में अनुक्रम से विहार करते हुए आचार्य श्री भावनगर पधारे। रास्ते में अनेक ग्रामों में अत्यंत उपकार हुआ। भावनगर में उस समय लींवड़ी संप्रदाय के सुप्रसिद्ध वक्ता पं. मुनि श्री नागजी स्वामीजी विराजते थे। परस्पर ज्ञानचर्चा और वार्तालाप से आनंद होता था। व्याख्यान एक ही स्थान पर होता था और पं. श्री नागजी स्वामी वहां पधारते थे। तब उनको योग्य आसनादि का सत्कार तथा परस्पर विनय बहुत रखा जाता था। कई बार पूज्य श्री अपना प्रवचन बंद कर पं. नागजी स्वामी का प्रवचन सुनने की आतुरता दिखाते और उन्हें व्याख्यान देने के लिये आग्रह करते थे। पंडितजी नागजी स्वामी लिखते हैं कि हमने ऐसे गुणग्राहक साधु दूसरे नहीं देखे। व्याख्यान में दृष्टांत देने और सिद्धांत के साथ उन्हें घटित करने की उनमें आश्चर्यजनक शक्ति थी और जिससे लोग अत्यंत आकर्षित होते थे तथा उसका गहरा प्रभाव पड़ता था। सचमुच कहा जाय तो इस संवंध में उनका अनुभव और सामर्थ्य अधिक थी। दोपहर के समय ज्ञानचर्चा होती थी। उत्तराध्ययन, भगवती, सूयगडांग इत्यादि सूत्रों सम्बन्धी अनेक गहन चर्चाएं होतीं। तब वे कहते कि हमें यह बात नई मालूम हुई है इसलिए आपकी आज्ञा हो तो हम धारण करें व मुझे हमेशा आग्रह करते कि आप मालवा मारवाड़ में पधारो, मैं रतलाम तक सामने आऊँ और साथ-साथ घूमकर आपको (नागजी स्वामी को) देश का अनुभव कराऊँ। वे कहा करते थे कि मुझे विद्वानों के लिये अत्यन्त मान एवं आत्मभाव है। दस दिन साथ रहे, पूज्य श्री अपने विहार का समय किसी को नहीं बताते थे, परन्तु मुझे (नागजी स्वामी) बताया था। मैं पौन कोस तक उन्हें पहुंचाने गया था। वहां कुछ समय तक बैठ कर प्रेमपूर्वक बहुत बातें की और जिस तरह अर्सेदराज से साथ रहने वाले विदा होते हैं उस तरह गद्‌गद् होकर विदा हुए थे। अंत में बतलाना यह है कि उनके सहवास में हमें अत्यन्त आनन्द मिला। उनकी मिलनसार शक्ति और दूसरे मनुष्य को आकर्षित करने की शक्ति बड़ी अलौकिक थी, इत्यादि-इत्यादि।

काठियावाड़ के प्रवास में आचार्य महाराज को अत्यंत संतोष मिला। वे व्याख्यान में कई बार फरमाते कि काठियावाड़ के लोग सरल स्वभावी हैं। शिक्षा में आगे बढ़े होने से वे शास्त्र के गहन विषयों को बहुत सरलता से समझ सकते हैं, यह देख मुझे बहुत आनन्द होता है और मेरी मेहनत भी सफल होती है, श्राविकाओं का अभ्यास देख मुझे बहुत संतोष हुआ है। दूसरे प्रान्तों की तुलना में काठियावाड़ में जीव-हिंसा बहुत कम होती है और मांसाहार का प्रचार भी कम है, यह बहुत संतोषप्रद बात है। काठियावाड़ में विचरने वाले साधु विद्वान, दयालु, अवसर के ज्ञाता और विवेकी हैं। वे मारवाड़ की तरफ विचरें तो देश को बहुत लाभ पहुंचा सकते हैं। पूज्य श्री मारवाड़ मेवाड़ के लोगों से कहते हैं कि काठियावाड़ इत्यादि में वेश्याओं से दूर रहने वाले व अपने देश में बसने वाले गृहस्थों के घर-आंगन, बालकों की किलकारियों से गृहस्थ जीवन की शोभा बढ़ा रहे हैं इसलिये वहां दत्तक या गोद लेने के रिवाज या कानून की आवश्यकता नहीं है। भाग्य से ही सैकड़े पांच मनुष्य कम नसीब वाले संतान रहित होंगे अपने देश की तरफ और मारवाड़ की ओर दृष्टि

तो भी वे उसके गुण विशेष को ले कर उसकी प्रशंसा करने में तनिक भी नहीं हि
ग्राहक वृत्ति सचमुच प्रशंसनीय है। इस वृत्ति को हमारे मुनिवृंद और श्रावकगण
(कलह) बहुत अंशों में दूर हो जाएँ। इन सभी गुणों के कारण हमारा सहवास
था कि विदा होते समय दोनों के हृदय भर आये थे और पुनः साथ रहने क
यही एक मात्र विचार मन को कोंच रहा था। उस समय थोड़े ही दिनों में फिर
आश्वासन था परन्तु 'देवी विचित्रा गतिः' मनुष्य क्या सोचता है और क्या हो
विदा होने पर स्थूल शरीर रूप से तो इकट्ठे न हुए परंतु 'गिरौ मयूरा गगने
अनुसार जिसका जिस पर प्रेम है वह इससे दूर नहीं है अर्थात् आंतरिक
पूरी तरह उपलब्ध था। फिर कभी दुबारा साथ रहेंगे यह आशा भी
समाचार ने यह आशा भी निराशा में परिणत कर दी। अब तो सिर्फ
उनके लगाए हुए बीजों का सिंचन कर उन्हें फलने फूलने एवं पुष्पित
है। उनकी यादगार में सबसे पहिले तो यह काम करना है कि सम्प्र
भी तरह का त्याग अपेक्षित हो उसे करके दूर करना चाहिये। संयुक्त
ज्ञान और आनन्दरूपी बाग में से सुवासित पुष्पों की परिमल सुगं
हाथ बंटाना है। पूज्यपाद के गुण अनेक हैं। मुझ में वे सब वर्ण
भी कम है अर्थात् इतने ही से संतोष मान पूज्यपाद की आ
करता हुआ यहां विराम लेता हूँ, 'सुज्ञेषु किं बहुना' औ३म् शं

त्रिभुवनदास के विशाल बंगले में पूज्य श्री महाराज व्याख्यान देने लगे। व्याख्यान में मंदिरमार्गी भाई भी अधिक संख्या में हाजिर होते थे और महाराज श्री को अत्यन्त भाव-युक्त आहार-पानी बहराते थे। अहमदाबाद में आचार्य महाराज के दर्शन हेतु मारवाड़ प्रभृति अलग क्षेत्रों से सैकड़ों स्वधर्मी बंधु आये थे जिनका स्वागत सेठ जैसींग भाई इत्यादि ने बहुत प्रेमपूर्वक किया था।

मुखियाव के ठाकुर सरदार देवीसिंहजी रायसिंहजी जो बाघेला, गरासिया और ठाकुर हैं वे दर्शनों के लिए आते थे और प्रवचन सुन कर बहुत संतुष्ट होते थे तथा कई गरासियों से वे पूज्य श्री की प्रशंसा करते थे।

अहमदाबाद तथा गुजरात में अपने श्वे. मूर्तिपूजक भाईयों की धर्मशालाएं अधिक हैं। स्थानकवासी तथा देरावासी भाइयों के बीच वहाँ जैसा चाहिए वैसा भ्रातृभाव न होने पर भी आचार्य श्री जब अहमदाबाद, पाटण, सिद्धपुर, मेसाणा इत्यादि शहरों में पधारे तब अपने श्वेताम्बर मूर्तिपूजक भाइयों ने भी उनकी हर एक रीति से सेवा-चाकरी की थी और भक्ति से आहार-पानी आदि उपलब्ध कराने का लाभ उठाया था। इतना ही नहीं परन्तु सैकड़ों मूर्ति पूजा करने वाले भाई व्याख्यान श्रवण करते थे कदाचित् कोई श्रावक योग्य बर्ताव नहीं रखते तो उन्हें उनके अन्य स्वधर्मी बन्धु उलाहना दे पूज्य श्री के सन्मुख करते थे।

अहमदाबाद में श्रीजी विराजमान थे तब पालनपुर सुश्रावकों का सत्याग्रह होने से पूज्य महाराज पालनपुर पधारे और लगभग 20 दिन रहे। इस समय भी मेहताजी साहिब की धर्मशाला में पूज्य श्री ठहरे। उस समय पालनपुर के नेक नामदार खुदाबंद नवाब साहब बहादुर सर शेर मोहम्मद खानजी साहिब बहादुर जी. सी.आई.ई. जिनका कि सब धर्मों पर समान रूप से प्रेम था वे स्वयं अपने मुसाहिबों के साथ तथा स्टाफ को साथ ले पूज्य श्री के दर्शन हेतु पधारे थे। वे हर एक धर्म का रहस्य जानने वाले थे इसलिये लगभग दो घंटे तक धर्म-चर्चा की थी और फिर पूज्य श्री जी की अत्यन्त तारीफ की थी। थोड़े दिनों बाद ही दुबारा दर्शनों के वास्ते पधारकर काफी देर तक सदुपदेश सुना और दोनों वक्त वहां के ज्ञान खाते में अच्छी रकम देकर मदद की थी।

पूज्य श्री जी महाराज के पवित्र धार्मिक उपदेश और सामाजिक शिक्षा तथा व्यावहारिक ऐतिहासिक उपदेश से पालनपुर के जैन बंधुओं में पूज्य भाव की पूर्णता छा गई थी और बाद में पूज्य श्री के स्वर्गारोहण तक कायम रही थी। इतना ही नहीं परंतु उनके उत्तराधिकारी के प्रति भी उनका ऐसा ही पूज्य-भाव कायम है और जहाँ पूज्य साहिब चातुर्मास में होते हैं वहां-वहां पालनपुर के श्रावक अधिकाधिक दिन ठहरकर उनके उपदेशामृत का पान करते हैं।

पालनपुर के क्रमशः विहार कर मारवाड़ की भूमि को अपनी पदरज से पवित्र करते हुए श्रीजी महाराज पाली पधारे वहां पर श्री चातरसिंहजी की दीक्षा हुई और वहां जोधपुर संघ की विनती पर पूज्य श्री ने सं. 1970 का चातुर्मास जोधपुर में किया। इस चातुर्मास में जो महान उपकार जोधपुर में हुए वे अवर्णनीय हैं।

डालो। स्वपुत्र कितने हैं। और दत्तक कितने है? यह सब अनर्थ वेश्यावृत्ति का वृद्धि प्रसाद है। ल
जैसे शुभ प्रसंग में भी तुम्हारे परमाणु धन-कुलटाओं के नाच के अपावन पुद्गलों से अपवित्र हो
रहते हैं। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले कोमल बालकों के समीप भी उनका नाच कराने में तु
वरघोड़े और मण्डप की शोभा समझते हो। इसलिये तुम विष-वृक्ष लगाकर उसका सिंचन करते है
यह भूल जाते हो।

संगीत का शौक हो तो घर की स्त्रियों को, वालिकाओं को संगीत की शिक्षा दो ताकि तुम
गुलामी में कुछ क्षण का आराम तो मिले और जन्म कैद जैसे इस जीवन में कुछ तो सुख प्राप्त ह
सके। संगीत का सच्चा शौक हो तो प्रभु-भक्ति और परोपकारी जीवन-कर्तव्य के काव्य क्या कम
कि तुम भ्रष्ट, नीच और सड़े हुए परमाणु वाली नीच नारियों को अपनी हवेलियों तथा मंडपों
बुलाकर स्वतः अपने और अपनी स्त्रियों के जीवन बिगाड़ते हो? भाइयों! चेतो! मेरे जैसी सच्च
कहने वाले थोड़े मिलेंगे। बहुत पुण्योदय से मनुष्य जन्म मिला है। उत्तम क्षेत्र, उत्तम गोत्र, औ
निरोगी काया ये सब व्यर्थ न गुमाओ। एक क्षणमात्र भी प्रमाद न करते हुए इस महंगे मनुष्यभव को
सार्थक बनाने की बात हृदयस्थ कर लो।

पूज्यश्री के प्रभाव से काठियावाड़ में बहुत से सज्जन श्रीजी के अनन्य भक्त बन गए थे।
जहां-जहां श्रीजी महाराज ने पदार्पण किया वहाँ-वहाँ के श्रीसंघ ने अत्यन्त हर्ष और उत्साह से पूज्य
श्री की सेवा-भक्ति की जिससे पूज्य श्री के चित्त में अत्यन्त प्रसन्नता हुई, परन्तु संप्रदाय का
अधिकांश परिवार मालवा-मारवाड़ में होने से उस और पधारने की पूज्यश्री को आवश्यकता अनुभव
हुई तथा मारवाड़ में विचरने वाली आर्याजी* श्री नानीबाई की तबीयत अत्यंत खराब हो जाने से
एवं पुज्य श्री के दर्शन की तथा उनके पास से आलोयणा प्रायश्चित्त लेने की प्रबलतर अभिलाषा है
ऐसी खबर मिलने से पूज्य श्री ने मारवाड़ की तरफ विहार किया और भावनगर से बहुत थोड़े दिनों
के मार्ग से वे थोलका धंधुका हो अहमदाबाद पधारे।

अहमदाबाद में शहर से एक-डेढ़ मील दूर सेठ कचरा भाई लेहरा भाई का बंगला है वहां
पूज्यश्री ठहरे थे, परन्तु प्रवचन में लोग अधिक संख्या में उपस्थित होने लगे तब सेठ केवलदास

---

*वे इस जमाने में एक लब्धिसंपन्न आर्याजी थीं। उन्होंने संसारावस्था में संसार की विचित्रता अनुभव की थी इसलिये उनके हाड-हाड की मींजी वैराग्य रंग से रंगी हुई थी। वे हमेशा तपश्चर्या में ही लीन रहती थीं, एक माह में कदाचित चार-पांच दिन ही आहार लेती थीं और फिर भी नीरस सूत्रों के स्वाध्याय में ही हमेशा तल्लीन रहती थी। मुझे उनका व्याख्यान महामंदिर में सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। कितनी ही आर्याजी की बीमारियाँ उन्होंने मात्र हाथ के स्पर्श से मिटाई थीं। परन्तु यह बात वे प्रकाशित नहीं करने देती थीं। एक आयार्जी की आंखें अनुभवी डाक्टर भी अच्छी नहीं कर सके थे वे आँखें आर्याजी ने अट्ठाई के पारणे के दिन सिर्फ अपनी जिव्हा फिरा कर प्रज्वलित दीप के समान कर दी थीं। और उसी आंख से बाद में वे आर्याजी व्याख्यान के समय शास्त्र वाचन करने लग गई थी। ऐसी-ऐसी अनेक चमत्कारिक लब्धियें उन्हें उपलब्ध थीं। परन्तु उन सबको यहां प्रकाशित कर देने से भोला भविकजन वर्ग प्रतिकूल अर्थ लगावेगा और शुद्ध संयम तथा तपश्चर्या के फलस्वरूप ऐसी प्राप्तियों की इच्छा में लगकर अपना साध्य चुकेगा। इस आर्याजी की संसारावस्था के पति के पूर्व कर्मानुरूप 'पत' का रोग लग गया था और इसी से उनकी मृत्यु हुई थी इस कुष्टवद्ध मुर्दे के शरीर को श्मशांन में ले जाने के लिए उनके सगे-संबंधी भी न आये थे। नानू बाई ने कइयों से प्रार्थना की परंतु जब किसी को दया न आई तब मुर्दे में असंख्य जीव उत्पन्न होने के भय से आपने हिम्मत बाँध कर कछोटा लगा कर अपने प्राणप्रिय पति को पीठ पर उठा कर स्वयं ही अग्निदाह दे आई थीं। उत्कृष्ट वैराग्य इस अनिवार्य अनुभव का बड़ा भारी कृतज्ञ था।

त्रिभुवनदास के विशाल बंगले में पूज्य श्री महाराज व्याख्यान देने लगे। व्याख्यान में मंदिरमार्गी भाई भी अधिक संख्या में हाजिर होते थे और महाराज श्री को अत्यन्त भाव-युक्त आहार-पानी बहराते थे। अहमदाबाद में आचार्य महाराज के दर्शन हेतु मारवाड़ प्रभृति अलग क्षेत्रों से सैकड़ों स्वधर्मी बंधु आये थे जिनका स्वागत सेठ जैसींग भाई इत्यादि ने बहुत प्रेमपूर्वक किया था।

मुखियाव के ठाकुर सरदार देवीसिंहजी रायसिंहजी जो बाघेला, गरासिया और ठाकुर हैं वे दर्शनों के लिए आते थे और प्रवचन सुन कर बहुत संतुष्ट होते थे तथा कई गरासियों से वे पूज्य श्री की प्रशंसा करते थे।

अहमदाबाद तथा गुजरात में अपने श्वे. मूर्तिपूजक भाईयों की धर्मशालाएं अधिक हैं। स्थानकवासी तथा देरावासी भाइयों के बीच वहाँ जैसा चाहिए वैसा भ्रातृभाव न होने पर भी आचार्य श्री जब अहमदाबाद, पाटण, सिद्धपुर, मेसाणा इत्यादि शहरों में पधारे तब अपने श्वेताम्बर मूर्तिपूजक भाइयों ने भी उनकी हर एक रीति से सेवा-चाकरी की थी और भक्ति से आहार-पानी आदि उपलब्ध कराने का लाभ उठाया था। इतना ही नहीं परन्तु सैकड़ों मूर्ति पूजा करने वाले भाई व्याख्यान श्रवण करते थे कदाचित् कोई श्रावक योग्य बर्ताव नहीं रखते तो उन्हें उनके अन्य स्वधर्मी बन्धु उलाहना दे पूज्य श्री के सन्मुख करते थे।

अहमदाबाद में श्रीजी विराजमान थे तब पालनपुर सुश्रावकों का सत्याग्रह होने से पूज्य महाराज पालनपुर पधारे और लगभग 20 दिन रहे। इस समय भी मेहताजी साहिब की धर्मशाला में पूज्य श्री ठहरे। उस समय पालनपुर के नेक नामदार खुदाबंद नवाब साहब बहादुर सर शेर मोहम्मद खानजी साहिब बहादुर जी. सी.आई.ई. जिनका कि सब धर्मों पर समान रूप से प्रेम था वे स्वयं अपने मुसाहिबों के साथ तथा स्टाफ को साथ ले पूज्य श्री के दर्शन हेतु पधारे थे। वे हर एक धर्म का रहस्य जानने वाले थे इसलिये लगभग दो घंटे तक धर्म-चर्चा की थी और फिर पूज्य श्री जी की अत्यन्त तारीफ की थी। थोड़े दिनों बाद ही दुबारा दर्शनों के वास्ते पधारकर काफी देर तक सदुपदेश सुना और दोनों वक्त वहां के ज्ञान खाते में अच्छी रकम देकर मदद की थी।

पूज्य श्री जी महाराज के पवित्र धार्मिक उपदेश और सामाजिक शिक्षा तथा व्यावहारिक ऐतिहासिक उपदेश से पालनपुर के जैन बंधुओं में पूज्य भाव की पूर्णता छा गई थी और बाद में पूज्य श्री के स्वर्गारोहण तक कायम रही थी। इतना ही नहीं परंतु उनके उत्तराधिकारी के प्रति भी उनका ऐसा ही पूज्य-भाव कायम है और जहाँ पूज्य साहिब चातुर्मास में होते हैं वहां-वहां पालनपुर के श्रावक अधिकाधिक दिन ठहरकर उनके उपदेशामृत का पान करते हैं।

पालनपुर के क्रमशः विहार कर मारवाड़ की भूमि को अपनी पदरज से पवित्र करते हुए श्रीजी महाराज पाली पधारे वहां पर श्री चातरसिंहजी की दीक्षा हुई और वहां जोधपुर संघ की विनती पर पूज्य श्री ने सं. 1970 का चातुर्मास जोधपुर में किया। इस चातुर्मास में जो महान उपकार जोधपुर में हुए वे अवर्णनीय हैं।

अध्याय 30 : मौलवी जीवदया के वकील

जोधपुर (चातुर्मास) में पूज्य श्री के प्रवचन में स्वमती व अन्यमती बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। सरकारी तोपखाने के कार्य करने वाले माली नानूरामजी जो कि पूज्य श्री के परम भक्त थे उन्होंने करीब 200 राजपूतों को आचार्यश्री के उपदेशों के आधार पर प्रेरणा देकर उनमें से कितने ही से जीवन भर शिकार न करने के लिए प्रण लिवाया और कईयों से अमुक-अमुक दिनों के लिये शिकार बंद कराया था।

जोधपुर के मौलवी सा सैयद आसदअली एम.आर.ए.एस. (लंदन) एफ.टी.एस. जो कि जोधपुर राज्य में बड़े अधिकारी थे, वे श्रीयुत् नानूरामजी माली के साथ पूज्य श्री के पास आये। व्याख्यान सुनकर उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और एक ही व्याख्यान से ऐसा अनोखा असर हुआ कि उन्होंने जिन्दगी भर के लिए मांस खाना त्याग दिया तथा परस्त्रीगमन का त्याग किया और अपनी धर्मपत्नी के साथ भी संभोग संबंधों की मर्यादा की। मौलवी साहब के साथ दूसरे भी पांच मुसलमान भाइयों ने जीवन भर मांस खाना छोड़ दिया था। मौलवी साहब के तथा श्रीनानूरामजी साहब के सम्मिलित प्रयास से करीब 150 लोगों ने पूज्य श्री के पास आकर कितने ही महीनों के लिए मांस खाना छोड़ा था और दूसरे भी कितने ही लोगों ने मांस खाना मर्यादित किया था।

मौलवी साहब ने एक जैन-मुनि के पास से मांस न खाने की प्रतिज्ञा ली इस सूचना के प्राप्त होने पर उनके जातिवालों ने उन्हें जाति से बहिष्कृत करने की धमकी दी। पूज्य श्री ने भी यह बात सुनी। फिर जब वे पूज्य श्री के पास आये तब पूज्य श्री ने कहा कि 'भाई! आप अपनी प्रतिज्ञा पर सुमेरू पर्वत की तरह डटे रहें।' इसका सुफल यह हुआ कि प्रारंभ में जो उनके विरोधी थे वे ही उनके प्रशंसक बन गए। इतना ही नहीं मौलवी साहब की उत्तम प्रेरणा से उन्होंने भी मांस खाने का त्याग कर दिया। इस प्रकार अपनी जाति के कई भाइयों को आपने अपने पक्ष में कर लिया और उन्हें भी मांस

ःमौलवी साहिब एक समय रेवाड़ी गए। वहां बहुत सी गायें कटती थीं। यह देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। यहां रेवाड़ी में उनके एक भानजे डॉक्टर थे, उन्होंने कहा कि 'हम आपकी क्या सेवा करें इस पर सैयद साहिद अली साहिब ने कहा कि यहां सैकड़ों गायें कटती हैं उन्हें देख कर मेरा दिल बहुत घबराता है किसी भी तरह इनका कटना बंद हो जाये तो अच्छा हो। उनके भाणेज ने कहा कि मैं बंद कराने की कोशिश अवश्य करूंगा। इस समय में वहां प्लेग चला और एक अंग्रेज अफसर ने प्लेग की उत्पत्ति का कारण डॉक्टर से पूछा जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि यहां सैकड़ों गायें कटती हैं, इनके परमाणु बहुत अशुद्ध होते हैं, इसलिये उनसे अनेक प्रकार के विषैले जीव-जंतुओं की उत्पत्ति हो जाना संभव है। उपरोक्त अधिकारी ने गोवध बंद करा दिया। सव कसाईखानों की इस हेतु पूरी जांच की कि कहीं चोरी छिपे तो गौवध नहीं हो रहा है। सुना है कि ये अंग्रेज महाशय भी फलौदी में श्रीजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे। जोधपुर में गौशाला न होने से माली नानूरामजी ने रुपये 1000 की कीमत की जमीन गौशाला के लिये अर्पण कर दी थी। इस गौशाला का 'महाराज सुमेर गौशाला' नाम रख कर चंदा एकत्र करना प्रारंभ किया और पूज्य श्री के दर्शनों हेतु आये हुए अनेक ग्रामों के श्रावकों से प्राप्त राशि को मिलाकर प्रायः रु. 2000 इकट्ठे हो गए। जोधपुर कौंसिल के मेम्बर श्रीमान श्याम विहारी मिश्र आदि कई सज्जन गोशाला के कार्य में उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। इसके अलावा इस चातुर्मास में करीब दो हजार वकरों को अभयदान दिया गया था।

खाने का त्याग कराया। मौलवी साहिब हमेशा पूज्य श्री के पास आते थे। उन्होंने जीवरक्षा के लिए महान कार्य किये थे उनके द्वारा हुए उपकारों का वर्णन परिशिष्ट में पीछे दिया गया है।

यहां चातुर्मास करने को पूज्य श्री पधारे इसके पहले पूज्य श्री शेषकाल में भी पधारे थे। उस समय जोधपुर के धर्म-परायण सुश्रावक फिरतमलजी मूथा (चांदमलजी साहिब के पिता) वे जोधपुर शहर के शनिश्चरजी के मंदिर में संथारा किये हुए थे। एक समय पूज्य श्री फिरतमलजी मूथा को दर्शन देकर वापिस आ रहे थे तब जगत सागर तालाब पर एक मुसलमान हाथ में बंदूक लिये पक्षी को मारने की तैयारी में था। इसे श्रीजी महाराज ने दूर से पक्षी की ओर बंदूक तानते देखा तब पूज्यश्री ने ऊंची आवाज से उसे पुकारा 'ओ अल्ला के प्यारे! खुदा के प्यारे! खुदा के प्यारे! खामोश! खामोश!' यह आवाज सुनकर वह मुसलमान इधर-उधर देखने लगा। दूर से एक साधु को आता देख कर मन को धीरज बंधाया। जब पूज्य श्री उसके बिल्कुल पास पहुंचे तब उसने उन्हें नमस्कार किया व बोला कि 'महाराज मेरी स्त्री बीमार है और उसकी दवा के लिये इस धनंतर पक्षी का मांस हकीमजी ने मंगाया है इसलिये मैं उसे मार रहा था।' उस समय बहुत थोड़े में परन्तु बड़े प्रभाव पैदा करने वाले ज्ञान के वचन श्रीजी महाराज ने उस मुसलमान से कहे जिससे उसका हृदय कुछ पिघल गया परन्तु उसने कहा कि महाराज इस पक्षी को तो मुझे अवश्य मारना पड़ेगा कारण कि इसे न मारूं तो शायद मेरी स्त्री के प्राण न बचें। तब पूज्य श्री ने कहा कि 'हम फकीर हैं हमारे वचनों पर विश्वास रख तुम इस पक्षी की जान बचावोगे तो अच्छे कार्य का अच्छा बदला तुम्हें मिले विना न रहेगा। दूसरों को सुख देने से ही आप सुखी हो सकता है। इस पर से वह मुसलमान महाराज श्री की आज्ञा सिर पर चढ़ा पक्षी को अभयदान दे अपने घर गया और बिना दवा दिये ही उसकी स्त्री की तवीयत सुधर गई जिससे उसे अपार आनंद हुआ और महाराज श्री के पास आकर कहने लगा कि आपकी कृपा से मेरी स्त्री को आराम हो गया है। आप सच्चे फकीर हैं। फिर उस मुसलमान भाई ने सदा के लिये जीव हत्या की सौगंध महाराज श्री से ली व अपने आपको धन्य-धन्य अनुभव किया।

इस चातुर्मास में तपश्चर्या भी वहुत हुई। तपस्वीजी श्री छगनलालजी महाराज ने 65 उपवास, पन्नालालजी महाराज ने 41 उपवास किये थे। सती श्री सौभाग कुंवरजी ने 51 उपवास किये थे तपस्वीजी सतीजी श्री नानकुंवरजी ने चार माह में 10 दिन आहार लिया था पूज्य श्री ने तथा अन्य साध्वियों ने एकांतर आदि विभिन्न प्रकार की तपश्चर्या की थी।

तपस्वीजी महाराज छगनलालजी के 65 उपवास के पारणे के दिन पूज्य श्री, स्वरूपचंदजी भंडारी के घर गोचरी गए। भंडारीजी के पुत्र गौरीदासजी चार वर्ष से वायु-वाने दर्द से पीड़ित थे। उनसे विल्कुल चला भी न जाता था। दो आदमी उनकी वाहें पकड़ कर उन्हें पूज्य श्री के दर्शनार्थ मेड़ी पर से नीचे लाये। गौरीदासजी को पूज्य श्री के दर्शन करने से वड़ा हर्ष पैदा हुआ व गद्‌गद् कंठ से वे पूज्य श्री के दर्शन करने के वाद कहने लगे महाराज! मै चार-चार वर्ष से दुःखी हूँ मेरे लिए मेरे पिता ने चिकित्सार्थ हजारों रुपये खर्च कर दिये हैं परन्तु आराम नहीं हुआ। इस पर पूज्य श्री ने कहा कि दवाई त्याग दो, नवकार मंत्र गिनो और श्रद्धा रखो। उसी दिन से उन्होंने दवाई छोड़ दी थी और नवकार मंत्र गिनना प्रारंभ किया। थोड़े ही समय में उन्हें विल्कुल आराम हो गया और वे पूज्य श्री के व्याख्यान में विना किसी सहायता के अपने पांवों से चलकर आने लग गये थे।

पहिले वैष्णव-धर्म पालते थे परन्तु पूज्य श्री के सदुपदेश से सारा परिवार जैन धर्म का पालन करने लग गया।

इस तरह जोधपुर के चातुर्मास में अनेक उपकार हुए। जोधपुर के इस चातुर्मास का ध्यान दिलाने के लिये कायस्थ जाति के एक जैनेतर डॉक्टर रामनाथजी जो वाद में जालोर में तैनात हुए इस तरह लिखते हैं–

पूज्य श्री 1008 श्रीलालजी महाराज का चातुर्मास मारवाड़ के मुख्य नगर जोधपुर में हुआ उस समय इस दास को भी आपके दर्शन व सत्संग और उपदेश सुनने का गौरव प्राप्त हुआ। आपकी कांति, चित्त-शुद्धि और तपश्चर्या के परमाणुओं का असर इतना जवरदस्त पड़ता था कि श्रोता लोग हर्ष रूपी सुधा-समुद्र में लहराते हुए मानो तुरियावस्था का आनंद प्राप्त करते थे।

आपके सदुपदेश का लाभ उठाने की आकांक्षा के लिए नियत समय से पूर्व ही राज्य के उत्साही कर्मचारी, पंडित लोग और व्यापारी-वर्ग प्रातःकाल और सायंकाल बड़ी संख्या में उपस्थित हो जाते थे व व्याख्यान का पांडाल खचाखच भर जाता था। आपश्री के शरीर में उन दिनों कुछ व्याधि भी थी परन्तु उनका पंचभूति पुतला सदुपदेश के समय अपनी व्याधि का तनिक भी विचार न करता । आप श्री समय पर बराबर उपदेश फरमाते। आपके उपदेश श्रवण का केवल हिंदू प्रजा ही नहीं किन्तु कई मुसलमान भाई भी लाभ उठाते थे और जीव-हिंसा के प्रति घृणा प्रकटकर 'अहिंसा परमोधर्म' के अटल सिद्धांत पर श्रद्धा दर्शाते थे और उसे अंगीकर कर स्वयं लाभ उठाकर ऐसे परोपकारी योगीजनों का गुणानुवाद कर धन्यवाद देते थे। आपके जोधपुर विराजने से जो-जो लाभ देश के स्त्री-पुरुषों को हुए हैं उनको प्रकट करना तुच्छ लेखनी की शक्ति के बाहर है किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि–

1. कई अधिकारी आत्माओं का संशय दूर होकर जीवदया पर परिपूर्ण विश्वास हुआ और कई पुरुषों ने बिना छना जल, रात्रि भोजन और जमीकंद इत्यादि को निषिद्ध समझ, उनके त्याग का लाभ उठाया।

2. कई मांसाहारी क्षत्रियों और अन्यमती लोगों ने मांस-भक्षण करना छोड़ दिया।

3. इस दास को भी श्री श्री श्री 1008 पूज्य श्री बैकुंठवासी महाराज श्री के उपदेश से उस साल 51 मांस खाने वालों से (जो इलाज में आये) मांस के दोष दिखाकर उसका बुरा असर उनके हृदय व कलेजे पर होता है ऐसा उन्हें समझा कर मांसाहार का त्याग कराने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

4. मेरे मित्र सैयद अहमदअली साहिब एम.आर. ए.एस.(जो जोधपुर के मुसलमान होते हुए भी हिंदुओं में सर्वप्रिय हैं और खुद भी मांस भक्षण नहीं करते) ने भी महाराज के उपदेश से कई मुसलमानों से मांसाहार का त्याग करवाया और उन दिनों घास की कमी से जो लूली, लंगड़ी, दुखित गौ माताएं बिना रक्षक के थीं, एक स्थान तय कर उनके कष्ट मिटाने का प्रबंध किया ।

अध्याय 31 : विजयी विहार

जोधपुर से अनुक्रमशः विहार करते हुए पूज्य श्री ब्यावर (नये नगर) पधारे। यहां मुनि श्री देवीलालजी स्वामी से उनका मिलाप हुआ। पूज्य श्री जब काठियावाड़ में विचरण कर रहे थे। तब जावरा वाले संतों के क्रियाकलाप के सम्वन्ध में उनसे पूछताछ की तो उन्होंने उत्तर दिया कि मालवा में पधार कर आप उचित निर्णय करें परन्तु जयपुर के श्रावकों ने श्रीजी महाराज से जयपुर पधारने की प्रार्थना की थी उसके उत्तर में उन्होंने जयपुर पधारने के लिए कुछ आश्वासन दिया था इसलिए उन्होंने जयपुर परस कर फिर मालवे की ओर पधारने का विचार दर्शाया इस पर देवीलालजी महाराज ने भी जयपुर पधारने की इच्छा प्रकट की।

ब्यावर (नये नगर) में उस समय पूज्य श्री के पधारने से अपूर्व आनन्द का उत्सव दृष्टिगत हो रहा था। पूज्य श्री तथा देवीलालजी महाराज के अलावा पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की संप्रदाय के पूज्य श्री नंदलालजी महाराज ठाणा 5 तथा पन्नालालजी केवलचंदजी महाराज ठाणा 7 तथा आचार्य श्री के मुनिवरों में से मुनि श्रीलालचन्दजी शोभालालजी आदि कुल 54 मुनिराज तथा 33 आर्याजी उस समय वहां विराजती थीं। पूज्य श्री की विद्वत्ता, विचक्षणता तथा अलग-अलग सम्प्रदाय के छोटे-वड़े सब मुनियों के साथ अत्यधिक अपनेपन और सम्मान से सबको संतोष देने की अपूर्व शक्ति के कारण परस्पर जो आनन्द की वृद्धि और धर्म की उन्नति हुई वह वर्णन नहीं की जा सकती यानी अवर्णनीय है। ऐसे मौकों पर भिन्न-भिन्न मस्तिष्क अर्थात् विचारधाराओं के संख्याबद्ध साधु होने पर परस्पर वात्सल्य (अपनापन) रहना और एक ही स्थान पर व्याख्यान होना यह सव परम प्रतापी आचार्य महाराज की विचक्षणता और पुण्य वाणी का ही प्रताप था।

तपस्वीजी श्री मुलतानचंदजी महाराज की तपश्चर्या के पूरी होने पर पूज्य श्री के अपूर्व वैराग्ययुक्त सदुपदेश से तपश्चर्या स्कंध, दया, पौषध, त्याग, प्रत्याख्यान, जीव-रक्षा आदि अनेक उपकार हुए। चार श्रावक भाइयों ने जोड़े से (सपत्नीक) ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। दूसरे भी अनेक नियम, व्रत, स्कंधादि हुए।

उस समय एक मुनि के 21 दो मुनिराजों के 15, एक के 14 उपवास थे और तीन पचरंगी आदि की तपश्चर्या हुई थी। एक मुनिराज लगभग 20 महिनों से रात्रि में शयन न कर ध्यान में बैठे रहते थे और वे चाहे जैसी भी सर्दी की ऋतु हो तो भी एक ही पछेवड़ी ओढ़ते थे। उस मौके पर खवा निवासी भाई घीसूलालजी संचेती ने पूर्ण वैराग्यपूर्वक पूज्य श्री जी महाराज के पास दीक्षा ली थी। उस दीक्षा महोत्सव के समय करीब 4 से 5 हजार जन समुदाय एकत्र हुआ था।

श्रीमान् गच्छाधिपति के दर्शनार्थ पंजाब, टोंक, अजमेर, जयपुर, मेवाड़, मारवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ आदि प्रान्तों एवं रियासतों के सैकड़ों श्रावक आये थे, जिनका ब्यावर निवासियों ने तन, मन, धन से बड़े उत्साह एवं उत्तम रीति से आतिथ्य सत्कार किया था।

पूज्य श्री के पधारने से व्यावर उस समय एक तीर्थ स्थान की तरह हो रहा था।

पूज्य श्री ब्यावर से अजमेर पधारे और जयपुर पधारने की जल्दी होने से अजमेर नगर के बाहर सेठ श्री गुमानमल जी लोढ़ा की कोठी में विराजे परन्तु उनका पुण्य प्रभाव तथा आकर्षण शक्ति इतनी प्रबल थी कि व्याख्यान में साधुमार्गी श्रावकों के सिवाय सैकडों-हजारों की संख्या में जैन-अजैन सज्जन उपस्थित होते थे और सेठ गुमानमल जी साहिब की विशाल कोठी के बीच के विशाल प्रांगण में भी पीछे से आने वालों को बैठने का स्थान तक नहीं मिलता था। उस समय प्रसंगवश पूज्य श्री ने प्राणिरक्षा के संबंध में उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप श्रीमान् राव सेठ चांदमलजी साहिब की प्रेरणा से रा. ब. सेठ सोभागमल जी ढढ्ढा तथा श्रीमान् दी. ब. उम्मेदमलजी साहिब लोढ़ा इत्यादि ने विचार-विमर्श कर एक पशुशाला स्थापित की जिसमें आज भी कई अनाथ पशुओं का पालन-पोषण होता है।

इसके अलावा पूज्य श्री ने बाल विवाह नहीं करने का भी उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप कई लोगों ने 16 वर्ष के पहिले पुत्र का और 13 वर्ष के पहिले पुत्री का विवाह नहीं करने की प्रतिज्ञा ली।

अजमेर में पांच छह दिन ठहरकर पूज्य श्री जयपुर पधारे। वहां बहुत धर्मोन्नति हुई। जयपुर के श्री संघ ने चातुर्मास करने के लिये अत्यधिक आग्रहपूर्वक निवेदन किया जिसके उत्तर में पूज्य श्री ने फरमाया कि जैसा अवसर होगा काम आयेगा।

जयपुर से विहार कर श्रीजी महाराज टोंक पधारे। वहां सं. 1970 के फाल्गुन शुक्ला 2 के रोज उनके सदुपदेश से उनके संसार पक्ष की भाँणेजी और भाँणेजी-पति श्रीयुत मांगीलालजी गुगलिया ने 30 वर्ष की भर युवावस्था में जोड़े से सदैव के लिये ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। कुछ समय पश्चात् इन्हीं भाई ने रात्रि भोजन का एवं हरी वस्तु तथा कच्चा पानी पाने का भी यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया। इसके उपलक्ष में टोंक में उत्सव किया गया। बहुत से मुसलमान भाइयों ने पूज्य श्री के सदुपदेश के प्रभाव से जीव-हिंसा करने तथा मांस खाने का त्याग किया। कितने ही शूद्र भाइयों ने मदिरा पान का त्याग किया। टोंक में पूज्य श्री के व्याख्यान में हिन्दू और मुसलमान भाई बड़ी संख्या में आते थे और व्याख्यान का कई बार इतना प्रभाव पड़ता था कि श्रोताओं की आंखों से आसूं तक बहने लग जाते थे।

वहां से अनुक्रमशः विहार करते हुए श्रीजी महाराज रामपुरा पधारे। वहां शेषकाल लगभग एक माह तक ठहरे। वहाँ भी बहुत उपकारी कार्य एवं बहुत त्याग प्रत्याख्यान हुए। वहां से विहार कर पूज्यश्री कंजाडो (होलकर स्टेट) पधारे। वहां संवत् 1970 के चैत्र 1-3 के रोज श्रीयुत गब्बूलालजी नाम के एक ओसवाल गृहस्थ ने छोटी उम्र में ही वैराग्य प्राप्त कर पूज्य श्री के पास दीक्षा ग्रहण की।

यहां से कोटा तथा शाहपुरा की तरफ से होकर पूज्य श्री मेवाड़ पधारे। वहां उदयपुर के श्रावकों ने चातुर्मास के लिए श्रीजी महाराज से बहुत प्रार्थना की। जावरा के श्रीसंघ ने भी बहुत आग्रह किया परन्तु पूज्य श्री की इच्छा रतलाम चातुर्मास करने की थी इसलिये उधर विहार किया।

पूज्य श्री के अपूर्व उपदेशामृत का पान कर मंदसौर निवासी पोरवाल गृहस्थ सूरजमलजी तथा उनकी स्त्री चतुरबाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने सं. 1971 के वैसाख मास में सजोड़े

ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। उस समय सूरजमलजी की उम्र 28 वर्ष की थी और उनकी स्त्री की उम्र सिर्फ 25 वर्ष की थी। वे जब भर युवावस्था में ऐसी भीषण प्रतिज्ञा लेने के लिये व्याख्यान की परिषद में खड़े हुए तब उपस्थित सज्जनों में से बहुतों की आंखों में आसूं बहने लगे थे और कई स्त्री-पुरुषों ने इस दम्पति के अद्भुत पराक्रम और वैराग्य भाव की दृढ़ता को देखते हुए छोटे-छोटे स्कंध तथा तपश्चर्या और विविध प्रकार के व्रत नियम अंगीकार किये थे। बाद में चतुरबाई ने सं. 1974 में और सूरजमलजी ने सं. 1976 में प्रबल वैराग्यपूर्वक दीक्षा ली थी।

अध्याय 32 : संप्रदाय की सुव्यवस्था

सं. 1971 का पूज्य श्री का चातुर्मास रतलाम हुआ। पूज्य श्री के पधारने से रतलाम में आनन्दोत्सव हो रहा था। व्याख्यान का लाभ लेने आसपास एवं दूर दराज के स्थानों व गांवों-शहरो से श्रावकों व जैन-जैनेतर बंधुओं की टोलियाँ की टोलियाँ आने लगी थी। श्रीमान पंचेड़ ठाकुर साहिब पंचेड़ा से खासतौर पर पधार कर व्याख्यान का लाभ उठाने लगे। अनेक राजकर्मचारीगण इत्यादि तथा हिन्दू-मुसलमान भाई वड़ी संख्या में व्याख्यान सुनते थे जिसके फलस्वरूप रतलाम शहर में अवर्णनीय उपकार हुए। त्याग प्रत्याख्यान एवं स्कंध, तपश्चर्या इत्यादि बहुत हुई।

इस प्रकार चातुर्मास बहुत शांतिपूर्वक व्यतीत हुआ परन्तु वेदनीय कर्म की प्रबलता से कार्तिक शुक्ला दसमी के रोज पूज्य श्री के पांव में एकाएक दर्द जोर से बढ़ गया इसलिये मगसर बद एकम के रोज पूज्य श्री विहार न कर सके जिससे पूज्य श्रीजी के दिल में ऐसा विचार आया कि अब उनका शरीर पैर की व्याधि (पीड़ा) के कारण विहार करने में असमर्थ है इसलिये सम्प्रदाय के सभी संतों की देख-भाल जैसी चाहिये, नहीं हो सकेगी जबकि एक आचार्य की उनकी देखभाल कर उनसे शुद्ध संयम पलवाने की पूरी जिम्मेदारी है अतएव संप्रदाय को चार भागों में विभक्त कर योग्य संतों को उनकी योग्यतानुसार आचार्य के कुछ अधिकार प्रदान कर संघ व्यवस्था का उचित प्रबंध करना चाहिये ऐसा विचार कर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय की सुव्यवस्थार्थ यथोचित प्रबंध करने की मन में ठान ली। थोड़े दिन में तो पूज्य श्री के पांव में इतनी अधिक प्रबल वेदना हुई कि तनिक भी चलने फिरने की शक्ति नहीं रही। उत्तम पुरुषों की वेदना चिरकाल तक नहीं रहा करती, इस न्यायानुसार थोड़े ही दिन में उनके आराम होने लग गया। यद्यपि पैर में वेदना तो बहुत थी परन्तु पूज्य श्री की सहनशीलता उच्चस्तर की होने से वे पीड़ा को बहुत थोड़ी महसूस करते थे। तारीख 15.11.1914 के रोज श्रीजी महाराज वेदना की परवाह नहीं करते हुए धीरे-धीरे चलकर व्याख्यान में पधारे। श्रीजी के दर्शन कर श्रावकों के आनन्द की सीमा नहीं रही। उसी समय श्रीजी महाराज ने व्याख्यान में फरमाया कि मेरा ऐसा विचार है कि संप्रदाय के संतों की सार-संभाल तथा उन्नति करना एवं उन्हें योग्य उपालंभ या धन्यवाद देना तथा संयम में सहायता देना इत्यादि आचार्य के आवश्यक कार्य संप्रदाय के कुछ योग्य संतों के सुपुर्द कर दूं।

कुछ समय पश्चात् श्रीजी महाराज की आज्ञा से तथा रतलाम श्रीसंघ तथा जावरा से पधारे कितने ही अग्रेसर श्रावकों की सम्मति से श्रीयुत् मिश्रीमलजी बोराना वकील ने आचार्य श्री की आज्ञानुसार तैयार हुआ आदेश उच्च-स्वर से परिषद् में पढ़ सुनाया जो निम्नांकित है :

आदेश की अक्षरशः प्रतिलिपि।

'श्री जैन दया धर्मावलम्बी पूज्य श्री स्वामीजी महाराज श्री श्री 1008 श्री हुक्मचंदजी महाराज के पांचवे पाट पर जैनाचार्य पूज्य महाराज श्री श्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज वर्तमान में विद्यमान हैं, उनके आज्ञानुयायी गच्छ के साधु एक सौ झाझौरा के करीब हैं उनकी आज तक

शास्त्र व परम्परा के अनुसार सम्भाल, आचार, गोचरी वगैरह की निगरानी यथाविधि पूज्य श्री करते हैं परन्तु पूज्य महाराज श्री के शरीर में व्याधि वगैरह के कारण से इतने अधिक संतों की सार-संभाल करने में परिश्रम व विचार पैदा होता है इसलिये पूज्य श्री महाराज ने यह विचारपूर्वक गच्छ के संत-मुनिराजों की सार-सम्भाल व हिफाजत के लिए योग्य संतों को नियुक्त (मुकर्रर) कर प्रायः करतालुक संतों को इस तरह सुपुर्दगी कर दिये हैं कि वह अग्रेसरी संत अपने गण की सम्भाल सब तरह से रखें और कोई गण की किसी तरह की गलती हो तो ओलम्भा (उपालंभ) वगैरह देकर शुद्ध करने की कार्यवाही का इन्तजाम करें, सिर्फ कोई बड़ा दोष होवे और उसकी खबर पूज्य महाराज श्री को पहुंचे तो पूज्य श्री को उसका निकाल करने का अख्तियार है सिवाय इसके जो-जो अग्रेसरी हैं वे थोक आज्ञा चातुर्मासादिक की पूज्य महाराजा श्री से अवसर पाकर ले लेवें।

इसके सिवाय जे कोई संत निचले के गणों से सबब पाकर नाराज होकर पूज्य श्री के समीप आवे तो पूज्य महाराज श्री को जैसी योग्य कार्यवाही मालूम होवे वैसी करें अख्तियार पूज्य महाराज श्री को है और पूज्य महाराज श्री का कोई संत चला जावे तो वे अग्रेसर बिना पूज्य महाराज श्री के उससे संयोग न करें इसके सिवाय आचार-गोचार, श्रद्धा, परूपणा की गति है वह गच्छ की परम्परा के अनुसार सर्वगण प्रतिपालन करते रहें।

यह ठहराव शहर रतलाम में पूज्य महाराज श्री के मरजी (इच्छा) के अनुकूल हुआ है सो सब संघ को इसका अमलदरामद रखना चाहिये।

गणों के अग्रेसरों की खुलावट नीचे मुताबिक है।

(1) पूज्य महाराज श्री के हस्त दीक्षित अथवा पूज्य महाराज श्री की खास सेवा करने वालों की सार-संभाल पूज्य महाराज श्री करेंगे।

(2) स्वामीजी महाराज श्री चतुर्भुज जी महाराज के परिवार में हाल वर्तमान में श्री कस्तूरचंदजी महाराज वड़े हैं आदि। दाने जो संत हैं उनकी सार-संभाल की सुपुर्दगी स्वामीजी श्री मुन्नालालाजी महाराज की रहे।

(3) स्वामीजी महाराज श्री राजमलजी महाराज के परिवार में श्री रत्नचंदजी महाराज के नेश्राय के संतों की सुपुर्दगी श्री देवीलालजी महाराज की रहे।

(4) पूज्य श्री चौथमलजी महाराज साहिब के परिवार के संतों की सुपुर्दगी श्री डालचन्दजी महाराज की रहे।

(5) स्वामीजी श्री राजमलजी महाराज के शिष्य श्री घासीरामजी महाराज के परिवार में जवाहिरलालजी सार-संभाल करें।

ऊपर प्रमाण गण पांच की सुपुर्दगी अग्रेसरी मुनिराजों को हुई है सो अपने-अपने संतों की सार-संभाल व उनका निभाव करते रहें।

यह ठहराव पूज्य महाराज श्री के सामने उनकी राय के अनुसार हुआ है सो सब संघ मंजूर कर के इस मुताबिक बर्ताव करें।

उपरोक्त ठहराव सुन कर श्री संघ में हर्षोल्लास की अधिक वृद्धि हुई थी। उस समय रतलाम में मुनिराज ठाणा 25 तथा आर्याजी ठाणा 60 के करीब विराजमान थे।

इस चातुर्मास में श्वे. मूर्तिपूजक जैनों के अग्रेसर सुप्रसिद्ध सेठ श्री केसरीसिंहजी साहिब कोटावाले भी श्रीजी की सेवा में तीन बार आये थे और बातचीत के परिणाम स्वरूप अत्यंत आनंद प्रकट किया था। दूसरे भी कितने ही मंदिरमार्गी भाई आते थे और प्रश्नोत्तर तथा चर्चा वार्ता कर आनंद प्राप्त करते थे।

पूज्य श्री के पाँव में अब आराम हुआ था। सं. 1971 के मगहर शुक्ला 5 के रोज दोपहर को श्रीजी ने रतलाम से विहार किया। वहां से वे जावरे पधारे। इस विहार के समय इस पुस्तक का लेखक उपस्थित था, रतलाम से एक कोस दूर एक गांव में पूज्य श्री ठहरे थे और काफी संख्या में श्रावक वहां दर्शनार्थ पधारे थे और सुबह का उपदेश श्रवण करने के लिए रात भर वहीं ठहरे थे। छोटा गांव होने के बावजूद मकान की तो व्यवस्था थी पर रात्रि को ठंड ज्यादा होते हुए भी भविजन श्रावकों की लम्बी कतारें की कतारें श्रद्धा के स्थान में आनन्द से निद्रा लेती हुई दृष्टिगोचर हुई। सौभाग्य से यह दृश्य मुझे (लेखक दुर्लभजी जौहरी को) देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ और स्नेहाश्रुओं से नेत्र नम हो गए। हम तुरन्त वकील मिश्रीलाल जी के साथ गाड़ी में वापस रतलाम आये और तीन-चार बड़ी जाजमें ले कर इस गांव में गए और जीव-जन्तु अथवा ठंड से बेपरवाह खुले आकाश के नीचे खाटों पर सोयी उन श्रद्धालुओं की कतारों को जाजमों से ढाँक कर उनकी ठंड से रक्षा का उपाय किया था।

अध्याय 33 : आत्म-श्रद्धा की विजय

जावरा के श्रावकों द्वारा चातुर्मास के लिए बार-बार अति आग्रहपूर्वक निवेदन करने पर भी उनकी विनती स्वीकार नहीं हो सकी थी इसलिये वहाँ के श्रावकों के अंतःकरण बड़े दुःखी हुए थे। उनको प्रफुल्लित करने हेतु उस समय आचार्य महाराज एक माह तक शेषकाल में जावरे विराजे थे।

जावरे में जिस समय पूज्य श्री जी महाराज प्रवचन फरमा रहे थे तब एक श्रावक ने आकर खवर दी कि नवाब साहिब ने पुलिस को आदेश दिया है कि सभी कुत्तों को बंदूक से मार डाला जावे। और तद्नुसार बाजार में एक दो कुत्ते तो मार दिये गये हैं और अभी तक सिपाही शेष कुत्तों को मारने की फिराक में बंदूक लिए घूम रहे हैं। श्रीजी महाराज ने अपने प्रवचन में यह विषय उठा लिया और अत्यन्त असरकारक उपदेश दिया तथा श्रावकों को प्रेरित किया कि तुम इस हिंसा को रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं करते हो ? कुछ अग्रेसर श्रावकों ने निवेदन किया कि महाराज! हमने बहुत प्रयत्न किये हैं परन्तु सब विफल हुए हैं इस पर पूज्य श्री ने फरमाया कि यदि तुम में दृढ़ आत्मबल हो, अचल आत्मश्रद्धा हो अपनी आत्मशक्ति पर विश्वास हो और तुम परोपकार के लिए आत्मभोग देने को तैयार हो तो कोई कारण नहीं है कि तुम्हारा प्रयत्न सफल नहीं हो। अवश्य होगा! श्री जी ने उन्हें उद्‌बोधन दिया कि अभी तुम यह दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि जब तक यह हिंसा नहीं रुकेगी तुम अन्न-पानी ग्रहण नहीं करोगे। सिपाही जब तुम्हारे सामने कुत्तों पर गोली चलावें, तुम तब निडर होकर कह दो कि पहले हमारे शरीर को गोली से बींध दो और फिर हमारे कुत्तों पर गोली चलाओ। अगाध मनोवल एवं अटूट आत्मवल वाले इन महान पुरुष के मुखारविंद से निकले हुए इन शब्दों ने श्रोताओं के हृदय पर अद्‌भूत प्रभाव डाला। पूज्य श्री के सदुपदेश से ऐसी सचोट प्रतिक्रिया हुई कि उसी समय कई श्रावकों ने खड़े होकर महाराज श्री के पास यह प्रतिज्ञा ली कि यह हिंसा नहीं रुकेगी तव तक वे अन्न-पानी लेने का त्याग करते हैं। व्याख्यान के पश्चात् कई श्रावक इकट्ठे होकर नवाब साहिव के पास गए और निवेदन किया कि यदि आप हमें जीवित रखना चाहते हो तो हमारे आश्रित इन कुत्तों को भी जीने दो और यदि हमारे प्राणों की आपको कोई परवाह न हो तो हम भी कुत्तों के लिए प्राण देने को तैयार हैं। हमारे इस विनय पर गौर फरमा कर आपको जैसा योग्य जँचे वैसा आदेश प्रदान करें। नवाव साहिव के पास व्याख्यान की हकीकत पहले ही पहुंच चुकी थी। वे अत्यन्त प्रजावत्सल थे। उन्होंने महाजनों की विनती शांतिपूर्वक सुन कर तुरंत यह आदेश अपने पुलिस कर्मचारियों को प्रदान किया कि अव कुत्तों का वध तुरन्त वंद किया जावे।

कलकत्ते के मुख्य कांग्रेस अधिवेशन में लाला लाजपतराय ने अध्यक्ष पद से जो आह्वान एवं संदेश प्रसारित किया था उन शब्दों का सहसा यहाँ स्मरण हो आता है 'आप अपनी आत्मा में दृढ़ श्रद्धा रखें। अपने हृदय में स्वतंत्रता की कितनी ज्वाला भभक रही है उस पर कितने अग्रणीय बलिदान होने को तैयार हैं, आम लोगों में से कायरता कितने अंश तक समाप्त हो पाई हैं, शुद्ध भाव से अग्रेसर होने और शुद्ध भाव से दौड़ने वाले अग्रेसरों के पीछे चलने की शक्ति अपने में कितने अंश तक आई है उन सब बातों पर ही आपकी अपनी विजय का आधार हैं'। जावरा का यह प्रसंग

वैसे तो महत्व की दृष्टि से उतना बड़ा प्रसंग नहीं है पर इससे यह साबित होता है कि जीव दया के क्षेत्र में जब हम उत्कृष्ट आत्मबल का परिचय दें व उसके लिये बड़े से बड़ा त्याग यहाँ तक कि आत्मोत्सर्ग दिखलावें तो उसका प्रभाव कितना विस्मयकारी होता है कि सार्वभौम सरकार को भी अपने आदेश वापस लेने पड़ जाते हैं। धर्म के ऐसे ही श्रद्धालु समय पर धर्म को पालने एवं उसकी रक्षा करने में समर्थ होते हैं। एक विद्वान का कथन है कि आत्मश्रद्धा द्वारा ही मनुष्य प्रत्येक कठिनाई को जीत सकता है। आत्मश्रद्धा प्रत्येक मनुष्य की महान मित्र और उसकी सर्वोत्तम सम्पत्ति है। गरीब से भी गरीब आत्म श्रद्धावान् मनुष्य महान से महान कार्य कर सकता है और बिना आत्म बल एवं श्रद्धा के करोड़ों की पूंजी भी प्रभावशून्य एवं निष्फल हो जाती है।

पूज्य श्री जावरे में विराजते थे उस समय श्री देवीलालजी महाराज भी वहाँ पधारे थे और श्रीजी महाराज से मंदसौर पधारने का निवेदन किया था परन्तु उनके द्वारा किया गया निवेदन सशर्त होने से मंदसौर पधारना श्रीजी ने नामंजूर किया था। उस समय श्रीमान् सेठजी अमरचंदजी साहिब पीतलिया भी पूज्य श्री की सेवा का अन्तिम लाभ लेने के लिये जावरे पधारे थे। उन्होंने मौका देख इन साधुओं को शुद्ध कर उनके साथ आहार-पानी इत्यादि का व्यवहार पुनः प्रारम्भ करने की विनती की और पूज्य श्री से मंदसौर पधारने हेतु आग्रह किया। उनकी विनती को अंगीकृत कर पूज्य श्रीजी वहां से विहार कर मंदसौर पधारे व उन जैन साधुओं को जिनके साथ आहार-विहार का व्यवहार तोड़ा जा चुका था उन्हें जैन शास्त्रोक्त विधि से आलोचना कर प्रायश्चित्त लेने के लिए फरमाया परन्तु उन साधुओं ने पूज्य श्रीजी के मन को संतोष हो उसके अनुरूप संतोषप्रद रीति से प्रायश्चित्त लेना अंगीकार नहीं किया इसिलये पूज्य श्री ने वहां से विहार कर दिया। परंतु धन्य है इन महापुरुष की गंभीरता को कि इतनी अधिक बात होते हुए भी पूज्य श्रीजी ने इस सम्बन्ध में किसी तरह से प्रकट निंदा-स्तुति नहीं की। साथ ही यह प्रेरणा भी नहीं दी कि इन साधुओं को संप्रदाय से अलग कर दिया है इसलिए इन्हें आव-आदर नहीं दिया जावे, न ही उनका बुरा चाहा। पूज्य महाराज श्री की तो इसके विपरीत यह धारणा थी कि वे भी सब प्रकार का ममत्व त्याग कर शास्त्रानुसार समाधान कर अपना आत्महित साधें।

मंदसौर से क्रमशः विहार करते हुए पूज्य श्री मेवाड़ में पधारे और श्री उदयपुर श्री संघ की विनती स्वीकार कर पूज्य श्री ने सं. 1972 का चातुर्मास उदयपुर में किया।

अध्याय 34 : उदयपुर का अपूर्व उत्साह

उदयपुर के पंचायती नोहरे में हर वर्ष मुनिवृन्द के चातुर्मास हुआ करते थे परन्तु पूज्य श्री के चातुर्मास की उस वर्ष उदयपुर में सम्भावना नहीं होने से तेरापंथी समाज ने पहले से ही उक्त पंचायती नोहरा उनके पूज्य श्री कालूरामजी के चातुर्मास हेतु स्वीकृति प्राप्त कर हासिल कर लिया था। पूज्य श्री के चातुर्मास हेतु दूसरे इतने बड़े भवन ढूंढ़ने के लिए उदयपुर श्री संघ ने काफी प्रयत्न किया। कई अमीर-उमरावों ने अपनी हवेली में पूज्य श्री के विराजने हेतु निवेदन किया मगर व्याख्यान के लिए जैसी उपयुक्त जगह चाहिए थी वह उनमें उपलब्ध न होने से उदयपुर के महाराणाधिराज जो उस वक्त कुंभलगढ़ विराज रहे थे, उनसे, उपयुक्त स्थान उपलब्ध कराये जाने हेतु निवेदन किया गया। महाराणा साहिब ने उदयुपर के महलों के पास फराशखानों का मकान, जो पूर्व में पुराना अस्पताल था, उसमें पूज्य श्री के ठहरने हेतु अनुमति दे दी अतएव पूज्य श्री का चातुर्मास उस वर्ष फिर उसी फराशखाने के भवन में हुआ। व्याख्यान हेतु पूज्य श्री ने फराशखाने की बाहर की जगह पसंद की ताकि फराशखाने के भीतर एवं बाहर व्याख्यान में आने वाले हजारों लोगों को सुविधापूर्वक बिठाया जा सके। मगर इसके बावजूद पूज्य श्री की अमृतवाणी के श्रवणार्थ इतनी अधिक जन मेदिनी एकत्र हो जाती थी कि आम रास्ता भी रुक जाता था एवं लोगों का आवागमन कठिन हो जाता था।

उस चातुर्मास में तपस्वी संत श्री मांगीलालजी ने 45 उपवास किये थे एवं दूसरे छह संतों ने मास-क्षमण (महीने-महीने के उपवास) किये थे। एक साधु ने तो 34 उपवास किये थे तथा एक साधु ने 21 उपवास किये थे। तपस्या से प्रभावित होकर श्रीमान् हिन्दवां के सूर्य महाराणा साहिब उदयपुर ने श्रावण बदी एकम् के रोज जीवदया के कार्य को प्रोत्साहन देने हेतु एक रोज के अगते का पालन करने का हुक्म फरमाया। इस आदेश के अनुपालन में एक रोज कसाई खाने, शरावखाने, तेलियों के कोहलू, भड़भूजों, हलवाईयों एवं रंगरेजों की दुकानें बंद रही थीं।

जिस रोज तपस्वी संत मांगीलालजी ने 45 उपवास का पारणा किया उस रोज उदयपुर श्री संघ की ओर से दीन और गरीब अभ्यागतों को भोजन, मिठाइयाँ एवं कपड़े बाँटे गये एवं बकरों को अभयदान देने के लिए एक निधि स्थापित की गई, जिसके द्वारा करीब 4000 (चार हजार) बकरों को अभयदान दिया गया। श्रीमान् बलवंतसिंह जी साहिब कोठारी, ने अपनी तरफ से 80 बकरों को अभयदान दिया। इस चातुर्मास में अन्य भी अनेक प्रकार के सार्वजनिक प्रत्याख्यान तथा स्कंध इत्यादि सम्पन्न हुए।

पारणा के दिन बेदला के रावजी श्री नाहरसिंहजी साहिब ने भी अपने ठिकाने की जनता से अगता पलवाया था। पूज्य श्री की प्रेरणा से उदयपुर श्री संघ ने न्याति भोजन रात को न कर, दिन में ही सम्पन्न करने का प्रस्ताव पास किया एवं उस हेतु समस्त सामग्री दिन में ही बनाये जाने का प्रस्ताव पारित किया गया।

उस चातुर्मास में देश के कोने-कोने से एवं मेवाड़ के समीप के ग्रामों से कई लोग नित्य दर्शनार्थ आते थे। आश्विन के शुक्ल पक्ष में तो करीब 6000 से 7000 आदमी व्याख्यान में जमा होते थे जिनकी भोजन व्यवस्था एवं ठहरने का समस्त प्रबन्ध उदयपुर श्री संघ की ओर से किया गया था, जिसकी सब लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। अब तक के चातुर्मासों में इतनी अधिक जन-मेदनी किसी भी चातुर्मास में जमा नहीं हुई थी। उदयपुर में दशहरे की सवारी बहुत धूमधाम से निकलती है जिसमें उदयपुर के समस्त ठाकुर एवं अमीर उमराव अपने पूरे लवाजमे के साथ सम्मिलित होते हैं। इस मौके पर पूज्य श्री के चातुर्मास का योग एवं अमृतमय वचनामृतों का लाभ एवं दोनों समय मिष्ठान एवं भोजन तथा ठहरने एवं पानी इत्यादिक की सुव्यवस्था के कारण चातुर्मास में आने वालों की संख्या और अधिक बढ़ गई। यदि इस तरह का अवसर किसी अन्य स्थान को मिलता तो शायद वे घबरा जाते मगर यह श्रीमान् बलवंतसिंह जी साहिब की हिम्मत एवं उनके कुशल नेतृत्व में कार्य करने वालों का अविश्रांत श्रम एवं पूज्य श्री के गौरवशाली एवं प्रेरणास्पद व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि जिसके कारण उदयपुर की ऐतिहासिक नगरी अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रंख सकी थी-। इतनी अधिक संख्या में आने वाले आगन्तुओं को गर्मागर्म भोजन उपलब्ध कराने हेतु उदयपुर के सुश्रावक व्याख्यान का लाभ भी छोड़ देते एवं राज्य के कर्मचारी अवकाश लेकर अथवा राज्य कार्य छोड़कर श्रीमान् कोठारी साहब के सिफारिश में मेहमानों को ठहराने का उचित प्रबन्ध करने में जुट जाते थे। लोगों का कहना था कि पूज्य श्री का चातुर्मास अपने घर हाथी बांधने के समान है, जिसमें व्यवस्थाओं में खर्च से भी अधिक श्रम का योग देना पड़ता है, इसलिए छोटे गांव वाले तो पूज्य श्री के चातुर्मास की विनय करने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाते थे।

दर्शनार्थ आने वाले बहुसंख्यक लोगों का आना और पंचायती भोजन गृह में भोजन कर इधर-उधर घूमते रहना इस महंगाई के जमाने में कठिन हो जाता है। कांगड़ी हरिद्वार और दूसरे स्थानों पर गुरुकुल इत्यादि के उत्सवों पर या महात्माओं के दर्शनों की अभिलाषा से लोग बड़ी संख्या में इकट्ठे होते हैं किन्तु वे अपने भोजन का स्वयं प्रबंध करते हैं। इससे उस स्थान के स्वधर्मियों को भाररूप नहीं होते हैं। हां! स्वामी वात्सल्य का अमूल्य लाभ लेने को श्रावक ललचाते हैं, परन्तु वह यह सब सीमांतर्गत ही ठीक लगता है। अतिरेक का परिणाम अनिष्ट होता है। आने वालों के ठहरने की व्यवस्था कर देना इतना प्रबंध पर्याप्त है बाकी की व्यवस्था आने वाले पर छोड़ देना होगा तो जहां चातुर्मास हो वहां के श्रावक भी महात्मा के वचनामृतों का लाभ ले सकें।

पूज्य श्री की सेवा में आये कई श्रावक तो बहुत दिनों तक अलग-अलग मकान लेकर रहे थे। श्रीमान् बालमुकुन्दजी साहिब सतारेवाले तथा श्रीयुत वर्द्धमानजी साहिब पीतलिया इत्यादि श्रावक पूज्य श्री के साथ ज्ञानचर्चा कर अलभ्य लाभ उठाते थे। एक दिन सेठ बालमुकुन्दजी साहिब 'बावीश समुदाय गुणविलास' नामक एक पुस्तक, जो बीकानेर में छपी थी, लेकर पूज्य श्री के पास आये और उसकी प्रस्तावना पढ़कर सुनाई और श्रीजी से पूछा कि क्या वह सब उनकी सम्मति से लिखा गया है। तब श्री जी महाराज ने कहा कि यह पुस्तक किसने व कब लिखी और किसने छपवाई, इस बारे में उन्हें कुछ भी जानकारी नहीं है । इस पुस्तक की प्रस्तावना में पूज्य श्री के नाम का आश्रय लेकर एक यति ने अपनी कितनी ही मान्यताओं को पुष्ट करने का प्रयत्न किया है जिससे

तने ही श्रावकों के मन में शंका उत्पन्न हो गई थी परन्तु श्रीजी महाराज ने सारी भ्रांतियों का इतने ट एवं सुंदर ढंग से समाधान किया कि सब लोगों की भ्रान्ति दूर हो गई।

पूज्य श्री ने बाल विवाह से होने वाली हानियों और योग्य वय तक विशुद्ध ब्रह्मचर्य के नन के लाभ पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया था जिससे प्रेरित होकर कई श्रावकों ने 18 वर्ष के ले पुत्र का और 13 वर्ष के पहले पुत्री का विवाह न करने की प्रतिज्ञा ली।

उस वर्ष तेरापंथ के पूज्य श्री कालूरामजी महाराज तथा तपागच्छीय आचार्य श्री विजयधर्म रिजी महाराज के चातुर्मास भी उदयपुर में ही थे। उनके कितने ही श्रावक हर प्रकार से शोत्पादक प्रवृत्तियां करते ही रहते थे, परन्तु यह क्षमा का सागर कभी भी न छलका। श्रावक स्पर अत्यन्त घटिया प्रतिस्पर्धा करते रहते थे किन्तु आचार्य श्री ने अपने चित्त की शांति पूर्णतया ाये रखी। पूज्य श्री अपने श्रावकों को भी शान्ति रखने का सतत् उपदेश देते रहते थे। अपना ाव दिखाने के विचार से सर्वदा दूर रहकर पूज्य श्री सदा संयम का ही पक्ष लेते रहे। संयम में न ने वालों से वे प्रतिज्ञा कराते थे जिससे कि वे लोग भी स्वयं नम्रता धारण कर पूज्य श्री की तरह विनय करते थे। इतना ही नहीं परन्तु जब उन अन्य श्रावकों को पूज्य श्री का परिचय होता तब उन पर भक्तिभाव दिखाते थे।

श्रीमान् महाराणा साहिब भी पूज्य श्री की शांतवृत्ति की प्रशंसा सुन बहुत आनन्दित हुए र कभी-कभी अपने अधिकारियों से जानकारी कर लेते थे कि आज व्याख्यान में क्या फरमाया। म्वत् 1972 के मार्गशीर्ष कृष्णा 1 के दिन पूज्य श्री ने विहार किया उस समय उनके पांव में सह्य वेदना थी। श्रावक लोगों ने ठहरने के लिये बहुत आग्रह पूर्वक विनय की किंतु पूज्य श्री ने रमाया कि 'मेरी चलेगी वहां तक मैं कल्प नहीं तोडूंगा' उस दिन वे अत्यन्त कठिनाई से चलकर रजपोल महंतजी की धर्मशाला में विराजे और वहां लशकर के श्री ब्रजमोहन लाल अग्रवाल ने त्कृष्ट वैराग्य से पूज्य श्री के पास दीक्षा ग्रहण की। ये महाशय दिगम्बर मतानुयायी थे और सं. 972 के चातुर्मास में उनका पूज्य महाराज से परिचय हुआ था। दीक्षा बहुत धूमधाम से हजारों ोगों की उपस्थिति में हुई थी। मगर होनी प्रवल होती है। सम्वत् 1975 में ही ब्रजमोहनलालजी ा स्वर्गवास हो गया।

इसके पश्चात् श्री जी महाराज ने उदयपुर से चार कोस दूर गुरुड़ी ग्राम की तरफ विहार केया। गुरुड़ी में ओसवाल समाज की दो तड़ें थी। पूज्यश्री के उपदेश से ये दो तड़ें मिटकर समाज ों एकता हो गई।

वहां से पूज्य श्री ऊंटाले पधारे वहां 40 वकरों को ऊंटाला के पंचों ने तथा 100 वकरों को ऊंटाले के पटेल दल्ला बागड़ी बाड़ी वाले ने अभयदान दिया।

सं. 1972 के उदयपुर के चातुर्मास के दौरान एक अंग्रेज अधिकारी कांटा वाले टेलर साहिब, जो समस्त मेवाड़ के औपियम एजेन्ट थे, पूज्य श्री के दर्शनार्थ कई वार आये थे और पूज्य श्री का व्याख्यान वहुत प्रेमपूर्वक सुना करते थे। इतना ही नहीं परन्तु वे व्याख्यान के पश्चात् भी दूसरे समय पूज्य श्री के पास आते थे और तात्विक विषयों पर चर्चा करते थे। इस महानुभाव ने पशु पक्षी वगैरह जानवरों को नहीं मारने की प्रतिज्ञा भी ली थी।

दूसरे अंग्रेज पादरी खेरंड डी.जेम्स शेपर्ड एम.डी.डी.डी. जो कि एक वयोवृद्ध और समर्थ विद्वान् थे और जो बाद में विलायत चले गए थे वे भी महाराज श्री के दर्शनार्थ आये थे। महाराज श्री के साथ वार्तालाप करने से उन्हें अपार आनन्द हुआ और वे अपने पास की एक पुस्तक महाराज श्री को भेंट करने लगे, परन्तु महाराज श्री ने अस्वीकार क़र दिया। जैन साधुओं के कड़े नियमों की जानकारी हासिल कर उक्त अंग्रेज पादरी आश्चर्यचकित हो गये।

इस चातुर्मास में एक दिन पूज्य श्री ने धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता पर बहुत प्रभावशाली उपदेश दिया और लघुवय से ही बालकों के हृदय पर धर्म की छाप डालने की आवश्यकता बताई। उपदेश के असर से उदयपुर के सब बालकों को शिक्षा देने के लिये एक पाठशाला खोली गई। भाई रतनलालजी मेहता के परिश्रम से यह पाठशाला वर्तमान समय में भी अच्छी तरह चल रही है। इस पाठशाला में धार्मिक के साथ व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती है। अतः माँ-बाप अपनी संतानों को ऐसी पाठशाला में भेजना चाहते हैं किन्तु स्थानाभाव बना रहता है।

शिक्षा के नाम पर विद्यार्थियों पर पुस्तकों का इतना व्यर्थ का भार बढ़ गया है कि केवल धार्मिक शिक्षा देने वाली शालाओं में विद्यार्थियों का मन अध्ययन में नहीं लगता है और वे उसमें उतनी तन्मयता से संलग्न नहीं हो पाते हैं। काठियावाड़ की जैन-शालाओं को पूर्ण सफलता न मिलने का भी यही कारण है।

धार्मिक, व्यवहारिक तथा राष्ट्रीय शिक्षा एक ही संस्था में मिले ऐसी पाठशालाएं स्थापित की जायें तब ही अपना आशय सिद्ध होगा। फिर भी धार्मिक संस्कार बाल्यकाल से बच्चों में डालने का प्रयास करते रहना चाहिए।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, देश-काल के अनुसार व्यावहारिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा का समन्वय होने पर उच्च विचार रग-रग में समा जाते हैं। बारह व्रतादि जैन-नियम जो व्यवहार वैद्यक और नीतिशास्त्र के अनुसार ही योजित हुए हैं उनका सही रहस्य समझाने एवं इस अमृत के पान कराने के लिये वर्तमान शिक्षा पद्धति को आज की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाते हुए आकर्षक बनाने की आवश्यकता है जिससे भावी पीढ़ी अत्यधिक लाभान्वित होगी। श्रीयुत देसाई का कथन सही है कि मनुष्य उत्क्रांति पाकर पशु आदि की प्रवृतियों से निवृत्त होकर मनुष्य जीवन में प्रवेश करता है। उसे दिव्य जीवन कैसे बिताना है और उसे दिव्य जीवन के माध्यम से आनन्दमय सत्‌चिद् धनानन्दमय जीवन अंत में किस प्रकार से प्राप्त करना है, यही सिखाना धर्म है।

धर्मज्ञान प्रचार की प्रभावना में महान पुण्य समाया हुआ है इस संबंध में एक लेखक के योग्य उद्गार इस प्रकार हैं कि 'It is the duty of the thoughtful among the jains to see that a healthy knowledge of the valuable and basic principles of jainism is spread liberally. सर नारायण चन्दावरकर लिखते हैं कि 'सिर्फ बुद्धि के विकास का लाभ नहीं है, अन्तःकरण का विकास भी आवश्यक है। समाज, देश तथा संसार की शांति के लिये मानसिक शिक्षा, मानसिक विकास की आवश्यकता है और जब तक प्रजा का मानसिक विकास नहीं होगा तब तक राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता।'

यूरोप में भौतिकवाद पर बल है। आध्यात्मिक बल की अनुपस्थिति ही युद्धों का कारण है। भौतिकवाद पर आध्यात्मिक बल का प्रभुत्व होना चाहिए तब ही वहां स्थायी शांति कायम हो सकती है।

अध्याय 35 : शिकार बन्द

ब्यावर के आसपास का पहाड़ी प्रदेश 'मगरे' के नाम से प्रसिद्ध है। वहां के सैकड़ों ामीण, किसान एवं पशुपालक मेर व अन्य जाति के हैं। इनमें प्रथा थी कि होली के त्यौहार पर शिकार करते थे। तीन दिन तक पहाड़ों में घूम-घूम कर निरपराधी पशु-पक्षियों को मारते थे। दिन र पहाड़ियों में इधर-उधर दौड़ते और छोटे-बड़े, भूचर या नभचर जो भी प्राणी नजर आता उसे ार डालते थे। इनके जंगल में इधर-उधर दौड़ने से झाड़-झाड़ियों से उनका शरीर भी लहू-लुहान हो ाता था। यह घातकी और जंगली प्रथा बहुत समय से इन लोगों में प्रचलित थी जिससे प्रतिवर्ष ाखों निरपराध जीवों की हत्या हो जाया करती थी।

सम्वत् 1972 के फाल्गुन मास में पूज्य श्री ब्यावर (नये नगर) पधारे, तब मगरे श्रेत्र के कितने ही किसान भी श्रीजी के व्याख्यान में आये। मौका देख पूज्य श्री ने जीव दया पर भावशाली और पशुक्रूरता को लक्ष्य कर हृदय-स्पर्शी उपदेश दिया जिसे सुनकर पत्थर हृदय भी पेघल जाये। इस उपदेश का उपस्थित किसानों के हृदय पर भारी प्रभाव हुआ और उन्हें अपने अपकृत्यों पर बहुत पश्चात्ताप होने लगा। व्याख्यान की समाप्ति पर महाराज श्री ने तथा महाजनों के कतिपय प्रमुख लोगों ने अपने किसान भ्राताओं को इस पापपूर्ण प्रथा को बन्द करने के प्रयास करने के लिये समझाया। कुछ लोगों ने तो प्रसन्नतापूर्वक इसे स्वीकार कर लिया। किन्तु कुछ ने कहा कि महाजन लोग हमारे पर तनिक भी दया नहीं करते हैं, उधार दिये हुए रुपयों पर ब्याज के दूने-तिगुने दाम ले लेते हैं और जव कर्जा वसूल करना हो तो बिल्कुल दया नहीं रखते हैं।

यह सुनकर उपस्थित महाजनों ने प्रतिज्ञा की कि प्रति माह रुपये 1.50 प्रति सैकड़ा से अधिक ब्याज वे कदापि नहीं लेंगे। इसके उत्तर में किसानों ने वचन दिया कि वे भी शिकार नहीं करने की व्यवस्था करेंगे। दूसरों को उपदेश देने के पहले अपना आचार शुद्ध होना चाहिए, 'परोपदेशे पांडित्य' इस जमाने में नहीं चल सकता है। पहिले अपने पांव पर घाव सहन करना सीखना होगा।

उसके पश्चात् उत्साही किसानों व महाजनों के संयुक्त प्रयास से थोड़े दिन वाद कई गांवों के करीव 300 किसान ब्यावर आये। उनको महाजनों की ओर से प्रीतिभोज दिया गया। पूज्य श्री के अपूर्व उपदेश के प्रभाव से उन लोगों ने जीव हिंसा न करने तथा शिकार बन्द करने की प्रतिज्ञा की और तत्सम्बन्धी दस्तावेज भी महाजनों की वही में लिख दिया। इसी प्रकार महाजनों ने भी डेढ़ रुपये से अधिक ब्याज न लेने का दस्तावेज लिखकर उन्हें दिया।

इसके पश्चात् ब्यावर के श्रीयुत पन्नालालजी कांकरिया, केसरीमलजी रांका इत्यादि 20 व्यक्ति 'झाक' नामक गांव गये। वहां के किसानों के हृदय पर भी श्रीमान् पूज्य महाराज के उपदेश का प्रभाव हुआ। उससे मौजे (झाक) के पटेल, नम्बरदार, ठाकुर, पन्ना, दल्ला, धीरा इत्यादि ने तीन दिनों के शिकार करने की परंपरा में से एक दिन का शिकार (पीढ़ी दर पीढ़ी) नहीं करने के लिये

सहमति प्रदान की। मौजे झाक के अधीन शामगढ़, लुलवा इत्यादि करीब 100 ग्राम आते हैं। इन सब गांवों में उपरोक्त प्रकार से ठहराव हो गया। उसके प्रतिफल स्वरूप एक हथाई का (चबूतरा) निर्मित करने तथा एक दिन के लिए अफीम, तम्बाकू, ठंडाई आदि की व्यवस्था करना महाजनों ने भी स्वीकार किया। सम्वत् 1976 में श्रीमान आचार्य महाराज शेष काल में ब्यावर विराजे। शिकार की निगरानी के लिये आहेड़े के पांच दिन पहले महाजनों में से 40-50 स्वयं सेवक मौजे झाक गए और उन्होंने किसानों को कहा कि वे हथाई बनवालें और उसका खर्चा महाजनों से ले लें। तब वहां के लोगों ने कहा कि उन्होंने आपस में चन्दा करके हथाई के निर्माण की व्यवस्था कर ली है। उसमें वे महाजनों से सहयोग नहीं लेंगे और जो आहेड़े श्री पूज्य श्री महाराज के उपदेश से उन लोगों ने छोड़ा है उसका वे बराबर पालन करते व कराते रहेंगे। और परस्पर दस्तावेज लिखकर दिया।

उपरोक्त समझौते से लाखों जीवों को अभयदान मिलने लगा और सैकडों लोग पाप की खाई में गिरने से बच गये।

इस प्रकार पूज्य महाराज के यहां पधारने से बड़ा उपकार हुआ। यहां के ओसवाल भाइयों में मेल नहीं था उससे वे तीन तड़ों में बँट गये थे और साधुमार्गी व मन्दिरमार्गी भाइयों के मतभेद के कारण खान-पान बन्द हो गया था परन्तु श्रीमान् आचार्य जी महाराज के पधारने से उनके व्याख्यान का लाभ शाह उदयमल जी तथा शाह धूलचन्दजी कांकरिया इत्यादि कितने ही मंदिरमार्गी भी लेने लगे। महाराज के सदुपदेश के प्रभाव से समाज में एकता स्थापित हो गई और तड़ें समाप्त कर दी गई। छोटे-बड़े सब विवादों का समाधान परस्पर बातचीत से कर लिया गया। जहां समाज में इतना बिखराव था वहां आचार्य प्रवर के पदार्पण व प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व की छत्र-छाया में सब एकमत हो गये।

अध्याय 36 : मारवाड़ का उपकारी विहार

ब्यावर से पूज्य श्री अजमेर पधारे। वहां से सुजानगढ़ शीघ्र पधारना था। वहां बीकानेर के श्रावक पोखरमल जी हजारों की सम्पति त्याग कर वैराग्यपूर्वक पूज्य श्री से दीक्षा लेने वाले थे। परन्तु श्रीमान् जैनाचार्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज की संप्रदाय के आचार्य श्री विनयचंदजी महाराज का स्वर्गवास हो गया था। उनकी जगह आचार्य स्थापित करने थे। इसलिये श्रीमान् पंडितराज श्री चन्दनूमल जी महाराज ने यह कार्य श्रीमान् की उपस्थिति में करने का निवेदन किया। अतः श्रीजी महाराज अजमेर रुके और हजारों लोगों की उपस्थिति में श्रीमान् शोभाचन्द जी महाराज को विधिपूर्वक आचार्य पदारूढ़ करने की क्रिया में भाग लेकर चतुर्विध संघ में अपूर्व आनन्द-मंगल का सागर लहरा दिया। दोनों सम्प्रदायों के साधुओं में इससे इतना अधिक परस्पर प्रेमभाव देखा गया कि सबका हृदय आनन्द से भर आता था। इस अवसर पर श्रीमान आचार्य श्रीलालजी ने आचार्य पद की गरिमा, उत्तरदायित्व एवं संघ व्यवस्था के दूरगामी परिणामों को दृष्टिगत रखकर बड़ा समयानुकूल विवेचन अत्यन्त उत्तम रीति से किया एवं श्रीमान् आचार्य शोभाचन्दजी महाराज ने भी स्थविर मुनि श्री चन्दनमलजी महाराज द्वारा उन्हें आचार्यत्व की चादर ओढ़ाये जाने के बाद समयोचित व्याख्यान दिया था जिसमें पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के अनुपम उदार गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। आचार्य श्री शोभाचन्द जी महाराज ने स्वयं पूज्य श्री श्रीलाल जी का ऋणी रहूंगा ऐसा फरमाया था। हम आशा करते हैं कि पूज्य श्री शोभालालजी साहिब तथा उनकी सम्प्रदाय के साधु और श्रावक अपने वचनानुसार पूज्यश्री के संत-सती परिवार पर ऐसा ही प्रेमभाव सदैव बनाये रखेंगे।

अजमेर से जल्दी में विहार कर श्रीजी महाराज बीकानेर होकर सुजानगढ़ पधारे। वहां सम्वत् 1972 के फाल्गुन शुक्ला 6 शुक्रवार को श्रीमान् पनेचंदजी संघवी के बनाये हुए मन्दिर में बीकानेर निवासी श्रीयुत पोखरमल जी को दीक्षा दी। आपकी उम्र उस समय केवल 20 वर्ष की थी। आपका ज्ञान बढ़ा-चढ़ा तथा वैराग्य भी अत्यंत उत्कृष्ट था। दीक्षा लेने के पहिले उन्होंने बहुत सा धन दान-पुण्य में खर्च किया था और दीक्षा महोत्सव में भी हजारों रुपये खर्च किये। बीकानेर से भी बहुत लोग इस अवसर पर पधारे थे और मन्दिरमार्गी भाइयों ने भी अनुकरणीय भ्रातृभाव दिखाया था। इस समय सुजानगढ़ में साधुओं के 25 ठाणे विराजमान थे। दिल्ली, जोधपुर, जयपुर, अजमेर, बीकानेर आदि शहरों के करीब 4,000 लोगों ने इस दीक्षा महोत्सव में भाग लिया था। एक अपरिचित क्षेत्र में इस प्रकार के विराट दीक्षा महोत्सव की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय पूज्यश्री के प्रभावशाली एवं गुणग्राही व्यक्तित्व को ही जाता है।

सुजानगढ़ से श्रीमान् आचार्य प्रवर ने थली (चूरु, बीकानेर व नागौर जिले का मरुस्थलीय क्षेत्र) की तरफ विहार किया था। थली के प्रदेश में साधुमार्गी भाइयों की अधिक आबादी न होने से और तेरहपंथी भाइयों का वहां बहुत प्रभाव होने से पूज्य श्री का उस तरफ का विहार उनके मन में

सूल के समान खटकने लगा। कितने ही तेरहपंथी* साधुओं तथा श्रावकों ने पूज्य श्री के मार्ग में अनेक प्रकार के विघ्न व बाधायें डाली। विघ्न डालने वालों ने उनके लिये अनेक प्रकार की कल्पित तथा मिथ्या बातें फैलाना प्रारंभ कर दिया और इस प्रकार का प्रचार प्रारम्भ कर दिया कि कोई भी तेरहपंथी श्रावक न तो उन्हें उतरने को स्थान देवे और न ही आहार-पानी की व्यवस्था करें। उक्त प्रकार से तेरहपंथी भाइयों ने पूज्यश्री को परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी किन्तु पूज्यश्री इन परेशानियों से भयभीत होने वाले नहीं थे। उन्होंने अपना विहार आगे जारी रखा और लाडनूं, खादीसर, राजलदेसर, रतनगढ़, सरदारशहर आदि अनेक गांवों में विचरण कर पवित्र दया धर्म की विजय पताका फहराई। बीकानेर के सुपसिद्ध सेठ हजारीमल जी मालू इत्यादि थली में पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे और कितने ही दिन उनकी सेवा में रहकर अनेक गांवों में उनके साथ गये।

थली के विहार में महेश्वरी, अग्रवाल, ब्राह्मण इत्यादि वैष्णव भाइयों ने पूज्य श्री के प्रति बहुत ही भक्तिभाव दर्शाया और आहार-पानी इत्यादि की व्यवस्था कर अलभ्य लाभ उठाया। वे पूज्यश्री के सदुपदेश से उन्हें अपने संतों के समान ही मानते थे। तेरहपंथी साधुओं की जैनधर्म विषयक विवेचना से थली के कई लोगों में शंका उत्पन्न हो गई थी कि जैन लोग जीवों को मृत्यु के मुँह में** से छुड़ाना पाप समझते हैं, दान देने में पाप मानते हैं और गौशाला जैसी परमार्थिक संस्थाओं को कसाईखाने से भी अधिक पापखाना समझते हैं। ऐसी शंकाओं के कारण वहां के निवासी जैनधर्म की ओर घृणा की दृष्टि से देखते थे। परन्तु श्रीजी महाराज के सदुपदेश से उनकी भ्रान्तियां दूर हो गई। सब शंकाओं का समाधान कर शास्त्रीय दृष्टान्त देकर उनके मन में यह दृढ़ विश्वास जमा दिया कि जैनी ही प्राणीरक्षा के पूर्ण हिमायती हैं।

प्रतापमल जी की अपील

कई तेरहपंथी भाई भी पूज्य श्री के शास्त्र सम्मत उपदेश से उनके प्रशंसक और दयाधर्म के अनुयायी बन गए। उनमें से कितने ही सहृदय जनों को अपने स्वधर्मी बन्धुओं एवं साधुओं द्वारा पूज्य श्री के साथ किये गये दुर्व्यवहार के प्रति बड़ा दुःख होता था। उनमें से एक सज्जन मुंवासर निवासी श्रीयुत प्रतापमलजी नाहटा ने एक अपील मुद्रित कराकर अपने स्वधर्मी भाइयों में वितरित कराकर सही स्थिति से अवगत कराया था।

उपरोक्त अपील में उद्धृत कुछ अंशों को यहां दिया जाता है। सम्पूर्ण अपील देकर किसी सम्प्रदाय या व्यक्ति की निन्दा करने का आशय इस पुस्तक में नहीं है। सम्पूर्ण अपील में तेरापंथी भाइयों की भूल का वर्णन है फिर भी यहां दिया जाना उपयुक्त नहीं समझा गया है।

प्यारे भाइयों से निवेदन

प्रिय सज्जनों ज्ञात हो कि हमारे तेरहपंथी और बाईस सम्प्रदाय के साधु श्रावकों में मतभेद है। मैंने आज तक बाईस सम्प्रदाय के किसी साधु को न तो देखा था और न सुना था। आज इस

---

* साधुमार्गी स्थानकवासी सम्प्रदाय में से भिन्न हुए साधुओं ने यह पंथ चलाया है। जीवदया इत्यादि वातों में यह तमाम जैन सम्प्रदायों से भिन्न मत रखता है।

** तेरहपंथी साधु ऐसा उपदेश करते हैं कि एक जीव के मारने से सिर्फ एक पाप (प्राणातिपात) ही लगता है। परन्तु उसे बचाने से अठ्ठारह पाप स्थान सेवन करने पड़ते हैं।

लेख द्वारा अपने (तेरहपंथी) साधु श्रावकों के सामने कुछ कहना चाहता हूँ। इसका कोई यह अर्थ न समझे कि मैं अन्यधर्मी हूं, अब तक तेरहपंथी ही हूँ और इसलिए निम्न वस्तुस्थिति प्रस्तुत करता हूँ।

तारीख 7 मई, 1961 के दिन सरदारशहर निवासी बालचंदजी सेठिया प्रथम 'आडसर' आये और हमारे तेरापंथियों के साधु श्रावकों द्वारा बाईस-टोले के साधुओं को उतरने के लिए मकान न देने का आग्रह एवं प्रबंध किया। फिर वहां से रवाना होकर 'मुंबासर' आये और सायं छैः बजे साध्वीजी के पास आये। वहां मैं भी उपस्थित था। अन्य 20-25 तेरहपंथी गृहस्थी भी बैठे थे। उस वक्त बालचन्दजी सेठिया साध्वीजी को कहने लगे कि 'बाईस टोले के साधुओं का आचार ठीक नहीं होता। वे यहाँ आवेंगे। उन्हें उतरने के लिये मकान न मिले तो ठीक रहेगा।' तब साध्वीजी बोले कि उनके आचार विचार के बारे में कुछ जानकारी दें तब बालचन्दजी बोले कि वे सदोष आहार-पानी लाते हैं अर्थात् जबरन आहार मांग कर लाते हैं और उन्हें कोई प्रश्न पूछते हैं तो उत्तर भी नहीं देते और उत्तर न देने का कारण पूछते है तो कहते हैं कि अभी अवसर नहीं है। जब हम पूछते हैं कि आपको अवसर कब मिलेगा? तो वे बोलते भी नहीं हैं। फिर बालचन्दजी बोले कि 'सरदारशहर में तो कालूरामजी चंडालिया ने चालीस हजार का मकान उतरने के वास्ते दिया, ज़ो कि मकान नहीं देते तो वे कहां उतरते? उन साधुओं के बाप-दादों ने भी वैसा मकान न देखा होगा' ऐसी-ऐसी अनेक बातें रात के छः बजे से साढ़े आठ बजे तक होती रहीं और साध्वीजी तथा श्रावक सब उसे सुनते रहे। वे सब बातें लिखी जायें तो एक छोटी सी पुस्तक बन जाये। परन्तु मैंने संक्षेप में लिखी हैं। फिर मैं तो उन सबको बातें करता छोड़ अपने मकान पर जा सोया। तत्पश्चात् 14 तारीख को बाईस सम्प्रदाय के साधु मुंबासर आये। मालचन्दजी तथा बालचन्दजी ने जो बातें कहीं थी वे सच्ची हैं या झूठी उसके परीक्षार्थ में गोचरी पानी में उनके साथ रहा और देखा तो गोचरी में वे किसी प्रकार की कोई जबरदस्ती नहीं करते। वे सदोष आहार-पानी भी नहीं लेते हैं। निकट परिचय से ज्ञात हुआ कि श्रीयुत् मालचन्दजी इत्यादि की सब बातें मिथ्या हैं। इन साधुओं को लोग स्थान-स्थान पर आकर प्रश्न पूछते थे। और वे उन सबको यथार्थ उत्तर भी दे देते थे, परन्तु गोचरी के समय कई लोग उन्हें राह में रोकते थे तो वे उन्हें कहते थे कि अभी अवसर नहीं है।

अब मैं मेरे दिल में जो विचार उत्पन्न हुए हैं उन्हें प्रकट करता हूं एवं सब तेरहपंथी भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि इस तरह कदाग्रह करना, साधुओं को मिथ्या कलंक देना, उन्हें उतरने के लिए मकान न देना, लड़ाई झगड़े करना, चातुर्मास न करने देना, ये भले आदमियों के काम नहीं हैं। अपने तेरहपंथ के साधुओं को तो हम बादाम इत्यादि के हलुए बहरावें और दूसरे साधुओं पर मिथ्या दोषारोपण करें क्या यही हमारा धर्म है? इस बात को बहुत गौर से सोचना चाहिए वर्ना उसका फल यह होता है कि परस्पर द्वेष भाव बढ़ता जाता है और साथ ही अपनी मूर्खता प्रकट होती जाती है। आप लोगों का तो यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम सबसे प्रेम भाव रखें। और हर प्रकार की प्रवृत्ति से साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं को रोकें। बड़ा खेद का विषय है कि तेरहपंथी साधु-साध्वी भी कहते हैं कि तुम्हारे घर से दूसरी सम्प्रदाय के साधु आहर-पानी ले गए हैं वह तुमने क्यों बहराया? अब हम तुम्हारे यहां गोचरी करने नहीं आवेंगे। वे ऐसी बातें कहकर कई श्रावकों को प्रतिज्ञा देते हैं कि वे अन्य सम्प्रदाय के साधुओं को आहार पानी नहीं दें। पाठक विचार करें कि जो साधु पंचमहाव्रत लेकर भी रागद्वेष को नहीं त्यागते हैं और उल्टे उसकी अभिवृद्धि ही करते हैं तो फिर गृहस्थों का तो कहना ही क्या है? इसलिये आप लोगों से यही विनती है कि दिल में

विचार करें। गृहस्थी एक अभय द्वार है और दया दान से ही गृहस्थाश्रम की शोभा है, कल्याण है। भगवान महावीर ने भी अपने परम उपदेशों में दया दान पर ही जोर दिया है। उसे बंद करना जिन वचनों की उत्थापना करने के समान है। इसलिये भविष्य काल का विचार कर सब भाई आपसी प्रेम बनाये रखें और ज्ञान की अभिवृद्धि करें और जो मिथ्या एवं भ्रान्त धारणायें घर कर गई हैं उन्हें सुधार लें। मेरे विचार में यह काम जैन श्वेताम्बर तेरहपंथी सभा को हाथ में लेना चाहिये।

प्रतापमल नाहटा, मुंवासर

राज्य श्री बीकानेर (मारवाड़)

पूज्यश्री के परिचय में आने वाला चाहे कितना ही उनके विरुद्ध क्यों न हो उनके सम्पर्क में आकर उनकी प्रशंसा करने लग जाता था। थली में अपने स्वधर्मी गृहस्थों की आबादी न होने से पूज्यश्री को बहुत कष्ट उठाने पड़े किन्तु उनके वहां विचरने से जैनधर्म का अपार कल्याण हुआ।*

सरदारशहर तथा रतनगढ़ में अग्रवालों के हजारों घर है। वे पूज्यश्री के उपदेशामृत का अत्यानन्द पूर्वक पान करते थे और कहते थे कि हमारे अहोभाग्य हैं जो ऐसे महान पुरुषों ने हमारे क्षेत्र में पदार्पण कर हमें पावन किया है। वे केवल ओसवालों के ही नहीं हमारे भी साधु हैं।

रतनगढ़ में पूज्यश्री के सदुपदेश से जीवदया के लिए रुपये 8,000/- का चन्दा हुआ था।

थली के विहार के दौरान बीकानेर के सैकड़ों श्रावक तथा अजमेर के राय सेठ चांदमलजी साहिब तथा दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी लोढ़ा इत्यादि दर्शनार्थ पधारे थे।

बड़े-बड़े करोड़पतियों को इन महापुरुषों की पदरज मस्तक पर चढ़ाते देखकर उनको अपमानित करने वाले तेरहपंथी भाई अत्यन्त लज्जित हुए थे।

महापुरुष ऐसे कष्टों का सहज प्रसन्नता एवं समभाव से सामना करते हैं और तब यही कष्ट उनके यश कीर्ति को और अधिक उज्ज्वल एवं सबल बनाने में सहायक होते है।

---

* पूज्यश्री के थली के विहार के दौरान कई जगह तेरहपंथी साधु तथा श्रावकों के साथ ज्ञान चर्चा संवाद हुए। उस समय पूज्यश्री ने अकाट्य प्रमाणों द्वारा दयाधर्म की स्थापना की। उन प्रश्नोत्तरों को संग्रहीत करने के सम्बन्ध में हमने बहुत प्रयास किये किन्तु उसमें हमें प्रामाणिक सामग्री के अभाव में सफलता नहीं मिल सकी है। उस प्रश्नोत्तरी को प्राप्त कर जो भी श्रावक प्रचार करेगा उससे जीवदया सम्बन्धी थली में फैली मिथ्या धारणायें समाप्त हो सकेंगी। साधुमार्गी मुनिराजों को भी थली की तरह विहार कर जीवदया के पूज्यश्रीजी द्वारा स्थापित संस्कारों को न सिर्फ जीवित बल्कि संवर्धित करना चाहिए। यह प्रत्येक स्थानकवासी साधु-साध्वी का परम कर्तव्य है।

अध्याय 37 : श्री संघ का कर्तव्य

पूज्य श्री जब थली में इस प्रकार जैन-धर्म की विजयध्वजा फहराते हुए विचर रहे थे, तब जावरा वाले साधु जोधपुर में एकत्रित हुए और उन्होंने अपने में से ही किसी को आचार्य पद पर आसीन करने का विचार किया, परन्तु जोधपुर संघ इस कार्य में सहमत नहीं हुआ तब उन साधुओं ने सात शर्तें लिख जोधपुर के संघ को दी जिन्हें लेकर जोधपुर के श्रावक सरदारशहर में पूज्य आचार्य प्रवर के पास आये। पूज्यश्री ने शुद्ध अंतःकरण से फरमाया कि शास्त्र परूपित न्याय एवं सम्प्रदाय की रीति-नीति के अनुसार मुझे सात तो क्या परन्तु सात सौ शर्तें भी मंजूर है। इससे प्रभावित होकर तत्कालीन जोधपुर संघ के श्रावकों ने यह कार्य नहीं होने दिया। इसी तरह श्रीसंघ के अन्य अग्रसर श्रावकों ने भी सम्प्रदाय में फूट नहीं पड़े तथा पूज्यश्री हुकमचंदजी महाराज के सम्प्रदाय का गौरव पूर्ववत जाज्वल्यमान रहे इस हेतु भावना से प्रेरित होकर जोधपुर संघ को और जोधपुर में एकत्र जावरे वाले संतों को सही एवं हितकारी सलाह प्रदान कर अपना कर्तव्य निभाया था।

एक अनुभवी विद्वान का यह कथन बरबस याद आये बगैर नहीं रहता है कि जब समुद्र शांत रहता है तब जहाज खेने में विशेष चातुर्य व क्षमता की व अनुभव की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु जब जहाज बीच समुद्र में आता है और लहरों के थपेड़े खाकर डूबने की आशंका स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है एवं बैठने वाले पूरी तरह भयाक्रांत हो जाते हैं तब ही कप्तान की कार्यकुशलता कसौटी पर होती है याने सही माने में कठिनाई उपस्थित करने वाले मामलों में ही मनुष्य की चतुराई, अनुभव और विवेक की परीक्षा होती है और ऐसे समय ही मनुष्य अपनी संचित आन्तरिक महान शक्ति का दिग्दर्शन करा सकता है......जब तक हम कसौटी पर नहीं चढ़ें, तब तक हमारी संचित गुप्त शक्ति सामान्य संयोगों के समय प्रकट नहीं होती। वस्तुतः तब तक हमें अपने आंतरिक बल का वास्तविक भान भी नहीं होता। सुषुप्त शक्ति आपत्तिकाल में ही प्रकट होती है क्योंकि उस शक्ति के प्राकट्य के लिए हमें अंतरतल में पैठने की आवश्यकता होती है। हर कार्य की आवश्यकता के अनुरूप ही हमारी प्रतिभा एवं शक्ति का उपयोग अपेक्षित होता है।

जोधपुर के संघ इस संबंध के नेतृत्व से प्रेरित होकर ब्यावर (नये शहर) के श्री संघ ने भी जावरे वाले संतों को आपसी समाधान की ही सलाह दी थी और जब उन्होंने दूसरी पूज्य पदवी की घोषणा की थी तब ब्यावर चतुर्विध संघ की इसमें सम्मति नहीं थी ऐसा व्याख्यान में ही प्रगट हो गया था और समस्त श्री संघ के सभी श्रावकों ने यह लिखकर भी दे दिया कि ऐसी व्यवस्था हमें मंजूर नहीं है।

मालवा-मेवाड़ से बहुत दूर पंजाब में पूज्यश्री की आज्ञा में विचरण करने वाले एवं जम्मू कश्मीर में एक संत के बीमार हो जाने से वहीं बहुत दिनों से स्थिरवास किये हुए महाराज श्री [illegible] स्वामी को वस्तुस्थिति का पूरा ज्ञान नहीं था। अपने सरल स्वभाव के कारण दूसरों की युक्ति-प्रयुक्ति एवं चालों में फंस जाने वाले व्यक्तित्व वाले थे अतएव वे दूर के अपरिचित क्षेत्र में

विचरण करने के कारण सत्य की तह तक न पहुंचे व इस क्षेत्र से संसर्ग के अभाव में पूज्यश्री की आज्ञा के बिना ही यह पद स्वीकार करने का साहस कर बैठे।

इस स्थिति पर विचार करने पर एक ही चीज प्रकट होती है कि पदवी के ममत्व का लोभ छद्मस्त होने के कारण अच्छे से अच्छे साधु भी संवरण नहीं कर पाते हैं। ऐसे ही प्रसंगों के लिये दीर्घदर्शी शास्त्रकारों ने प्रायश्चित्त की विधि बताई है। प्रबल सवूत होने पर भी जिन्होंने आलोयणी नहीं की तब शास्त्र की आज्ञानुसार उन्हें श्री संघ से अलग किये जाने के निर्णय पूर्व में भी लिये जाते रहे हैं परन्तु पूर्व परिचय के कारण राग एवं ममत्व के वशीभूत होकर कई संत और कई श्रावक उनके पक्षधर हो गये।

सं. 1973 का चातुर्मास आचार्य जी महाराज ने बीकानेर में किया। अपार अवर्णनीय धर्मोद्योत हुआ। शहर के जैन व जैनेतर जन समुदाय तथा दूरदराज प्रान्तों में रहने वाले प्रवासी व अन्य भक्त जन एवं पूज्यश्री के दर्शनार्थ बड़ी संख्या में आने वाले श्रावक-श्राविकाओं की हजारों की संख्या में जनमेदिनी व्याख्यान में एकत्र होने लगी थी। पूज्यश्री के सदुपदेश द्वारा वीरप्रभु की वाणी का दिव्य प्रकाश जनसमूह के हृदय में व्याप्त अज्ञानान्धकार को दूर करता था। बीकानेर संघ में अपूर्व आनन्द छा रहा था। ज्ञान, ध्यान, तप, जप, दया, परोपकार और अभयदान के मांगलिक कार्यों से बहुत ही धर्मवृद्धि तथा जैन शासन की प्रभावना हुई।

इस वर्ष साधुओं में भी खूब तपश्चर्या हुई। श्री हरकचंदजी महाराज के सुशिष्य मुनि श्री नंदलालजी महाराज ने 72 उपवास किये थे और श्री गैनचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनि श्री केवलचंदजी महाराज के शिष्य मुलतानचंदजी महाराज ने 82 उपवास किये थे। ये दोनों तपस्वी एक ही दिन पारणा करने वाले थे। सेठ चांदमलजी ढढ्ढा सी.आई.ई. जो कि बीकानेर के श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन भाइयों के अग्रेसर हैं उनके सुप्रयास से राज्य की तरफ से उस रोज कसाईखाने बंद रखे गये थे तथा भटियारा, कंदोई, सोनी, लुहार इत्यादि द्वारा हिंसा के कार्य के तथा अग्नि के आरभ-समारंभ बंद रखे गये थे। इसके अलावा केवलचंद जी महाराज के शिष्य सिरेमलजी महाराज ने 31 उपवास किये थे। चातुर्मास के बाद विहार कर मारवाड़ तथा जोधपुर स्टेट के ग्रामों में विचरते-विचरते पूज्यश्री जब जोधपुर पधारे तब जयपुर श्रीसंघ ने चातुर्मास जयपुर करने बाबत विनती की जिसे मंजूर कर ब्यावर-अजमेर होते हुए पूज्यश्री आषाढ़ शुक्ला 2 को जयपुर पधारे। उस समय अजमेर नगरी में महामारी-प्लेग का उपद्रव प्रारम्भ था, परन्तु पूज्यश्री के अजमेर में पदार्पण करते ही इस प्रकोप में शांति हो गई थी।

अध्याय 38 : जयपुर का विजयी चातुर्मास

सं. 1974 का चातुर्मास पूज्यश्री ने जयपुर किया। जयपुर में धर्मध्यान, तपश्चर्या, त्याग, प्रत्याख्यान तथा धर्मोन्नति अत्यधिक मात्रा में हुई। बाहर के ग्राम से अनेकानेक श्रावक दर्शनार्थ आते थे। रतलाम, बीकानेर, जावरा और ब्यावर नगर के कितने ही श्रावक पूज्यश्री के सत्संग और वाणी श्रवणादि का लाभ उठाने को अलग-अलग मकान किराये लेकर लंबी अवधि तक वहां रहे थे। श्रीमती नानूबाई देसाई मोरवी वाली तथा बम्बई, गुजरात एवं काठियावाड़ के कई श्रावक दर्शनार्थ आये थे और बहुत दिनों तक व्याख्यान का लाभ उठाया था। व्याख्यान में कभी-कभी नानूबाई स्त्रियोपयोगी महत्व के प्रश्न पूज्यश्री से पूछती थी। और उनके सटीक एवं अतिसंतोषप्रद उत्तर पूज्यश्री से प्राप्त कर न सिर्फ वह स्वयं बल्कि अन्य श्रोतागण आनंदानुभव करते थे।

जयपुर राज्य की तरफ से बकरियों का वध करना निषिद्ध था, परन्तु फिर भी चोरी छिपे कानून की खिलाफवर्जी कर बकरियों का वध होता है, ऐसी खबर पूज्यश्री को मिलते ही एक रोज व्याख्यान में पूज्यश्री ने प्रांणीरक्षा का प्रभावोत्पादक विवेचन कर श्रावकों को उनका कर्तव्य वताते हुए कहा था कि उदयपुर के श्रावकों तथा नंदलालजी मेहता जैसे उत्साही कार्यकर्ताओं ने वहां के महाराजा श्री के उदार आश्रय से पशु हिंसा रोकने के लिए प्रशंसनीय प्रयत्न किया है और हिंसा वरावर रुकी रहे और राज्य के आदेशों का बराबर पालन होता रहे इसकी वे पूर्ण निगरानी रखते हैं इसलिए वहां कोई भी व्यक्ति राज्य की आज्ञा के विरुद्ध जीवहिंसा करने का साहस नहीं कर सकता। यदि नंदलालजी मेहता उदयपुर वाले आज यहां होते तो राज्याज्ञा का उल्लंघन कर बकरियों के होने वाले गैर कानूनी वध को जरूर रुकवाने का प्रयत्न करते। इस वात की खवर उदयपुर नंदलालजी मेहता को मिलते ही वे तुरन्त केसूलालजी ताकड़िया जौहरी को अपने साथ लेकर उदयपुर से रवाना होकर जयपुर पधारे और कई दिन ठहर कर बकरियों के वध को रोकने का प्रयत्न किया एवं जयपुर के महाराजा साहव तक इसकी खवर पहुंचाकर यह गैर कानूनी वकरियों का वध रुकवाने में सम्पूर्ण सफलता प्राप्त की। इस चातुर्मास से बकरियों का वध होना विल्कुल वन्द हो गया। श्रीमान् रायवहादुर खवास जी वालावक्षजी साहिव ने कसाईखाने की जांच करने वाले डाक्टर साहव को सख्त आदेश फरमाया था कि जो कोई व्यक्ति वकरियों को वध करे उनके पास से कानून अनुसार मात्र 50/- रुपये का दण्ड मात्र ही वसूल नहीं करें परन्तु उन्हें सख्त सजा भी करावें। इस सहयोग के लिए खवासजी भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इस चातुर्मास में दर्शनार्थ आने वाले स्वधर्मी बंधुओं का स्वागत करने का सौभाग्यपूर्ण सम्मान सुप्रसिद्ध जौहरी प्रतिष्ठान 'काशीनाथ जी वाले' के जौहरी नवरत्नमलजी ने प्राप्त किया था। वे स्वतः तथा उनके भाई जौहरी मुन्नीलालजी इत्यादि व्याख्यान पूर्ण होते ही दरवाजे पर खड़े रहते और मेहमानों को हाथ जोड़ कर अपना मकान पवित्र करने के लिए निवेदन करते थे तथा स्वयं व्यक्तिगत रूप से खड़े रहकर सबको आग्रह से भोजन करवाते थे। रतलाम में युवराज-पदवी के उत्सव पर

जयपुर के प्रमुख जौहरी श्री मुन्नीलालजी भी रतलाम पधारे थे और अपने प्रान्त की ओर से इस पदग्रहण समारोह का हार्दिक अनुमोदन दिया था।

मोरवी चातुर्मास के समय स्वागत का कुल खर्च देने वाले सेठ सुखलाल मोनजी अपने स्नेहियों के साथ जयपुर आये थे और अपने स्वधर्मियों को प्रीतिभोज देकर उनसे स्नेहमिलन का अपूर्व अवसर प्राप्त किया था। जयपुर चातुर्मास में विभिन्न प्रान्तों के कई श्रावक जयपुर में उपस्थित होते रहने से धर्म के क्षेत्र में वड़ी प्रगति उपलब्ध हुई थी। कई जागीरदार और अधिकारीगण तथा रायबहादुर डाक्टर दुर्जनसिंह इत्यादि ज्ञानचर्चा के लिए पूज्यश्री के पास आते रहते थे और अपनी शंकाओं का सरल रीति से समाधान हो जाने पर अपने दूसरे मित्रों को भी साथ लाते थे।

जयपुर चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्यश्री टोंक पधारे। उस समय टोंक के ओसवाल जाति में फूट व्याप्त थी। जाति में दो तड़ें हो गयी थीं परन्तु पूज्यश्री के सदुपदेश से वह मनमुटाव दूर हो गया एवं पूर्ण एकता स्थापित हो गई थी।

टोंक से क्रमशः विहार कर पूज्यश्री रामपुरा पधारे और सं. 1974 के फाल्गुन शुक्ला 3 के रोज संजीत वाले भाई नंदरामजी ने पूज्यश्री के पास रामपुरा में दीक्षा ग्रहण की।

अध्याय 39 : सदुपदेश का प्रभाव

रामपुरा से श्रीजी महाराज कुकड़ेश्वर पधारे। व्याख्यान में जैन एवं जैनेतर भाई-बहन बड़ी संख्या में आते थे। स्कंध तथा व्रतादि बहुत हुए। श्रीयुत् जड़ावचन्दजी पोरवाड़ ने 45 वर्ष की अवस्था में सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। यहां पर दो रात ठहर कर पूज्यश्री कंजारड़ा पधारे, वहां जावद वाले भाई कजोड़ीमलजी ने दीक्षा ली। वहां से पूज्यश्री भाटखेड़ी पधारे, वहां श्रीयुत् नानालालजी पीतलिया ने सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था तथा वहां के राव जी साहेब ने शिकार खेलने का त्याग किया। वहां से श्रीजी मनासा पधारे। वहां के महेश्वरी (वैष्णव) भाई भावभक्ति सहित पूज्यश्री के व्याख्यान का लाभ लेते थे। वहां नियुक्त श्रीमान् मुन्सिफ साहिब इत्यादि सरकारी कर्मचारीगण भी व्याख्यान का लाभ उठाते थे। मनासा से महागढ़ होते हुए पूज्यश्री पीपलिया पधारे। वहां मंदिरमार्गी सम्प्रदाय के भाइयों के घर ही होने से स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु वहां नहीं जाते थे तथा उन्हें आहार-पानी व उतरने के लिये वे भाई मकान भी नहीं देते थे। श्रीजी महाराज के सदुपेदश से उनकी द्वेषाग्नि शांत हो गई और वहां के ठाकुर साहिब ने भी पूज्यश्री के प्रवचन से प्रभावित होकर शिकार खेलने का त्याग किया।

पीपलिया से पूज्यश्री धामणे पधारे। वहां साधुमार्गी सम्प्रदाय के सिर्फ 5-7 घर थे। यहां के कृषक मीणा जाति के भाई नवरात्रि में देवी को चार बकरे चढ़ाते थे, पूज्यश्री के अमृत तुल्य उपदेश से उनके हृदय पर जादू के समान प्रभाव पड़ा और उन्होंने हमेशा के लिए देवी के सामने बकरे न चढ़ाने की प्रतिज्ञा ली और नीचे लिखा संकल्प लेखबद्ध कर उसे अपने हस्ताक्षरों से सत्यापित किया कि 'आगे से बकरों का वध नहीं करेंगे। ओसवालों के समस्त पंचों की ओर से चूरमा-बाटी की रसोई का नैवेद्य माताजी को रखेंगे।'

यहां से श्रीजी महाराज 'वेहड़ी' नामक एक छोटे ग्राम में पधारे। वहां के ठाकुर साहिब ने पूज्य श्री के सदुपदेश से प्रभावित होकर अपनी पत्नी के साथ ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया और शिकार खेलने का त्याग किया। वहां से पूज्य श्री ने जावद की तरफ विहार किया।

बड़े-बड़े शहरों की अपेक्षा छोटे-छोटे ग्रामों में जहां ऐसे समर्थ धर्मोपदेष्टाओं का आगमन कदाचित् ही होता है, वहां के लोग महापुरुषों की अद्भुत वाणी श्रवण करने का अपूर्व प्रसंग प्राप्त करने पर कितना उत्साह प्रदर्शित करते हैं, और व्रत प्रत्याख्यान करते हैं इसके ये प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

सं. 1974 के फाल्गुन वदी 5 के दिन रामपुरे से ही पूज्यश्री जावद पधारे। जावद में प्लेग का उपद्रव था, परन्तु पूज्यश्री के पदार्पण करते ही उनके पवित्र चरणकमल से पावन हुए उस नगर से प्लेग की व्याधि समाप्त हो गई एवं चारों ओर सुख एवं शान्ति का साम्राज्य छा गया। जावद निवासियों पर उनके इस आगमन से प्राप्त निरापदता का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि सभी जैनधर्मी और अन्यधर्मी भाई-बहन पूज्यश्री की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे एवं उनके शुभागमन पर हृदय से आभार अभिव्यक्त करने लगे।

रामपुरा से जावद पधारते समय पूज्यश्री के सदुपदेश से रास्ते के अनेक ग्रामों में तथा जावद में जो-जो उपकारी कार्य हुए, उनका संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है :

1. संस्थान बहेड़ी के ठाकुर साहिबं प्रतापसिंह जी बहादुर ने कई प्रकार के शिकार नहीं करने की प्रतिज्ञा ली तथा उनकी वड़ी ठकुराइन साहिबा ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया।

2. ग्राम मोरवण में ओसवाल जाति में तीन तड़ें थी, वे श्रीमान् पूज्यपाद श्रीजी के उपदेशामृत से न सिर्फ मिट गई बल्कि आपसी प्रेमभाव स्थापित होकर समाज में पुनः सम्पूर्ण एकता स्थापित हो गई एवं कितने ही कुव्यसनों का त्याग प्रत्याखान हुआ।

3. मोडी ग्राम के कितने ही राजपूत भाइयों ने जीवहिंसा तथा मादक द्रव्य सेवन नहीं करने के त्याग किये।

4. जावक में पूज्यश्री के दर्शनार्थ सैंकड़ों ग्रामों के भाई-बहन नित्य दर्शन को आते जिनका सबका जावद संघ द्वारा उत्तम रीति से स्वागत होता था। श्रीमान् लगभग एक माह तक वहां विराजे। संघ का उत्साह हर रोज बढ़ता जाता था। 16 वर्ष के पहिले पुत्र तथा 12 वर्ष के पहिले पुत्री का विवाह नहीं करने बाबत तथा 45 वर्ष से ज्यादा उम्र वाले वर को कन्या न देने बाबत बहुतों ने प्रतिज्ञा ली तथा स्कंधादि भी बहुत हुए।

सं. 1975 के वैशाख वदी 3 को बालेसर निवासी श्रीयुत कस्तूरचंद जी ने प्रबल वैराग्यपूर्वक जावद में दीक्षा ली। दीक्षा उत्सव में करीब 4000 मनुष्यों की उपस्थिति थी। यहां से स्वामीजी ने निम्बाहेड़ा की तरफ विहार किया था।

अध्याय 40 : डाकिन की शंका का निवारण

निम्बाहेड़ा में बहुत-सी स्त्रियों पर डाकिन होने का मिथ्या कलंक बहुत समय से लगाया जा रहा था। बहम रखने वाले लोग उनसे डरते थे और कोई भी स्त्री उनके साथ भोजन आदि का व्यवहार नहीं रखती थी। पूज्य श्री के निम्बाहेड़ा पधारने पर यह बात पूज्य श्री के भी ध्यान में लाई गई व यह निवेदन किया गया कि किसी प्रकार से उन पर से यह कलंक छूट जाये तो ठीक हो। यह बात पूज्य श्री को भी जंची। निंबाहेड़ा के लोग कहते थे कि कदाचित् आकाश में से कोई देवता भी साक्षात प्रकट होकर भूमि पर आकर यह कह दे कि ये बहनें डाकिनें नहीं है तो भी डाकिन का जो कलंक उनके सिरपर है, वह कदापि दूर नहीं हो सकता परन्तु परम प्रतापी पूज्य श्री के अपूर्व उपदेशामृत ने इन बहनों पर लगा यह कलंक सदैव के लिये धो डाला।

पूज्य श्री के व्याख्यान में साधुमार्गी, मंदिरमार्गी, वैष्णव मतानुयायी भाई-वहिन वहुत वड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। श्री जी महाराज ने अवसर की उपयुक्तता को देखकर ऐसा सटीक एवं प्रभावोत्पादक प्रवचन दिया कि उसका अद्भुत असर तत्काल लोगों पर हुआ और उसी दिन से सभी स्त्रियों ने उन बहनों के साथ खानपानादि का व्यवहार पूर्ववत् प्रारंभ कर दिया जिससे सारा झगड़ा ही मिट गया एवं उन वहिनों ने अपनी खोई हुई इज्ज़त पूर्ववत् प्राप्त की। उस प्रवचन में पूज्य श्री ने निम्नांकित एक दृष्टांत दिया था–

'एक सेठ के यहां कई गायें और भैंसें थी। सेठानी वहुत भली और दयालु थी। वह ग्राम के लोगों को मुक्तहस्त से छाछ देने लगी। एक दिन जव सारी छाछ वांटने से समाप्त हो गई, उसके वाद एक वहन छाछ लेने सेठानी के पास आई। सेठानी ने छाछ वीत जाने से मजवूरन उसे इन्कार कर दिया। दो-चार दिन वाद पुनः ऐसी ही स्थिति पैदा हो गई जिससे वह स्त्री सेठानी पर क्रोधित होकर बोली कि तुम गांव की सव स्त्रियों को छाछ देती हो मगर सिर्फ मुझे ही तुम वार-वार निराश कर लौटा देती हो परन्तु याद रखना एक दिन ऐसा मजा चखाऊंगी कि तुम भी याद करोगी, ऐसा कह कर वह क्रोधावेश में चली गई और फिर कभी छाछ लेने सेठानी के घर नहीं आई।

इस वात को थोड़े ही दिन वीते होंगे कि एक दिन वह स्त्री पानी का वेवड़ा लिये हुये नदी से घर को लौट रही थी। जैसे ही वह सेठ की दुकान के समीप आई उसने अपने सिर पर का वेवड़ा वहीं फेंक दिया और खूव जोर से सिर धुनने और हल्ला-गुल्ला करने लगी। वाजार के हजारों लोग इकट्ठे हो गये। मंत्रवादी, भोपे व अन्य प्रभृति भी वहां आ गये। उसे पूछने पर व कहने लगी कि, मैं फलां सेठानी हूं। गाय, भैंस इत्यादि जो भी है, वे तो मेरे पति (सेठ) की लाई हुई है। मैं उनकी स्वामिनी हूं किसी को छाछ देना न देना मेरी इच्छा की वात है। यह 'रांड' स्वयं मेरे यहां छाछ लेने आई और मैंने इन्कार कर दिया तो मुझे कई गालियाँ और श्राप देकर चली गई। अब मैं इसे जीवित नहीं छोड़ूंगी।' स्वयं सेठ जी भी उस भीड़ में थे। अपनी स्त्री पर ऐसा कलंक आता देख कर वे वहुत शर्मिन्दा हुए। वेचारी भली सेठानी इस वात से विल्कुल अनभिज्ञ थी। वह बिल्कुल

श्रावकों को रात भर चिंता रही कि सतीजी को वहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा होगा, परन्तु जब सुवह मालूमात करने पर ज्ञात हुआ कि रात्रि में पानी की एक वूंद भी छत में से नहीं गिरी।

संथारा करने के 34वें दिन पूज्यश्री हमेशा की तरह सतीजी की सुखसाता पूछने पधारे एवं तवियत के समाचार पूछे तव सतीजी ने यह दोहा कहा–

मरने से जग डरत है, मुझ मन वड़ा आनंद।

कब मरस्यां कब भेंटस्यां, पूरण परमानंद।।

अर्थात् संसार में सब मरने से डरते हैं, परन्तु मेरे मन में तो बड़ा आनन्द है कि कब मरूंगी और कब पूर्ण परमानंद से मिलूंगी याने उसे प्राप्त करूंगी।

विभिन्न प्रान्तों से हजारों भक्तजन पूज्य श्री के तथा सतीजी के दर्शनार्थ आते थे और सतीजी के अपूर्व धैर्य को देख कर अत्यंत आनन्द का अनुभव करते थे। दिन-प्रतिदिन उनकी कांति एवं मन के परिणाम बढ़ते ही गए। अंत समय तक उनके संकल्प दृढ़ रहे एवं किसी भी समय मुंह से एक शब्द भी ऐसा नहीं निकला जिससे उनके संकल्प की दृढ़ता पर कोई आंच आई हो।

संथारे के दौरान पूज्य सतीजी महाराज ने श्रीमान् कोठारी जी साहिब को फरमाया कि श्रीमान् महाराणा साहिब को एक सिंह को अभयदान देने बावत अर्ज करें। इससे प्रेरित होकर श्रीमान् कोठारी साहिब ने श्रीमान् महाराणा साहिब की सेवा में उक्त निवेदन महासतीजी के संदर्भ से किया। श्रीमान् महाराणा साहिब ने बहुत प्रसन्नता के साथ सतीजी के इस निर्देश को स्वीकार किया एवं उसे पूरा किया। संथारे के संबंध में समस्त बातों की जानकारी कोठारीजी से प्राप्त कर उन्होंने सतीजी की बहुत प्रशंसा की थी।

संथारा 39 दिन चला। श्रावण वदी 10 के रोज रात को नौ बजे के करीब संथारा सीझा याने पूर्णता को प्राप्त हुआ। उस समय एक तारा आकाश में टूटा था। इस पर पूज्य श्री ने अपने अतिशय से यह जान लिया और पास बैठे हुये श्रावकों से कहा कि लगता है सतीजी का संथारा इस समय सीझ गया है। इसके कुछ ही मिनट बाद सतीजी के स्वर्ग-गमन की खबर पूज्य श्री को दी गई।

अध्याय 43 : राजवंशियों का सत्संग

उदयपुर चातुर्मास के दौरान पूज्य श्री पंचायती नोहरे में विराजते थे। उनके व्याख्यान में हजारों श्रद्धालु जिनमें राज्य के अधिकारी, वैष्णव धर्म के पालने वाले तथा मुसलमान भाई इत्यादि वड़ी संख्या में होते थे, उपस्थित रहते थे।

श्रीमान् महाराणा साहिब के ज्येष्ठ भ्राता बाबाजी सूरतसिंह जी साहिब कई बार पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे और उनके उपदेशों से प्रभावित होकर पूज्य श्री के पूरे भक्त बन गए थे। वावाजी सूरतसिंह जी साहिब एक धर्मात्मा और तेजस्वी पुरुष थे। कई वर्षों तक उन्होने अन्न का परित्याग किया था। सिर्फ फल, दूध और दूध की बनी हुई चीजें जैसे पेड़े, बरफी इत्यादि के ऊपर ही निर्वाह करते थे। बहुत वर्ष तक उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन किया था। जीवदया की ओर उनका पूर्ण लक्ष्य था। बहुत वर्षों से उन्होंने मांस-मदिरा के उपभोग का त्याग कर दिया था। इतना ही नहीं परन्तु श्रीमान् कोठारीजी साहिब के मारफत कई बार बकरों को अभयदान दिलाया था और इस प्रकार जीवों को अभयदान दिलवाकर अपने द्रव्य का सदुपयोग करते थे। संवत्सरी के दिन वावाजी सूरतसिंह जी साहिब ने पूज्य श्री जी से अर्ज की कि आज बड़ा महत्वपूर्ण संवत्सरी का दिन है और भाई-वहिनें बहुत बड़ी संख्या में एकत्र होंगे। यदि प्रत्येक व्यक्ति एक-एक बकरे को अभयदान कराने का प्रत्याखान करें तो सैंकड़ों बकरों को अभयदान मिलेगा। इस पुण्यात्मा पुरुष की नेक सलाह उदयपुर के श्रावक-श्राविकाओं ने तत्काल स्वीकार की और ढाई हजार वकरों को अभयदान देने का प्रबंध किया। वावाजी साहिब अव तो स्वर्ग सिधार गऐ हैं मगर उनका चित्र पास के पृष्ठ पर दिया गया है। वेदला के रावजी साहिद श्रीमान् नाहरसिह जी साहिव भी पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे।

उदयपुर के महाराजकुमार बाबाजी श्री श्री 105 श्री भूपालसिंहजी साहिव जो पूज्य श्री की अपूर्वता के पूर्ण ज्ञाता थे, उन्होंने भी पूज्य श्री का दर्शन व उपदेश सुनने की इच्छा दर्शाई । सं. 1975 श्रावण सुदी 8 के रोज सज्जन निवास वाग के नवलखा महल में जिनकी पूज्य श्री ने चातुर्मास के पहिले ही रियासत से आज्ञा प्राप्त करली थी वहां समागम हुआ। दूर से देखते ही श्रीमान् महाराजकुमार साहिब पैरों में से बूट निकाल कर पूज्य श्री के समीप आकर नमस्कार कर महाराज के सन्मुख बैठ गए। उस समय उनके साथ कितने ही राज्य अधिकारी गृहस्थ भी थे। उस समय पूज्य श्री ने समयोचित उपदेश देते हुए कहा कि–

आप सूर्यवंशी है। दिलीप-से गोपालक, हरिश्चन्द्र-से सत्यवादी और रामचन्द्र जी के समान धर्मधुरंधर महान आत्माओं ने जिस वंश को पावन किया था उसी वंश में आप उत्पन्न हुए हैं। अभी आप रामचन्द्रजी की गादी पर हैं इसलिए आपको धर्म की पूर्ण रक्षा करनी चाहिए। जीवों की रक्षा करना आपका परमधर्म है। जैनधर्म की ओर एवं जैन साधुओं की ओर आप प्रेम तथा बहुमान की दृष्टि से देखते हैं, यह देख कर मुझे बड़ा आनंद होता है। आपके पूर्वज भी जैन धर्म की ओर हमेशा सहानुभूति रखते आये हैं और आपके पिता श्री (वर्तमान नरेश) दयाधर्म का पालन करने का

पूर्ण ध्यान रखते हैं। महाराणा साहिब के दयामय कार्यों की मैंने बहुत प्रशंसा सुनी है। उन्होंने धर्म की रक्षा कर शिशोदिया कुल को दैदिप्यमान किया है। आप भी उनका अनुकरण कर धर्म की रक्षा करेंगे ऐसी आपसे आशा है। पूर्व में धर्म की रक्षा करने से ही आपको मनुष्य देह, उत्तम कुल और राज्यवैभव मिला है, आप अभी मनुष्यों के राजा हैं, परन्तु धर्म की विशेष रक्षा करने से आप देवों के राजा (इन्द्र) भी हो सकते हैं।

पूज्यश्री ने यह श्लोक विस्तार से समझाया—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्।

परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।

उपदेश सुन महाराजकुमार बहुत प्रसन्न हुए और कृतज्ञता प्रगट कर शंभुनिवास महल में पधारे।

आसोज सुदी 11 के रोज महाराजकुमार साहिब ने फिर पूज्य श्री के दर्शन और वार्तालाप का लाभ सज्जननिवास बाग में लिया। महाराजकुमार साहिब बाग में पधारे थे, उन्होंने पूज्यश्री को दूर से जाते देख गिरधारीसिंहजी (कोठारीजी साहिब के पुत्र) को पूज्य श्री के सामने भेजा और बाग में पधारने बाबत अर्ज की। पूज्य श्री पधारे और महाराजकुमार साहिब ने उनके सदुपदेश का लाभ उठाया।

इस चातुर्मास में तपस्वीजी श्री मांगीलालजी तथा नंदलालजी महाराज ने बड़ी तपश्चर्या की थी। इसके उपलक्ष्य में श्रीजी हुजूर में अर्ज करने पर एक दिन अगता रखाया गया था और उदयपुर श्री संघ बड़ी जेल तथा छोटी जेल के कैदियों को मिठाई-पूड़ी इत्यादि खिलाने के लिये महाराणा साहिब की मंजूरी ली थी। छोटी जेल के कैदियों को मिठाई खिलाई गई, परन्तु बड़ी जेल के कैदियों में ज्वर का रोग चल रहा था। इसलिए महाराणा साहिब ने उन्हें गरिष्ट भोजन देने से इन्कार कर दिया इसलिए फिर महाराणा साहिब से आदेश प्राप्त करके छोटी जेल के कैदियों को दूसरी बार मिठाई बांटी गई थी।

मेवाड़ के ओपियम एजेंट अफीम के प्रतिनिधि टेलर साहिब इस चातुर्मास में भी पूर्ववत् आचार्य प्रवर की सेवा में आते थे। एक दिन वे अपने साथ एक अंग्रेज मित्र को भी पूज्य श्री के पास लेते आये। वे भी पूज्यश्री के परिचय से अत्यत प्रसन्न हुए और अपने पास से एक सेक्रिन की शीशी पूज्यश्री को भेंट करने लगे और कहा कि इसमें से थोड़ी-सी शक्कर पानी में डालने से बहुत पानी मीठा हो जाता है, और आपको यह शीशी बहुत दिनों तक चलेगी। महाराज श्री ने साधुओं के कठिन नियमों का विवेचन किया व कहा कि हमें खाने-पीने की कोई भी चीज जो सामने लाई गई हो स्वीकार नहीं होती है। इतना ही नहीं परन्तु पहले प्रहर का लाया हुआ आहार-पानी चौथे प्रहर में हमारे योग्य नहीं रह जाता। इस विवरण को सुन दोनों अंग्रेज बंधु चकित हो गए और सेक्रिन की शीशी महाराज श्री के कार्य में नहीं आने से कुछ उदास हो गये। उन्होंने निवेदन किया कि आप शीशी न भी लें तो भी इस चीज में मिठास का कितना अधिक तत्व है, यह तो आप थोड़ा-सा पानी मंगवाकर इसमें से थोड़ी-सी यह चीज डालकर पीकर देखें जिससे आपको विश्वास हो जायेगा कि यह कितनी मीठी है। महाराज श्री ने यह भी स्वीकार नहीं किया, तब उन अंग्रेज बंधुओं ने जिज्ञासा प्रकट की कि हम आपके उपकार का बदला कैसे दे सकते हैं? महाराजश्री ने कहा—आप

कर्तव्यपरायण बनें, दया पालें और धर्म निबाहें यही हमारी सबसे बड़ी सेवा है। टेलर साहिब सं. 1971 के चातुर्मास में भी पूज्य श्री के पास आते थे, व सं. 1975 में पूज्यश्री चित्तौड़ में शेष काल में पधारे तब भी वे पूज्य श्री के पास आये थे।

गुणग्राही विदेशियों में सात्विक वृत्ति होती है अतः वे जैसा देखते हैं वैसा सत्य कहने में डरते नहीं हैं। गुजरात काठियावाड़ के संबंध में विशेषज्ञ और पूज्यश्री के व्याख्यान में राजकोट में उपस्थित रहने वाली श्रीमती स्टीवन-सन् लिखती है कि-

'Their standard of literacy (405 males and 40 females per 1000) is higher than that of any other community save the Parsies and they proudly boast that too not in vain that in their system their is practical ethics wedded to Philosophical speculation, for their criminal record is magnificently white.'

राज्यकर्ता जाति यों कहती है कि जैनों में नियम और तत्वज्ञान का दर्शन ऐसा पाक-साफ है कि जैन समाज छाती ठोक कर यह कह सकता है कि जैनियों में अपराधियों की सूची आश्चर्यजनक रूप से साफ-सुथरी है। गुनहगारों की लिस्ट में जैनियों का नाम शायद ही दृष्टिगत होगा।

यह प्रमाण पत्र कम आनंददायक नहीं है। इस प्रमाणपत्र को निभाने की पूरी जिम्मेदारी जैन मुनिराजों पर है, जो अभी भी श्रीसंघ रूपी जहाज के कप्तान माने जाते हैं।

एक दिन दो बड़े बकरे प्रेमा नाम का खटीक पंचायती नोहरे के पास से ही सिंहों की खुराक के लिए ले जा रहा था। इतने में पूज्य श्री बाहर जंगल से आ गए। उन बकरों पर उनकी दृष्टि पड़ी। इतने में प्रेमा खटीक ने कहा कि ये जानवर न मरें तो ठीक हो। यह कहकर प्रेमा खटीक दोनों बकरों को लेकर नोहरे के आगे खड़ा रहा। श्रावकों को खबर मिलते ही श्रीयुत् नंदलालजी मेहता ने आकर प्रेमा से कहा कि इस रास्ते से बकरे ले जाने की मनाई है, तू बकरे इधर क्यों लाया? सरकार की ओर से बाजार में तथा महाजन और ब्राह्मणों की बस्ती वाली गलियों में से किसी भी मनुष्य को बकरे मारने के लिये ले जाना मना है। यह कहकर उन्होंने उन दोनों बकरों को छुड़ा कर उन्हें नगरसेठ के वहां भेज दिया। जो बकरे नगरसेठ के वहां चले जाते हैं उनके कान में कड़ी डाली जाती है। वे बकरे फिर अमरिये हो जाते हैं, मारे नहीं जा सकते। ऐसा इधर मेवाड़-मालवा में रिवाज है। अमरिये किये हुए बकरों की रक्षा का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता है। श्रीमान् मेदपाटेश्वर ने इनके लिए जमीन, मकान, मनुष्य और खर्च इत्यादि का पूर्ण प्रबंध कर रखा है। महाराणा साहिब इतने अधिक दयालु और प्रजावत्सल हैं कि वे अपने या अपने सम्बन्धियों के या राज्य के चाहे जितने बड़े अधिकारी हों उनके बारे में भी नियमों की पालना हो इसकी वे पूर्ण चिन्ता रखते थे। मेवाड़ के रेजीडेण्ट साहिब कर्नल बायली की दो भेड़ें उदयपुर की धानमंडी में आ गईं उनको भी यहां के महाजनों ने नियमानुसार छुड़ा लिया और नगर सेठजी के पास भेज कर अमरिये करा दिये। ऐसे मुआमले अक्सर कई दफा पेश आते रहते थे। परन्तु श्रीमान् महाराणा साहिब के धर्म पर पूरी-पूरी निष्ठा होने से इस नियम का पूरा-पूरा पालन होता था और यदि कोई खिलाफवर्जी करता था तो यथोचित दण्ड पाता था।

अध्याय 44 : नवरात्रि में पशुवध बन्द कराया

वर्तमान चातुर्मास में एक दिन पूज्यश्री के व्याख्यान में उदयपुर के पास खेरादा नामक एक ग्राम है वहां के कई श्रावकों ने आकर अर्ज की कि हमारे ग्राम के पास बाठरड़ा ठिकाने के पट्टे का ग्राम मोहनपुर है और वहां चार-पांच वर्ष से कालबेलिया, वादी और मदारी आदि लोग आ बसे हैं, वे वहां सर्प तथा गोयरे इत्यादि जानवर पकड़ते हैं और वहां उन्होंने माताजी का एक स्थान कायम किया है और वहां आश्विन महीने में नवरात्रि के दिन तथा चैत्र महीने के नवरात्रों और भादवा सुदी 6 के रोज माताजी के भोग लगाने के नाम से 15 से 20 भैसों तथा 40 से 45 बकरों का प्रतिवर्ष बलिदान पिछले चार-पांच वर्ष से देने लगे हैं वह बंद होना चाहिये। इस पर पूज्यश्री ने फरमाया कि जीवदया के हिमायती यहां हैं या नहीं? तुरन्त श्रीयुत् नंदलालजी मेहता ने खड़े होकर अर्ज की कि मैं हाजिर हूँ। पूज्यश्री ने फरमाया कि यह पशुवध बंद हो जाये तो बड़ा उपकार होगा। इस पर श्रीयुत् नंदलालजी मेहता ने श्रीमान् महाराणा साहिब की गणेश ड्योढ़ी पर जाकर प्रार्थना-पत्र दिया। इस पर महकमाखास के द्वारा गिरवा जिले के हाकिम पर हुक्म जारी किया गया कि यदि यह बलिदान नये सिरे से होना प्रारंभ हुआ हो तो बंद कर दिया जावे। यह हुक्म पाकर मावली के थानेदार और गिरवा के गिरदावर ने माता के स्थान पर जाकर जांच की ओर संकेत मिलने पर कि यह बलिदान नये सिरे से प्रारंभ हुआ है श्रीमान् मेवाड़ाधिपति के हुक्म के अनुसार पशुवध नहीं करने बाबत वहां के लोगों से मुचलका लिखा लिया और जमानत भी ले ली। तब से माता के स्थान पर भैसों एवं बकरों का बलिदान होना बंद हो गया। चातुर्मास व्यतीत होने के बाद पूज्यश्री जब खेरादे होते हुए कानोड़ पधारे तब खेरादे वालों ने अर्ज की कि महाराजश्री आपके पुण्य-प्रताप और मेहता नंदलालजी के सुप्रयासों से भैंसो एवं बकरों का वध होना हमेशा के लिए बंद हो गया है।

श्रीयुत् मांगीलालजी गूगलिया, अपनी पत्नी तथा कुटुम्ब सहित दर्शनार्थ आये थे। वहां उनकी पत्नी के शरीर में अचानक व्याधि उत्पन्न हो जाने से उक्त बहिन की प्रार्थना पर श्रीजी महाराज ने प्रथम उसे तेविहार और फिर चउविहार का संथारा कराया था। बाई ने सम्पूर्ण चित्त शुद्धि के साथ आलोयणा प्रायश्चित्त किया। दो दिन संथारा रहा और आसोज सुदी 15 के रोज उनका स्वर्गवास हो गया। पाठकों की जानकारी के लिए यह बताना उचित होगा कि इस बहिन ने अल्पवय में ब्रह्मचर्य व्रत तथा चारों स्कंध छोड़ने के प्रत्याख्यान किये थे जिसे करीब साढ़े चार वर्ष से ऊपर हो गए। उनके पति ने भी 30 वर्ष की उम्र में सजोड़ शीलव्रत धारण किया था। यह बाई पूज्यश्री की संसार पक्ष की भानजी तथा चाँदकुंवर बाई की पौत्री थी। धार्मिक संस्कारों की छाप उत्तरोतर कैसी प्रबल बैठती जाती है, उसका यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

चित्तौड़ जिले के ग्राम कणेरा के सुश्रावक छोटमल जी कोठारी पूज्य श्री के दर्शनार्थ उदयपुर आये थे। पूज्य श्री के सदुपदेश से उनके हृदय में परिग्रह के प्रति विरक्ति के भाव आये। उनके दिल में परिग्रह को कुछ अंशों में कम करने की अभिलाषा जाग्रत हुई। उन्होंने उसी समय दस

हजार रुपये परमार्थ कार्यों में व्यय करने का निश्चय किया और व्याख्यान में नंदलालजी मेहता ने यह घोषणा की कि छोटमलजी की तरफ से रु. 5000/- उदयपुर पाठशाला इत्यादि के शुभ कार्यों में खर्च किये जावेंगे तथा व रु. 5000/- अकाल पीड़ित स्वधर्मी बंधुओं की सहायता देने के लिए अर्पित करते हैं। इसके अलावा रु. 1241/- का एक लिखत भी उदयपुर के श्रीसंघ को उन्होंने उसी समय अर्पण कर दिया।

चातुर्मास पूर्ण होने पर उदयपुर में धर्म का पूर्ण उद्योत कर पूज्य श्री ने वहां से विहार किया। वे आखेड़ होकर गुरूड़ी पधारे जो उदयपुर से 9 माईल दूर है। गुरूड़ी की सीमा में पूज्य श्री पधारे, उस वक्त उदयपुर का माणा मोती नामक एक खटीक 84 बकरे लेकर मारने के लिये उदयपुर आ रहा था। उस समय पूज्य श्री गुरूड़ी की सीमा में एक आम्रवृक्ष के नीचे विराज रहे थे। सारे बकरे पूज्य श्री से तीन-चार हाथ दूर उस आमवृक्ष की छाया के नीचे बैठ गए। उस समय पूज्य श्री के साथ उदयपुर के श्रावक नंदलालजी मेहता, श्रीयुत प्यारचंद जी बरड़िया तथा श्रीयुत कन्हैयालालजी बरड़िया तथा गुरूड़ी के भी श्रावक थे। पूज्यश्री ने माणा खटीक को एक प्रभावोत्पादक गीतिका सुनाई तथा हृदयग्राही उपदेश दिया, जिस पर माणा खटीक ने कहा कि मुझे मूल रकम मिल जाए तो वह यह सब बकरे महाजनों के सुपुर्द करने को तैयार है। उपस्थित श्रावकों ने तत्काल बकरे छुड़ा लिये और उन्हें गुरूड़ी पींजरापोल में जो कि उदयपुर के कोठारी जी श्री बलवंतसिंह जी की सहायता व प्रयास से स्थापित की गई थी उसमें भिजवा दिये।

सं. 1975 के चातुर्मास पश्चात् मगहर माह में पूज्य श्री कानोड़ पधारे। वहां करीब 100 स्कंध हुए। बहुत से अन्य दर्शनों के मानने वाले भाई सुलभ बोधी हुये और उनमें से कितने ही अन्य मतावलंबियों ने जैनधर्म अंगीकार किया।

वहां से विहार कर पूज्यश्री बड़ी सादड़ी पधारे, उस समय बड़ी सादड़ी के जैनियों और बोहरों में वैमनस्य एवं कटुता बहुत बढ़ गई थी। बोहरा समाज की ओर से जीवहिंसा की अभिवृद्धि करने वाला उत्तेजनात्मक व्यवहार ही बढ़ती हुई कटुता का आधार था। बात यहां तक बढ़ गई थी कि सादड़ी के बोहरों के साथ वहां के महाजनों ने लेन-देन व्यापार इत्यादि सब कार्य बन्द कर दिया था। श्रीमान् आचार्य श्री ने सादड़ी पधारने के बाद इस कटुता एवं वैमनस्य को समाप्त कर परस्पर भ्रातृभाव बढ़ाने के लिये हमेशा उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया जिसका शुभ परिणाम यह हुआ कि निम्नांकित शर्तें तय होकर बोहरा समाज के लोगों के साथ समाधान हो गया।

1. सादड़ी के सार्वजनिक तालाब में न कोई मछली पकड़ेगा और न मारेगा।

2. प्रत्येक एकादशी और अमावस्या के रोज पूर्ण रूप से जीवहिंसा बंद रहेगी।

3. श्रावण, भाद्रपद और वैशाख तथा अधिक मास में किसी भी दिन जीवहिंसा नहीं की जावेगी।

4. आम रास्ते में एवं बाजार में खुले रूप से मांस लेकर कोई बाहर नहीं निकलेगा।

उपर्युक्त शर्तें बोहरा समाज के लोगों ने सब लोगों के सामने सार्वजनिक रूप से दस्तखत की शपथ लेकर मंजूर की। दोनों पक्षों में वैमनस्य एवं कटुता दूर होने से सब तरफ आनंद छा गया और सभी पूज्य श्री की अनुकरणीय अलौकिक बुद्धि की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे। उस समय पूज्य श्री यहां एक मास तक रहे थे और इस क्षेत्र में अनेक उपकार के कार्य हुए थे।

अध्याय 45 : सुयोग्य युवराज

संवत् 1975-76 के वर्ष में इन्फ्लूएन्जा (मयादी वुखार) नाम का भयंकर रोग समस्त भारत में फैल गया था। उदयपुर शहर पर भी आश्विन मास में उसका भयंकर आक्रमण प्रारंभ हुआ। इस महामारी ने पूज्य श्री को भी अपनी चपेट में लिया। ऐसे विकट ज्वर से ग्रसित होने पर भी पूज्यश्री अपना नित्य नियम शुद्धोपयोगपूर्वक करते थे और समभाव से वेदना सहते रहे थे। थोड़े ही दिन में आराम तो हो गया परन्तु व्याधि के दिनों में ही पूज्य श्री ने औदारिक शरीर का क्षणभंगुर स्वभाव समझ कर पूर्वचार्यों की कीर्ति कायम रखने के लिये और सम्प्रदाय की सुव्यवस्था और समुन्नति के ख्याल को सर्वोपरि महत्व देते हुए न्यायविशारद, पंडितरत्न श्री जवाहिरलालजी महाराज को सर्वथा सुयोग्य समझ कर उन्हें सम्प्रदाय का भार सौंपना निश्चय कर लिया और अपना यह निश्चय उदयपुर के श्री संघ के अग्रेसर श्रावकों एवं रतलाम तथा अनेक शहरों एवं ग्रामों के अग्रणी श्रावकों को जो कि पूज्यश्री के दर्शनार्थ उदयपुर आये थे, उन्हें कह सुनाया। सबने अत्यानन्दपूर्वक पूज्यश्री के इस सुविचार की प्रशंसा की, क्योंकि श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज ने ज्ञान, चारित्र, वक्तृत्व शक्ति में और अणगार पद को सुशोभित करें ऐसे उत्तमोतम गुणों में ऐसी असाधारण उन्नति प्राप्त की थी कि उसकी समानता करने वाला उक्त काल में कोई विरला ही साधु होगा। आचार्य पद को दैदीप्यमान करने वाले समस्त गुण उनमें विद्यमान थे। दक्षिण में और महाराष्ट्र में उन्होंने जैन धर्म की विजय पताका फहराई थी एवं वहां के जैन और जैनेतर लोग उन्हें जैनियों के दयानन्द सरस्वती कह कर संबोधित करते थे। स्व. लोकमान्य तिलक ने उनकी असाधारण ज्ञान-सम्पदा और अद्वितीय वाक्-चातुर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी और स्वयं द्वारा रचित 'गीतारहस्य' नामक पुस्तक में जैन धर्म के विषय में किये हुए उल्लेख में उनके कथनानुसार सुधार करने की शुभेच्छा प्रकट की थी। ऐसे श्रमण-श्रेष्ठ पूज्यश्री के उत्तराधिकारी हों और श्रीमान् हुकमीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति समुज्वल करते रहें इसमें कौन आश्चर्य की बात है। इसलिए सबकी सलाह अनुसार पूज्यश्री ने सं. 1975 के कार्तिक शुक्ला 2 के रोज व्याख्यान में श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त करने की सार्वजनिक घोषणा कर दी जिससे सकल-संघ में आनन्दोत्सव छा गया। यह खबर उदयपुर श्रीसंघ द्वारा एक प्रतिनिधि मंडल भेजकर पंडित प्रवर श्री जवाहिरलालजी महाराज को पहुंचाई गई और साथ ही आचार्य श्री ने यह भी आदेश दिया कि रस्म तपस्वी स्थेवर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज के हाथ से सम्पन्न की जावे। श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज उस समय दक्षिण में विराजते थे। उन्हें जब खबर मिली तो आपश्री ने पूज्यश्री से दूर विचरते बहुत समय हो जाने से पूज्य श्री के दर्शन का लाभ लेने एवं उन्हीं करकमलों से युवाचार्य पद की पछेवड़ी धारण करने की अभिलाषा जाहिर की। चातुर्मास पूर्ण होने पर उन्होंने दक्षिण से मालवे की तरफ विहार किया और आचार्य श्री मेवाड़ से मालवा की ओर पधारे। रतलाम में दोनों महापुरुषों का समागम हुआ और वहां सं. 1976 के चैत्र वदी 9 के दिन पूज्यश्री ने अपने करकमलों से पंडितरत्न श्री जवाहिरलालजी महाराज को युवाचार्य के पद पर चतुर्विध संघ के समक्ष विधिवत् रूप से नियुक्ति

की। रस्म अदायगी के उपलक्ष्य में अपने हाथ से पछेवड़ी धारण कराई। इस अलभ्य अवसर का लाभ लेने के लिए दूरसुदूर बाहर-ग्रामों के एवं नगरों के बहुत से भाई उत्सुक थे। अतः रतलाम श्री संघ ने भारतवर्ष के प्रत्येक मुख्य-मुख्य शहरों एवं कस्बों व गांवों में इस समारोह की खबर पहुंचाई थी, जिससे श्रावक-श्राविकायें भारी संख्या में रतलाम में उपस्थित हुए थे।

पंचेड़ ठिकाने के ठाकुर श्री चैनसिंह जी इत्यादि भी पधारे थे। लेखक ने अपने समस्त जीवन में ऐसा अभूतपूर्व महोत्सव पहले कभी नहीं देखा था। इस महोत्सव की भव्यता तीर्थंकरों के समवसरण की याद ताजा करती थी। इस महोत्सव के संबंध में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु पुस्तक का आकार बढ़ जाने की आंशका से 'कान्फ्रेन्स प्रकाश' में प्रकाशित संक्षिप्त विवरण ही यहां पाठकों के अवलोकनार्थ उद्धृत कर देते हैं।

अध्याय 45 : सुयोग्य युवराज

संवत् 1975-76 के वर्ष में इन्फ्लूएन्जा (मयादी बुखार) नाम का भयंकर रोग समस्त भारत में फैल गया था। उदयपुर शहर पर भी आश्विन मास में उसका भयंकर आक्रमण प्रारंभ हुआ। इस महामारी ने पूज्य श्री को भी अपनी चपेट में लिया। ऐसे विकट ज्वर से ग्रसित होने पर भी पूज्यश्री अपना नित्य नियम शुद्धोपयोगपूर्वक करते थे और समभाव से वेदना सहते रहे थे। थोड़े ही दिन में आराम तो हो गया परन्तु व्याधि के दिनों में ही पूज्य श्री ने औदारिक शरीर का क्षणभंगुर स्वभाव समझ कर पूर्वचार्यों की कीर्ति कायम रखने के लिये और सम्प्रदाय की सुव्यवस्था और समुन्नति के ख्याल को सर्वोपरि महत्व देते हुए न्यायविशारद, पंडितरत्न श्री जवाहिरलालजी महाराज को सर्वथा सुयोग्य समझ कर उन्हें सम्प्रदाय का भार सौंपना निश्चय कर लिया और अपना यह निश्चय उदयपुर के श्री संघ के अग्रेसर श्रावकों एवं रतलाम तथा अनेक शहरों एवं ग्रामों के अग्रणी श्रावकों को जो कि पूज्यश्री के दर्शनार्थ उदयपुर आये थे, उन्हें कह सुनाया। सबने अत्यानन्दपूर्वक पूज्यश्री के इस सुविचार की प्रशंसा की, क्योंकि श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज ने ज्ञान, चारित्र, वक्तृत्व शक्ति में और अणगार पद को सुशोभित करें ऐसे उत्तमोतम गुणों में ऐसी असाधारण उन्नति प्राप्त की थी कि उसकी समानता करने वाला उक्त काल में कोई विरला ही साधु होगा। आचार्य पद को दैदीप्यमान करने वाले समस्त गुण उनमें विद्यमान थे। दक्षिण में और महाराष्ट्र में उन्होंने जैन धर्म की विजय पताका फहराई थी एवं वहां के जैन और जैनेतर लोग उन्हें जैनियों के दयानन्द सरस्वती कह कर संबोधित करते थे। स्व. लोकमान्य तिलक ने उनकी असाधारण ज्ञान-सम्पदा और अद्वितीय वाक्-चातुर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी और स्वयं द्वारा रचित 'गीतारहस्य' नामक पुस्तक में जैन धर्म के विषय में किये हुए उल्लेख में उनके कथनानुसार सुधार करने की शुभेच्छा प्रकट की थी। ऐसे श्रमण-श्रेष्ठ पूज्यश्री के उत्तराधिकारी हों और श्रीमान् हुकमीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति समुज्वल करते रहें इसमें कौन आश्चर्य की बात है। इसलिए सबकी सलाह अनुसार पूज्यश्री ने सं. 1975 के कार्तिक शुक्ला 2 के रोज व्याख्यान में श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त करने की सार्वजनिक घोषणा कर दी जिससे सकल-संघ में आनन्दोत्सव छा गया। यह खबर उदयपुर श्रीसंघ द्वारा एक प्रतिनिधि मंडल भेजकर पंडित प्रवर श्री जवाहिरलालजी महाराज को पहुंचाई गई और साथ ही आचार्य श्री ने यह भी आदेश दिया कि रस्म तपस्वी स्थेवर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज के हाथ से सम्पन्न की जावे। श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज उस समय दक्षिण में विराजते थे। उन्हें जब खबर मिली तो आपश्री ने पूज्यश्री से दूर विचरते बहुत समय हो जाने से पूज्य श्री के दर्शन का लाभ लेने एवं उन्हीं करकमलों से युवाचार्य पद की पछेवड़ी धारण करने की अभिलाषा जाहिर की। चातुर्मास पूर्ण होने पर उन्होंने दक्षिण से मालवे की तरफ विहार किया और आचार्य श्री मेवाड़ से मालवा की ओर पधारे। रतलाम में दोनों महापुरुषों का समागम हुआ और वहां सं. 1976 के चैत्र वदी 9 के दिन पूज्यश्री ने अपने करकमलों से पंडितरत्न श्री जवाहिरलालजी महाराज को युवाचार्य के पद पर चतुर्विध संघ के समक्ष विधिवत् रूप से नियुक्ति

की। रस्म अदायगी के उपलक्ष्य में अपने हाथ से पछेवड़ी धारण कराई। इस अलभ्य अवसर का लाभ लेने के लिए दूरसुदूर दाहर-ग्रामों के एवं नगरों के बहुत से भाई उत्सुक थे। अतः रतलाम श्री संघ ने भारतवर्ष के प्रत्येक मुख्य-मुख्य शहरों एवं कस्बों व गांवों में इस समारोह की खबर पहुंचाई थी, जिससे श्रावक-श्राविकायें भारी संख्या में रतलाम में उपस्थित हुए थे।

पंचेड़ ठिकाने के ठाकुर श्री चैनसिंह जी इत्यादि भी पधारे थे। लेखक ने अपने समस्त जीवन में ऐसा अभूतपूर्व महोत्सव पहले कभी नहीं देखा था। इस महोत्सव की भव्यता तीर्थंकरों के समवसरण की याद ताजा करती थी। इस महोत्सव के संबंध में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु पुस्तक का आकार बढ़ जाने की आंशका से 'कान्फ्रेन्स प्रकाश' में प्रकाशित संक्षिप्त विवरण ही यहां पाठकों के अवलोकनार्थ उद्धृत कर देते हैं।

अध्याय 46 :

रतलाम में श्रीमान् पंडितरत्न श्री श्री 1008 श्री जवाहिरलालजी महाराज की युवाचार्य पद की चादर ओढ़ाने के महोत्सव का विवर

श्रीमान् महाप्रतापी महाराजधिराज श्री श्री 1008 श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदा के वर्तमान जैनाचार्य श्रीमान् गच्छाधिपति महाराजधिराज श्री श्री 1008 श्री श्रीलालजी महारा साहिब ने उदयपुर में गत वर्ष चातुर्मास में अपने शरीर में व्याधि आदि अनेक शारीरिक कारणों परम्परा तथा सम्प्रदाय के गौरव के संरक्षणार्थ तथा मुनि-महाराजों की सार-संभाल करने एवं उ ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों की वृद्धि में सहयोग देने इत्यादि सम्प्रदाय रूपी कल्पवृक्ष को यथाव स्थित रखने के उद्देश्य से उस समय महाराष्ट्र में विचर रहे उपरोक्त सम्प्रदाय के जातिकुल सम्प विद्वद्रत्न पंडित शिरोमणि मुनि महाराज श्री श्री 1008 श्री जवाहिरलालजी महाराज को सब प्रका योग्य समझ सन् 1976 के कार्तिक शुक्ला 2 के दिन उदयपुर के सर्व संघ के समक्ष सम्प्रदाय क युवाचार्य घोषित किया था। उसकी चादर पछेवड़ी ओढ़ाने वास्ते रतलाम में उत्सव करने का निर्ण लिया। श्रीमान् महाराज साहिब के पूर्वजों ने भी ऐसे महान् कार्य के लिए रतलाम को ही श्रेष्ठ समझ था और तदनुसार श्रीमान् पूज्य महाराज साहिब ने भी रतलाम पधारने की कृपा की और श्रीमा युवाचार्य जी महाराज को भी उदयपुर संघ के अग्रेसर श्रावकों तथा रतलाम संघ के नेता श्रीयु वर्द्धमान जी पीतलिया तथा श्रीयुत् बहादुरमलजी बांठिया भीनासर वालों ने मोरी शहर (जिल अहमदनगर) जाकर युवाचार्य जी महाराज को भी मालवा पधारने की प्रार्थना की। दक्षिण देश के अनेक गांवों के संघों की महती अभिलाषा थी कि पछेवड़ी का उत्सव दक्षिण में हो किन्तु श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब के दर्शनार्थ तथा उनके करकमलों से ही यह कार्य हो ऐसा विचार कर कठिन परिश्रम उठाकर तेजी से विहार कर रतलाम पधारने की कृपा की। श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब रतलाम दिनांक फाल्गुन शुक्ला 5 गुरुवार को पधारे व श्रीमान् स्थेवर महात्मा तपस्वी जी श्री मोतीलालजी महाराज ने मय युवाचार्य जी महाराज के फाल्गुन शुक्ला 10 मंगलवार को रतलाम पहुंचे। आदर स्वरूप तथा भक्तिभाव प्रकट करने के उद्देश्य से रतलाम संघ के श्रावक व श्राविकाएं तथा अन्य धर्म के भी बहुत से लोग शहर से वहुत दूरी पर से अगवानी करते हुए उन्हें अपने शहर में लाये। इन महापुरुषों का इस प्रकार के आगमन का दृश्य भी बड़ा ही भव्य ओर चित्ताकर्पक था। दोनों महापुरुषों के पधार जाने पर युवाचार्य पद की पछेवड़ी प्रदान करने का शुभ प्रसंग मिती चैत्र वदी 9 बुधवार ता. 26-3-1919 को करना तय किया गया। इस अवसर के पूर्व समाचार देने के लिए कई संघों ने आग्रह कर रखा था कि आचार्य महाराज के करकमलों से श्रीमान् युवाचार्य

महाराज को चादर प्रदान करने, दोनों महापुरुषों के एक साथ दर्शन का लाभ उठाने तथा अपूर्व प्रसंग का लाभ लेने से कहीं वे लोग वंचित न रह जाएँ अतः रतलाम संघ को इसकी पूर्व सूचना देने का वार-वार आग्रह कर रखा था अतः रतलाम श्री संघ ने समस्त गांवों को कार्ड व पत्र द्वारा आमंत्रण पत्रिका भेजी और इसका परिणाम यह रहा कि करीब 200 गांवों से हजारों श्रावक-श्राविकाएं तथा अनेक प्रतिष्ठित अग्रेसरों ने इस अवसर पर पधार कर रतलाम की अलौकिक शोभा में अभिवृद्धि की थी। उनके ठहरने व भोजन की उचित व्यवस्था रतलाम के श्रावकों की तरफ से की गई थी। कितने ही अति उत्साही वन्धु तो श्रीमान् महामुनियों के पधारने के समाचार मिलने से पूर्व ही रतलाम पधार गये। वम्बई संघ के प्रमुख नेता सेठ मेघजी भाई थोभण तथा हैदरावाद निवासी लाला सुखदेव सहायजी के सुपुत्र लाला ज्वालाप्रसादजी इत्यादि वहुत से श्रावक पधारे थे परन्तु अनेक कारणों से रुकने की प्रवल उत्कंठा होते हुए भी अधिक दिन न रुक सकने के कारण इस महान कार्य में अपना सहयोग प्रकट कर वापस चले गये थे। चैत्र वदी 5 से लोग आने लगे तथा चैत्र वदी 8 तक तो हजारों श्रावक-श्राविकाएं उपस्थित हो गए। इस महान कार्य में भारतवर्ष के सर्व संघ का सहयोग व सम्मति ली जाकर रीति अनुसार करना उचित समझ कर चैत्र वदी 8 मंगलवार (ता. 25-3-1919) के दिन रात को आठ बजे हनुमान तडी के विशाल मैदान में प्रत्येक ग्राम से पधारे हुए मुख्य प्रतिनिधियों तथा रतलाम संघ के प्रतिनिधियों की एक सभा आयोजित की गई और इस सभा में नवमी का कार्यक्रम निश्चित किया गया। और विभिन्न कार्य विभिन्न लोगों को सुपुर्द किये गये।

तारीख 26 मार्च 1919 मिति चैत्र वदी 9 वुधवार को प्रातः 6 वजे से ही श्रीमान् आचार्य महाराज विराजते थे वहां हजारों श्रावक व श्राविकाएं एकत्रित होने लगे। उनके पचरंगी तथा नाना विध की पोषाकों से उस जगह की छटा का दृश्य अपूर्व था। श्रीमान् पूज्य महाराज के पधारने के दिन से ही श्रावक-श्राविकाओं के उस भव्य मकान के अहाते में बैठने का समुचित स्थान न होने के कारण आम रास्ते पर शामियाना खड़ा किया गया था। तख्त विछाये गये थे। किन्तु पहले वाला शामियाना कम पड़ने लगा अतः उसका विस्तार किया गया। शामियाने में जगह कम पड़ने पर लोग शामियाने के पास के पांच-सात मकानों के चबूतरों पर तथा सड़क पर भी एकत्रित होने लगे।

इस अवसर को श्रीमान् पंचेड़ ठाकुर साहिब (जिला रतलाम) श्री चैनसिंह जी साहिब जो रतलाम नरेश के मुख्य सरदारों में से थे, सुशोभित करने के लिये ही पंचेड़ से यहां पधारे थे। शहर के अन्य प्रमुख लोग भी पधारे थे, करीब 8 वजे श्रीमान् आचार्य महाराज तख्त पर विराजमान हुए। उपस्थित साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ तथा अन्य उपस्थित लोगों ने भी आदर-पूर्वक सत्कार किया तथा वंदना कर जय जिनेन्द्र की ध्वनि [illegible] हुए अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। इसके पश्चात् आचार्य महाराज ने प्रभु प्रार्थना आदि मंगलाचरण का पाठ कर [illegible] फरमाई। पश्चात् श्री युवाचार्य श्री महाराज को [illegible] अपने शरीर पर धारण की हुई स्वयं की पछेवड़ी (चादर) [illegible] चतुर्विध संघ के [illegible] आचार्य महाराज की जय, युवाचार्य महाराज की जय, [illegible]

उसका वर्णन किया जाना कठिन है। चादर धारण कर श्रीमान् युवाचार्य जी महाराज ने श्रीमान् आचार्य महाराज को तथा श्रीमान् स्थेवर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज को यथाविधि उठ-बैठ कर वंदना की। पश्चात् सर्व मुनियों ने युवाचार्य महाराज को यथाविधि खड़े हो वंदना की। पश्चात् उपस्थित करीब 75-80 महासतियों ने यथा विधि उठ-बैठ वंदना की। इसके पश्चात् श्रावक-श्राविकाओं ने वन्दना की। उक्त वन्दनादि क्रिया समाप्त होने पर श्रीमान् युवाचार्य महाराज नीचे के पाट से उठ श्रीमान् आचार्य जी महाराज के समीप आसनारूढ़ हुए। मुनि हरकचन्दजी महाराज ने उठ कर सब मुनि महाराजों की ओर से उक्त कार्य के लिये अपना आभार प्रकट किया और श्रीमान् आचार्य महाराज की तरह युवाचार्य महाराज की आज्ञा पालन करना स्वीकार किया। इसका श्रीमान् हीरालालजी महाराज ने अनुमोदन किया, तत्पश्चात् भारतवर्ष के समस्त संघों की ओर से निम्नलिखित महानुभावों ने अपना आभार प्रदर्शित कर अनुमोदन किया :

1. श्रीयुत् सेठ नन्दलालजी की तरफ से लालाजी केसरीलालजी, उदयपुर।
2. श्रीयुत् सेठ चन्दनमलजी पीतलिया अहमद नगर।
3. श्रीयुत् जौहरी सेठ मुन्नीलालजी सकलेचा, जयपुर।
4. श्रीयुत् वर्धमान जी पीतलिया, रतलाम।
5. श्रीयुत् सेठ पन्नालालजी कांकरिया, नया नगर।
6. श्रीयुत् मास्टर पोपटलाल केवलचन्द, राजकोट।
7. श्रीयुत् प्रतापमल जी बांठिया, बीकानेर।
8. श्रीयुत् फूलचन्दजी कोठारी, भोपाल।
9. श्रीयुत् नन्दलालजी मेहता, उदयपुर।
10. श्रीयुत् कुंवर गाढ़मलजी लोढ़ा, अजमेर।

इसके पश्चात् केसरी चन्दजी साहिब (देवास) ने कई नगरों से वहां के प्रमुख अनिवार्य कारणों से अवसर पर न पधार सकने के कारण उनके द्वारा भेजे गये तार व पत्रों को पढ़कर सुनाया। उनके नाम यहां दिये जाते हैं :

1. श्रीयुत् सेठ बालमुकन्द जी मूथा, सतारा।
2. श्रीयुत् वाड़ीलालजी मोतीलाल शाह, बम्बई।
3. श्रीयुत् कामदार सुजान मलजी साहिब बांठिया, प्रतापगढ़।
4. श्रीयुत् कोठारी जी श्री बलवन्तसिंहजी, उदयपुर (मेवाड़)
5. श्रीयुत् जमशेद जी रुस्तम जी जावरा (मालवा)।
6. श्रीयुत् कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर।
7. श्रीयुत् बछराज जी रूपचन्दजी पांचोरा। (खानदेश)।
8. श्रीयुत् रतनलालजी दौलतराम जी वागली (खानदेश)।
9. श्रीयुत् परमानन्दजी वकील कसूर (पंजाबी)।

इनके अतिरिक्त भी अनेक दूसरे सद्गृहस्थों के भी अनुमोदन पत्र प्राप्त हुए थे। इन सब पत्रों में इस कार्य के प्रति अत्यंत हर्षपूर्वक अनुमोदन तथा मुबारकबाद देने के साथ-साथ स्वयं के उपस्थित न हो सकने के लिये असमर्थता व्यक्त की गई थी।

इसके पश्चात् युवाचार्य जी महाराज ने उक्त पद का भार स्वीकृत करते हुए अपने तथा चतुर्विध संघ के कर्तव्यों का अत्यन्त प्रभावी शब्दों में उल्लेख किया। फिर पंडित दुःखमोचन झा मिथिला निवासी ने समयोचित गायन तथा विवेचन बहुत ही उत्तम रीति से किया। उसमें श्री आचार्य महाराज के साथ-साथ श्री संघ का क्या कर्तव्य है उसका प्रतिपादन उत्तम ढंग से किया गया था।

श्रीयुत् सेठ वर्द्धभाणजी ने निवेदन किया कि श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब तथा श्रीमान् युवाचार्य महाराज साहिब ने इतने परिश्रमपूर्वक यहां पधार कर रतलाम को पावन किया तथा ऐसे महात्कार्य का लाभ भी रतलाम को ही दिया इसके लिये श्री संघ की ओर से आभार जाहिर किया तथा श्रीमान् रतलाम नरेश तथा अधिकारी वर्ग, जिन्होंने इस कार्य में पूर्ण सहयोग किया उनका भी आभार प्रदर्शित किया तथा श्रीमान् पंचेड़ ठाकुर साहिब तथा पधारे हुए श्रावक-श्राविकाओं तथा अन्य महानुभावों का संघ की तरफ से आभार प्रदर्शित किया। इस महान कार्य में यहां के स्वधर्मी सज्जनों ने तन, मन, धन से जो आने वाले महानुभावों का आदर-सत्कार, उतारने तथा भोजन व्यवस्था कर स्वयं सेवकों के समान जो अपूर्व सेवा की है तथा रतलाम संघ को महान यश दिलाया है उसके प्रति उन्हें धन्यवाद किया। पश्चात् 'जय जिनेन्द्र' की उद्घोषणा के साथ व्याख्यान सभा विसर्जित हुई। उस समय यहां के संघ की ओर से प्रभावना भी बांटी गई थी।

दोपहर के दो बजे श्रीयुत् जालिमसिंह जी कोठारी इन्दौर राज्य के आबकारी कमिश्नर का व्याख्यान हुआ। जिसके प्रभाव से जैन महन्त विद्यालय खोलने के संबंध में कई उदार गृहस्थों की ओर से बड़ी-बड़ी राशियां देने के वचन मिले। परन्तु वे स्कीम मंजूर होने के पश्चात् ही प्रकट किये जायेंगे। उस दिन नये नगर निवासी सज्जनों ने आतमभोगदे रु. 1500/- के पंचेन्द्रिय जीव छुड़वाये। समस्त नगर में कसाइयों की दुकानें, भट्टियां, घाणियां इत्यादि हिंसा के कार्य बन्द रखे गये। उस दिन रात को भी एक आम सभा की गई थी जिसमें विद्यालय, पाठशाला इत्यादि छात्रवृत्ति के केन्द्र खोलने के संबंध में अनेक भाषण हुए। जीव दया के लिये एक निधि कायम हुई उसमें 2500/- रु. इकट्ठे हुए।

दिनांक 27-3-91 के दिन भी व्याख्यानों में सभा का ठाट पूर्ववत् ही था, जिसमें फिर नथमलजी चोरड़िया का विद्यालय के सम्बन्ध में व्याख्यान हुआ और उस समय भी कितने ही लोगों से वचन मिले। पश्चात् मीरी जिला अहमदनगर निवासी के प्रमुखों ने वहां की गौशाला में दुष्काल से दुःख पाती गायों के लिये फण्ड एकत्रित कर उनकी रक्षा करने की प्रार्थना की जिसके लिये करीब रुपये 2000/- की सहायता मिली।

श्रीमान् जैनाचार्य महाराजाधिराज 1008 श्री श्री जवाहरलालजी महाराज साहिब के व्याख्यान में जैनों की उन्नति कैसे हो सकती है? विषय पर बहुत ही मनन करने योग्य विवेचन हुआ। आपश्री ने [illegible]

समय में समाज की दशा निःसंदेह सुधर जाये। परन्तु इस प्रकार के स्वयं सेवक सद्गुणी, सदाचारी, न्यायी और पक्षापातादि दोष रहित होने चाहिये।

ऐसे महाशय अवश्य समाज पर प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। उपरोक्त बातें सुनकर कई सज्ञनों ने उपरोक्त नियमानुसार चलना पसन्द किया और स्वयं सेवकों में अपना नाम लिखाया।

यहां के आनन्द का सविस्तार वर्णन लिखा जाये तो एक वृहद् पुस्तक तैयार हो सकती है परन्तु पेपर में सिर्फ सारांश ही प्रकट किया गया है कि जिससे कार्यकर्ताओं को कष्ट न हो और वे उसमें से कुछ काट-छांट न कर सकें इति शुभम्।

रतलाम श्रीसंघ

(कान्फ्रेन्स प्रकाश तारीख 22 अप्रेल, 1919)

रतलाम में शेष समय व्यतीत होते ही जावरा राज्य के मुख्य सचिव का पत्र श्रीमान् सेठ वृद्धभाणजी के पास आया कि उनकी ओर से महाराज साहिब से निवेदन करें कि इस वर्ष चातुर्मास जावरा में करें तो बड़ा उपकार होगा। रतलाम से विहार कर खाचरोद-उज्ञैन की ओर पधारे। जहां जावरा के श्रावकों के चातुर्मास का आग्रह करने पर सन् 1976 का चातुर्मास जावरा किया। किसे पता था कि यह पूज्य श्री का अन्तिम चातुर्मास होगा।

बहुत वर्षों से जावरा निवासी श्रावकों की अभिलाषा थी वह इस वर्ष पूर्ण हुई। आषाढ़ शुक्ला 3 सोमवार को 12 ठाण से आचार्य श्री जावरा पधारे वहां आषाढ़ शुक्ला 10 के दिन जयपुर निवासी भाई चौथमलजी ने करीब 17 वर्ष की आयु में दीक्षा ली। दीक्षोत्सव जावरा के संघ ने बहुत धूमधाम व अति उत्साहपूर्वक किया। करीब 2000 व्यक्ति बाहर के गांवों से पधारे थे। किसी धर्म द्वेषी ने सरकार में शिकायत कर दी कि चौथमलजी को बेवात दीक्षा दी जा रही है। इस पर से दीक्षा के एक दिन पूर्व जावरा राज्य के मुख्य सचिव जमशेद जी सेठ ने चौथमलजी को अपने पास बुलाया, कई श्रावक भी उनके साथ थे। जमशेदजी सेठ ने कई प्रकार से इनसे प्रश्न कर अपना समाधान किया कि वैराग्य वे स्वयं-की इच्छा से ले रहे हैं। उनके उत्तर संतोषप्रद होने पर दीक्षा की आज्ञा प्रदान की।

जावरा के चातुर्मास में सागर वाले सेठ चांदमलजी नाहर सकुटुम्ब पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे। उनकी पत्नी ने वहां अठाई की थी। इसके उपलक्ष्य में भादवा सुदी 3 को उत्सव मनाया गया था। जिसमें 30 गांवों के करीब 2000 लोग बाहर से आये थे।

पंचेड़ के श्रीमान् ठाकुर साहिव चैतसिंहजी व्याख्यान का विशेष लाभ उठाने पांच वार यहां पधारे थे।

इस चातुर्मास में पूज्यश्री को अनेक उपसर्ग सहन करने पड़े, परन्तु आप स्वयं ने कभी हिम्मत न हारी और न निराश हुए। न कभी घवराये परन्तु सत्यपथ पर कायम रहे। श्रावकों को भी हिम्मत देते रहते थे कि असत्य वहुत समय तक टिक नहीं सकेगा और सत्य की ही अंत में विजय होगी। इसलिये सत्य को ग्रहण करो सत्य का अनुमोदन करो फिर स्वयं सत्य सामने आ जायेगा।

इस समय कान्फ्रेन्स का कार्यालय दिल्ली था। समग्र श्रीसंघ कार्यालय व वहां से निकलने वाले पत्र 'प्रकाश' का प्रमुख कर्तव्य था कि छोटी-छोटी गलतफहमी को समाप्त करे। किन्तु प्रकाश ने पक्षपात पूर्ण रुख अपना कर उसमें लेखों से जलते में घी का काम किया और आपस में मनमुटाव बढ़ता गया जिसका आखिर में अन्त आगरा कमेटी में ये सब लेख वापस लेकर हुआ। सौभाग्य से 'प्रकाश' ने फिर यह विषय नहीं उठाया।

लाला लाजपतराय द्वारा कलकत्ते में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में कहे हुए शब्द 'जब लोगों की इच्छा का ज्वालामुखी फटता है तब उसका पाप आंदोलन करने वालों के सिर पड़ता है।' यहां इस प्रसंग पर भी खरे उतरते हैं।

अध्याय 47 : सवा लाख रुपयों का दान

जावरा से मालवा व मेवाड़ की ओर विहार करते समय छोटी सादड़ी में सेठ नाथूलालजी गोदावत ने सवा लाख रुपयों का दान किया था। उक्त रकम के ब्याज मात्र से ही अभी भी श्री गोदावत जैन आश्रम छोटी सादड़ी चल रहा है। एक तो छोटी सादड़ी मुख्य मार्ग से हटकर छोटा सा गांव होने और दूसरे निस्वार्थी कार्यकर्ताओं की कमी के कारण इस आश्रम का लाभ उतना नहीं मिल रहा है जितना अपेक्षित है। जब तक निस्वार्थी सेवाभावी लोग काम करने के लिए आगे नहीं आयेंगे तब तक इस प्रकार के दान का सदुपयोग नहीं होगा।

इस विहार में युवाचार्य भी आचार्य प्रवर के साथ थे। सभी मुनिराज ब्यावर पधारे। वहां शेष काल के कल्पे उतने दिन ठहरे। दोनों मुनिराज इस नये नगर ब्यावर में सूर्य और चन्द्र की तरह जैनधर्म की ज्योति का अपूर्व प्रकाश फैला रहे थे।

पंजाब से लौटकर आने वाले संतों की प्रेरणा से आगरा, जयपुर और अजमेर के श्रावकों ने ब्यावर आकर पूज्यश्री से अजमेर पधारने की प्रार्थना की एवं जावरा के संतों से मिलकर चरित्र के सम्बन्ध में मतभेद का समाधान हो जाने की आशा भी व्यक्त की।

इस प्रकार के प्रबल आग्रह के कारण पूज्यश्री पाली से डूंगराल प्रदेश होकर गर्मी के परिषह को सहन करके भी अजमेर पधारे। वहां साधु समाचरी के अनुकूल योजनाएं निश्चित की गई। उदयपुर महाराणा साहिब ने भी श्रीमान् कोठारीजी बलवंतसिंहजी जैसे अनुभवी और कार्यकुशल व्यक्ति को समाधान कराने के मिशन पर भेजा। पूरी कोशिश की गई। पूज्यश्री ने समाधान के प्रयास करने में कोई कमी नहीं छोड़ी परन्तु समाधान की आशा समाप्त हो जाने पर पूज्यश्री ने वहां से विहार कर दिया।

लेखक भी उस समय अजमेर में मौजूद था। 'जैनपथ प्रदर्शक' वाले भाई पदमसिंहजी तथा जैन जगत वाले भाई डाक्टर धारशीजी तथा भिन्न-भिन्न शहरों के श्रावकों के जो-जो प्रयास हुए और बातें हुई यदि वे सब अक्षरशः यहां लिखी जायें तो सत्यासत्य समझना सहज हो जायेगा परन्तु लेखक ने जिनकी पवित्र जीवनी लिखने के लिये यह प्रयास किया है उन महात्मा के मनोभावों की याद आते ही यह भावना जगृत होती है कि यह उचित नहीं होगा कि उन जैसी महान आत्मा के जीवन में आये क्लेश या विषाद के क्षणों का किंचित भी वर्णन किया जावे।

विहार के समय एक मुनि ने बाजार के बीच में पूज्यश्री को सबके सामने अविवेकपूर्ण वचन कहे थे, परन्तु पूज्यश्री ने मानों सुने ही न हों इस प्रकार जरा भी क्रोध नहीं करके आगे बढ़ गये। तबीजी गांव में आकर उस अविवेकी मुनि ने पूज्यश्री से माफी चाही तब पूज्यश्री ने निर्मल भाव से उत्तर दिया कि तुम्हारे शब्द मैंने एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दिये हैं इसलिये मुझसे माफी मांगने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु जब साथ के मुनिराजों ने बहुत अनुनय-विनय की, तब मुंह से ही नहीं क्षमा किया बल्कि अपमान करने वाले साधु के सिर पर हाथ रख कर माफी

के साथ-साथ स्वधर्म में सुदृढ़ रहने का आशीर्वाद भी दिया। यह दृश्य देखकर वहां उपस्थित लोगों की आंखों में अश्रु भर आये।

अजमेर में एकत्रित हुए श्रावकों ने अजमेर छोड़ते समय समाधान की आशा भी छोड़ दी थी। ममत्व के सामने निष्पक्ष और शास्त्रानुसार न्याय करने वालों को भी निराश होना पड़ता है। अजमेर का उपरोक्त दृश्य एक पत्रकार के शब्दों में यहां दिया जाता है। 'बहुत से बादल इकट्ठे हुए, गंभीर गर्जनायें भी हुई, बिजली भी चमकी, बरसात के सब संकेत भी हुए किन्तु अन्त में यह सब आडम्बर व्यर्थ गया, बादल बिखर गये, तृषातुर चातक निराश हो गये, कलापियों ने अपनी कला सिकोड़ ली, ममत्व की चढ़कर आई हुई आंधी के रजकणों से बहुतों की आंखें लाल हो गई। निराशा और निरुत्साह की श्याम रेखा कईयों के बदन पर फिर गई, उत्साह से आये हुए निश्वास छोड़ पीछे फिरे, परन्तु आकाश में ऊँचे चढ़े हुए सूर्य देवता ने आश्वासन दिया कि धैर्य रखो, सत्य की जय है और मैं बरसात को पलटा कर गर्मी से घबराये हुओं को शांति कराऊँगा।'

डरपोक श्रावकों की सहनशीलता को भी धन्य है। समाज-सेवा के सेनापति होकर के भी समाज की सेना का सत्यानाश करें, समाज रूपी जहाज के कप्तान होकर भी महाराज को खराब कर छिन्न-भिन्न करें, धर्म के नाम से अधर्म का जाल बिछा कर निरपराधियों को फांसने का प्रयत्न करें, इसे तो भ्रष्टाचार के अनुमोदन की संज्ञा में ही रखा जा सकता है और इसमें सहयोग करने वाले श्रावकों को समाज का शत्रु ही माना जाना चाहिए।

एक सज्जन को क्लेश की शान्ति के बारे में लिखने पर उनका उत्तर पाठकों के मनन के लिये प्रस्तुत है। उन्होंने लिखा है कि 'मुनि क्लेश की शांति करें तो मुनि और क्लेश दोनों का साथ कैसा ? मुनि में क्लेश नहीं रह सकता और क्लेश में मुनिपन नहीं रह सकता।'

एक गुणानुरागी मुनिराज द्वारा लेखक को लिखा पत्र इस प्रकार है :

'शिथिलाचार की पछेवड़ी में ढंकाते हुए साधु शरीर को तो मैं सिंह की खाल में सियार समझता हूं। बिचारे दूसरे जानवरों की तो ताकत ही क्या स्वयं सिंह को कुएं में प्रतिबिम्ब दिखा कर सिंह को ही वह फंसा देता है। ऐसे सियारों को ढूंढ़ निकालने में श्री संघ जितनी लापरवाही, आलस्य और टालमटोल करेगा उतना ही समाज पोला होता चला जावेगा। समाज रूपी किले का एक आध गुम्बद ढीला हो जावे और यदि जल्द ही उसे दुरुस्त कर दिया जाय तो ठीक है नहीं तो वह गुम्बद ही दुश्मनों को रास्ता दे देता है। ऐसे रोगों को निर्मूल करने का मात्र एक ही उपाय है कि ऐसे सियारों से समाज को सावधान रहना और इस रोग को फैलने न देना है।'

प्राचीन संस्कृति, विभूति और गौरव के अमूल्य ग्रन्थों से ओतप्रोत [illegible] का यह अंग आपकी [illegible] सामने मूक है। [illegible] चाहता है, [illegible] चाहता है, परन्तु पक्षपात की आंधी में लड़खड़ा जाता है। [illegible] होगा। समाज से [illegible] के लिये तैयार रहना होगा। [illegible] और [illegible], [illegible] को [illegible], [illegible] को निर्मूल कर, [illegible], [illegible] और [illegible] का [illegible] करने के लिये कटिबद्ध होना होगा। [illegible] है [illegible] नहीं है।

[illegible]

मूल्यों की स्थापनार्थ सतत् प्रयत्नशील हों 'सोये तानी सोड़' का कलंक धोकर समाजोन्नति करने व बीड़ा उठावें एवं पूरे प्रयत्न के साथ इन उद्देश्यों को अमलीजामा पहनाने को पूरी निष्ठा के सा प्रयत्नशील हो जावें।

अपने में शेष बचा मनुष्यतत्व अपने को पुकार-पुकार कहता है कि – 'पक्ष छोड़ पारा निहाल देखनीकी कर' का घोष व्याख्यान में प्रतिदिन सुनते हुए भी इस पर न चलें तो इससे ब निर्लज्जता एवं असार्थकता क्या है। अपने प्रातः स्मरणीय पूर्वजों का स्मरण करो उनके प्रति श्रद्धा पूज्यभाव हों तो उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके द्वारा सौंपा गया कार्य अर्थात् समाज रक्षा व अपने हाथ में ले लो। भ्रांतियों एवं असंयम को न सिर्फ आश्रय ही न दो बल्कि मौन रह उसे सह के बजाय उसका डटकर मुकाबला करो एवं समाज के सड़े-गले अंग को या तो उपचार कर स्वस् करो व यदि वह इस काबिल रह ही नहीं गया है तो शल्य चिकित्सा कर उसे काट-छील कर फेंक द एवं शुद्धाचार रूपी शेष सामाजिक शरीर को पुनः पूर्ण स्फर्तिदायक एवं प्राणवान बना दो ताकि उ सड़े गले तत्व के संसर्ग में आकर शेष शरीर की विकृति न हो पावे।

शुद्ध सात्विक जीवन व्यतीत करना, आत्मबल बढ़ाना, आध्यात्मिक उन्नति करना, य आर्यों के प्राचीन संस्कारों का सार है। भौतिक सिद्धान्त आध्यात्मिक प्रगति में बाधक नहीं हो सकत हैं। संयम सागर की जीवन नौका में विहार करते समय, जीवन की दिशा बदलते समय, पवित्रत का ध्यान रखते हुए तुम्हारे द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं को सदा याद रखो। उस मंगल मुहूर्त में मिले मंत्रों का स्मरण करो जिनके लिये प्राणों की बाजी लगा दी थी। उन मंगलमय सिद्धान्तों को प्राण की तरह ही समझो। अन्तरात्मा की आवाज को पहचानो।

महात्माओं और अनुभवियों का उपरोक्त कथन याद कराने का कुल मिलाकर तात्पर्य यह है कि समाज जिस ओर बह निकला है उसे रोकना है। निडर लेखक श्रीयुत् वाड़ीलाल मो. शाह सत्य लिखते हैं कि 'समस्त संसार एक साथ एक सा समझदार नहीं हो सकता न कभी होगा। जो थोड़े से स्वभाव से शक्तिवान हैं परन्तु उनकी शक्तियाँ विकृत शिक्षा से घट गई हैं उन थोड़े से लोगों को सही मार्ग पर लाने की आवश्यकता है। इन लोगों के सुधार से अन्य लोग भी आपका अनुकरण करने लगेंगे। नीचे खड़े रहकर ऊपर देखने के बजाय ऊपर खड़े होकर नीचे देखना सीखना चाहिये। इस आंदोलन में अनावश्यक मनमुटाव को प्रश्रय देने से मानवता को धक्का लगा है। निर्मल कीर्ति की इच्छा करने वाले अल्पसंख्यक होने से तथा साहसी कार्य करने वालों की लापरवाही से इस आंदोलन को बल मिला है। ऐसे समय में साधुओं और श्रावकों को भूल का भान कराने वाले और एक ही शब्द में दूसरों की बोली बन्द कर देने वाले सेठ अमरचन्दजी पीतलिया का स्मरण हुए विना नहीं रह सकता। प्रभाव व वणिक बुद्धि से समझाने और समस्या का यथोचित समाधान दिलाने वाले राय सेठ चांदमलजी साहिव और समाधान कराने में पूर्ण पारंगत अनुभवी राजश्री गोकुलदास जी राजपाल, यदि इस समय कोठारीजी के साथ अजमेर में होते तो आज भी संयम संरक्षा की विजयध्वजा फहराती होती । शान्त मुद्रा और शास्त्रों की आज्ञा का मान करने वाले सेठजी बालमुकन्दजी मूथा और भद्रिक स्वभावी राजवहादुर सुखदेव सहायजी जौहरी यदि तव हाजिर होते तो प्राचीन शास्त्रसम्मत मर्यादाओं का निर्वाह करने वालों को इस प्रकार के प्रहार सहन नहीं करने पड़ते। श्रीयुत् वाड़ीवाल भाई वीच में न पड़े होते तो शायद स्वाभिमान ठिकाने लग जाता।

अभी भी समाज में अग्रेसर पद के योग्य अनेक श्रावक विद्यमान हैं वे निष्पक्ष हृदय से आगे आकर वर्तमान नायक श्रीमान् कोठारीजी की तरह खड़े रहें तो चारित्र-संयम की सुरक्षा सरल हो सकेगी। बहुरत्ला वसुंधरा।

मूल्यों की स्थापनार्थ सतत् प्रयत्नशील हों 'सोये तानी सोड़' का कलंक धोकर समाजोन्नति करने व
बीड़ा उठावें एवं पूरे प्रयत्न के साथ इन उद्देश्यों को अमलीजामा पहनाने को पूरी निष्ठा के सा
प्रयत्नशील हो जावें।

अपने में शेष बचा मनुष्यतत्व अपने को पुकार-पुकार कहता है कि – 'पक्ष छोड़ पारा
निहाल देखनीकी कर' का घोष व्याख्यान में प्रतिदिन सुनते हुए भी इस पर न चलें तो इससे ब
निर्लज्जता एवं असार्थकता क्या है। अपने प्रातः स्मरणीय पूर्वजों का स्मरण करो उनके प्रति श्रद्धा
पूज्यभाव हों तो उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके द्वारा सौंपा गया कार्य अर्थात् समाज रक्षा क
अपने हाथ में ले लो। भ्रांतियों एवं असंयम को न सिर्फ आश्रय ही न दो बल्कि मौन रह उसे सह
के बजाय उसका डटकर मुकाबला करो एवं समाज के सड़े-गले अंग को या तो उपचार कर स्वस्
करो व यदि वह इस काबिल रह ही नहीं गया है तो शल्य चिकित्सा कर उसे काट-छील कर फेंक द
एवं शुद्धाचार रूपी शेष सामाजिक शरीर को पुनः पूर्ण स्फर्तिदायक एवं प्राणवान बना दो ताकि उ
सड़े गले तत्व के संसर्ग में आकर शेष शरीर की विकृति न हो पावे।

शुद्ध सात्विक जीवन व्यतीत करना, आत्मबल बढ़ाना, आध्यात्मिक उन्नति करना, य
आर्यों के प्राचीन संस्कारों का सार है। भौतिक सिद्धान्त आध्यात्मिक प्रगति में बाधक नहीं हो सकत
हैं। संयम सागर की जीवन नौका में विहार करते समय, जीवन की दिशा बदलते समय, पवित्रत
का ध्यान रखते हुए तुम्हारे द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं को सदा याद रखो। उस मंगल मुहूर्त में मिले
मंत्रों का स्मरण करो जिनके लिये प्राणों की बाजी लगा दी थी। उन मंगलमय सिद्धान्तों को प्राणो
की तरह ही समझो। अन्तरात्मा की आवाज को पहचानो।

महात्माओं और अनुभवियों का उपरोक्त कथन याद कराने का कुल मिलाकर तात्पर्य यह है
कि समाज जिस ओर बह निकला है उसे रोकना है। निडर लेखक श्रीयुत् वाड़ीलाल मो. शाह सत्य
लिखते हैं कि 'समस्त संसार एक साथ एक सा समझदार नहीं हो सकता न कभी होगा। जो थोड़े से
स्वभाव से शक्तिवान हैं परन्तु उनकी शक्तियाँ विकृत शिक्षा से घट गई हैं उन थोड़े से लोगों को सही
मार्ग पर लाने की आवश्यकता है। इन लोगों के सुधार से अन्य लोग भी आपका अनुकरण करने
लगेंगे। नीचे खड़े रहकर ऊपर देखने के बजाय ऊपर खड़े होकर नीचे देखना सीखना चाहिये। इस
आंदोलन में अनावश्यक मनमुटाव को प्रश्रय देने से मानवता को धक्का लगा है। निर्मल कीर्ति की
इच्छा करने वाले अल्पसंख्यक होने से तथा साहसी कार्य करने वालों की लापरवाही से इस आंदोलन
को बल मिला है। ऐसे समय में साधुओं और श्रावकों को भूल का भान कराने वाले और एक ही
शब्द में दूसरों की बोली बन्द कर देने वाले सेठ अमरचन्दजी पीतलिया का स्मरण हुए विना नहीं रह
सकता। प्रभाव व वणिक बुद्धि से समझाने और समस्या का यथोचित समाधान दिलाने वाले राय
सेठ चांदमलजी साहिब और समाधान कराने में पूर्ण पारंगत अनुभवी राजश्री गोकुलदास जी
राजपाल, यदि इस समय कोठारीजी के साथ अजमेर में होते तो आज भी संयम संरक्षा की
विजयध्वजा फहराती होती । शान्त मुद्रा और शास्त्रों की आज्ञा का मान करने वाले सेठजी
बालमुकन्दजी मूथा और भद्रिक स्वभावी राजवहादुर सुखदेव सहायजी जौहरी यदि तव हाजिर होते
तो प्राचीन शास्त्रसम्मत मर्यादाओं का निर्वाह करने वालों को इस प्रकार के प्रहार सहन नहीं करने
पड़ते। श्रीयुत् वाड़ीवाल भाई बीच में न पड़े होते तो शायद स्वाभिमान ठिकाने लग जाता।

अभी भी समाज में अग्रेसर पद के योग्य अनेक श्रावक विद्यमान हैं वे निष्पक्ष हृदय से आगे आकर वर्तमान नायक श्रीमान् कोठारीजी की तरह खड़े रहें तो चारित्र-संयम की सुरक्षा सरल हो सकेगी। बहुरत्ना वसुंधरा।

मूल्यों की स्थापनार्थ सतत् प्रयत्नशील हों 'सोये तानी सोड़' का कलंक धोकर समाजोन्नति करने का बीड़ा उठावें एवं पूरे प्रयत्न के साथ इन उद्देश्यों को अमलीजामा पहनाने को पूरी निष्ठा के साथ प्रयत्नशील हो जावें।

अपने में शेष बचा मनुष्यतत्व अपने को पुकार-पुकार कहता है कि – 'पक्ष छोड़ पारार्थ निहाल देखनीकी कर' का घोष व्याख्यान में प्रतिदिन सुनते हुए भी इस पर न चलें तो इससे बड़ी निर्लज्जता एवं असार्थकता क्या है। अपने प्रातः स्मरणीय पूर्वजों का स्मरण करो उनके प्रति श्रद्धा व पूज्यभाव हों तो उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके द्वारा सौंपा गया कार्य अर्थात् समाज रक्षा को अपने हाथ में ले लो। भ्रांतियों एवं असंयम को न सिर्फ आश्रय ही न दो बल्कि मौन रह उसे सहने के बजाय उसका डटकर मुकाबला करो एवं समाज के सड़े-गले अंग को या तो उपचार कर स्वस्थ करो व यदि वह इस काबिल रह ही नहीं गया है तो शल्य चिकित्सा कर उसे काट-छील कर फेंक दो एवं शुद्धाचार रूपी शेष सामाजिक शरीर को पुनः पूर्ण स्फर्तिदायक एवं प्राणवान बना दो ताकि उस सड़े गले तत्व के संसर्ग में आकर शेष शरीर की विकृति न हो पावे।

शुद्ध सात्विक जीवन व्यतीत करना, आत्मबल बढ़ाना, आध्यात्मिक उन्नति करना, यह आर्यों के प्राचीन संस्कारों का सार है। भौतिक सिद्धान्त आध्यात्मिक प्रगति में बाधक नहीं हो सकते हैं। संयम सागर की जीवन नौका में विहार करते समय, जीवन की दिशा बदलते समय, पवित्रता का ध्यान रखते हुए तुम्हारे द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं को सदा याद रखो। उस मंगल मुहूर्त में मिले मंत्रों का स्मरण करो जिनके लिये प्राणों की बाजी लगा दी थी। उन मंगलमय सिद्धान्तों को प्राणों की तरह ही समझो। अन्तरात्मा की आवाज को पहचानो।

महात्माओं और अनुभवियों का उपरोक्त कथन याद कराने का कुल मिलाकर तात्पर्य यह है कि समाज जिस ओर बह निकला है उसे रोकना है। निडर लेखक श्रीयुत् वाड़ीलाल मो. शाह सत्य लिखते हैं कि 'समस्त संसार एक साथ एक सा समझदार नहीं हो सकता न कभी होगा। जो थोड़े से स्वभाव से शक्तिवान हैं परन्तु उनकी शक्तियाँ विकृत शिक्षा से घट गई हैं उन थोड़े से लोगों को सही मार्ग पर लाने की आवश्यकता है। इन लोगों के सुधार से अन्य लोग भी आपका अनुकरण करने लगेंगे। नीचे खड़े रहकर ऊपर देखने के बजाय ऊपर खड़े होकर नीचे देखना सीखना चाहिये। इस आंदोलन में अनावश्यक मनमुटाव को प्रश्रय देने से मानवता को धक्का लगा है। निर्मल कीर्ति की इच्छा करने वाले अल्पसंख्यक होने से तथा साहसी कार्य करने वालों की लापरवाही से इस आंदोलन को बल मिला है। ऐसे समय में साधुओं और श्रावकों को भूल का भान कराने वाले और एक ही शब्द में दूसरों की बोली बन्द कर देने वाले सेठ अमरचन्दजी पीतलिया का स्मरण हुए विना नहीं रह सकता। प्रभाव व वणिक बुद्धि से समझाने और समस्या का यथोचित समाधान दिलाने वाले राय सेठ चांदमलजी साहिब और समाधान कराने में पूर्ण पारंगत अनुभवी राजश्री गोकुलदास जी राजपाल, यदि इस समय कोठारीजी के साथ अजमेर में होते तो आज भी संयम संरक्षा की विजयध्वजा फहराती होती । शान्त मुद्रा और शास्त्रों की आज्ञा का मान करने वाले सेठजी वालमुकन्दजी मूथा और भद्रिक स्वभावी राजवहादुर सुखदेव सहायजी जौहरी यदि तव हाजिर होते तो प्राचीन शास्त्रसम्मत मर्यादाओं का निर्वाह करने वालों को इस प्रकार के प्रहार सहन नहीं करने पड़ते। श्रीयुत् वाड़ीवाल भाई बीच में न पड़े होते तो शायद स्वाभिमान ठिकाने लग जाता।

अभी भी समाज में अग्रेसर पद के योग्य अनेक श्रावक विद्यमान हैं वे निष्पक्ष हृदय से आगे आकर वर्तमान नायक श्रीमान् कोठारीजी की तरह खड़े रहें तो चारित्र-संयम की सुरक्षा सरल हो सकेगी। बहुरत्ना वसुंधरा।

अध्याय 48 :

जयपुर महाराजा के भतीजे के लग्न के अवसर पर पशु वध बन्द कराया जाना

श्रीमान् आचार्यश्री अजमेर से विहार कर ब्यावर नगर पधारे और युवाचार्य जी महाराज बीकानेर की तरफ विहार किया। ब्यावर में महाराज बहुत दिन ठहरे। चातुर्मास भी वहीं करने संभावना थी इसके लिए कालक्षेप करने को पूज्यश्री आसपास के क्षेत्रों में विचरने लगे। इस प्रक विचरते वे बावरे पधारे वहां पूज्यश्री के सदुपदेश से बावरे के श्रावकों ने 100-150 बकरों अभयदान दिया। पूज्यश्री बावरे विराज रहे थे तब मेवाड़ राज्य के ठिकाणे शिवरती के महारा हिम्मतसिंह जी के कुंवर साहिब की बारात बाबरे के समीप ग्राम राश के ठाकुर साहिब के यहां अ हुई थी। पूज्यश्री के बाबरे विराजने के समाचार मिलते ही हिम्मतसिंह जी वगैरह सरदार लोग बाब पधारे और पूर्व परिचय के कारण निवेदन किया कि वे लोग वहां चार-पांच दिन ठहरेंगे अत आचार्य प्रवर भी राश पधारने की कृपा करें। इस पर श्रीमान् ने फरमाया कि अभी राश आने व अवसर नहीं है क्योंकि आप लोगों की मेहमानदारी में पशु-पक्षियों का वध होना सम्भव है त उन्होंने निवेदन किया कि महाराज हम हिंसा बिलकुल नहीं होने देंगे अतः आप राश पधारने व कृपा करें।

इसके पश्चात् महाराज हिम्मतसिंहजी ने राश लौटकर राश ठाकुर साहब से आग्रह किय कि उनके लिये जीव हिंसा बिलकुल नहीं की जाये। इससे 150-175 बकरों को सहज अभयदा मिल गया। पूज्यश्री भी राश पधारे। वहां व्याख्यान में शिवरती महाराज श्रीमान् हिम्मतसिंहज साहिब तथा अन्य सरदार, जैन व अन्य लोग बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। राश के कामदार 101 बकरों को अभयदान दिया। श्रावकों ने भी बहुत से बकरों को अभयदान दिया। श्रीयुत महाराज हिम्मतसिंहजी शिवरती के संकल्प से सभी मांसाहारी लोगों को प्रेरणा लेकर शादियों व सामान्य व्यवहार में होने वाली जीव हिंसा को बंदकर सादा जीवन और स्वच्छ भोजन को जीवन क लक्ष्य बनाना चाहिये। जैसा भोजने होगा वैसा स्वभाव होगा। सामिष भोजन करने वाले अपने ह आदमी तक का खून कर देते हैं। मात्र मांस खाने के लिये जीव हिंसा करते हैं। जहां ऐसे निर्दो प्राणियों तक का वध होता है वहां उन परिवारों में चोरी, लूटपाट, दगा, जुआ और वदमाशी का भी अन्त सरलता से नहीं किया जा सकता।

सम्राट अशोक ने दया-धर्म की स्थापना की तभी हिन्दुस्तान उन्नति कर सका। दया-धर्म को जब राजा कुमारपाल ने स्थापित किया तब गुजरात आबाद हुआ। किन्तु आज लोग स्वार्थी, क्रूर और अधम बनते जा रहे हैं। पहले हमको स्वयं को त्याग करना चाहिये। जब हम दया करेंगे तब

शांति स्थापित होगी। हमारे प्रति अपराध करने वाले को भी क्षमा करने से समाज में भ्रातृभावना पनपेगी एवं बढ़ेगी।

अबोल (मूक), दीन, निर्दोष प्राणियों पर अत्याचार करने एवं उन का वध करना घोर निर्दयता है। इसका नतीजा स्वयं को भुगतना पड़ता है। इसलिये सभी को दया का ही आश्रय लेना चाहिये एवं सब जगह उसी का प्रचार करना चाहिये क्योंकि धर्म का मूल दया में ही निहित है।

राश से पूज्य श्री केकिन्द पधारे। वहां वे एक सप्ताह ठहरे। वहां भी श्री जी के दर्शनार्थ आसपास के गांवों के सैंकड़ों श्रावक आते थे। करीब 400 बकरों को जसनगर में अभयदान मिला। वहां से आषाढ़ कृष्णा 1 के दिन पूज्य श्री लांबीया पधारे। वहां के ठाकुर साहिब पूज्य श्री के व्याख्यान में पधारे। उनके हृदय पर पूज्य श्री के व्याख्यान का अत्यन्त सात्विक प्रभाव हुआ। ठाकुर साहिब ने कितने ही नियम तथा प्रत्याख्यान किये और चार बकरों को अभयदान दिया। दूसरे लोगों ने भी नाना प्रकार की प्रतिज्ञायें की।

आषाढ़ बदी 3 के दिन सुबह श्री जी कालू पधारे। वहां पूसालाल जी कोठारी ने सपत्नीक चौथे व्रत का स्कन्ध किया। उपवास, दया, पौषध तथा अन्य स्कंधादि बहुत हुए। कालू के कृषकों ने हरे वृक्ष तथा हरे चने इत्यादि भून कर खाने के सौगंध लिये।

कालू में महाराज दौलत ऋषिजी (जिन्होंने कि काठियावाड़ में विचरण कर अत्यंत उपकार किया) आठ साधुओं सहित पधारे। परस्पर आनन्दपूर्वक ज्ञानचर्चा और वार्तालाप हुआ। दोनों महापुरुषों का व्याख्यान एक जगह होता था। प्रातःकाल में व्याख्यान दिगम्बर स्कूल में होता था। पहले एक-आध घंटे तक दौलत ऋषिजी महाराज व्याख्यान फरमाते थे। और बाद में पूज्य श्री का व्याख्यान होता था। दोपहर में बड़े बजार में श्री लक्ष्मीनारायण जी के मंदिर की तिबारी में दोनों महात्मा व्याख्यान फरमाते थे। परिषद् का जमाव दर्शनीय था। दोनों संतों के श्रवणीय और अद्वितीय उपदेश के प्रभाव से महान उपकार हुए। व्याख्यान में जैन व अन्य करीब 500 लोग आते थे। कालू से विहार कर आषाढ़ बदी 13 के दिन पूज्य श्री बलूंदे पधारे। वहां के धनाढ्य सेठ गंगारामजी मूथा ने जिनका व्यवसाय बंगलौर तथा मद्रास में है, पूज्य श्री की पूर्ण भक्तिभाव से सेवा की। बलूंदे में एक दिन संध्या समय पूज्य श्री जंगल से आ रहे थे तब एक खटीक की लड़की दो बकरों को ले जा रही थी। सेठ गंगाराम जी को समाचार मिलते ही उन्होंने बकरों को अभयदान दिला दिया।

अध्याय 49 : अवसान

आषाढ़ बदी 14 के दिन बलूंदे से विहार कर पूज्य श्री जैतारण पधारे। वहां आहार-पा कर स्वाध्यायादि नित्य नियम से निवृत्त हो पूज्य श्री ने दोपहर का व्याख्यान फरमाया। दूसरे दि आषाढ़ बदी 3 के दिन नित्य नियम से निवृत्त हो पूज्य श्री ने प्रतिलेखन किया और पूजन प्रमार्ज कर अपने हाथ से ही कांजा निकाला तथा पाटिया लगा व्याख्यान फरमाने लगे। श्री भगवती ज सूत्र में से गांगिये अणगार के भांगे फरमा रहे थे। आधा घंटा पढ़ने के बाद महाराज श्री क अचानक चक्कर आने लगे और आंखों में तकलीफ हो गई। महाराज श्री ने अपने हाथ में से सूत्र वे पन्नों सहित पाटी नीचे रख अपने दोनों हाथों से आंखें थोड़े समय तक ढके रखी। फिर ऐनव लगाकर सूत्र पढ़ने का प्रयत्न किया परन्तु नहीं देख सके। उसी समय दुबारा चक्कर आया तथा सि में असह्य पीड़ा होने लगी। तब महाराज श्री ने फरमाया कि अब मेरी आंखें काम नहीं कर रही है अतः मुंह से ही व्याख्यान देता हूँ। पूज्यश्री ने उसी समय मौखिक सूत्र की गाथा फरमाकर उसक रहस्य समझाना प्रारम्भ किया। इतने में फिर चक्कर आये और दर्द का जोर और भी बढ़ गया। तब दूसरे साधु गब्बु लालजी को व्याख्यान देने की आज्ञा देकर आप अन्दर पधार गये और मुनि श्री मनोहरलालजी इत्यादि के समक्ष कहा कि 'मैंने ज्ञानी लोगों से सुन रखा है कि बैठे-बैठे आंख की दृष्टि एकाएक बन्द हो जाये तो मृत्यु समीप समझनी चाहिये।इसलिये भारत के इस महान संत ने बिना हिचकिचाहट के स्वेच्छा से यह निर्देश दिया कि मुझे अब संथारा करा दो और मुनि श्री हरकचन्दजी आ जाएँ तो मैं आलोयना कर लूंगा' ऐसा कर पूज्य श्री ने चतुर सिंहजी नामक एक साधु को आज्ञा दी कि तुम अभी ब्यावर की ओर विहार करो। श्रावकों को यह समाचार मिलते ही उन्होंने एक श्रावक को रेल से ब्यावर रवाना कर दिया। वह श्रावक मुनि श्री से पहले ही ब्यावर पहुंच गया व मुनि श्री हरकचन्द जी महाराज को सभी वस्तुस्थिति निवेदन की। श्रीमान् हरकचन्द जी महाराज यह सुन कर उसी समय आषाढ़ सुदी 1 के दिन बारह कोस का विहार कर नीमाज पधारे और वहां चिंताग्रस्त स्थिति में रात्रि निर्गमन कर दिन निकलते ही नीमाज से विहार कर आठ बजे जैतारण पहुंच गए। उनसे महाराज श्री ने कहा कि 'मेरी आंखें तुम्हारा चेहरा भी नहीं पहचान सकती अब मुझे शीघ्र संथारा कराओं। जीव और काया भिन्न होने में अब विशेष विलम्ब नहीं है।' मूलचन्द जी महाराज ने कहा कि महाराज संथारा कराने जैसी बीमारी आपको नहीं है तब हम लोग संथारा कैसे करावें? शिष्यों के हृदय को भारी धक्का लगा और वे हताश हो गये तब पूज्यश्री ने उन्हें हिम्मत बंधाते हुए कहा कि 'मृत्यु अवश्यम्भावी है। तीर्थंकर भी इसके अपवाद नहीं हैं। यह नियम सब के लिये समान है। इस समय आप लोगों से जो बन पड़े उतना धर्म-ध्यान सुनाओ, यही आपका कर्तव्य है।'

पूज्य श्री के सिर में तीव्र वेदना हो रही थी। दर्द बढ़ता ही जा रहा था। परन्तु उपस्थित साधु वर्ग इस असहनीय वेदना का पूज्यश्री की अद्वितीय सहन शक्ति के कारण सही अनुमान नहीं लगा सका और पूज्य श्री के बार-बार कहने पर भी उन्होंने संथारा नहीं कराया। परन्तु ज्यों-ज्यों दर्द

बढ़ता गया वैसे-वैसे पूज्यश्री समाधिस्थ होते गए। ऐसी तीव्र वेदना में भी उनकी शांति और धैर्य अनुपम था। कायरता प्रतीत हो ऐसा एक शब्द भी इस सिंह समान शूरवीर, धीर महापुरुष के मुंह से कभी नहीं निकला।

पूज्यश्री की बीमारी के समाचार जैतारण के श्रावकों ने तार द्वारा अनेक शहरों के मुख्य-मुख्य श्रावकों को पहुंचा दिये थे। अतः कई श्रावक वहां पहुंच गये थे। आषाढ़ शुक्ला 1 के दिन ब्यावर से कई भाई आये और उसी दिन शाम को उज्जैन से भाई चुन्नीलाल जी ⁂ कल्याण जी भी पधारे। लेखक मोरवी था वहां भी तार पहुंचा था किन्तु इतनी दूरी से पहुंचना संभव नहीं था। चुन्नीलाल जी ने महाराज श्री से उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा तब वे बोले कि 'भाई मेरा अंतिम समय याने संथारे का समय आ गया है, पुद्‌गल दुःख दे रहे हैं।' उस समय वहां कई श्रावक व साधु उपस्थित थे। श्री महाराज ने फिर 'धोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं' इस उत्तराध्यायन के सूत्र को कह कर सबको इसका अर्थ समझाया।

भिन्न-भिन्न श्रावक भिन्न-भिन्न औषधियां बतलाने लगे परन्तु पूज्यश्री ने फरमाया कि 'बाह्योपचार करने की अपेक्षा अब आंतरोपचार करने दो और आरंभ-समारंभ मिश्रित औषधियां मत सुझाओ।'

इस समय युवराज श्री उपस्थित होते तो पूज्यश्री को विशेष शान्ति रहती क्योंकि वे उन्हें कई विधि संघ के संबंध में अपनी अंतिम इच्छाओं से अवगत करा देते परन्तु हिम्मत एवं बहादुरी के धनी ये महाभटवीर अचानक आई मृत्यु के बुलावे से तनिक भी विचलित नहीं हुये। शिष्य समुदाय को अपनी शय्या के पास बुलाकर सबके सिर पर हाथ रखा मानो अंतिम विदा ले रहे हों और कहने लगे 'मुनिराजो! संयम से रहना, संघ के साथ रहना, पंडित श्री जवाहिरलालजी की आज्ञा में विचरना, वे दृढ़ धर्मी, चुस्त, संयमी और मुझसे भी तुम्हारी अधिक सार-सम्भाल करने वाले हैं। मैं और वे एक समान हैं ऐसा समझना, उनकी सेवा करना, श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय की ज्योति को प्रज्वलित रखना, शासन की शोभा बढ़ाना। मैं आप सबको क्षमाता हूं' क्ष-मा-क-र-ना इतना कह पूज्यश्री की वाणी बन्द हो गई। पास बैठे हुए मुनि मंडल के चक्षु अश्रुपूर्ण हो गये। एक मुनिराज ने उतर दिया 'पूज्यश्री आप की आज्ञा हमें शिरोधार्य है, आप निश्चिंत रहें। हम बालकों को आप क्या क्षमाते हैं। क्षमा तो हमें मांगनी चाहिये कि आपके उपकार के बदले में हम आपकी किंचित सेवा का भी लाभ न ले सके' इससे अधिक वे भी न बोल सके।

समय के ज्ञाता पूज्यश्री ने समय की नाजुकता को पहचान कर ही श्रीसूत्र की गाथा कहना प्रारंभ कर दिया और विषाद के इन क्षणों को शांति में बदल दिया। शिष्य समुदाय भी मंदस्वर से इन गाथाओं के उच्चारण में सम्मिलित हो गया।

दूसरे दिन आषाढ़ शुक्ला 2 को प्रातः ही अजमेर से श्रीमान् गाढमल जी लोढ़ा तथा ब्यावर से अनेक लोग आ पहुंचे। उस दिन पूज्य श्री के शरीर में व्याधि बढ़ गई थी और वे नित्य नियम भी न कर सके थे। पूज्यश्री बार-बार फरमाते थे कि जिस दिन मुझ से नित्य नियम न हो उस

⁂ भाई चुन्नीलालजी पिता-पुत्र ने इसके कुछ समय बाद ही दीक्षा अंगीकार कर आत्म साधना का अपना जीवन सार्थक करने की ओर अग्रसर हो गये। उनकी मातुश्री एवं बहन ने भी संयम अंगीकार किया। धन्य है ऐसे त्यागी वैरागी परिवार को।

दिन समझना कि मेरा अंत समय समीप है। इस पर उनके शिष्यों को बहुत चिन्ता होने लगी द्वितीया के दिन उन्हें सागारी संथारा करा दिया गया। उसी रात के पिछले पहर में करीब 5 ब इस नाशवान शरीर को मिट्टी के कच्चे घड़े की भांति त्याग कर पूज्यश्री की अमर आत्मा स्वर्ग सिधा गई। जैन शासन रूप आकाश में से एक देदीप्यमान नक्षत्र विलुप्त हो गया। चतुर्विध संघ का महा आधार स्तम्भ टूट गया। उस समय साधुओं के 12 ठाणे श्रीजी की सेवा में उपस्थित थे।

पूज्यश्री जब तक जीवित रहे अपने लिए न रहकर सकल संघ के लिए ही जीवित रहे अन्त समय में उनकी चिकित्सा में कोई कमी नहीं रखी गई। कई स्थानों पर तपश्चर्या प्रारंभ क गई, दान दिया गया, प्रतिज्ञायें ली गई तथा पूज्य श्री के स्वास्थ्य लाभ की कामनाएं की गई। परन् इस आत्मा को तो परमात्मा में मिलना था अतः असंख्य श्रावकों को शोक सागर में डूबता छोड़क समाज का यह सितारा अदृश्य हो गया। इतना अवश्य है कि यदि संथारा इतना थोड़ा न होता तं इस अवसर पर और भी लोग उपस्थित होते और इसमें तन, मन, धन से योगदान करते।

विश्व का नियम बड़ा विचित्र है। मृत्यु का उपचार नहीं है। जैन समाज को देदीप्यमा करने वाली यह पवित्र आत्मा अनेक कष्ट झेल, दुःखित हृदय लिये श्री शासनदेव के दरबार में अज करने स्वर्गलोक सिधार गई।

काठियावाड़ में कोहिनूर के समान प्रकाश करने वाला राजपूताने की यह रत्न-राशि व मालवा एवं मेवाड़ की यह मणि-मुकुट रूप आत्मा जो अभी तक इन महात्मा के शरीर में विद्यमान थी वह अब समस्त श्री संघ में व्याप्त हो गई।

कौन-सा वज्र हृदय ऐसा होगा जो इस वियोग का सही रूप से वर्णन कर सके। कौन कवि ऐसा होगा जो विरह का वर्णन करने का साहस जुटा सके। एक भक्त द्वारा प्रकट उद्गार इस प्रकार थे कि उनका शरीर गया, मूर्ति अदृश्य हो गई। उनके दर्शन दुर्लभ हो गये, स्थूल दुनियां में उनका स्थूल स्वरूप नष्ट हो गया किन्तु यश-कीर्ति रूप शरीर अभी तक मौजूद है। जो सदैव श्रीसंघ को सही मार्गदर्शन करता रहेगा।

कौन ऐसा हृदय शून्य रहा होगा जिसके कि ऐसे अवसर पर आंसू न बह निकले हों। मस्तिष्क की गर्मी कम करने का एवं दुःख सहन करने का अश्रु-प्रवाह सर्वग्राह्य रास्ता है :

'रोई रोई आंसूड़ानी नदिओं बहे तोये।

गयुं ते गयुं, शुं आवी आंशु लुछवानुं शाणा।।'

यही सही है कि अब नेत्रों से तो उनके स्मितपूर्ण मुखचन्द्र के दर्शन नहीं हो सकेंगे एवं उनश्री के विशालभाल युक्त मुख कमल से झरते हुए मधुर प्रोत्साहक अमृत के पान से भी अव हम पवित्र नहीं हो सकेंगे। परन्तु हां, धर्माराधना, जीव दया एवं त्याग प्रत्याख्यान द्वारा जीवन शुद्धि ही उनकी आत्मा का एकमात्र ध्येय था। अतः यदि हम उन श्री के इन सद् विचारों को ग्रहण करेंगे व उन्हें अपने जीवन में उतारेंगे तो वे प्रत्येक के हृदय में विराजमान दृष्टिगत होंगे।

पूज्यश्री की मात्र नश्वर काया ही विलुप्त हुई है उनका प्राणवान आत्मसाधना रूप चरित्र धर्म तो आज भी उतना ही शाश्वत है और समय के साथ विस्तार पायेगा। पूज्यश्री की उत्कट वैराग्य भावना वीतराग वाणी के प्रति गहरी निष्ठा, साधुत्व के नियमों एवं मर्यादाओं को कठोरता से

पालन करने में दृढ़ आस्था जीव दया के क्षेत्र में गहरी निष्ठा एवं कुव्यसनों का त्याग प्रत्याख्यान कराने एवं तप व सयंम के मार्ग में लोगों को प्रेरित करने अपरिमित क्षमता, उनका बलिष्ठ आत्मबल एवं परिषहों को सहन करने की उनकी क्षमता युगों-युगों तक चतुर्विध संघ के प्रेरणा के श्रोत बनी रहेगी।

तीसरे दिन बीकानेर, उदयपुर इत्यादि कई स्थानों के श्रावक भी एकत्रित हो गए एवं आचार्य श्री का स्वर्गारोहण का उत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया गया।

चन्दनादि लकड़ियों से चिता तैयार की गई। चिता में आग रखने की बहुतों की हिम्मत नहीं हुई। अंत में पूज्यश्री की नश्वर देह भस्मीभूत हो गई। श्रावकों ने मुनिराजों के पास आ आश्वासन दिया और मांगलिक सुनकर अपने-अपने स्थान को गए। उनकी भस्मी, हड्डिये व दाढ़ें बहुत से श्रावक बहुत भक्तिभाव से अपने साथ ले गये।

भारत का दुर्भाग्य है कि हमारे धर्म-गुरुओं की वय सामान्यतः कम होती है। जिस उम्र में नई-नई बातें सीखने व जन मानस का अधिकारिक रूप से विशिष्ट मार्गदर्शन करने की प्रेरणा देने का समय आता है उसी उम्र में वे भगवान के प्यारे हो जाते हैं। मृत्यु के समय स्वामी विवेकानन्द 39 वर्ष, श्रीयुत् केशवचन्द्र सेन 45 वर्ष, जस्टिस तैलंग 48 वर्ष के व गोपालकृष्ण गोखले 49 वर्ष के ही थे। पूज्यश्री अवसान के समय 51 वर्ष के थे। इस अवसर पर ग्लेडस्टन और एडीसन याद आये बिना नहीं रहते।

अंतिम कसौटी तक तपकर शुद्ध कुन्दन होने में पूज्यश्री को असह्य परिश्रम करना पड़ा था। पूज्यश्री की कीर्ति समाप्त करने के कई प्रयास किये गये किन्तु ये प्रयास सूर्य के प्रकाश को कम करने के लिए उसकी की ओर धूल फेंकने वाली स्थिति में ही रहे। पूज्यश्री के शुद्ध संयम के तेज में विरोधियों की ईर्ष्याग्नि भी पिघल जाती। ईर्ष्या के वेग में चरित्र हनन करने वालों को वे दया की दृष्टि से देखते थे और उन्हें सचेत करते थे कि कहीं जैन शासन के मुख्य स्तम्भ रूप में साधुधर्म ही समाप्त न हो जाये।

श्रीयुत् डाह्या भाई के निम्न शब्दों से यह प्रसंग समाप्त किया जाता है–'जिन्होंने हमारे लिये इतना कष्ट उठाया और हम उन्हें जीते जी विशेष आराम न दे सके। उनके दुख में उनके जीते जी हमने हाथ नहीं बंटाया बल्कि इसके विपरीत किसी-किसी कृतघ्नी ने तो व्यर्थ में उनकी टीका तक कर डाली। ऐसे इन महात्मा, संत, नरम हृदय के दयालु पुरुष का कुछ सहयोग न कर उनका दिल दुखाया यह याद आने पर हृदय फट जाता है। अलबत्ता हमारा यह अहोभाग्य है कि ऐसे महारथी की जगह लेने वाले भी उनके समान ही तपोबली महान पंडित-ज्ञानी एवं परोपकारी हैं और सम्प्रदाय के सेनापति का जोखिम भरा पद उन्होंने स्वीकार किया है, हमारी यही शुभकामनाएं हैं कि उन्हें सदा यश-कीर्ति एवं सफलता मिले।'

लगभग बत्तीस वर्ष तक चरित्र प्रवज्या पाल कर एवं उसमें से बीस वर्ष तक आचार्य पद को सुशोभित कर अनेक भव्य प्राणियों को प्रतिबोध देकर पूज्य श्री ने जीवन सार्थक किया है। आपका जन्म, आपका शरीर, आपकी प्रवज्या, आपका आचार्य पद यह सब जन कल्याण के लिये ही समर्पित रहा है। आपने अपनी नेश्राय में एक भी शिष्य न करने की प्रतिज्ञा ली थी परन्तु कई व्यक्तियों को दीक्षा देकर उनका उद्धार किया और कई मुनिवरों पर अवर्णनीय उपकार किया था।

आपका चरित्र अत्यंत ही अलौकिक और आप अपार गुण राशि के स्वामी थे। विद्वान लेखक अथवा आशु कवि कई अर्से तक आपके गुणानुवाद करते रहें तब भी आपके चरित्र का तथ्यात्मक निरूपण होना या आपके गुण समूह का पार पाना असम्भव है। आपके ज्ञान, दर्शन, चरित्र की शुद्धि, आपके अतीत काल में किये गये शुभकर्मों के उदय का अपूर्व प्रभाव, वर्तमान की शुभ प्रवृत्तियों तथा भविष्य के प्रति कल्याणकारी व दूरदर्शी दृष्टिकोण इत्यादि इतने प्रबल थे कि उनकी उपमा देना असम्भव है। इस पंचम काल के जीवों में से आपकी समानता कर सके ऐसा व्यक्तित्व खोज पाना असम्भव है। फिर भी धैर्य धारण करने को यह बात भी सत्य है कि आपके समान ही अनुपम आत्मिक गुण, अद्वितीय आकर्षण, दिव्य तेज एवं अपार साहसिकता, आत्मबल के धनी आचार्य श्री 1008 श्री पं. रत्न जवाहिरलालजी महाराज साहिब आपके पट्टधर आचार्य पद को सुशोभित कर रहे हैं। हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि आपके ज्ञान, दर्शन, चरित्र के पर्यायों में समय-समय पर अभिवृद्धि होती रहे और वे दीर्घ आयुष्य पाकर जैनधर्म की उदार एवं पवित्र भावनाओं का प्रसार एवं प्रचार करने के कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करें।

अध्याय 50 : शोकसभाएं

मारवाड़, मालवा, मेवाड़, गुजरात, काठियावाड़, दक्षिण, पंजाब इत्यादि प्रान्तों के अनेक नगरों एवं गांवों में पूज्यश्री के स्वर्गवास के समाचार मिलते ही काम-काज बन्द रखा गया, अगते पर्व पाले गए। धर्म-पुण्य किया गया और जीवदया के कार्य पर लाखों रुपये व्यय किये गये। उस सब का यहां वृतान्त सम्भव नहीं है, किन्तु उनमें से मुख्य-मुख्य सभाओं का वर्णन नीचे दिया जाता है।

बम्वई संघ की वृहद् सभा

तारीख 24-6-20 को चींचपोकली के जैन उपाश्रय में जैन संघ की एक आमसभा की गई। उसमें सैकड़ों लोगों ने उपस्थित होकर पूज्य आचार्यश्री के स्वर्गवास से जैन कौम और धर्म की भारी हानि होने, जिसकी पूर्त्ति न हो सके विषय पर दो शब्द कहते हुए अत्यन्त शोक प्रदर्शित किया।

अन्त में बम्वई के जैन संघ की ओर से बीकानेर में विराज रहे युवराज महाराज श्री जवाहिरलालजी जैन महाराज तथा वहां के श्रीसंघ एवं रतलाम के जैन संघ को शोक व्यक्त करते हुए तार देना निश्चित हुआ।

पूज्य आचार्यश्री के निर्वाण महोत्सव के समय जीवों को अभयदान देने के लिए एक निधि की स्थापना की गई जिसमें उपस्थित व्यक्तियों ने पांच हजार रुपया दिया जो निधि अभी भी कार्य कर रही है।

उस दिन वम्बई में जौहरी बाजार, सोना, चांदी बाजार, शेयर बाजार, मूलजी जेठा मार्केट, मंगलदास कपड़ा मार्केट, कोलावे का रूई बाजार, दाणा बाजार, किराना बाजार इत्यादि व्यापारिक स्थल बन्द रहे।

रतलाम

तारीख 25-6-20 को बड़े स्थानक में समस्त संघ की एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में बम्वई संघ का शोक संदेश पढ़ा गया। तीन-चार वक्ताओं ने पूज्यश्री का जीवन चरित्र कहा तथा पूज्य महाराज के अकस्मात वियोग से समस्त संघ को अत्यंत खेद होना व्यक्त कर निम्न प्रस्ताव पारित किया गया।

पहला प्रस्ताव

श्रीमान् परमगुणातंकृत, क्षमावान, धैर्यवान, तेजस्वी, जगद्वल्लभ, महाप्रतापी, आचार्य पदधारक परम पूज्य महाराजधिराज श्री श्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज का आषाढ़ शुक्ला 3 शनिवार को जैतारण में आकस्मिक स्वर्गवास के खेदजनक और हृदयभेदक समाचार सुनकर इस रतलाम संघ को पूर्ण रंज व दुःख प्राप्त हुआ है। इन महात्मा के वियोग से सारे भारत में अपनी समाज के लोगों के अतिरिक्त हजारों अन्य मतावलम्बियों को भी अत्यन्त रंज हुआ है। सारी जैन-समाज ने एक अमूल्य रत्न खो दिया है और ऐसा फिर प्राप्त होना दुर्लभ है। इसी मजमून का

तार बम्बई संघ का भी यहां पर आया हुआ सभा में सुनाया गया। यह सभा बम्बई संघ का उपक मानती है और वर्तमान पूज्य महाराज श्री श्री 1008 श्री जवाहिरलालजी महाराज साहिब को औ संघ को बम्बई और रतलाम संघ की तरफ से आश्वासन देने के लिए बीकानेर तार दिया जाने व निर्णय लेती है व वर्तमान पूज्य महाराज श्री श्री 1008 श्री जवाहिरलालजी का यश दिन-दिन ब हृदय से ऐसी कामना करती है।

दूसरा प्रस्ताव

श्रीमान् पूज्य महाराज के स्वर्गवास के समाचार सुनते ही तमाम संघ ने उसी समय अपन दुकानें बन्द कर शोक मनाया था तथापि संघ की ओर से निर्णय लिया गया कि स्वर्गस्थ पूज महाराज के प्रति श्रद्धा जाहिर करने के लिए आषाढ़ सुदी 13 मंगलवार के दिन समस्त बाजार बन रखा जावे। हलवाई, भड़भूंजा आदि की दुकानें भी बन्द कराई जायं तथा गरीबों को अन्न-वस्त्र क दान किया जावे। इस कार्य के लिए 4 व्यक्तियों की एक समिति बना दी गई तथा उपस्थित लोगं से निवेदन किया गया कि इस खर्चे के लिए कोई अपनी इच्छा से देना चाहे वह स्वीकार किय जावे।

उपरोक्त प्रस्ताव के अनुसार मिती आषाढ़ सुदी 13 को रतलाम में कई दुकानें बन्द रहीं अन्न-वस्त्रादि दान किये गये और पूज्य महाराज की स्मृति में सब लोगों ने वह दिन पर्व के रूप मे मनाया।

राजकोट

तारीख 29-6-1920 को यहां के तालुका स्कूल के सभा भवन में राजकोट स्टेट के मुख्य दीवान राय बहादुर हरजीवन भवान भाई कोटक बी.ए. एल.एल.बी. के सभापतित्व में राजकोट के निवासियों की एक आम सभा आयोजित की गई। सभापति महोदय एवं अन्य वक्ताओं ने पूज्यश्री के राजकोट के चातुर्मास में किये गये अवर्णनीय उपकारों का अत्यन्त ही प्रभावकारी भाषा में विवेचन किया और पूज्यश्री के स्वर्गवास के प्रति शोक प्रकट करते हुए निम्न प्रस्ताव पारित किया।

प्रस्ताव

राजकोट के निवासियों की यह सभा श्री जैनाचार्य पूज्य महाराज श्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज के असामयिक निधन पर अन्तःकरण से अत्यन्त खेद प्रकट करती है।

सं. 1967 का चातुर्मास निष्फल जाने से सं. 1968 के चातुर्मास में विशेषतया जानकारों के लिए बड़ा भारी दुष्काल पड़ा। उस समय चातुर्मास के दौरान पूज्यश्री ने यहां के तथा बाहर गांवों के लोगों को दया तथा सेवा धर्म का सच्चा अर्थ समझाकर लोगों में दयाभाव उत्पन्न किया था उसके प्रभाव से राजकोट में उस दुष्काल में भी वहां से तथा बाहर देशावरों से बड़ा भारी फण्ड एकत्रित हो सका था जिससे मनुष्य जाति एवं जानवरों के प्रति बड़ा उपकार हुआ था। ऐसे एक सच्चे महान विद्वान और चरित्रवान महामुनि के स्वर्गवास से सिर्फ जैन जाति को ही नहीं परन्तु पूरे मानव समाज की बड़ी भारी क्षति हुई है।

उपरोक्त प्रस्ताव पत्र द्वारा तथा उसका सार तार द्वारा बीकानेर व रतलाम संघ को सभापति महोदय के हस्ताक्षर से भेजने का भी निर्णय लिया गया।

तार की नकल

Citizens of Rajkot assembled in public meeting express their deep sorrow for the premature demise of Acharya Maharaj Shri Shrilalji and bet to say that in him not only the Jain Community but the people in general have lost a most learned pious and ideal saint. Please convey this message to Acharya Maharaj Shri Jawaharlalji with our humble requests.

दूसरा प्रस्ताव

आचार्य महाराज श्री श्रीलालजी महाराज जैन आदर्श गुणवान मुनि द्वारा हम पर किये गये उपकारों के एवज में उनको जितना भी मान दिया जाय, उनके प्रति भक्ति प्रकट की जाय थोड़ी है ऐसा मानते हुए सभा ने संकल्प किया कि कल का दिन जो जैन तथा कितने ही अन्य शास्त्रों के अनुसार चातुर्मास की परवी का है तथा व्रत-नियम धारण करने का एक पवित्र दिन है, उस दिन महाराज श्री के प्रति भक्तिभाव रखने वाले लोग अपना-अपना काम-धन्धा बन्द रख हो सके तो उपवासादि कर धर्म ध्यान में विताएं और इस प्रकार स्वर्गस्थ महाराज के प्रति श्रद्धा अर्पित करें। इस संकल्प की प्रति भी सभापति महोदय के हस्ताक्षर से बीकानेर तथा रतलाम संघ भेजा जाना तय हुआ।

जोधपुर

तारीख 3-7-1920 पूज्य महाराज श्री के स्वर्गवास से संघ में बड़ा भारी शोक रहा। पंडित श्री पन्नालालजी महाराज ने उस दिन व्याख्यान बन्द रखे और शोक रखा।

कलकत्ता

तार द्वारा समाचर मिलते ही समस्त श्रावक भाइयों ने मारवाड़ी चेम्बर्स की सम्मति से वाजार बन्द रखा। हटखोला पाट का वाजार भी बन्द रहा। संवर, पौषध तथा दान-पुण्य वहुत हुआ।

भीलवाड़ा

आषाढ़ शुक्ला 4 को प्रातःकाल समाचार मिलते ही जैन व अन्य लोग सम्पूर्ण शोक मग्न हो गये। धर्म-ध्यान, पुण्य, दान इत्यादि किया गया। जावरे वाले संत श्री देवीलालजी महाराज यहाँ विराजते थे उन्हें एकाएक यह समाचार पाकर अति शोक हुआ। व्याख्यान बन्द रख तथा गोचरी करने भी नहीं गये। वाद में भी सद्गति प्राप्त आचार्य श्री के गुणानुवाद अपने व्याख्यान में समय समय पर करते रहते थे।

सादड़ी

अवसान की खवर मिलते ही जीवदया के लिए रु. 400/- एकत्रित कर जीव छुड़ाये गये। द्वितीय श्रावण वदी 11 को एक दवाखांना खोला गया।

रामपुरा

श्री ज्ञानचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री इन्द्रमल जी यहां विराजते थे। पूज्यश्री के स्वर्गवास के समाचार सुनकर उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उस दिन आहार-पानी भी नहीं किया। संघ में भी वड़ा भारी शोक रहा।

बड़ी सादड़ी

सकल संघ में बड़ा भारी शोक छा गया। व्याख्यान बन्द रहा, धर्म-ध्यान, दान-पुण्य, व्रत प्रत्याख्यान बहुत हुये। आसपास के गांवों में भी ऐसा ही हुआ।

रावलपिंडी

जैन सुमति मित्रमंडल के अधीन की समस्त संस्थाएं बन्द रखी गई।

रायचूर

यहां पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की पुण्य स्मृति में एक 'श्रीलाल जैन पुस्तकालय' खोल गया।

धोरा जी

व्याख्यान की परिषद् में शतावधानी पं. रतनचन्द्रजी महाराज ने पूज्यश्री के स्वर्गवास के प्रति शोक प्रदर्शित करते हुए अपने वक्तव्य में पूज्य श्री के उत्तम गुणों का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया जिससे श्रोताओं का हृदय शोक निमग्न हो गया और आंखों से अश्रु प्रवाह होने लगा। व्रत प्रत्याख्यान हुए। चन्दा करके रु. 125/- के कपासिये लेकर अपंग ढोरो को खिलाये गए।

भूसावल

पत्र द्वारा समाचार मिलते ही आषाढ़ शुक्ला 11 को तमाम व्यापार बन्द रखा गया। श्रावकों ने दया, पौषध कर समस्त दिन धर्मध्यान में बिताया।

अमृतसर

युवराज श्री काशीराम जी महाराज ने एक दिन व्याख्यान बन्द रख बड़ा भारी शोक प्रदर्शित किया। समस्त संघ में भारी शोक रहा।

हींघन घाट

साधुमार्गी तथा मन्दिर मार्गी भाइयों ने मिलकर आषाढ़ शुक्ला 11 के दिन बाजार बन्द रखा।

कपासन

तपस्वी हजारीमलजी ठाणा के साथ यहां विराजते थे। आचार्यश्री के स्वर्गवास के समाचार मिलते ही साधु, श्रावकों में भारी शोक छा गया। दूसरे दिन व्याख्यान बन्द रहा। महाराज ने उपवास किया। पींजरापोल खोलने का प्रवन्ध हुआ।

जावाद

समस्त श्रावकों ने दुकानें बन्द रखी और उपाश्रय में एकत्रित हुए। कसाइयों की दुकानें वन्द रखी गई। गरीवों को वस्त्र तथा भोजन, पशुओं को खल तथा घास, कवूतरों को जवार तथा कुत्तों को पुड़ियां डाली गई जिसमें रु. 200/- खर्च हुए। कई तैलियों ने अपनी ओर से पशुओं को खल खिलाई।

उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त उदयपुर, वीकानेर, दिल्ली, आकोला, शिवपुरी, सिन्दुरणी, जावरा, मोरवी, जयपुर इत्यादि अनेक शहरों और गांवों में शोक सभाएं तथा दान-पुण्य, संवर, पौषध हुए परन्तु स्थानाभाव तथा कई स्थानों से पूर्ण विवरण न मिलने से यहां नहीं दिया जा रहा है।

अध्याय 51 : सम्पादकों, लेखकों इत्यादि के शोकोद्गार

हमारी निराशा

साखी

अंतरनी आशाओ सघली अंतरमांज समाणी।

रह्या मनोरथो मनना मनमां कहेवी कौने कहाणी।

न्होती जाणी.........के आम थशे हाणी।।

पूज्य महाराज श्री श्रीलालजी महाराज के शोकदायक अवसान के समाचार थोड़े ही समय के पहले मैंने सुने तब मेरे हृदय को बड़ा भारी धक्का लगा, स्वर्गस्थ महात्मा श्री के उम्दा गुणों का गुणानुवाद पहिले मैंने कई जनों के मुंह से सुना था और तब से उनसे मिलने की मेरी प्रबल उत्कण्ठा रही परन्तु दुर्दैव ने यह अभिलाषा निर्मूल कर दी। जब पूज्यश्री का यहाँ पधारना हुआ तब मेरा विहार कच्छ के प्रदेशों में था और मैं जब लींबड़ी आया तब मैंने पूज्यश्री से फिर से इस तरफ पधारने के लिए विनती कराई, परन्तु वे नहीं पधार सके, और मैं अपने गुरु की सेवा में लगा रहने से उन दिनों लींबड़ी न छोड़ सका, इसलिए मेरी यह अभिलाषा अपूर्ण ही रही।

मेरा उनके साथ प्रत्यक्ष परिचय नहीं होने से मेरे मन पर जिन गुणों की छाप पड़ी है वह मात्र परोक्ष है।

लींबड़ी में पूज्य महाराज का आगमन सं. 1967 के वैशाख शुक्ला 6 गुरुवार को 21 ठाणों से हुआ। तव वे वहां के हाईस्कूल में ठहरे थे। उनके व्याख्यान में वहां के ठाकुर साहिब प्रतिदिन उपस्थित होते थे। ऑफिस के लोग सब व्याख्यान का लाभ ले सकें, इसलिए कोर्ट का मोर्निंग टाइम बदल दिया था जिससे ऑफिस के या ग्राम के अन्य इच्छुक समुदाय का जमाव खूब होता था। पूज्यश्री के व्याख्यान की शैली अत्यन्त आकर्षक, शास्त्रानुसार और देश, काल की वर्तमान भावनाओं की पोषक थी। उनकी प्रकृति अत्यंत सरल और निर्मल थी। प्रत्येक जाति के मनुष्य श्रवण-सत्संग का लाभ लेते थे और उन्हें उनके अतिशय के कारण सव अपने ही धर्मगुरु के समान मानते थे। व्याख्यान में अनेक प्राचीन कवियों के काव्य, सुमधुर कंठ से शिष्यवर्ग के साथ इस तरह घोषित करते थे कि जिससे श्रोताओं पर अजव असर पड़ता था। मारवाड़ की वीरभूमि के इतिहास के दृष्टांत और उन पर सिद्धान्तों की ऐसी मजेदार घटना घटित करते थे कि श्रोतालोग रस में विलकुल निमग्न वन जाते थे। व्याख्यान से उठने की इच्छा तो होती ही नहीं थी, कारण मधुरी शैली से वुलंद आवाज द्वारा श्रोताजनों को सम्हालते रहते थे। उस समय यहां पंडितराज वहुसूत्री स्वर्गस्थ महाराजश्री उत्तमचंदजी स्वामी अपने समुदाय सहित विराजते थे और वे भी व्याख्यान में हमेशा पधारते थे। उनके मुंह से तथा अन्य श्रावकों के मुंह से यह सव तारीफ मैंने सुनी है तथा उनकी वाणी की महिमा तो मैंने कइयों के मुंह से सुनी है।

बहुत से मनुष्यों ने उनके व्याख्यान सुने हैं उनसे मैंने सुना है कि उनका प्रभाव अब
श्रोताओं पर वैसा ही कायम है। ऐसी प्रभावोत्पादक शैली और श्रोताओं के मन पर छाप पाड़ने
शक्ति इस बात को सूचित करती है कि पूज्यश्री जो कथन श्रोताओं के समक्ष प्रकाशित करते थे उ
वे अपने हृदय में सत्य के सदृश स्वीकार करते थे और उस सत्य पर उनकी अचल श्रद्धा और
प्रीति के कारण ही वे श्रोताओं पर ऐसा उत्तम प्रभाव गिरा सकते थे।

शास्त्रों में फरमाई हुई आज्ञाओं का वे असाधरण धैर्य और दृढ़ श्रद्धापूर्वक पालन करते थे
पूज्य श्री जिन भावनाओं को अपना धर्म और कर्तव्य समझ स्वीकार करते थे उन्हें वे अपनी आत
में एकात्मभाव में परिणमा सकते थे, इसके सिवाय वर्तमान साधु-सम्प्रदाय में दुर्लभ और अनेक उ
तथा साधु के शृंगार स्वरूप गुणों के धारक थे।

ऐसे एक परम दुर्लभ गुणधारी साधु के देहान्तरगमन से हम सबको सचमुच बड़ा भारी खे
है। सद्गति के अनुयायी समाज का यह कर्तव्य है कि वे पूज्य महाराज श्री के गुणों को अप
जीवन में उतारने का प्रयत्न करें और उन गुणों द्वारा उनकी स्मृति की संरक्षा करें।

ली. संतशिष्य

भिक्षु नानचन्द्र

जैन-हितेच्छु

क्लेश से गोला का जल भी सूख जाता है यह कहावत तद्दन मिथ्या नहीं है। जैन समाज का एक कोहिनूर अदृश्य हो गया है। इनके और इनके प्रतिपक्षी के दृष्टिबिन्दु में कहां फरक था तथा कौन कितने दरजे पर्यन्त दोषी था, यह चर्चा मैं बिलकुल पसंद नहीं करता.......आज जब पूज्य महाराज हैयात नहीं है तब इतना ही अवश्य कहूंगा कि दूसरे श्रीलालजी पचास वर्ष में भी न होंगे। इसमें और दूसरे साधुओं की पार्टी जमाने में मुख्यतः अग्रेसर ही दोषी थे।

अब तो पूज्यश्री विदा हो गये है और सम्प या द्वेष देख नहीं सकते हैं। अब चारित्र, गौरव और महत्ता थोड़े ही काल में अदृश्य हो जायेगी और इसका पाप सुलह के फरिश्तों के सिर ही पड़ेगा। श्रीलालजी महाराज के स्मारक बतौर एक वड़ा फंड कायम कर 'जैन गुरुकुल' या ऐसी एक कोई संस्था खोलना जिसका सम्मेलन बीकानेर में इस अंक के निकलने के पहिले ही हो गया होगा। मैं चाहता हूं कि इन पवित्र पुरुष का नाम किसी भी संस्था या फंड के साथ न जोड़ा जाय। समाज की वर्तमान स्थिति देखते कोई संस्था कैसे चलेगी यह अन्दाज लगाना कठिन नहीं और जहां हजार तकरारें होती ही रहेंगी, ऐसी संस्था के साथ इन शांत पवित्र पुरुष का नाम जोड़ने में भक्ति की अपेक्षा अविनय होना ही अधिक संभव है। चारित्र के नमूनेदार दो महात्मा काठियावाड़ में जन्मे हुए श्री गुलावचन्द्रजी और राजपुताने में जन्में हुए श्री लालजी दोनों अदृश्य हो गए हैं यों दूसरे ही बहुत से मुनि शुद्ध चारित्री हैं, व्याकरण, न्याय के ज्ञाता भी है, परन्तु गुलाव और श्रीलाल ये दो पुष्प अनोखे ही थे। एक में सत्य के लिए क्रोध (नोवल इन्डीगनेशन) और दूसरे में आत्मगौरव में से स्वाभाविक उत्पन्न हुआ गूंगा मान दृष्टिगत होता था। परन्तु ये तो मूल्य वढ़ाने वाले तत्व थे। अप्रशस्त क्रोध और अप्रशस्त मान से ये विलकुल भिन्न वस्तुएं थी। क्षत्रिय में और संघ के नायक में प्रशस्त क्रोध और प्रशस्त मान आवश्यक है और यह तो उनकी उज्ज्वलता का सबूत है।

इस अवसर पर एक आध्यात्मिक सत्य (मिस्टीसज्म) का कारण स्फुरित हो जाता है। चारित्र और बुद्धि के संघर्षण का यह समय है। व्याकरण, न्याय, तर्क के अभ्यास का शौक राजपूताने की ओर के श्रावकों एवं साधुओं की प्रकृति में न था। सिर्फ वहां निर्दोष चारित्र का शौक था। बुद्धि की लीलाएं चारों ओर पुजाने लगी और इनमें से कितने ही साधु भी धीरे-धीरे बुद्धि की ओर झुकने लगे। पहले तो सब को यह अच्छा लगा। फिर चारित्र और बुद्धि वैभव में परस्पर युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह युद्ध लम्बे समय तक टिकना चाहिये। दोनों एक-दूसरे की तपत खा-खा कर अन्त में चारित्र बुद्धि में और बुद्धि चारित्र में समा जायेगी। अर्थात् बुद्धि और चारित्र से परे ऐसे 'आध्यात्मिक भान' में दाखिल हो जायेंगे। हृदय और बुद्धि दोनों एक व्यक्ति के मालिक के समान तो भयंकर हैं परन्तु व्यक्ति के साधन-दास के समान उपयोगी है। दयालु और विद्वान दुःखी है। परन्तु योगी कि जो हृदय और बुद्धि के राज्य में होकर उस सीमा को पार कर गया है वह एक सुखी महाराजा है कि जिसके दोनों तरफ हृदय और बुद्धि हाथ जोड़ हुक्म की आज्ञा मांगती रहती है। इस स्थिति तक पहुंचने के लिये हृदय को बलवान तरंगें और बुद्धि की उद्धताई सहन करनी ही पड़ेगी।

बा. मो. शाह

जैन पथ-प्रदर्शक, आगरा

भीषण वज्रपात

जिस पै सब को दिमाग था हा! न रहा।

समाज का एक चिराग था हा! न रहा।।

आज चारों ओर से इस जैन धर्म पर आपत्ति की घनघोर घटायें घिरी देखकर किस जैन धर्म के प्रेमी को दुःख न होता होगा। जिस जैन धर्म के मुख्योपदेश 'अहिंसा परमो धर्मः' के कारण एक दिन सारे नभोमंडल में उसकी तूती बोलती थी, सर्वत्र उसी का प्रचार था, आज वहीं धर्म—हा! शोक है कि उसी के अनुयायी उसका अनुकरण न करके उसको अधोगति में पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं।

धर्म को हीनदशा से बचाने अर्थात् बिना बोझ की खुश्की में डूबने वाली नौका को ऊपर उठाने के लिये, उसे पार करने के लिये ही साधु महात्माओं ने अहनिश प्रयत्न किया, किन्तु खेद है कि 'अहिंसा परमो धर्मः' का प्रचारक जैन धर्म आज अपने साधुओं से भी वंचित होता जाता है। हा! जब हम जैन धर्म के स्तम्भ, आचार्य-प्रवर, विद्वानमंडली के रत्न, क्षमा के भूषण, दया के सागर, शांति के उपासक, धर्मप्रेमी, निर्भीक, स्पष्टवादी, रात्रिन्दिवा जैन धर्म का प्रचार करने वाले परमपद प्राप्त पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के आषाढ़ शुक्ला 3 शनिवार सं. 1977 जयतारण शहर राजपूताना में स्वर्गारोहण का समाचार सुनते है तब कलेजे के टुकड़े-टुकड़े हो जाते है।

आषाढ़ सुदी 3 शनिवार जैन धर्म के इतिहास में काले अक्षरों में लिखा जायेगा। जिस बात की कुछ सम्भावना न थी, वही आँखों के आगे घटित हो गई। जिस घोर आपत्ति की आशंका मात्र से मन अधीर हो उठता है वह अंत में इस दुखिया जैन समाज की आंखों के सामने आ ही गई। अनेक आशाओं पर पानी फेर कर तमाम स्थानकवासी ही नहीं लेकिन अनेकों जीवों को अथाह शोकसागर में निमग्नकर उस दिन निष्ठुर काल ने स्थानकवासी जैन-वाटिका में वज्रपात करके जिस प्रस्फुटित और दिगन्त तक सौरभ विकीर्ण करने वाले सुमन को उसकी गौरवशालिनी लता की गोद

में से उठा लिया। देखते-देखते बिना किसी के दिल में पहिले से इस बात का ख्याल भी आये हु
और बिना किसी महान कष्ट के 51 वर्ष तक औदारिक शरीर की झोपड़ी में रहकर अपने सुकृ
मय जीवन में महाशुभकर्म वर्गणाओं का बंधकर तेजस और कार्मण शरीर को लिये हुए कि
वैक्रिय शुभ शरीर में दीर्घकाल के लिए स्थायी हो गए।

एक तो यों ही जैन धर्म पर आपत्ति की घनघोर घटाएं छा रही हैं। लगभग एक माह
हुआ होगा कि अभी पंजाब प्रान्त के लाहौर नगर में श्रीमान् अनेक गुणों के धारक जैन-मुनि
शादीरामजी और दूसरे जैन-नवयुवक पंडित मुनि श्री कालूरामजी महाराज का जो सियालकोट
स्वर्गवास हुआ उसको तो हम भूल भी न पाये थे, कि इतने ही में जैन धर्म के प्रचारक कार्यक
और उसके माननीय स्तम्भ का दुःखदायी एकाएक समाचार सुनते हैं तब हमें

'फ़लक तूने इतना हँसाया न था।

कि जिसके बदले यों रूलाने लगा।।'

वाली लोकोक्ति याद आती है। हा! जब हम मुनिवर श्री श्रीलालजी महाराज के मिष्टभाष
की ओर ध्यान देते हैं और विचार करते हैं कि जिनका मिष्टभाषण जैन-धर्म के केवल स्थानकवासि
ही सुनकर प्रसन्न नहीं होते थे, परन्तु जिस मिष्टभाषण को सुनकर सब ही मधुरभाषण करने क
प्रतिज्ञा करते थे, हा! आज वे ही पूज्यवर श्रीलालजी जिनका नाम सोने में सुगन्ध की कहाव
चारितार्थ करता था नहीं है। यदि शेष है तो वह ही है कि जो उन्होंने जैन-धर्म की रक्षा, सेवा औ
अभिवृद्धि के लिए अपने प्यारे जीवन को तुच्छ वस्तु की तरह उत्सर्ग करने में समर्थ किया। स्वदेश
जाति और समाज की उन्नति एवं योगक्षेम के लिये जो भारी से भारी विपत्ति झेलने और जीवन
सम्पूर्ण सुखों को अनायास ही बलिदान करने को तैयार हुए। मृत्युशय्या पर बेबसी में पड़े हुए भी
प्राणप्रिय धर्म की हितकामना के उच्च विचार जिनके मस्तिष्क में घूमते रहे, जो दीन दुखियों के
अकारण बंधु थे, जिनके पतन पर एक ओर शोक की कालनिशा, दुःख की तरंगें तथा हृदय
विदारक हाहाकार ध्वनि और दूसरी तरफ समस्त नर-नारी, बूढ़े-बड़े और सर्व साधारण के मुंह से
यशः सौरभ का पटहनाद चारों ओर गूंज रहा है, उनका देह और प्राण समयरूपी गह्वर में चिरकाल
के लिए छुप जाने पर भी वे चिरजीवी हैं, उनकी मृत्यु किसी प्रकार भी हो नहीं सकती। यमराज का
शासन दण्ड उनकी विमल कीर्ति की अभेद्य चट्टान से टकराकर कुंठित हो जाता है-टुकड़े-टुकड़े
होकर गिर जाता है। मनुष्य चक्षु से अगोचर रहने पर भी उनकी पूजनीय आत्मा विचरण बराबर
करती रहती है। मरने के बाद भी उनका पवित्र और आदर्श जीवन उस पर मनन करने वालों के
जीवन को पवित्र और उच्च करने का महान उपकार करता रहता है।

आज शोकाकुल और निराधार समूह के मुंह से ऐसे वाक्य जैसे अब क्या करें, कुछ सूझता
नहीं, ऐसे ही वाक्य निकल रहे हैं लेकिन यह कब तक के हैं पाठकगण! ये तभी तक के हैं जब
तक हम और आप अपनी विषयरूपी कषायों को छोड़े हुए हैं क्योंकि यह अनादि काल से नियम
चला आया है कि प्रायः ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों-त्यों जीव अपने विषयरूपी कषायों में
फंसकर कितना ही प्रियतम व्यक्ति क्यों न हो उसे समय के साथ संसारी लोग भूलते चले जाते हैं।
संसार के विषय ही ऐसे हैं जिनके संसर्ग में रहते हुए विचारों की स्थिरता एकरस नहीं रहती।
अन्ततोगत्वा भूलना ही पड़ता है। शोक से शांति पाते जाते हैं। इसी प्रकार थोड़े समय के बाद आप

भी पूज्यश्री की याद तक भी भूल जाओगे। थोड़ी देर के लिए यह हम मान भी लें, कि जिन्होंने पूज्यश्री को देखा है, जिनको परिचय है वे कदाचित् न भी भूलें तो भी उनकी भावी संतान को तो नाम भी सुनना एक तरह से कठिन हो जायेगा ऐसी अवस्था में हम और आपका कर्त्तव्य है कि हम स्वर्गीय श्री श्री 1008 श्री पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का सच्चा स्मारक बनाने को हर प्रान्त, देश, शहर और गांव में 'श्रीलालजी फण्ड' की स्थापना करके स्मारक के लिए चंदा करें।

जैन-धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो कृतघ्नता के दोष से बचा हुआ है इसलिये आईये, भ्रातृगण! हम अपने माननीय, पूज्यनीय जैन-धर्म के अनन्य भक्त, निःस्वार्थ-प्रेमी, पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज के स्मारक रूप में कोई संस्था बनाकर अपने कर्तव्य का पालन करें। यों तो जैन समाज में आजकल छोटी-मोटी कितनी ही संस्थायें हैं लेकिन हमारी राय में इस पवित्र आत्मा की एक ऐसी आदर्श संस्था होनी चाहिये जैसे वे आदर्श पूज्य, मुनि, आचार्य प्रभावशाली और जैन-धर्म के स्तम्भ थे।

आपका जन्म सं. 1926 में ग्राम टोंक (राजपूताना) में हुआ था। आपके पिताश्री का नाम चुन्नीलालजी ओसवाल था। वे बड़े ही धर्मात्मा थे। आपने सं. 1945 माघ सुदी 5 को दीक्षा ली थी। पश्चात सं. 1957 में आपको पूज्यपदवी की प्राप्ति हुई। तब से आप अहर्निश धर्म चर्चा में ही अपना समय बिताने लगे व सदा अपने जीवन को धार्मिक जीवन वनाने में ही लगे रहते थे। ऐसे महात्मा के असमय में उठ जाने से जैन धर्म को बड़ी हानि पहुंची है तथा शीघ्र ही इसकी पूर्ति होना भी असंभव है। इस समय में उनके शोक-प्रकाश में सभी जगह सभायें हो रही है। इसी वैशाख महीने में हमने आपकी अजमेर में खूव सेवा की तव आपकी बातों से मालूम हुआ कि जैन पथ प्रदर्शक पर आपकी विशेष कृपा थी। आप इस पत्र को जैन जाति को उठाने वाला समझते थे। इनके शोक में प्रदर्शक का कार्यालय बराबर तीन दिन तक वंद रहा। कार्यालय ने इस शोक संवाद को हर एक के कानों तक पहुंचाया। हमने अपने भाइयों से आशा की थी कि ज्योंही वे इस शोक समाचार को सुनेंगे अपने-अपने वहां शोक सभाएं करेंगे तथा एक वड़ी भारी सभा संगठित करके वे 'श्रीलाल जैन फण्ड' की स्थापना करेंगे।'

मुम्वई समाचार में से

(लेखक–श्रीयुत् चुन्नीलाल नागजी वोरा, राजकोट) 'साम्प्रत समय में अशांति, अज्ञान और जीवन कलह का तीक्ष्ण साम्राज्य जगत में सव तरफ फैला हुआ है। ऐसे समय में पूज्य महाराज श्री 'रण मां एक वेट समान' थे और संसार के विविध तापों से तप्त जीवों को सिर्फ यह एक ही दिल की शांति और विश्वास मिलने का पवित्र स्थान था वह भी जैन कौम के हीन भाग्य से नष्ट हो गया और जैन धर्म तथा कौम को वड़ा भारी धक्का लगा तथा उनकी यह कमी बहुत समय तक पूर्ण होना कठिन है।

हिन्द के भिन्न-भिन्न भाग–पंजाब, राजपूताना, मारवाड़, मेवाड़ मालवा, कच्छ काठियावाड़, गुजरात, दक्षिण आदि के निवासी हजारों और लाखों जैनी पूज्य महाराज श्री पर अत्यन्त पूज्यभाव रखते थे और तरणतारण रूप जहाज के समान वीतरागी साधु के नमूने के तुल्य समझते थे। चौथे आरे की प्रसादी के समान श्री महावीर स्वामी विचरते थे। उस खुदाई समय के प्रसाद स्वरूप में पूज्य आचार्य श्री की गिनती होने से उनके शांतिमय मुखमंडल के दर्शनार्थ एवं महाप्रभावशाली दिव्यवाणी और जगत् में सर्वत्र सुख और शांति फैलाने वाले पवित्र सद्बोधामृत के पान करने के लिये प्रतिवर्ष चातुर्मास में हिन्द के तमाम भागों में से हजारों जैन भाई एकत्रित हो इस दुःखद काल

में दिव्य सुख की झांकी का लाभ प्राप्त कर अपने को कृतार्थ समझते थे। और दुःख तथा वि
भार को कम कर सकते थे। यों पूज्यश्री के चातुर्मास वाला स्थल शांति और आनन्द ही आनन्
जयध्वनि से गूंज उठता था।

पूज्य श्रीं की वाणी का इतना अधिक प्रबल और हृदयंगम प्रभाव था कि स्व
अन्यधर्मी हजारों लोग सब जगह उनके व्याख्यान का लाभ लेने को एकत्रित होते थे और
व्याख्यान जब तक होता रहता था तब तक इस दुःखमय संसार का भान ही भूल जाते और
दिव्यभूमि में बैठे हों ऐसी सबके मन पर परम सुख और शांति की प्रतिच्छाया छाई रहती थी
एकचित्त से उनका अलौकिक उपदेश श्रवण करने में समय का भान भी भूल जाते थे।

पूज्यश्री के दो मुख्य गुण, कि जिन गुणों द्वारा जैन-साधु या किसी भी पंथ या धर्म का
साधु अग्रेसर गिना जाता है ये थे, चैतन्य की स्वतंत्रता का सम्पूर्ण ज्ञान और इस स्वतंत्रता के प्राप्त
एवं विकसित होने के तदात्मक उपाय ये दोनों अलभ्य महान गुण आचार्यश्री के समागम वाले श्री
मार्ग के ज्ञाता जो-जो व्यक्ति हैं सबको मालूम है। जैन-साधु आत्मा में स्वगुण पैदा होने के लिए
ग्रहण करते हैं और वे इस महान विकट कार्य को परिपूर्ण करने के लिए सतत् परिश्रम करते हैं। क
कि आर्यमान्यता के अनुसार भी प्रत्येक जीवात्मा षट् रिपुओं द्वारा अनादि काल से बंधा है और
साथ उसका घनिष्ट संबंध है तात्पर्य यह कि, स्वसत्ता को भूला हुआ जीवात्मा पुनः वही सत्ता प्राप्त क
के लिए मार्ग बदलता है और नये मार्ग पर चलने से पूर्वकाल के दूसरे अभ्यास के कारण अ
व्याघात-प्रतिघात उत्पन्न होते हैं। उन्हें हटाने के लिए सतत् उद्योग की आवश्यकता प्रधानता से र
है। यह उद्योग और यह विचार पूज्य आचार्यश्री में मुख्यता और अनोखी रीति से भरा हुआ दृष्टि
होता था। आधुनिक जैन और कई एक जैन-साधु लौकिक और लोकोत्तर धर्म की भिन्नता बिना स
साधु और श्रावकों के आचार, व्यवहार और शिक्षा आदि कर्मों में आधुनिक समयानुसार हेरफेर क
की हिमायत करते हैं। उन्हें पूज्यश्री ने एक दृष्टांत रूप होकर विश्वास दिलाया कि आत्मा तो निज
की प्राप्ति में पूर्व समय में जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी, आज भी उन्हीं की आवश्यकता है
भविष्य में भी उन्हीं की रहेगी जिन्हें अपनी आत्मा का भान करने की तीव्र जिज्ञासा है और जि
इसीलिये संयम ग्रहण किया है ऐसे महानुभाव और ज्ञानी पुरुष आज भी श्री वीर प्रभु की आज्ञानु
राग द्वेष से विरक्त हो एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवमात्र की सत्ता एक-सी समझ समस्त जीवों
समभाव रख स्वकार्य में तत्पर रहते हैं और धर्मान्ध न बन जैन और जैनेतर प्रत्येक जीव कर्मों से ह
हों ऐसा सोचकर उपदेश देवे और अपने चारित्र को समुज्वल रख लोगों और जगत् पर महान उप
करने के सिवाय स्वाआत्मा के कल्याण करने में भी सम्पूर्ण आराधक होते हैं ऐसे ही उपकारी
पूज्यश्री में प्रधानता से थे। यही कारण है कि पूज्यश्री जैन और जैनेतर वर्ग में अति माननीय
पूज्यनीय हो गये थे।

'मा हणो, किसी जीव को मन, वचन और कर्म से दुःख मत दो, यह पूज्यश्री
अतिप्रिय और मुख्य उपदेश था।' किसी जीव को तनिक भी दुःख होता देख या सुन वे मन में
दुःखी होते थे और कभी-कभी उन्हें उनका वह दुख सहन भी न हो सकता था।

सं. 1967 के साल में पूज्यश्री काठियावाड़ में विचरते थे। इस समय वर्षा न होने से
1967 में भयंकर दुष्काल पड़ा। दया और क्षमा की मूर्ति के समान आचार्य श्री ने जब देखा कि

हजारों बिचारे प्राणी सिर्फ घास के बिना मरण की शरण में जा रहे हैं तब उन्हें अत्यन्त दुःख पैदा हुआ। परिणाम यह हुआ कि दुष्काल पीड़ित दुखी जानवरों की रक्षा से संचित लाभ और पुण्य पर ऐसा सचोट उपदेश शास्त्राधार से दिया कि उसके प्रभाव से श्रोतावर्ग में दया की उत्कृष्ट भावना उत्पन्न हुई और राजकोट जैसे छोटे शहर में एक ही दिन तीस हजार रुपयों का फंड इकट्ठा हो गया कि जिससे हजारों जानवरों को अभयदान मिला।

इस समय यह बात जानने योग्य है कि सं. 1968 में काठियावाड़ के बहुत से हिस्सों में पूज्य महाराज श्री के उपदेश के प्रभाव से जानवरों के रक्षार्थ केटल केम्प (Cattle Camp) खुले थे और इस तरफ लोगों का अधिक ख्याल रहा, पूज्य आचार्यश्री ने इस तरह जीव रक्षा का जो वीज बोया उसका विशेष फल सं. 1968 के साल के पश्चात् के पड़े हुए दुष्कालों में काठियावाड़ के छोटे-छोटे ग्रामों में भी जानवरों की रक्षा के लिये किये हुए प्रयत्न सबके दृष्टिगत हुए ही हैं।

यों काठियावाड़ की भूमि को पूज्य श्री के मंगलमय पद से पवित्र होने का ऐसा अलौकिक स्मरण चिह्न प्राप्त हुआ है। एक प्रभावशाली व्यक्ति के उपदेश का यह कुछ कम प्रभाव नही कहा जा सकता।

राजपूताना-मालवा इत्यादि में भी अनेक स्थानों पर गोरक्षा के लिए संस्थाएं और ज्ञानशालाएं मुख्यतः पूज्यश्री के सद्बोध से ही प्रारंभ हुई है। इसी तरह छोटी सादड़ी वाले सद्गत श्रीमान् सेठ नाथूलालजी गोदावत ने रुपया सवा लाख की सखावत उदारता प्रकट कर एक जैनाश्रम खुलाया है वह भी पूज्य श्री के प्रभाव का ही फल है।

पूज्य श्री चारित्र के एक उमदा से उमदा नमूने थे। उनकी शांतिमय मुखमुद्रा, दयामय हृदय, ज्ञानमय अलौकिक वाणी और सत्यकथन के प्रभाव से अन्यधर्मी साक्षर लोग भी उन्हें पूजनीय समझते थे। राजकोट के चातुर्मास में श्रीयुत न्हानालाल दलपतराम कवीश्वर और सद्गत अमृतलाल पढ़ियार पूज्य श्री से पक्के परिचित थे और जव-जव इन दोनों आक्षरों को प्रकट आम सभा में वोलने का समय मिलता तव-तव आचार्य श्री के उत्तम चारित्र, ज्ञान और उपदेश की मुक्तकंठ से तारीफ किये विना नहीं रह सकते थे। उनके कथन मुताविक 'श्रीलालजी महाराज चारित्र के एक उमदा नमूने हैं और इस कलिकाल में उनकी समानता करने वाला मिलना दुर्लभ है।'

स्थानकवासी जैन-समाज के ऐसे एक महान पूज्य आचार्य श्री के निर्वाण से जैन कौम का एक अनमोल रत्न खो गया है। आचार्यश्री इतने अधिक प्रभावशाली, चारित्रवान और ज्ञानी थे कि प्रायः तमाम जैन मुनिराज उन्हें आचार्य के समान मान देते थे। अभी वर्तमान में उनकी संप्रदाय में 72 साधु मुनिराज विचरते हैं। पूज्य श्री के निर्वाण के कारण युवराज मुनिश्री जवाहिरलालजी अव आचार्य पद पाये हैं वे भी सर्वथा सुयोग्य हैं। स्थानकवासी जैन-समाज के ऐसे एक महान् पूज्य आचार्यश्री के निर्वाण से जैन कौम का एक अनमोल रत्न खो गया है।

शोक! शोक!! शोक!!!

लेखक–श्रीमज्जैन धर्मोपदेष्टा माधवमुनिजी महाराज

श्रीयुत् श्रीलालजी का स्वर्गवास सुनते ही,
जैन प्रजा एक साथ शोकाकुल है गई।

ह्वै गई हमारी मति आर्तध्यान मांही मग्न,

लिख्यो नहीं जाय लेखनी हू दगा दै गई।।

शांति छबि जाकी देखि संघ में सु शांति होसी,

अहो! मनमोहनी वो मूरति कितै गई।

रे! रे! क्रूर कुटिल करालकाल! तेरी चाल,

हाय! हाय! हाय रे! कलेजा काट लै गई।1।

प्रबल प्रतापी पूज्य अतिशय अमितधारी,

घोर ब्रह्मचारी उपकारी शिर सेहरो।

हुकममुनीश वंशभूषण 'विभूति लाल'

सत्तपशम संयमादि सर्व-गुण गेहरो।।

विक्रमीय संवत् उन्नीसौ सित्तर,

आषाढ़ शुक्ल तृतीया को पिछान आयु छेहरो।

ओदारिक देह गद् गेह, हेय जान हाय,

जाय-जय जाने धार्यो दिव्य देहरो।।2।।

जान जगत बाल इन्द्रजाल को सौ ख्याल,

जाने बालापन ही से मदमोह को हटायो है।

सूरीश्वर हुकम वंश मांहि अवतंश समो,

जाको जश-बाद मत छहुंन में छायो है।।

दे दे उपदेश देश देशन में विशेष भांति,

भव्यों के हृदय में सुबोध बीज बायो है।

स्वर्गीय जीवों की सुबोध देन काज राज जाय,

जयतारण जगतारण स्वर्ग सिधायो है।।3।।

(स्वर्गीय श्री श्री 1008 श्री पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का गुणगान)

लेखक–पंडित लक्ष्मीनारायण चुतर्वेदी रामपुरावाला

श्रीलालजी महाराज पूज्य अवतारी।

हुए जैन जाति में सूर्य असिव्रत-धारी।।टेक।।

ये चुन्नीलालजी सेठ पिता के घर में।

थे हुए वहां उत्पन्न सु-टोंक नगर में।।

ज्ञान लगा हुए साधु थोड़ी उमर में।

पाठको! हुए एक ही, जो भारत भर में।।

जव जव होती है हानि, धर्म की भारी।

तव तव लेते हैं जन्म, धर्मध्वज-धारी।।

श्रीलालजी।।1।।

जहां जहां किया विहार गाम शहरों में।
इन दिया बहुत ही ज्ञान सु-नारी नरों में।।
था वर्षों का जो काम किया पहरों में।
शुभ दया धर्म का घोष किया व घरों में।।
बहु आश्रम शाला खुला किया हित भारी।
नित मिलता विद्या दान जहां शुभकारी।।
श्रीलालाजी।।2।।

जो सज्जन देते परहित तन मन धन है।
जीवन है साफल्य उन्हीं को धन है।।
वे करें सदा उपकार और ईश भजन है।
सब छोड़ प्रभुपद पद्म लगावें लग्न है।।
रहते हैं निश्चय जग में वही सुखारी।
नभ फैले कीर्ति, रहे नाम जग-जारी।।
श्रीलालजी।।3।।

हा! अधम काल ने उठा उन्हीं को लीना।
सब जैन जैनेतर जनको शोकित कीना।।
हैं पशु, पक्षी प्राणी भी सभी मलीना।
हा! हा! नृशंस हे काल! दारूण दुख दीना।
'चौबे लक्ष्मीनारायण' हुआ दुखारी।।
है करे विनय प्रभु शांति मिले शुभकारी।
श्रीलालाजी।।4।।

प्रेषित पत्र

लेखक-श्री पोपटलालजी केवलचंद शाह

परमपूज्य गच्छाधिपति महामुनि श्री श्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज साहिब के स्वर्गवास के समाचार शोकजनक हृदय से सुने। जैन संसार व्यवहार की अपेक्षा से जैन-समाज में इनके स्वर्गवास से भारी जिसकी पूर्ति न हो सके-ऐसी त्रुटि पैदा हो गई यह बहुत बुरा हुआ। जैन साधु-समाज की अपेक्षा से भी उनकी बड़ी भारी कमी हुई जिसकी अभी जल्दी पूर्ति नहीं हो सकती।

साधु समाज के तो ये नेता, शास्त्रसिद्धान्त के पारगामी, वीतराग की आज्ञा का सब साधुओं से पालन कराने वाले, पूर्ण प्रेमी, शासन की रक्षा करने में अडिग, साधु-मंडल में तनिक भी अपवित्रता दाखिल न हो जाये ऐसा प्रत्येक पल-पल पर देखने वाले, पवित्रता के पालक और समस्त दिन स्वाध्याय में लीन रहने वाले एक महात्मा थे। इनकी कमी तो साधु-समाज को पग-पग पर प्रकट होगी।

जैन-समाज में समय को देख उनके जैसा असरकारक, सचोट, शास्त्र, सिद्धान्त त नियमबद्ध ज्वलन्त उपदेश देने वाले महापुरुष महात्मा विरले ही होंगे और इसलिये जैन समाज संसार व्यवहार को धर्म की दृष्टि से सुधारने को तत्पर उन जैसे संत महंत की जैन समाज को ब भारी क्षति हुई है। मैंने कई साधु-साध्वियों के दर्शन एवं सत्संग का लाभ लिया है परन्तु ऐसे एक संत महंत मैंने अपनी तमाम उम्र में भी न देखे कि जिनका प्रताप, जिनकी वाणी, जिनकी शास रक्षा, जिनका उपदेश, जिनका तप, जिनका आतंक, जिनका उद्योत, जिनका उत्साह ये सब ए साथ, दूसरों में, भाग्य से ही होंगे। बेशक, कई साधु-साध्वी जो उत्तम पूज्य है, वंदनीय परोपकारी है परन्तु मुझे पक्षपाती कहो या अनन्य भक्त कहो, जो कहना हो सो कहो, परन्तु मे और मैं जिन जैनों को या जैनेतरों को प्रामाणिक और परीक्षक समझता हूँ उनका हृदय तो उन्हें स साधुओं में श्रेष्ठ समझता था।

राजकोट में उन पर जैन और जैनेतर सबका ऐसा उत्तम भाव रहा कि उनके स्वर्गवास उन पर प्रेम प्रकट करने के लिए सिर्फ जैनों ही की नहीं, परन्तु एक आम सभा बुलाकर खेद प्रक किया और हिन्दू, मुसलमान, व्यापारियों ने इनेक मान में व्यापार बन्द रख पर्व पाल एक दिन अपने अपने धर्मध्यान में बिताया।

परमपूज्य सद्‌गत आचार्य महाराज श्रीलालजी महाराज साहिब समभावशील औ गुणानुरागी थे, तथा सब कतों में जो सच्चा हो उस सत्य के पक्षपाती थे। जैन-धर्म में कथित जीवदया को पुष्ट करने वाली कई बातें, कविताएं और कहावतें चाहे जिस धर्म की हों उन्हें याद रख व्याख्यान में कहते और सब श्रोता-समुदाय को आनन्दित करते थे।

एक कवि की भाषा में कहूं तो अहिंसा इनके जीवन का मुख्य मंत्र था और यह उनके जीवन में ताने, बाने की तरह फैल गया था, सत्य उनका मुद्रालेख था, तप उनका कवच था, ब्रह्मचर्य उनक सर्वस्व था, सहिष्णुता उनकी त्वचा थी, उत्साह जिनका ध्वज था, अखूट क्षमा-बल जिनके हृदय पात्र या कमंडल में भरा था, सनातन योगी कुल का यह योग मालिक था, राग द्वेष के झंझानल से यह अलग था, मेरे-तेरे के ममत्व-भाव से परे था, सब जीव के कल्याण का यह इच्छुक था, इतना ही नहीं, परन्तु सबके कल्याण के उपदेश में वह सदा मशगूल था ऐसा जैन भारत का एक वर्तमान महान धर्म गुरु धर्माचार्य शासन का शृंगार, परोपकारी, समर्थ वक्ता, समर्थ क्रियापात्र, कर्त्तव्यनिष्ठ गच्छाधिपति 51 वर्ष की अपरिपक्ववय में कालधर्म वश हमने एक अनुपम अमूल्य आचार्य खोया है।

राजकोट और काठियावाड़ में उन्होंने जगह-जगह जीव दया की जय घोषणा उच्च स्तर से असरकारक रीति से की थी। अड़सठिये दुष्काल की अपेक्षा छप्पनिया दुष्काल अधिक विषम था, तो भी छप्पनिया में जीव रक्षा या गोरक्षा के लिए जो हुआ था उससे अनेक गुना कार्य अड़सठिया में हुआ। अड़सठिया दुष्काल में किये गये दया के कार्य पशु-रक्षा, गो-रक्षा, मनुष्य-रक्षा इत्यादि कैसी सुन्दरता से हुए थे, एवं धर्म श्रद्धालु परोपकारी पुरुषों ने इस कार्य को पार लगाने में कैसा सरस उत्साह दिखाया था तथा राजकोट ने इस विषय पर समस्त काठियावाड़ को जो नमूना दिखाया था वह सव सोचते-सोचते इन स्वर्गवासी—इन देवगति पाये हुए महात्मा का उपकार तनिक भी नहीं भूल सकते और इस काठियावाड़ में जहां-जहां पूज्यश्री के स्वर्गवास के समाचार मिलेंगे वहां-वहां उनके परिचितों को पारावार शोक होगा।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम धर्म का अखंड पालन, हृदय की विशालता इन सबका जब हृदय हिसाब करता है तब उनकी जैन-समाज में कितनी बड़ी-भारी कमी हुई है समझा जा सकता है। हृदय में आंसू निकल पड़ते हैं और साश्रुलोचन से कलम अधिक कम्पित होती है, गद्गद कंठ से आज इतना ही लिखता हूं।

शोकोद्गार

(राग सोरठा)

अमृत भीनी वाण, सांभलता सुधर्या घणा,
वण मूलुं व्याख्यान, सुणशुं क्यां श्रीलालजी।।1।।
प्राणी-रक्षण काम, अमर पड़ो वजड़ावता,
करी शके नवराज, करनारा श्रीलालजी।।2।।
अड़सठ साल कराल, छतां जणायो नहिं जरा,
थयो न बांको बाल, प्रताप ए श्रीलालजी।।3।।
आप गुणोनी खाण, अल्प प्राय शुं कही शके,
अमने मोटी हाण, जगमां विण श्रीलालजी।।4।।
संयमना परिणाम, आप स्वर्गमां शोभता,
मरजीवा तम नाम, विसरो कयम श्रीलालजी।।5।।
सदैव ल्यो संभाल, अवध ज्ञान उपयोग थी,
गणी भूलणां बाल, अरज थ एज श्रीलालजी।।6।।
कइक कसाई खास, लाखो जीव विदारता,
कर्या दयाना दास सांभरशो श्रीलालजी।।7।।
राजकोट पर प्यार, पूरो राख्यो प्रथम थी,
गुण रसना भंडार, सत्यगुरु श्रीलालजी।।8।।

श्री प्राणजीवन मोरारजी शाह-राजकोट

अध्याय 52 : सच्चा-स्मारक

महियर नरेश को धन्यवाद

संख्याबंध प्राणियों को अभयदान

श्रेष्ठ समुदाय और शुद्ध चारित्र यही पूज्यश्री का सच्चा स्मारक है। इस शुद्ध-चारित्र व निभाने की शक्ति उत्पन्न करना यह संत मुनिराजों का और चारित्र पालने की सरलता का रक्ष करना यह श्रावकों का कर्त्तव्य है। उनके उपदेश को याद रख कर उसी के अनुरूप व्यवहार कर यह उनका उत्तमोत्तम स्मारक है।

जीव-दया को प्रेरणा प्रदान करने में उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग समर्पित कि था। उनके स्मरणार्थ उनके स्वर्गवास के तुरंत पश्चात् जीव दया का एक महान कार्य हुआ और क मूक प्राणियों को प्राणदान मिला। इस सम्बन्ध में 'जीव-दया' मासिक का निम्नांकित लेख यहां दे हैं—

वैरिणोअपि हि मुच्यंते, प्राणान्ते तृणभक्षणात्।
तृणाहाराः सदैवते, हन्यन्ते पशवः कथम्।।1।।
हमारे देश के रक्षक सचमुच ये पशु हैं,
हमारे देश की दौलत सचमुच ये पशु हैं,
हमारा बल और बुद्धि सब कुछ ये पशु हैं,
हमारी उन्नति का सुदृढ़ पाया ये पशु हैं,

'All are murderers—the man who advise the killing of a creature, the man who kills, the man who plays the man who purchases, the man who sells, the man who cooks (the flesh) the man who distributes and the man who eats.'

Manu

पशु भारत का धन है, प्रभु की विभूति है और अपने लघु बांधव हैं। धर्मशास्त्र और आरोग्यशास्त्र की दृष्टि से पशुवध करना यह अत्यंत हानिकारक और महा अनर्थकारी है। प्रत्येक धर्मप्रवर्तक ने पशुवध का—प्राणीमात्र की हिंसा का निषेध किया है। अहिंसा, दया यह मनुष्य का प्राकृतिक धर्म है हिन्दुओं के पांच यम, बौद्धों के पांच महाशील, जैनों के पांच महाव्रत इन सब में अहिंसा धर्म ही प्रधान पद पर आरूढ़ है।

पंचेतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्म चारिणाम्।
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुन वर्जनम्।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, त्याग और मैथुन वर्जन इन पांचों को प्रत्येक धर्म वालों ने पवित्र माने हैं इसके सिवाय—

'अहिंसा परमोधर्मः' 'माहिंस्यात् सर्वभूतानि'

'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति'

इत्यादि अनेक मनन योग्य वाक्य हिन्दू धर्मशास्त्रों में भी जगह-जगह पर दृष्टिगोचर होते हैं तो भी अफसोस की बात है, कि आर्यावर्त में ऐसा एक वर्ग प्रस्तुत है जो हिंसा के कृत्यों में ही धर्म मानता है –धर्म के लिए हिंसा करता है जो अत्यंत निंदनीय एवं भयंकर है। काली, महाकाली, दुर्गा, जगदम्बा, बहुचरा, शारदा आदि देवियों के उपासक अपनी अधिष्ठात्री देवी को पशुओं के रुधिर की प्यासी, महाविक्राल और क्रूर हृदय होने की कल्पना करते हैं और उसकी कृपा सम्पादन करने के लिये उसे भैंसे, बकरे इत्यादि निर्दोष पशुओं का बलिदान कर भेंट चढ़ाते हैं। यह प्रवृत्ति सिर्फ अज्ञानजन्य है। मांसलोलुप, स्वार्थान्ध लेभग्गू आचार्य, जिनके कि हृदय में दया का लेश मात्र अंश भी विद्यमान नहीं था। धर्म ग्रन्थों में कितनी ही कल्पित बातें घुसा दी और लोगों के ज्ञान-चक्षुओं पर अंधविश्वास की पट्टी बांधकर उन्हें उल्टे मार्ग पर लगा दिया। इस तरह अपनी दुष्ट वासनाओं को तृप्त करने के लिये तथा अपने पर पूज्यभाव कायम रखने के लिए उन्होंने धर्मशास्त्रों के विपरीत और साधारण ज्ञान से भी प्रतिकूल इस एकांत पापमय प्रवृत्ति को भी धर्म का कार्य ठहराया है। उनकी प्रपंच जाल में फंसे हुए भोले अज्ञानी लोग तनिक भी विचार नहीं करते कि इन कार्यों से देवी-देवता तुष्ट होंगे या रूष्ट होंगे? उनकी ही मान्यतानुसार देवी जगज्जननी है समस्त की अर्थात् प्राणीमात्र की वह माता है इस हिसाब से मनुष्य मात्र उसके ज्येष्ठ पुत्र है और पशु उसके कनिष्ठ पुत्र है। माताओं का प्रेम हमेशा छोटे बच्चों पर अधिक रहता है यह स्वाभाविक है। माता को प्रसन्न करने के लिए उसके ही छोटे-छोटे बच्चों के गले उसी के समक्ष छेद डालना यह कितना बेहूदा और मूर्खतापूर्ण क्रूर कर्म है? इससे जो माताएं प्रसन्न होती हों तो वे माताएं ही नहीं है। देवी-देवताओं को राजी करने के लिए बलिदान देना ही हो तो अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु को देना चाहिए। स्वार्थी उपासक इष्ट वस्तुओं का वियोग सहन नहीं कर सकते, इसलिए निरपराधी पशुओं पर दृष्टि डालते हैं। अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु उन्होंने यह प्रचारित कर रखा है कि देवी-देवता तो सिर्फ सुगंध के भूखे हैं। तुम में उनके प्रति कैसी भावनायें हैं वे तो मात्र उसका अंकन करते हैं। जो उनके समक्ष भोगरूपी में रखा जाता है वे तो उसे लेते ही नहीं हैं तुम जो प्रसाद उन्हें चढ़ाते हो वह उनकी अमी दृष्टि से पावन हो जाता है ऐसा समझकर उसे तुम वापिस ले लेते हो एवं उसे अमृत समझ प्रसाद मान कर उसका भोग करते हो। मूर्ख एवं लोलुप उपासकों एवं स्वार्थी पंडे पुजारियों ने धर्म को माध्यम बनाकर मांसाहार प्राप्त करने की यह सरल एवं निर्विघ्न युक्ति ढूंढ़ निकाली है और धर्म के नाम पर भोले भारत को ठगने की प्रक्रिया में लिप्त हैं।

जब तक सत न समझा जाये तब तक ही लोग ठगे जाते हैं गुरुदेव के अमृतमय उपदेश से सत्य का रहस्य समझ में आने के साथ ही लोग अपनी भूल से होने वाले अनर्थ को समझने लगे। देवी का साम्राज्य समस्त भूमंडल में व्याप्त है। विश्व के समस्त देशों की अपेक्षा भारत आर्थिक रूप से पिछड़ गया है। इसका कारण भी विचारणीय है। पशुओं के बलिदान से देव प्रसन्न होते हैं तो भारत की ऐसी दुर्दशा कभी न होती। प्लेग का प्रकोप, नाना प्रकार के रोगों का उपद्रव विभिन्न

प्रकार के प्राकृतिक उपद्रवों से मृत्यु का भय, दुष्काल पर दुष्काल, पराधीनता, दरिद्रता आदि दुःखों का वरदान, कोई आश्चर्य नहीं कि उपर्युक्त पापमय प्रवृत्तियों से कुपित हुए देवी-देवता ही बरसाते हो ? 'जैसे बोवे वैसे चुने' और 'करे वैसा भरे' अन्य को सुख देने से सुख और दुख देने से दुःख प्राप्त होता है यह त्रिकालदर्शी सनातन सत्य है। अन्य के अनिष्ट द्वारा अपना ईष्ट प्राप्त करने की आशा रखना, प्राकृतिक कानून के विरुद्ध है

'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो यह महावाक्य याद रखकर ही, सत्वगुण सम्पन्न पुरुषों को देवी-पूजा इत्यादि कार्य करने चाहिए। ध्यान रहे कि यह पूजा ऐसी नहीं होनी चाहिए कि जिसमें दूसरे निर्दोष प्राणियों का संहार किया जाये। कदाचित् कोई ऐसा कहे कि दुर्गा सप्तशती में 'पशु-पुष्पैस्च गंधेश्च' पशु, पुष्प और सुगंधित पदार्थों से देवी की पूजा करना कहा है तो उसका अर्थ क्या है ? तो उसका उत्तर यही है कि जिस तरह देवी की पुष्प पूजा पुष्पों को पूरे के पूरे चढ़ाकर की जाती है उसी तरह पशुओं से पूजा करनी हो तो पशुओं को माता के सामने लाकर प्रार्थना कर छोड़ देना चाहिए कि हे जगदम्बे ! आपके दर्शन से पवित्र हुआ यह बकरा भी निर्भय होकर विचरे अर्थात् कोई भी मांसाहारी उसका वध न करे, ऐसा संकल्प कर उस बकरे को छोड़ देना चाहिए जिससे पुण्य हो। सचमुच में पूजा की यही विधि है। यह पद्धति कई स्थानों पर प्रचलित है और बकरे के कान में कड़ी पहना कर उसे निर्भय 'अमरिया' किया जाता है। उपदेशकों को धर्मोपदेश द्वारा और राजाओं को राज्य सत्ता द्वारा इस सात्विक विधि का प्रचार करना चाहिए।

जमाना ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है त्यों-त्यों ऐसी घातक अधार्मिक मान्यताएँ भी कम होती जाती हैं। कितने ही दयालु और धर्मनिष्ट राजाओं ने अपने राज्य में इस तरह के पशुवध को देश की अवनति का और हैजा प्लेग इत्यादि महामारियों की उत्पत्ति का कारण समझ कर राज्यादेश प्रसारित कर उसे बंद कर दिया है, यह अत्यन्त संतोष की बात है।

अभी ही महियर राज्य के महामहिम नरेश ने जिस पुण्यमय प्रवृत्ति द्वारा प्रतिवर्ष हजारों प्राणियों का वध बंद कराने का प्रशंसनीय कार्य किया है उसे श्रवण कर दयालु मनुष्यों के हृदय आनंद से लहराये बिना नहीं रह सकते।

महियर यह बुन्देलखंड का एक देशी राज्य है। वहां अति प्राचीन समय से एक उच्च टेकरी पर शारदा-देवी का मंदिर स्थित है। इस राज्य की जनता में अधिकांशतः लोग इस देवी के उपासक हैं। यहां देवी को प्रसन्न करने के लिए, पुत्रादिक की प्राप्ति अथवा अन्य इच्छा की पूर्ति के लिये देवी को मेढ़ों-बकरों का बलिदान देने की कुप्रथा बहुत समय से प्रचलित थी। इसलिये यहां प्रतिवर्ष हजारों मेढ़ों-बकरों का बलिदान दिया जाता था। चैत्र माह में वहां बड़ा भारी मेला लगता है और अंधविश्वासी, अज्ञानी एवं मूर्ख लोग नारियल की तरह पशुओं को माताजी पर चढ़ाते हैं। यह निंदनीय प्रथा क्यों और किस तरह बंद की गई जिसका संक्षिप्त वृत्तांत वाचकों को आनंदित करेगा।

जैनाचार्य श्रीलालजी महाराज जिनके कि सदुपदेश से लाखों जीवों को अभयदान मिला था और कई राजा-महाराजाओं ने अपने राज्य में धर्म के नाम से होने वाली पशुहिंसा और शिकार इत्यादि बंद कराये थे, उनका स्वर्गवास गत आषाढ़ शुक्ला तृतीया को ग्राम जैतारण जिला-पाली (मारवाड़) में हो जाने के दुःखद समाचार इस लेखक (याने भाई दुर्लभजी त्रिभुवनजी) को ग्राम मोरवी में मिले। लेखक आचार्यश्री के प्रति पूज्यभाव और प्रशस्तराग होने के कारण इन समाचारों से

उसके हृदय को बड़ा भारी आघात पहुंचा, परन्तु धर्म क्रिया में प्रवृत्त हो संसार की असारता और देह की क्षणभंगुरता का विचार आते ही अंतरात्मा की ओर से ऐसी प्रेरणा हुई कि गुरु श्री के स्मारक के उपलक्ष में कुछ शुभ प्रवृत्ति करना उचित है। परन्तु क्या करना इसका निर्णय न हो सका। मन अनेक तर्क-वितर्क करता रहा। विचार ही विचार में समस्त रात बीत गई। दूसरे दिन वढवाण से मेरे मित्र श्रीयुत् भगवानदास नाराणजी बोरा की तरफ से एक पत्र मिला जिसका सारांश यह था कि :

'महियर स्टेट में प्रतिवर्ष देवी को भोग के लिए हजारों बकरों का वध होता है। उसे बन्द कराने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। यदि रुपये 15000/- वहां के हॉस्पिटल के भवन निर्माण हेतु देवी को अर्पण किये जायें तो यह वध जल्दी ही बंद हो सकता है।' इस पत्र ने मुझे (दुर्लभ त्रिभुवनजी जौहरी पुस्तक लेखक को) कर्तव्य-पथ सुझाया। सद्गत गुरुवर्य की अदृश्य प्रेरणा का ही यह फल हो ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास हो गया और इस कार्य को पार लगाने के लिए मैंने दृढ़ संकल्प किया।

महियर स्टेट के दीवान साहिब श्रीयुत् हीरालाल उर्फ साराभाई गणेशजी अंजारिया बी.ए. राजकोट के खानदान कुटुम्ब के एक बढनगरा नागर गृहस्थ हैं। उनके साथ पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया और रु. 15000/- के लिए बम्बई स्थानकवासी जैन संघ के अग्रेसर कच्छ-माँड़वी के निवासी सेठ मेघजी भाई थोभणभाई तथा उनके भाँणेज शांतिदास आसकरण जे.पी. से वचन लिया। पश्चात् हम बम्बई से (मैं और मेरे मित्र श्रीयुत् बोरा) महियर गये। वहां दीवान-साहब से भेंट-वार्त्ता कर हमें अत्यन्त आनंद प्राप्त हुआ और हमारी मनोकामनापूर्ण होगी ऐसा विश्वास हो गया। शारदा देवी के दर्शन करने की हमने इच्छा दर्शाई। दीवान साहब भी हमारे साथ आये। अनेक सीढ़ियाँ चढ़कर हम देवी के स्थान पर पहुंचे। प्रथम दिन ही करीब तीस-पैंतीस बकरे काटे गये थे जिससे वहां रक्त का कुंड भरा हुआ था। यह दृश्य हृदय को कम्पा देने वाला था। दीवान साहब के दयार्द्र अंतःकरण को भी इस क्रूर प्रथा से असह्य दुःख होता था। हम फिर नामदार महाराजा साहिब से मिले। उनका मिलनसार स्वभाव, विद्वत्ता, और धर्म पर श्रद्धा इन सबसे हमें अत्यन्त आनंद हुआ। हमने अत्यन्त नम्रता से उन्हें देवी-देवताओं को बलि देने के प्रयोजन से राज्य के प्रतिवर्ष हजारों निरपराध पशुओं के प्राण-हरण किये जाते हैं उसे बंद करने के निर्देश देने की प्रार्थना की और इसके बदले यह तुच्छ स्मारक के बतौर महियर के हॉस्पिटल के लिए एक भवन निर्मित करने के लिये रुपये 15000/- अपर्ण करने की प्रार्थना की। हमारी प्रार्थना को दयालु महाराज साहिब ने कितनी ही दलीलों के बाद स्वीकृति प्रदान की और हॉस्पिटल के भवन पर सेठ मेघजी भाई तथा शांतिदास के नाम का शिलालेख स्थापित करने की आज्ञा भी प्रदान की और आज्ञा पत्र निकाल कर समस्त राज्य के तमाम मंदिरों में हमेशा के लिए देवी-देवताओं को बलिदान स्वरूप किये जाने वाले पशुवध की बिलकुल मनाई कर दी। इस आज्ञा पत्र की नकलें भारतवर्ष के तमाम राज्यों में भेजी गई और प्रसिद्ध समाचार पत्रों में भी प्रकाशित की गई। नामदार महाराजा साहब ने इस महान पुण्यकार्य से अपनी कीर्ति अमर कर दी और कई भोले लोगों को घोर पाप के गर्त में गिरने से बचा लिया तथा अन्यान्य मनुष्यों को नर्क के अधिकारी होने से बचाकर अपने लिये स्वर्ग के द्वार खोल दिये हैं। उन्होंने अपनी विद्या और सत्ता का सदुपयोग कर अपना जीवन सार्थक किया है। भारतवर्ष के

अहिंसा धर्म के उपासकों के मन उन्होंने इस शुभ प्रवृत्ति से जीत लिये हैं। देश के विभिन्न भागों में से हजारों प्रशंसा के तार उनके पास पहुंचे हैं। वहां के दीवान साहब ने भी इस प्रवृत्ति के प्रेरक बन महान पुण्य अर्जित किया है।

सेठ मेघजी भाई तथा सेठ शांतिदास ने अपनी लक्ष्मी का सद्व्यय कर अलभ्य लाभ उठाया है। उन्हीं की उदारता इस महान पुण्य-कार्य का आधार बनी। यह उनके लिये बड़े श्रेय की बात है कि पन्द्रह-कोटि रुपये खर्च करने से भी जो लाभ प्राप्त नहीं हो सके वह लाभ उन्हें रु. 15000/- से प्राप्त हो गया। सात हजार बकरों को सिर्फ एक बार का अभयदान प्रदान करने में रु. 35000/-खर्च होते हैं जबकि रु. 15,000/- के दान में हमेशा के लिये प्रतिवर्ष होने वाले हजारों पशुओं का वध बंद हो गया यह लाभ कुछ कम नहीं है। इसके अलावा इन 15,000/- रुपयों से दवाखाने का भवन निर्मित किया जायेगा, जिससे हजारों दुःख दर्द-ग्रसित मानवों की आशीष भी उन पर बरसती रहेगी यह उसका दूसरा लाभ है। द्रव्य का शुभ से शुभ उपयोग इसी को कहते हैं।

सफाखाने की नींव का मुहूर्त तारीख 13-10-20 के रोज बुंदेलखण्ड के पॉलिटिकल-एजेन्ट के हाथ से हो गया और मकान बनना भी प्रारम्भ है। स्टेट की तरफ से अधिक रकम देकर बड़ा भवन बनाना निश्चित हुआ है। हॉस्पिटल का खर्च भी राज्य कोष से ही होगा।

अंत में हम चाहते हैं कि इस सद् प्रवृत्ति का सर्वत्र अनुकरण हो और पवित्र आर्यावर्त में से पशु वध बंद हो जाये तथा पुण्य भारत भूमि अपना पूर्व-सा गौरव पुनः प्राप्त करे।

इस अवसर की खुशी में श्री मोरवी हाई स्कूल के शास्त्रीजी श्रीयुत् पुरुषोत्तम कुबेरजी शुक्ल की ओर से निम्नांकित काव्य प्राप्त हुआ है –

शार्दूल विक्रीड़ितं वृतम

यत्साध्यं न भवेत् कदापि बहुलै निष्कव्ययैः कोटिभिः
वर्षाणामयुतेन नापि सुलंभ यतत्र वद्धश्रमेः।।
यस्मिन्वै विजयं न याति सतत संख्यातिगावाहिनी।
तत्कार्यं सुमहात्मनां करुणया स्वल्पश्रमात् सिध्यति।1।
राज्ये यन्महियार के बलीवधौ श्रीशारदाम्वाकृते।
प्राचीनः पशुतावधः कुविधिना यः क्रियामाणोऽभवत्।।
श्री श्रीलालजि सद्गुरोर्गुणनिधेः स्मृत्यर्थमेवाधुना।
रुद्धोदुर्लभ श्रोष्ठिनेश कृपया धर्म प्रभावो महान्।1।

गुजराती अनुवाद

शार्दूल विक्रीड़ित

कोटी म्होर सुवर्ण खर्च करतां, जे कार्य थातुं नथी।
जेनी वर्ष अयुत कष्ट श्रम थी, किंचित् सिद्धि नथी।।
सेनाओ अगणि युद्ध कर शे, तोये न आशा फल।
तेवुं महान सुकर्म साध्व सुलभ, साधु कृपा किंचित्।1।

जुवो महियर राज्य मां विलिविधि, श्री शारदा मातने।
थातो तो वध रे बहु पशुतणी, ते रोकव्यो सज्ञने।।
त्रिभुवन सुत दुर्लभे श्रमकरी, ते पाप रोकावियुं।
जैनाचार्य श्रीलालजी स्मरणमां तेसंत नामें थयुं।2।
इससे सम्बन्ध रखने वाले चित्र आगे दिये गये हैं।

अध्याय 53 :
बीकानेर में भारतवर्ष के जैन साधु-मार्गियों का सम्मेलन

श्री बीकानेर श्रावकों की ओर से स्मारक के विचार बाबत भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के अग्रगण्य नेताओं को आमंत्रित किया गया था। इस निमंत्रण पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों से करीब 200 सद्गृहस्थ बीकानेर पधारे थे जिनमें मुख्य-मुख्य ये थे—

श्रीमान् सेठ गाढ़मलजी लोढ़ा अजमेर, श्रीमान् सेठ वर्द्धभाणजी पीतलिया रतलाम, श्रीयुत दुर्लभजी त्रिभुवनदास जौहरी जैपुर, श्रीयुत सुगनचंदजी चोरड़िया जौहरी जयपुर, श्रीयुत जालमसिंह जी कोठारी बी. ए. जोधपुर, श्रीयुत माणकचंद जी मूथा जोधपुर, श्रीयुत जौहरी मोहनलाल रायचंद बम्बई, श्रीयुत जौहरी अमृतलाल रायचंद बम्बई, जौहरी माणकचंद जकशी बम्बई, जौहरी लक्ष्मीचंद जी जशकरण पालनपुर, जौहरी कालीदास गोदड़भाई पालनपुर, सेठ भगवानजी नारायणजी बोरा बढवाण शहर, लाला केशरीमलजी रिटायर्ड ज्युडीशियल सक्रेट्री उदयपुर, जौहरी केसुलालजी ताकड़िया उदयपुर, श्रीयुत नन्दलालजी मेहता उदयपुर, श्रीयुत सागरमल जी गिरधारीलाल जी बंगलोर, श्रीयुत शंभूमल जी गंगारामजी बंगलोर, श्रीयुत श्रीचंदजी अब्बाणी ब्यावर, श्रीयुत घीसूलालजी चोरड़िया ब्यावर, श्रीयुत अमरचंदजी घेवरचंदजी अजमेर, श्रीयुत मोतीलालजी कांसवा अजमेर, श्रीयुत कानमलजी गाढ़मलजी चोरड़िया अजमेर, श्रीयुत मिश्रीलालजी छाजेड़ जयपुर, श्रीयुत रतनलालजी दफ्तरी जयपुर, श्रीयुत गुमानमलजी ढढ्ढा जयपुर, जौहरी कल्याणमलजी छाजेड़ जयपुर, श्रीयुत शेषमलजी बालिया पाली इत्यादि-इत्यादि।

उपस्थित गृहस्थों तथा बीकानेर और भीनासर संघ की एक सभा ता. 2.8.20 से ता. 4.8.20 तक श्रीयुत भेरूदानजी गुलेच्छा के मकान में एकत्रित हुई। सभा प्रमुख का स्थान श्रीयुत दुर्लभजी त्रिभुवनदास जौहरी को दिया गया। प्रारंभ में आये हुए देशावरों से सहानुभूति दर्शक तार-पत्र आदि प्रमुख महाशय ने पढ़ कर सुनाये। पश्चात् 1008 श्री श्रीलालजी महाराज के अकस्मात वियोग से समाज को जो हानि पहुंची है उसके लिये हार्दिक खेद प्रकट किया गया।

उपस्थित सभासदों ने ऐसा विचार प्रकट किया कि श्रीमान् स्वर्गवासी पूज्य महाराज के उपदेशों की स्मृति संघ के भावी संतानों में आरोपित करने के लिये एक ऐसी संस्था कायम की जाये कि, जिससे उनके उपदेशामृत की यादगार चिरकाल तक स्थायी बनी रहे। इस पर से निम्नांकित प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किये गए।

प्रथम-प्रस्ताव

1. निश्चय हुआ कि श्री संघ की उन्नत्यर्थ एक गुरुकुल खोला जावे और उसका नाम 'श्री श्वे. साधुमार्गी जैन गुरुकुल' रक्खा जावे।

2. इस संस्था के लिये अनुमानतः रु. 5,00,000/- पांच लाख की आवश्यकता है जिसमें रु. 2,00,000/- (दो लाख) का चन्दा वसूल हो जाने पर कार्यारंभ किया जावे।

3. कम से कम रु. 21,000 का कोष प्रदान करने वाला इस संस्था का संरक्षक (पेट्रन) गिना जावेगा और संरक्षकों में से ही इस संस्था की प्रबन्धकारिणी सभा का सभापति चुना जावे।

4. रु. 11,000/- देने वाले गृहस्थ इस संस्था के सहायक गिने जावेंगे और उनमें से इस संस्था की प्रबन्धकारिणी सभा के उप सभापति तरीके या कोषाध्यक्ष (खजाञ्ची) तरीके चुने जावेंगे।

5. रु. 5000/- या ज्यादा और रु. 11,000/- से कम देने वाले व्यक्ति इस संस्था के शुभेच्छुक (सिम्पेथाइजर) गिने जायेंगे और उनमें से भी मंत्री आदि पदाधिकारी चुने जा सकेंगे।

6. रु. 2000/- या अधिक प्रदान करने वाले गृहस्थ इस संस्था के सभासद गिने जावेंगे और उनका चुनाव प्रवंधकारिणी सभा में हो सकेगा।

7. चंदा प्रदान करने वाले गृहस्थों के नाम शिलालेखों में गुरुकुल आश्रम के दरवाजे पर समय चंदे की तादाद के प्रकट किये जायेंगे।

8. प्रबंधकारिणी सभा अपनी इच्छानुसार पांच अन्य विद्वान गृहस्थों को सलाह लेने के लिये शरीक कर सकेगी और उनके मत गणना में आ सकेंगे और उन पर पर चंदे का कोई प्रतिबंध न होगा।

नोट– इस गुरुकुल का उद्देश्य समाज की भावी संतान को धर्मपरायण, नीतिमान, विनयवान, शीलवान व विद्वान बनाने का होगा।

द्वितीय-प्रस्ताव

'श्री बीकानेर संघ ने प्रकट किया कि यदि बीकानेर में शहर के बाहर गुरुकुल खोला जावे तो इस समय रु. 1,25,000/- की रकम यहां के संघ की ओर से लिखी जाती है और प्रयत्न चंदा बढ़ाने का जारी रहेगा, रुपये दो लाख इकट्ठे हो जाने पर कार्यारंभ किया जावेगा।

उक्त कार्य के लिए सभा की तरफ से श्री बीकानेर संघ को हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है कि जिन्होंने उत्साहपूर्वक इतनी बड़ी रकम प्रदान कर एक ऐसी संस्था की बुनियाद डालने का साहस किया कि जिसकी परम आवश्यकता थी।'

तृतीय-प्रस्ताव

'इस उपयोगी कार्य में सलाह देने के लिये बाहर ग्रामों से तकलीफ उठाकर पधारने वाले गृहस्थों को यह सभा धन्यवाद देती है।'

चतुर्थ-प्रस्ताव

'श्रीयुत् दुर्लभजी भाई के सभापतित्व में यह कार्य सफलतापूर्वक किया गया अतएव यह सभा उनका उपकार मानती है।'

पंचम प्रस्तताव

'आपस में निंदायुक्त लेख छपने से समाज में पूरी हानि होती है। हाल में जो सत्यासत्य कमेटी जावरे की तरफ से 36 कलमों का एक ट्रेक्ट निकला है उसका यथोचित उत्तर दिया जाना स्वाभाविक है मगर आज रोज श्रीमान् परम पूज्य महाराज साहिब श्री 1008 श्री जवाहिरलालजी

महाराज साहिब ने शान्तिपूर्वक ऐसा उपदेश व्याख्यान द्वारा विस्तारपूर्वक फरमाया कि अपने श्रीमान् सद्गत पूज्य महाराज साहिब के उपदेशामृत को व श्री जैन मार्ग के मूल क्षमाधर्म को अंगीकार करके श्रीमान् के भक्तों की तरफ से शान्ति ही रखना चाहिए। और छापा द्वारा उत्तर प्रत्युत्तर करना चाहिए। महाराज साहिब के इस फरमान को सबने सहर्ष स्वीकार किया। यदि किसी की तरफ से फिर भी भविष्य में निंदायुक्त लेख प्रकट हुए और न्यायपूर्ण उत्तर देना ही जरूरी समझा जावे तो निम्नलिखित पांच मेम्बरों के नाम से उसका प्रतिकार किया जावे।

1. नगर सेठ नंदलालजी बाफना, उदेपुर
2. सेठ मेघजी भाई थोभणा, बम्बई
3. सेठ कनीराम जी बांठिया, भीनासर
4. सेठ नथमलजी चोरड़िया, नीमच
5. सेठ दुर्लभजी भाई जौहरी, जैपुर।

अध्याय 54 : विहंगावलोकन

सद्गत आचार्य महोदय की असाधारण गुण सम्पत्ति उपर्युक्त लेखों से पाठकों को अप्रकट नहीं रही होगी, तो भी इस स्थान पर उपसंहार रूप उनके मुख्य सद्गुण वैभव का समुच्चय किया जाता है। ऐसे युग प्रधान पुरुषों के सद्गुण वर्णन करना यद्यपि सागर का पानी गागर में भरने के समान उपहासजनक और अशक्य है फिर भी उनके चरित्र की कितनी ही घटनाओं पर दृष्टि निक्षेप कर उनमें से कुछ सार बोध ग्रहण करने के हेतु से यथामति, यथाशक्ति, यत्किंचित, प्रवृत्ति कर लिखता हूं।

ज्ञानवल

ब्रह्मचर्य का प्रभाव, तीव्र जिज्ञासापूर्वक परम पुरुषार्थ सुयोग्य सद्गुरु का सुयोग और विनयादि आवश्यक गुण इत्यादि ज्ञान प्राप्ति के परमावश्यक साधनों के पूर्व पुण्य प्रसाद से पूज्यश्री में सम्पूर्ण विद्यमानता थी जिससे उन्हें अल्प समय में अद्भुत तत्वाववोधन हो गया था। सूत्र श्री आचारांग, सूत्र कृतांग, सुखविपाक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी चारों छेदसूत्र (व्यवहार, निशीथ, वृहत्कल्प और दशाश्रुतस्कंध) तथा सूत्रों के सार रूप करीव 150 श्लोक (थोकड़ा प्रकरण) उन्हें कंठस्थ थे, शेषसूत्र भी पुनः-पुनः पढ़ने, मनन करने से हस्तामलकवत् हो गये थे। इनके सिवाय श्वेताम्वर, दिगम्वर मत के अनेक तात्विक ग्रंथों का भी उन्होंने सूक्ष्म अवलोकन किया था। जैनेतर दर्शनशास्त्रों का भी पठन अति विशाल था, ऐतिहासिक ग्रन्थ पढ़ने का उन्हें अत्यन्त शौक था, इसके सिवाय आधुनिक वैज्ञानिकों के नये-नये आविष्कार उसी तरह हर्वर्ट स्पेन्सर, डार्विन इत्यादि पाश्चात्य दार्शनिकों के सिद्धान्त जानने की भी उन्हें अत्यन्त जिज्ञासा रहती थी, स्वयं अंग्रेजी पढ़े हुए न होने से ऐसे अन्य अंग्रेजी पढ़े हुए विद्वानों के पास से सुनते थे।

राजकोट के चातुर्मास में नई रोशनी वाले वी.ए.एम.ए. और वकील, वैरिस्टर पूज्यश्री के साथ दर्शनशास्त्र, विज्ञान शास्त्र और भूगोल-खगोल सम्वन्धी विवाद करते तव उन्हें आचार्यश्री की कुशाग्र बुद्धि और ज्ञान की उत्कृष्टता देख अत्यन्त आश्चर्य होता और चर्चा में भी बहुत स्वाद मालूम होता था।

दर्शनार्थ आने वाले श्रावकों में से जिज्ञासु जनों को ज्ञानामृत का आस्वादन कराने के वास्ते ज्ञानचर्चा करने के लिए पूज्यश्री निमंत्रण करते, शिष्य के पूछे हुए एक प्रश्न का संतोषजनक समाधान होते ही 'और पूछो' यह वाक्य प्रायः उनके मुख कमल में से खिले विना नहीं रहता था। उनकी वाणी में अद्वितीय आकर्षण था, उनके समाधान किये वाद शंका को मौका भाग्य से मिलता था। उनके साथ ज्ञानचर्चा करने वाले सूत्र के ज्ञाता श्रावक लोक उनके विशाल शास्त्रज्ञान पर बड़ा आश्चर्य प्रकट करते थे। एक सिद्धान्त का समर्थन करने के लिए वे एक के पश्चात् एक शास्त्रीय अनेक प्रमाण अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक प्रकाशित करते थे। जैन के 32 सूत्र तो मानों उनकी दृष्टि के सामने ही तिरते हों, त्यों उनमें से एक के पश्चात् एक रत्न ढूंढ़ निकालते जिसे पदानुसारिणी लब्धि

कहते हैं वैसी लब्धि पूज्यश्री में दीख पड़ती थी। किसी भी धार्मिक विषय की चर्चा छिड़ते ही उस विषय का उनका ज्ञान तलस्पर्शी है ऐसा दूसरों को प्रतीत होता था, इतना ही नहीं परन्तु उनके मुंह से निकलते हुए अमृत जैसे मीठे वाक्य सुनकर आनंद का पार भी नहीं रहता था।

चारित्र विशुद्धि

पूज्यश्री का चारित्र अत्यंत निर्मल था, वे इतने अधिक आत्मार्थी, पापभीरु और निरतिचार चारित्र पालने में सावधान रहते थे कि उनका वर्णन शब्दों में हो ही नहीं सकता। जिन्होंने इन महापुरुष का सत्संग किया है वे ही उनके चारित्र की महिमा कुछ अंश में जान सके हैं। साधुओं में ज्ञान थोड़ा हो या अधिक हो इसकी चिंता नहीं, परन्तु चारित्र विशुद्धि तो अवश्य होनी चाहिए। ज्ञान का फल ही चारित्र है 'ज्ञानस्य फलं विरतिः' जिस ज्ञान से विरति अथवा चारित्र प्राप्त न हो वह ज्ञान अफल (निष्फल) समझना चाहिए। सच्चारित्र यही समस्त विश्व को वश करने वाला अद्भुत वशीकरण मंत्र है। जनसमूह पर विद्या, लक्ष्मी या अधिकार की अपेक्षा चारित्र का प्रभाव विशेष और चिरस्थायी पड़ता है। चारित्र बल से ही महात्मा गांधीजी भी अभी विश्व वंदनीय है, पूज्यश्री बार-बार उपदेश देते कि नर से नारायण होते हैं इसलिए चारित्र रत्न का यत्न जीव के रुष्ट होने पर भी करना चाहिए।

साधु पुरुषों का चारित्र यही सच्चा धन है। इस धनं द्वारा स्वर्गीय सुख के अखूट खजाने खरीदे जा सकते हैं। उसकी पूर्णता से पूर्ण प्रभुता की प्राप्ति हो सकती है।

श्रीमान् पूज्यश्री को अविश्रान्त परिश्रम के कारण प्राप्त हुए सर्वज्ञ प्रणीतशास्त्र के अपूर्व ज्ञान के सुफलरूप उदार, अनुकरणीय और अतिचार रहित चारित्र की प्राप्ति हुई थी। श्री वीर प्रभु की आज्ञा यही उनका मुद्रा लेख था और यही उनका पवित्र धर्म था। इन आज्ञाओं के पालने में वे प्रमाद को त्याग और शुद्धोपयोगपूर्वक संयम के सुखद सुपथ में विचरते थे। अपना मन अन्य प्रदेश में लेश भी प्रवेश न करे उसकी बड़ी संभाल रखते थे और इसलिये व्यर्थ बैठे रहना, व्यर्थ की हंसी करना, सांसारिक खटपट में भाग लेना इत्यादि-इत्यादि प्रवृत्तियां कि जो अभी निठल्ले श्रावकों की संगति से कितने ही साधुओं में घुस पड़ी हैं, पूज्यश्री ने परिहार किया था। वे दिन रात ज्ञान-ध्यान में निमग्न रह और ज्ञान विषय की चर्चा-वार्त्ता कर समय का सदुपयोग करते थे।

आधाकर्मी-सदोष आहार-पानी न लेने बावत वे अत्यन्त सावधान रहते थे। अजमेर कॉन्फ्रेन्स के समय स्वधर्मी रागवश दोषीला आहार-पानी वहिरावेंगे अथवा साधु निमित्त पहिले या पीछे आरंभ-समारंभ करेंगे ऐसा संभव समझ पूज्य श्री ने साधुमार्गी के यहां से आहार-पानी न लाने बावत अपने शिष्यों को बिलकुल मनाकर आपने स्वयं तेला का पारणा कर दूसरा तेला कर लिया था और सात दिन में एक दिन आहार लिया था। कई वक्त साधुओं की बड़ी संख्या एक ग्राम में एकत्रित हो जाती तब-तब पूज्यश्री और उनके साधु छठ, अठम, चोले, पचोले की धुन लगा देते थे और ऐसे प्रसंग में कई समय कच्चा आटा लाकर पानी में डाल पी जाते थे। पूज्यश्री विशेपतः मक्की और जौ रोटी गरीबों के यहां से वेर लाते, विगय का त्याग करना या आयम्बिल करना यह उनका खास शौक था। इन्द्रियों को वश रखने का कार्य सचमुच वड़ा कठिन है जिसमें भी रसेंद्रिय का वश करना यह सवसे अधिक दुष्कर है। शरीर पर से मूर्च्छा उतरती है जब ही शरीर को पोपण देने वाले खाद्य पदार्थों पर से भी मूर्च्छा उतर सकती है।

आधाकर्मी (निमित्त से बनाये हुए) स्थानक में उतर न जायं इस बाबत भी वे बड़े सावधान रहते थे। मांगरोलबंदर पधारे तब उन्हें भोजनशाला में उतारने की संघ की इच्छा थी। पूज्यश्री ने भोजनशाला देख, विशाल और श्रेयस्कर मकान तथा जैनों की बस्ती और साधुओं का उपाश्रय अधिक समीप होने से यह स्थान पूज्यश्री को अधिक पसंद हुआ। परन्तु पूछताछ करने पर यह भोजनशाला बिगड़ी हुई थी और पूज्यश्री के लिये साफसुफ कराई गई थी ऐसा संदेह पड़ते ही वे वहां न ठहर ग्राम बाहर एक झोंपड़ी में उतर गए। ऐसी ही घटना मोरबी में भी घटी थी।

कल्पविहार करने में भी वे कितने अप्रमत रहते और कैसे कष्ट सहते थे यह व्यर्थ के बहाने निकाल स्थिरवास पड़े रहने वाले साधुओं को खास ध्यान देने योग्य है। कई समय उनके पांव में असह्य वेदना हो उठती थी, तो भी वे कल्प उपरांत अधिक नहीं ठहरते थे। सं. 1972 के कार्तिक वदी 1 के रोज उदयपुर शहर के मध्य से हो कर जब वे सूरजपोल महंत की धर्मशाला में पधारे उस समय का दृश्य जिन्होंने आंखों से देखा है वे कहते हैं कि उस समय पूज्यश्री के पांव में अतुल वेदना थी, पांव की तली छिल रही थी, ऊपर का भाग सूज रहा था, तो भी वे वज्रमा कठिन हृदय कर विश्राम लेते-लेते चलते थे और अत्यन्त कष्ट होने से उनके नेत्रों में से मोती की तरह अश्रुबिन्दु टपकते थे, जिसे देख भाविक भक्तों के हृदय थर-थर धूज उठते थे, इसमें तो कुछ नवीनता नहीं थी, परन्तु नगर का हर एक प्रेक्षक यह स्थिति देख थर-थर धूज उठता था। ऐसी स्थिति में उन्होंने एक समय नहीं अनेक समय विहार किया है।

वाक्पटुता

प्रिय और पथ्य वाणी किसी विरले पुरुष की ही होती है, ऐसे विरले पुरुषों में पूज्यश्री का दर्जा अति उच्च था। उनका वाक्-चातुर्य अति प्रशंसनीय था। धर्म और हृदय की उच्च भावनाओं से मिश्रित तथा विचार के प्रवाह से प्रवाहित हुई उनकी असाधारण वाणी में अजब आश्चर्य था, अद्भुत शक्ति थी और परिपूर्ण निरवद्यता थी।

जिस तरह प्रशस्त प्रेम का पवित्र प्रवाह पूज्यश्री के नेत्र युगल से निरन्तर बहा करता था उसी तरह कमल वदन से भी व्याख्यान के समय बहता हुआ वचनामृत का स्रोत सर्वत्र प्रेम का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस भावना का प्रादुर्भाव करने के परिणाम में लीन होता था।–गिव द् इयर्स टू ऑल बट टंग टू द् फ्यू। इस न्याय से पूज्यश्री सब सुनते परन्तु विचार कर बहुत कम बोलते थे। जरूरत से ज्यादा न बोलते और जो कुछ बोलते वह जिनागम के अनुकूल ही बोलते थे। पूज्यश्री का व्याख्यान अनुपम था। विविध तापों से तप्त शोकाकुल निराश आत्माओं को यह प्रतापी महात्मा नवीन उत्साह देते। इनकी मधुरवाणी श्रवण करते ही आनन्दरसागर उछलता। सुषुप्त हृदय की अन्धकारमय गुहा में जीवनज्योति का प्रकाश फैलता, श्रोतृगण की आत्मा जागृत हो कर्तव्य क्षेत्र में प्रविष्ट होती। इनका अद्भुत वीरत्व इनके प्रत्येक वाक्य में व्यक्त होता था। उनकी सुधावर्षिणी वाणी से विश्व पर अवर्णनीय उपकार होता था। वे कर्तव्य पथ से भ्रान्त पथिकों को सन्मार्ग दर्शक सद्विचार स्फुराते थे। जिन वाणीरूप अमृत से भरपूर अति मधुर जीवनराग सुनाकर कायरों की कायरता दूर करते, उन्नति का मार्ग बताते, निडरता और साहसिकता के पाठ पढ़ाते थे। कर्तव्य पालन में प्राण की भी परवाह न करना यह उनके उपदेश का सार था। उनके लिए जीना मरना समान था। वे स्थितप्रज्ञ और स्वरूप स्थित थे। उनका देह-प्रेम छूट गया था। इसलिए वे अप्रतिबद्ध

सम्पूर्ण स्वतंत्र, अपरिमित सामर्थ्यवान और विशुद्ध चारित्रवान बन गए थे। तीव्र वैराग्य के कारण समाधि लाभ हमेशा उनके समीप बैठा रहता था।

इसलिये उनका सच्चारित्र मौन दशा में भी जनसमूह पर जादू-सा असर उत्पन्न करता था। तो फिर उनके पवित्र आत्मा की वाणी, व्यापार, लोगों के चरित्र, संगठन में अपूर्व अवलम्बन रूप हो इसमें क्या आश्चर्य है? कभी-कभी उनके सद्बोध का पूरा रहस्य अल्पमति श्रोता समुदाय भी समझ सकती थी। उनकी वाणी का प्रभाव ऐसा अलौकिक था कि वह भव्यात्माओं के अन्तरपट को खोल देता था। पूज्यश्री की शास्त्रीय शैली ने निराश हुए कई श्रावकों को, अत्यंत सहृदय आत्माओं को उत्साह और आशा दिला सतेज किये हैं। सूत्रों का स्वाध्याय रस के आनन्द से अर्वाचीन समय में मस्त होने वाले कितने मुनि है? मलिन वृत्तियों को हटा कर, सात्विक वृत्तियों को जागृत कराने वाला पूज्यश्री के हृदय-सारंगी के तार से उत्पन्न हुआ हृदय भेदक-संगीत कर्ण को कितना प्रिय लगता था। सात्विक भावना के प्रकाश दीप को प्रकटाना तो अनुभवी उपदेशकों के भाग्य में ही लिखा है। सिर्फ कर्णेन्द्रिय को प्रिय हो वह क्या काम का है? अर्थ गंभीरता आत्मा को प्रसन्न कर दे तब ही असर होता है।

पूज्यश्री की वाणी सत्य और हितकारी थी किन्तु सर्वथा सब को प्रियकर हो ऐसी वाणी उच्चारण करना यह उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। कभी-कभी किसी-किसी व्यक्ति को इनकी वाणी में कटुता प्रतीत होती थी। क्योंकि ज्वर पीड़ित मनुष्यों को शक्कर या मिश्री के बदले, क्वीनाईन या चिरायता या ऐसी ही कटु दवा चतुर मनुष्य देते हैं। ऐसे ही पूज्य श्री उन्मार्ग गामियों को सन्मार्ग पर लगाने वास्ते कटु वचन भी कह देते थे।

प्रत्येक को हित शिक्षा देना यह पूज्यश्री का खास स्वभाव फिर चाहे वह अपने से बड़ा ही क्यों न हो या छोटा; गुरु हो या गुरु का भी गुरु हो, सबको चाहे जैसा हो, निर्भयता से और सच्चे हृदय से कह देने की उनमें आदत थी। यह गुण (चाहे इसे सद्गुण कहो या दुर्गुण) उनके लिये कई समय आपत्तिकारक भी हो गया था। ठंडी से थर-थर धूजते बंदर को गृह बांधने की शिक्षा देने में सुगृही को अपना घर खोना पड़ा था, ऐसा ही मौका पूज्यश्री को प्राप्त हुआ था। अपात्र पर दया कर उन पर उपकार करने में श्रीजी को कई समय बहुत कुछ सहन करना पड़ा था। जिस तरह चूहे को ठंड से बचाने में हंस को पंख रहित होना पड़ा था। उसी तरह पामर जीवों को पाप पंक में से बचाने जाते पूज्यश्री को बहुत-बहुत सहन करना पड़ा था परन्तु ऐसे कर्तव्यनिष्ठ, सहनशील और परहित परायण पुरुषों का मन तो परोपकार करने में ही सच्ची मौज मानते हैं 'सहन करवूं एह छे एक लाणु।'

पूज्यश्री की वाणी में गुणीजनों के गुणगान का भी मौका आता था, आप अपनी प्रशंसा या परनिन्दा तो वे कभी करते ही न थे। चर्चा के शब्दों की मारामारी में चाहे जैसे वकीली चलाई जाय परन्तु शब्दों की अब कीमत नहीं। कहने की अपेक्षा करके दिखाने का ही यह जमाना है। उनके फटके कभी भूल नहीं जाते।

'सुदर सव सुख आन मिले, पण संत समागम दुर्लभ भाई'

'धनवंत को आदर करे, निर्धन को रखे दूरः

एऊ तो साधु न जाणिये, वो रोटियां को मजूर'

रंग घणा पण पोत नहीं, कुण लेवे उस साड़ी को ?

फूल घणा पण बास नहीं, कुण जावे उस बाड़ी को ?

निर्भयता

भय यह मानव जीवन की उन्नति में पीछे हटाने वाला भयंकर आवरण है। एक विद्वान ने कहा है कि 'भय यह मनुष्य के आसपास कटुता फैलाता है वह मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का नाश करता है और कितनी ही दफा मृत्यु तक का अवसर पैदा करता है वह सर्व शक्ति और विकास का नाश कर देता है।'

पूज्यश्री में बालवय से ही निर्भयता भरी हुई थी। खादेड़ा प्रतिगमन, कानोड़ में सांप के साथ चार माह तक निवास, मांड़लगढ़ से कोटे जाते समय भयंकर जंगल का विहार, सुनेल के सुवा सो के सामने का सत्याग्रह इत्यादि अवसरों से वे कितने निर्भय बने हुए थे वह वाचकों को विदित ही है।

लोकापवाद का भय भी उन्हें कर्तव्य विमुख कदापि न बना सकता था। सम्प्रदाय परिवर्तन तथा अनेक बड़े-बड़े साधुओं का बहिष्कार इत्यादि प्रवृत्तियों के ज्वंलत उदाहरण प्रस्तुत हैं। सामान्य मनुष्यों के लिए लोकापवाद की भयंकर भींत उलांघना अति कठिन है।

जनभीरुता का स्थान पूज्यश्री में पापभीरुता ने लिया था। जनभीरुता इनके रोमांच में भी न थी। पापभीरुता इनके रग-रग में भरी हुई थी। उन्हें देह की चिन्ता भी न थी, आत्मा की चिंता तो हमेशा रहती थी।

दुनिया मुझे क्या कहेगी? इस पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया, कभी विचार भी नहीं किया, परन्तु सिर्फ महावीर क्या कह गए हैं? उनकी क्या आज्ञा है? यही उनका जीवन पर्यन्त शोध रहा, यही चिन्तवना रही और वे वीर प्रणीत निरवद्य मार्ग पर निश्चयता से, निर्भयता से आगे आगे बढ़ते ही चले गए। एक फारसी काव्य वे फरमाते थे कि–

'तीन तलवार तव्र तेगा व खंजर बरसे;

जहर खून और मुसीबत के समुंदर बरसे,

बिजलियां चर्ख से और कोट से पत्थर बरसे,

सारी दुनियां की बलायें मेरे सरपे बरसे;

खतम हो जाय हर एक रंजो मुसीबत मुझ पर,

मगर इमान को जुंबिश हो तो लानत हो मुझ पर'

संयम सरिता का प्रवाह सहज ही शिथिल हो जाता तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। बिलकुल रज जैसे बारीक छिद्र न पूरे जाय तो हाथी निकले जैसे द्वार हो जाते हैं इसलिए छोटे कार्य से ही जल्द सार-संभाल कर लेना वे पसंद करते थे। परन्तु प्रफुल्लित हुए वृक्षों में जब घुन घुसने लगा, ईर्ष्या और अंतर्द्वेष रूपी कीड़े फल को ही खा जाने लगे, तब सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धान्त और सीमा की रक्षार्थ वे जागृत हुए, घबराये नहीं। अवसर के जानकार वे महापुरुष तो कबूल करते थे कि मतभेद बड़े महान पुरुषों ने भी स्वीकार किया है और सत्यता का चिह्न है, कबूल रखने की तैयारी है।

'मुंह मुहुं मोह गुणे जयंतं। अणेग रूवा समणं चरंतं
फासा फुसंती असमंजसूंच। नते सुभिक्खु मणसा पउसे'
बियर एण्ड फोरबियर।

सब सहन कर लेते और आत्मा पर विश्वास रखते। परन्तु सत्ता के मद में चारित्र की पांख कट जाय या बाजी बिगड़ जाय इससे बहुत सावधान रहते थे। दुराग्रह से किसी विचार को पकड़े न रहते तथा शास्त्र का नियम खंडित हो वहां वे झुकते भी नहीं, परन्तु सत्याग्रह करते थे। समाज संरक्षा की सौंपी हुई जोखिम से वे हमेशा जागृत रहते थे।

शिष्यों के साथ के व्यवहार में कुसुम-सा कोमल मालूम होने वाला हृदय उनके अन्यायी व्यवहार के समय वज्र से भी कठिन बन जाता था। सत्य के ताप का यह तेज था। मतभेद के कारण सम्भोग न होने पर भी वे दूसरों के सद्गुणों की उपेक्षा न करते थे, परन्तु अवसर मिलने पर उनके गुणों की प्रशंसा करते थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन श्री शासन देव के शरण में ही समर्पण किया था। उनके वय के प्रमाण में दूसरा कोई व्यक्ति भाग्य से ही मिले, ऐसा अपूर्व गाम्भीर्य पूज्यश्री में प्रकट हो गया था। सूत्र ज्ञान की प्रवीणता अनोखी थी। वे सूत्र के ज्ञान की पुनीत प्रकाशित किरणें फैलाने के लिए शिष्य समूह को खास आग्रह करते थे। ऐसे विचारशील धर्माध्यक्ष के आश्रय में संख्याबद्ध साधु आकर्षित होते और मनमानी प्राप्त कर जन्म सार्थक करते थे।

धर्म के कारण मरना, प्राण देना यह कुछ प्राचीन समय की ही परम्परा नहीं, जब-जब धार्मिकता तेजस्विता कम होती हुई दृष्टिगत होती, कि जल्द ही उसकी कीर्ति बढ़ाने की फिक्र लगती। धार्मिक जुल्म सहन न होता, परन्तु उसे बिलकुल निर्मूल करने का ही प्रयास होता था। परिणाम में सत्ता भिन्नता पकड़ती, सर्वानुमत असम्भव हो जाता, अनिवार्य प्रसंग उपस्थित होने से भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय होते गये और पोषाते गए। इतने अधिक सम्प्रदायों का अस्तित्व ऐसे ही कारणों का आभारी है। सांसारिक व्यवहार या मान्यता को पकड़ कर भिन्न चौतरे पर चढ़ भिन्न-भिन्न बात कहना यह भिन्न बात है। गुनहगारों का गुनाह बिलकुल साफ प्रकट हो जाने पर भी ममत्व के कारण कितनी ही ज्ञातियों में गुनहगार के सगे-सम्बन्धी भिन्न तड़ें डाल देते हैं उसी तरह सत्य की शमशेर के प्रभाव से संयम रणांगण में उतरे हुए इन तड़ों का अनुकरण करें तो श्री महावीर भगवान् की आज्ञाओं का प्रत्यक्ष अपमान होता है और श्री संघ का आदर भाव गुमाते हैं।

अलबत्ता शरम भरी हुई स्थिति में बेशरम कबूल से आघात तो होता है परन्तु धार्मिक कायदे तो जीव को जोखिम में डालकर ही निभाने पड़ते हैं इन कायदों पर अपील नहीं, ठहराविक सजा भुगतनी ही चाहिए, भविष्य की भूलों का भान ऐसी सजाओं से ही जागृत रहता है और दूसरों को भी जागृत करता है। वृत्ति को पलटाने की यह कसौटी है। कसौटी के कस में शुद्ध कंचन ज्यों पार उतरने वालों का ही संयम सार्थक है।

आकर्षणों में फंसने वाले धोवी के कुत्तों की तरह न घर के न घाट के, धर्म के नियमों के कारण प्राणार्पण करने वालों के और अभिग्रह धरने वालों के प्राचीन दृष्टान्त बहुत हैं आज भी ऐसे धर्म वीरों का पाक प्रस्तुत है।

अपनी ही सम्प्रदाय के एक साधु का दृष्टान्त ध्यान में देने योग्य है। दो प्रहर को कुछ औषधि लेने एक युवान साधु को एक गृहस्थ के वहां जाना पड़ा, उस मकान में उस समय एक विधवा स्त्री के

सिवाय कोई न था, मुनिराज पीछे फिरते थे कि वह स्त्री विकारवश हो मुनि के पीछे पड़ी। मुनि ने असरकारक उपदेश दे स्त्री धर्म समझाया, परन्तु काम अंधा है समय बड़ा तीव्र था। बूम (जोर से आवाज करने पर) देने से उलटी अपनी इज्ज़त विगड़ती है आत्मा के श्रेय के कारण ही सिर मुंडाने वाले इन मुनि ने मन में ही आलोयणा कर अपनी जीभ काट अपने व्रत निभाने वास्ते, अपनी प्रतिज्ञा पालने वास्ते, अपने धर्म वास्ते अपना प्राण बहादुरी से अर्पण किया। एक गुरु ने शिष्य के संथारे के समय शिष्य की शिथिलता के कारण उस संथारे के स्थान पर सो कर प्राण दे टेक निभाई थी।

आर्यलेंड में नगर सेठ लार्ड मेयर ने जेल में खुराक न ले उपवास कर आत्मभोग दिया। श्रीयुत् सेठी अर्जुनलालजी ने जेल में इष्टदेव के दर्शन विना किये अन्न लेना इन्कार कर दिया था। रामवक्ष ब्राह्मण ने अंडमान में जनेव विना अन्न न ले नव्वे दिन भूखे रह मृत्यु स्वीकार की थी ऐसे दृष्टान्तों पर खास पुस्तक लिखी जा सकती है। यहां सिर्फ संकेत करने का कारण यह है कि धार्मिक नियम प्रतिज्ञा यह कुछ वालक का खेल नहीं है कि अपनी इच्छानुसार कसौटी के समय प्रतिज्ञा को त्याग दें और समय के वश हो जायं।

'नवजीवन' इस संवंध में अपना यह अभिप्राय व्यक्त करता है कि इस सुधार के जमाने में ऐसे प्राणत्याग को कोई मूर्खता से भरा हुआ भी कह दे, क्योंकि जनेव के कारण मरने को तैयार हो जाना ऐसी सलाह आज के समय कोई सचमुच में नहीं देगा। परन्तु अपने को जो वस्तु धर्म जची है उसके लिए प्राण देने की शक्ति तो प्रत्येक मनुष्य में रहनी ही चाहिए। वर्तमान समय में समाज में से यह शक्ति वहुत कम हो गई है इसलिए समाज में पामरता दृष्टिगत होती है और अधर्म इतना वढ़ा चला जाता है।

ईसु के इन वचनों का सार अंतःकरण में उतारना ठीक है कि 'गेहूं का कण जव तक जमीन में दवकर नहीं मरता तव तक जैसा का तैसा रहता है।'

सत्य और निर्भयता आत्मभोग विना संजीवन नहीं होती। सचमुच जो हमें मर्द नहीं वनना है अपनी इज्ज़त कायम रखने जितना भी पुरुपार्थ हम में नहीं है स्वतः में प्रभु और पंच की साक्षी से ली हुई प्रतिज्ञा पालने की सामर्थ्य भी (मर्दपना) नहीं है तो यह ठीक है कि लाचारी के साथ अपना पहना हुआ भेप उतारकर फेंक दें, परन्तु भेप को न लजावें, दंभ से दुनिया को न ठगें। चोर चोरी करे इसमें नवीनता नहीं है परन्तु चौकी पहरे वाले, रक्षण करने वाले ही भक्षण करने लग जाये वह असह्य हो जाता है।

कर्त्तव्य पालन की टेव (परम्परा) निर्भयता का पोषण करती है। पूज्यश्री का जीवन विविध घटनाओं से पूर्ण है। वे कभी दुःख से दवे नहीं, दिग्मूढ़ वने नहीं, उदासीनता से दुवले हुए नहीं, आत्मा की भूख मिटाने, प्यास छिपाने में उन्होंने अविश्रान्त श्रम किया है, पाप पुंज के अग्नि समान और अन्याय के शत्रु समान वे हमेशा गर्जाव्व करते रहे, कभी भी कोमलता नहीं त्यागी। श्रीकृष्ण को एक ब्राह्मण ने लात मारी उसे अलंकार की तरह धारण करली। गांधारी ने घोर शाप दिया, जिसे श्रीकृष्ण ने अधिक सन्मान दिया। साधु सरिता की ओट हो जाने पर भी श्रीजी ऐसे ही अविचलित गंभीर और महासागर वने रहे।

'अगार सिंधु गहन शोषक मोती मोंतु!
दोड़ी दिला उदधि ने तजीये ज्वारं!

त्यां मच्छ सिंधु महि, व्हाण गली जनारा।

तोफान गिरी मूल तेय उखेड़नारा!

ते राक्षसोनी उपर प्रीति राखवानी!

ते राक्षसोनी सहसा अब दैव अंश!

छे युद्ध तो जगाववुं, पण प्रेण प्रेम राखी!

लोही लीधा वगर लोही दइज देवुं'

कलापी।

एमर्सन के ये वाक्य यहां याद आ जाते हैं।

'Doubt not O Poet but persist say—it is in me and shall outstand there, bulked and dumb shutering and stammering hissed and hooted, stared and strive until a last ruge draw out of thee that dream power which every night shows thee is thine own. A man transcending all limit and privasy and by virtue of which a man is conductor of the whole river of electricity.'

Emerson.

स्मरण-शक्ति

पूज्यश्री की जैसी स्मरण-शक्ति अच्छे-अच्छे अवधानियों में भी नहीं दिखती, उनकी असाधारण स्मरण-शक्ति के एक दो उदाहरण यहां देता हूं।

पूज्यश्री राजकोट विराजते थे, तब एक दिन मोरवी से कितने ही अग्रगण्य श्रावक मोरवी पधारने के लिये विनती करने आये थे। उनमें सेठ अम्बाणीदास डोसाणी भी थे। जब सेठ अम्बाणीदास भाई ने वंदना की, तब महाराज श्री ने उनका नाम ले 'जी' कहा, यह देख अंम्बाणीदास भाई को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा कि 'महाराज जी! मुझे तो आज ही पहले पहल आपके दर्शन का लाभ मिला है तब आप मुझे कैसे पहचान सके? पूज्यश्री ने कहा कि अजमेर कॉन्फ्रेन्स के समय मैंने तुम्हारा फोटू देखा था, उस पर से मैं तुम्हें पहचान सका हूं।

उदयपुर के श्रावक रतनलालजी मेहता कहते कि 'उदयपुर में हम रात्रि के समय पूज्यश्री के साथ अधिक रात बीतने तक ज्ञान चर्चा करते रहते थे। पूज्यश्री अंदर मकान में विराजते और हम बाहर बैठते थे तब कोई श्रावक वहां से जाता तो तुरन्त महाराज श्री कह देते कि ये अमुक श्रावक है जिससे उपस्थित श्रावकों को अत्यन्त आश्चर्य पैदा होता। एक समय मैंने प्रश्न किया कि महाराज हम उसे नहीं पहचान सकते और आप अंधेरे में भी उसे कैसे पहचान सकते हैं? पूज्यश्री ने उतर में फरमाया कि उसकी चाल और पगरव (आवाज) पर से मैं अनुमान कर सकता हूं। इसी तरह बाहर ग्राम के आये हुए श्रावक रात को वंदना करने आते और 'मत्थएण वंदामि' बोलते ही उसे सुन पूज्यश्री उसे पहचान लेते थे। बहुत वर्ष बीत जाने पर भी अंधेरे में केवल आवाज से ही पूज्यश्री पहचान सकते थे।

अपने समागम में सिर्फ एक ही समय जो मनुष्य आया हो उसका नाम-ठाम पूज्य श्री नहीं नते थे। भीणाय वाले पंडित विहारीलालजी इस के सबूत में सत्य कहते हैं कि–

'मुझे इनकी अद्‌भुत स्मरण शक्ति देख अत्यन्त आश्चर्य होता था और कभी-कभी मुझे सा भान होता कि ये मनुष्य हैं या देवता हैं।

कर्तव्य पालन में सावधानी

आचार्य पद प्राप्त हुए पश्चात् दूसरों की तरह अपना प्रचार बढ़ाने की ओर पूज्यश्री का लकुल लक्ष न था, परन्तु अपनी आज्ञा में विचरने वाले चतुर्विध संघ में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप । बढ़ा कर जैन शासन की उन्नति करें यही उनका परम ध्येय था। पूज्यश्री अपने साधुओं से बार र कहते कि –

'तुमने दीक्षा ली है और घर, कुटुम्ब, स्त्री सब को छोड़ दिया है सो अब उनके काम के तो न नहीं रहे हो। यह दीक्षा चिंतामणि रत्नों का हार है इसको अच्छी तरह से पालने में उत्कृष्ट रस ावेगा तो सिर्फ एक भव करके मोक्ष में चले जाओगे। संसार के सुख वैभव भुगड़े की मुठी समान सो इस भुगड़े की मुठी के वास्ते चिंतामणि रत्नों का हार मत खो बैठना' व्याख्यान वाचने वाले ाधुओं को उद्देश्य कर वे कहते कि –

'अन्य को उपदेश देना सरल है परन्तु उस मुआफिक वर्ताव करना कठिन है। उपदेशक होने ो अपेक्षा आदर्श होने में ही अपना और जगत का श्रेय विशेष सिद्ध कर सकते हैं इसलिए मुनियों! म उपदेष्टा होने से पहिले दृष्टांत रूप बनो। वचन की अपेक्षा वर्ताव में बल अधिक है। उत्तम वर्ताव भी भी न घिसे ऐसे गहन संस्कारों द्वारा परिचित जनों के हृदय पट पर अंकित हो जाता है।'

पूज्यश्री बाह्य त्याग की अपेक्षा आंतर त्याग को प्रधान पद देते और कहते कि–

'विषय कषाय के त्याग रूप अंतर त्याग विना सिर्फ बाह्य त्याग जीवन के विना देह विना ार के कुए जैसा है।' वे कहते कि–

'कामना सब दुःखों की जननी है। निष्काम वृत्ति धारण करना यही सुख प्राप्ति का श्रेष्ठ ाधन है। खारे जल के पीने से तृषा तृप्त नहीं होती परन्तु उलटी तृषा अधिक लगती है। इसी तरह वेषयों के सेवन से विषय-वासना घटती नहीं परन्तु उलटी अधिक बढ़ती है।'

'अशुचि मय शरीर पर मोह ममत्व रखना यह बड़ी भारी भूल है। शरीर के अन्दर जो-जो स्तुएं हैं वे अगर शरीर के बाह्य भाग पर होती तो उसे खाने को गिद्ध, कोए इत्यादि पक्षी शरीर र गिरते और उन्हें हटाने में ही अधिक समय व्यतीत करना पड़ता।'

'मुनियों! तुम जो संसार के क्षुद्र बंधनों से पूर्ण वैराग्यपूर्वक मुक्त हुए हो, अगर हो जाओ, ो तुम आनन्द की भूमि में विचरने वाले हो। भय और दुःख तो हमेशा तुम्हारे से दूर ही रहेंगे। ुनिया जिसे दुःख दुःख कह कर रोती है उसे तो तुम आनंद देने वाली मान लोगे।'

'केवल शास्त्र पढ़ने से ही मुक्ति नहीं मिल सकती परन्तु शास्त्र की आज्ञानुसार चलने से ही ुक्ति प्राप्त हो सकती है।'

उपरोक्त सदुपदेशामृत का अपने शिष्य समुदाय को पान करा कर कर्तव्य पालन के लिए अधिक प्रोत्साहन देते थे और अपने उत्तम चारित्र बल से सम्प्रदाय की नाव बड़ी सलामत रीति से रस्ते पर आगे बढ़ाते चले जाते थे।

चतुर्विध संघ के पूज्यश्री परमावलम्बन के समान थे। सत्पुरुष सद्गुण और सद्वर्तन की जीती-जागती मूर्ति है। सब संग परित्याग किये हुए महात्माओं के देखते ही उनके दर्शनमात्र से ही कई संस्कारी जीवों को उनके उत्तम गुणों के अनुकरण करने की स्वतः ही स्फुरणा हो आती है। सचमुच महात्मा पुरुष इस अंधकारमय संसार समुद्र में फिरती हुई जीवन नौकाओं को खराब मार्ग में टकराकर नाश होने से बचाने वाली दीपदांड़ियों के समान है।

श्री वीतराग प्रभु की आज्ञा का विराधन न हो और अपनी आज्ञा में विचरते साधु आचार में शिथिल न हो जाये सिर्फ इसी के लिए उन्होंने शोभते साधुओं को अपनी सम्प्रदाय से अलग करने में तनिक देर न की थी जो वे थोड़ी भी झुकती (ढीली) डोरी कर देते तो भिन्न हुए कितने ही विद्वान् साधु, वक्ता, शास्त्र के ज्ञाता, सुप्रसिद्ध मुनि और स्थेवर उनकी आज्ञा में चलना और अपना गौरव समझते, परन्तु जिनाज्ञा को अपना सर्वस्व मानने वाले पूज्यश्री ने उनकी आज्ञा के बाहर एक पांव भी रखना न चाहा। पूज्यश्री के लिए यह सचमुच कसौटी का प्रसंग था और जिसमें भी उन्हें 'प्राणन्ते अपि प्रकृति विकृति जयिते नोतमानाम्' अर्थात् उत्तम पुरुषों की प्रकृति में प्राणांत कष्ट तक भी विकृति नहीं हो सकती। यह कथन सत्यता सिद्ध कर दिखा सकता है।

प्रत्येक महान पुरुष को अपने युग की बड़ी से बड़ी कठिनाइयों से जूझना (लड़ना) पड़ता है, जिससे क्राइष्ट, हजरत महमद, गौतमबुद्ध, मार्टिन ल्युथर और अपने लौंकाशाह इन सबको अपने युग की कठिनाइयों और अन्याय के साथ लड़ना पड़ा था, कइयों को मरना भी पड़ा था। पूज्यश्री को भी चारित्र शुद्धि के लिए अपना आत्मभोग देना पड़ा था।

फाँसी की सजा पाए समाजवाद के एक कवि जोहले ने कहा है कि–

Don't mourn for me,

Friends organiz.

दोस्तो! मेरे लिये शोक न करते हुए समाज को सुव्यवस्थित करें। ऐसा उपदेश श्रीजी के अवसान समय का था।

त्याग

'धर्म के प्रत्यक्ष अनुभव का प्रथम सोपान त्याग है जहां तक बने वहां तक त्याग व्रत स्वीकार करें।'

—स्वामी विवेकानन्द

पूज्यश्री के रक्त के एक-एक अणु में त्याग की भावना उछल रही थी। दुनियां धन-दौलत, हाट-हवेली, स्त्री इत्यादि मिलाकर आनन्द पाती है परन्तु पूज्यश्री इन सब के त्याग में परमानन्द अनुभव करते थे। वाह्य और अंतर इन दोनों प्रकार के त्याग से उन्होंने आत्मा को समुज्वल किया था। सर्वसंग परित्यागी और तपोधन महात्माओं के देखते ही त्याग वैराग्य की उर्मियां देखने वालों के हृदय में उछलने लगती। ऋद्धि और रूप गुणवती रमणी को छोड़ घोर कष्ट सहने वाले इन साधु शिरोमणि के दर्शन मात्र से ही वहुत से लखपति और करोड़पति के हृदय में दान के गुण स्वतः प्रकटते और यथाशक्ति दान-पुण्य करने की वृत्ति सहज ही हो जाती।

सचमुच सत्पुरुष सद्‌गुणों की जीती जागती मूर्ति है, इस अंधकारमय संसार समुद्र में पर्यटन करती हुई अपनी जीवन नौका को चट्टान से टकराकर नाश होने से बचाने वाली ये दीप शिखाएं हैं, उन्नति की दिशा वताने वाले ये ध्रुव के तारे हैं।

वी-इन द् वर्ल्ड, नॉट ऑफ द् वर्ल्ड।

निरहंकार वृत्ति

दूसरे जब कीर्ति के पीछे दौड़ते फिरते हैं और जहां-तहां अपनी वड़ाई के फव्वारे छोड़ते हैं वहां पूज्यश्री कीर्ति को उन्नति के पथ में अंतराय सम समझ उस से दूर भागते थे।

पहले पाठक देख चुके हैं कि पूज्यश्री पूर्ण शास्त्र विशारद, समर्थ ज्ञानी होने पर भी श्रावकों से चर्चा करते समय क्वचित् कोई गहन प्रश्न का निराकरण करने में उन्हें कठिनता प्रतीत होती तो उस समय वे विना संकोच कह देते कि इस समय मेरी वुद्धि काम नहीं देती। एक वड़े आचार्य होने पर सभा में स्पष्ट ऐसा कहने वाले विरले निरभिमानी स्टफिक रत्न जैसे निर्मल हृदय के महापुरुष विरले ही होंगे।

लींवड़ी सम्प्रदाय के विद्वान् मुनिश्री उत्तमचंदजी महाराज की प्रशंसा करते हुए पूज्यश्री कहते कि अमुक सिद्धान्त वचन का सच्चा रहस्य मुझे उन्होंने समझाया है। इसी तरह गोंडल संघाड़े के आचार्य श्रीजी जराजी महाराज के ज्ञान की भी वे तारीफ करते थे। पंडित श्री रतनचंदजी महाराज के पास से विनय पूर्वक चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र की वांचना लेते थे, यह कितनी अधिक लघुता।

पूज्यश्री किसी ग्राम पधारते या कहीं से विहार करते उसकी खवर श्रावकों को न होने देते थे। एक समय छतरपुरे से व्यावर पधारते थे तव रास्ते में खवर मिली कि सैंकड़ों श्रावक-श्राविकाएं आपके सन्मुख आ रहे हैं। महाराज श्री ने यह सुन दूसरी राह ली और विकट रास्ते चल एक छोटे से ग्राम में पधारे वहां ओसवाल का एक भी घर न था। ग्रामवासी बोले कि हमारी पीढ़ियां वीत गई परन्तु कोई साधुजी यहां पधारे ऐसा नहीं सुना।

पूर्ण योग्यता ने होने पर भी आचार्यपद प्राप्त करने के लिए कितने ही साधु तनतोड़ परिश्रम और व्यर्थ के दावे रचते हैं परन्तु पूज्यश्री को आचार्यपद प्राप्त होते भी उन्होंने सं. 1971 में अपने वहुत से अधिकार अपनी सम्प्रदाय के सुयोग्य मुनिवरों को सुपुर्द कर स्वयं ने स्वतः अपने सिर का भार हल्का किया था।

अखिल भारतवर्ष के साधुमार्गी जैन सम्प्रदाय में सवसे अधिक साधुओं पर आधिपत्य धराने वाले ये पूज्यश्री थे और उनके सदुपदेश के अनेक भव्यात्माओं ने वैराग्य पा दीक्षा ली थी। तो भी आश्चर्य यह था कि उन्होंने अपनी नेश्राय में एक भी शिष्य न किया। उन्होंने तो दीक्षा न लेने के पहिले शिष्य न करने का निश्चय कर लिया था।

शिष्य के लिए संयम लुटाने वाले, चाहे जिसे मूंड़ (दीक्षित कर) अपने परिवार या नाम बढ़ाने की आकांक्षा वाले साधु पूज्यश्री का अनुकरण करें तो क्या ही अच्छा हो? करोड़ों तारों से जो अंधकार दूर नहीं होता वह सिर्फ एक चंद्र से दूर हो सकता है। जैन समाज में अभी श्रीलालजी जैसे चन्द्र की आवश्यकता है। वेशधारी या जैनाभासी, प्रमादी या पाखण्डी के झुंड के झुंड मूंड़ कर इकट्ठे करने से उसका उद्धार नहीं हो सकता। वे तो जैन शासन रूपी सूर्य को राहु रूप और जगत के लिए केवल भार रूप हैं।

परमत सहिष्णुता

एकांत में या व्याख्यान में पर धर्म की निंदा का एक शब्द भी पूज्यश्री के मुंह से न निकलता था। इतना ही नहीं परन्तु अन्य दर्शी पूज्यश्री की वाणी सुन सन्तुष्ट होते थे।

जोधपुर के चातुर्मास में एक समय एक रामस्नेही सम्प्रदाय के अनुयायी गुलाबदासजी अग्रवाल जो अभी पक्के जैनी हैं पूज्यश्री के पास आ प्रश्न किया कि महाराज मुझे कोई ऐसा सीधा सरल उपाय बताइये कि जिससे मेरा मन शांत और स्थिर रहे।

महाराज श्री ने कहा कि भाई, तुम रामको जपते हो, उसी तरह चित्त को विशेष एकाग्र कर निरन्तर रामनाम जपते रहो। भक्ति से तुम्हारा मन पवित्र और शांत हो जायेगा। यह सुनकर तथा महाराज श्री की सब धर्म पर ऐसी उदार भावना देखकर वे महाशय अत्यन्त आनंदित हुए और पूज्यश्री के सत्संग से जैन धर्म का रहस्य समझ जैन धर्म उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वीकार किया।

कई उपदेशक अन्य धर्म की निंदा कर उस धर्म को जैन धर्म के अनुयायी बनाने की आशा रखते हैं परन्तु इसका परिणाम उलटा होता है। लोग ऐसे निंदकों से हमेशा भड़क कर दूर भागते हैं। ज्ञानी पुरुष शुद्ध आत्मिक प्रेम की शृंखला से दुनिया को मुक्ति मार्ग की ओर लगाते हैं। अन्य सम्प्रदाय या धर्म की निंदा करने से सम्प्रदाय की सेवा बजाने का श्रम कइयों के हृदय से उन्होंने निकलवा दिया है।

परनिंदा परिहार

पूज्यश्री कदापि किसी की निन्दा न करते और अपने भक्तों को भी निन्दा से सर्वथा दूर रहने का आग्रहपूर्वक उपदेश देते थे इसके लिए सिर्फ एक ही दृष्टांत काफी है।

सं. 1976 के पौष माह में पूज्य श्री जावद में विराजते थे तब रतलाम के श्रावक बालचंदजी श्रीमाल पौषध कर पूज्यश्री की सेवा में बैठे थे उस समय जावरे के एक श्रावक ने आकर तेजसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय के साधु प्यारचंदजी तथा इंदरमलजी से साध्वोचित सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पूज्यश्री से अर्ज की और विशेषता में कहा कि अभी ऐसा ही मौका है जो आप विचार न करेंगे तो दूसरे पक्ष वाले दुश्मन इन्हें मदद देंगे। यह वाक्य सुनकर आचार्यश्री बोले कि भाई तुम दुश्मन किसे कहते हो? वे तो हमारे परम मित्र हैं उनकी प्रवृत्ति से हमें अपना चारित्र विशेष विशुद्ध करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

उस समय वहां वे दो ही श्रावक थे। और दोनों पूज्यश्री के परम भक्त थे, तो भी एकांत में भी पूज्य श्री दूसरे पक्षवाले को परमप्रिय समझ बातचीत करते थे।

उपरोक्त घटना घटी उसी दिन पूज्यश्री ने बातचीत में वालचंदजी श्रीमाल से कहा कि मेरे संबंध में इस मामले में कुछ भी लेख, निंदा या स्तुति रूप तुम्हें नहीं छपाने चाहिए।

इसकी सौगन्ध ले लो, परन्तु, उन्होंने कुछ उत्तर न दिया, तव पूज्यश्री ने फिर फरमाया कि जो तुम सौगन्ध न लेओगे तो मैं तुमसे वोलना भी वंद कर दूंगा, तब उन्होंने उसी समय सौगन्ध ले ली।

दूसरे उनकी निंदा करते हैं ऐसे शब्द कभी वे सुनते तो उस मौके पर पूज्यश्री की गम्भीर मुखमुद्रा पर उसका अणुमात्र भी असर नहीं होता था, तथा एक भी शव्द उनके मुंह से निंदा या अप्रसन्नता का उसके प्रतिकूल कभी नहीं निकालते थे।

किसी भी धर्म वाले के साथ बड़ाई के कारण शास्त्रार्थ करने वितंडावाद में उतरने के लिये पूज्यश्री विलकुल खुश न थे, जिसका मुख्य कारण अपनी वाणी विवेक बचाये रखना ही था।

सं. 1975 के चातुर्मास में एक समय उदयपुर में पूज्यश्री के व्याख्यान में एक वक्ता ने अपने भाषण में अमुक पक्ष के साधुओं की प्रवृत्ति के लिये सत्य परन्तु कटु टीका की, इस टीका के मंगलाचरण में ही पूज्यश्री पाट पर से उठकर चले गए।

उदयपुर में तीन आचार्यों के चातुर्मास सं. 1971 में एक साथ हुए थे, उस समय तेरहपंथी एवं मूर्तिपूजक भाइयों ने निंदा ट्रेक्टवाजी (प्रचार पत्र) इत्यादि कई क्लेशवर्धक प्रवृत्तियां की। परन्तु पूज्यश्री ने अनुपम क्षमा और शांति धारण कर निंदकों को प्रशंक बना लिये थे, उनके साथ पूज्य श्री का प्रेममय वर्ताव 'द्वेष का नाश द्वेष से नहीं परन्तु प्रेम से ही होता है' इस आत्मवाक्य को चारितार्थ करता था। पूज्यश्री का प्रेममय व्यवहार जावरे वाले मुनिराजों के निम्नांकित काव्यों से स्पष्ट से स्पष्ट समझा जायेगा।

राग आसावरी

पूजजी के चरनों में धोक हमारी, जाऊं क्रोड़ क्रोड़ बलिहारी
पूजजी के चरनों में धोक हमारी।
टोंक नगर में रेनो थो मुनि को, मात पिता परिवारी।
गुरु मुख उपदेश सुनीले, लीनो संजम भारी/पूज.1।।
आतम वस कर इंद्री जीती, विषय विकार विडारी।
वैराग्य माहे जली रया हो, धन धन हो ब्रह्मचारी।।पूज.।।2।।
होकम मुनि की संप्रदाय में, प्रगट भये दिनकारी।
आचारज गुण करने दीपो, महिमा फैली चउदिशकारी।।पूज.।।3।।
नाम आपको श्रीलालजी, गुण आपका है भारी।
चारों संग है मिल पदवी दीनी रत्नपुरी पुजारी।।पूज.।।4।।
बीजचंद्र ज्यूं कला बढ़त है, पूरण छो उपकारी।
निरखत नैना तृप्त न होवे, सूरत मोहनगारी।।पूज.।।5।।
क्या तारीफ करूं मैं आपकी, वाणी अमृतधारी।
मुझ ऊपर किरपा झट कीजे, पूरण होत विचारी।।पूज.।।6।।
उगणीसे इकसठ साल में रतनपुरी मुजारी।
चौथमल की याही विनती, कदमों में धोक हमारी।।पूज.।।7।।

पूज्यश्री हुक्मीचंद्रजी महाराज की पाटावली

इस भारत खण्ड में तरण तारण की जहाजें
हुआ हुक्मीचंद्रजी महाराज सुधारे काजे।।टेर।।
इक्कीस वर्ष लग बेले बेले तप ठाया,
इक चादर ओढ़न ओढ़ना अंग चीर लगाया।
करी आचार विचार की शुद्ध लिय जिन माने।।हु.।।1।।

पीछे पूज्यश्री सीवलालजी महा यश लीनो,
तेतीस वर्ष तक तप एकांतर कीनो।
बहुविधि सम्प्रदा साधु साधवी आजे।।हु।।2
श्री उदयचंदजी महाराज आचरज भारी,
केई राजा को समझाय आत्मा तारी।
ये तो हुआ जगत विख्यात सिंघ जिम गाजे।।हु।।3।।
चौथे पाठ हुआ चौथमलजी महा गुणवंता,
हुआ पंडितों में परमाण आचार्य दीपंता।
केई जणा को दियो ज्ञान ध्यान और साजे।।हु।।4।।
अब पंचम पाटे आप हुआ बड़ भागी,
श्रीलालजी महा गुणवंत छती के त्यागी,
कियो धर्म अधिक उद्योग मिथ्यात्वी लाजे।।हु।।5।।
ये मुनी माल रसाल ध्यान नित धरना,
हीरालाल कहे इस धर्म उन्नति करना।
जीवागंज कियो चौमासो मोक्ष के काजे।।हु।।6।।

अथ स्तवन

पूज्यजी सीतल चंद्र समान, देखलो गुणरतनों की खान।।टेर।।
जिन मारग में दीपता सरे, तीजे पद महाराज।
कली काल में प्रगट भये हो, दया धर्म की जहाज।।पु।।1।।
पूर्ब पुण्य में आप पूज्यजी पूरा पुण्य कमाया।
धन्य है माता आपकी सरे ऐसा नंदन जाया।।पु।।2।।
मीठी वाणी सुणी आपकी, खुशी हुए नर नार।
फागण सुद पूनम के ऊपर कियो घणो उपकार।।पु।।3।।
हाथ जोड़कर करूं वीनती, अरजी पर चित दीजे।
बनी रहे सुनजर आपकी, चरणों में रख लीजे।।पु।।4।।
भवजीवां ने तारता सरे, किरपा करी दयाल,
रामपुरे महाराज विराजे, रह्या कल्पतो काल।।पु।।2।।
उगणी से त्रेसठ पूज्यजी, ठाणा एक सहस्त्र आठ।
रामपुरा में खूव लगाया, दया धर्म का ठाट।।पु।।2।।
महामुनि नंदलाल तणा शिष्य कहे सुणो गुरुदेवा।
वो दिन भलो ऊगसी सरे, मिले आपकी सेवा।।पु।।7।।

मुनि खूवचंदजी कृत

तपश्चर्या

एकान्तर–पूज्यश्री के 33 चातुर्मासों में एक भी चातुर्मास ऐसा शायद ही गया होगा कि जिस में आषाढ़ चौमासे से संवत्सरी तक उन्होंने एकांतर उपवास न किये हों। कई वक्त वे कार्तिक पूर्णिमा तक उपवास प्रारम्भ रखते थे।

बेला, तेला, चोला, पचेला तो उन्होंने इतने किये हैं कि उनकी पूरी-पूरी गिनती देना भी अशक्य है। पूज्य पदवी प्राप्त होने के पश्चात् 6 वर्ष तक तो हर महीने वे एक-एक तेला बिना नागा करते थे। फिर भी कोई एक ही ऐसा मास गया होगा कि जिसमें पूज्यश्री ने तेला न किया हो।

छः, सात और आठ उपवास के भी उन्होंने कई स्तोक किये हैं। सात-सात, आठ-आठ उपवास के दिन भी पूज्यश्री स्वयं ही व्याख्यान फरमाते थे।

तेरह उपवास का भी एक स्तोक पूज्यश्री ने किया था।

वैयावृत्य–स्वयं आचार्य होने पर और शिष्य समुदाय भी अति विनीत होने पर भी आप स्वयं बाहर पानी लाते और शिष्यों के लिये भी ला देते थे। इतना ही नहीं परन्तु पात्र, झोली, पल्ले, इत्यादि धोने या पानी छानने इत्यादि के कार्य में भी वे शिष्यों की पूरी मदद करते थे। उनके विनयवंत शिष्य ये काम न करने के लिए पूज्यश्री से बार-बार निवेदन करते परन्तु वे अपने स्वभाव के कारण प्रमाद न कर कोई न कोई धर्म कार्य या वैयावृत्य में लगे रहते थे।

अल्पनिद्रा और स्वाध्याय–पूज्यश्री रात को 10 या 12 और कभी-कभी दो-एक बजे तक निद्राधीन न होते थे और एक, दो या तीन बजे जागृत हो जाते थे। एक प्रहर से अधिक निद्रा वे क्वचित ही लेते थे। नित्य प्रति रात को दो से तीन बजे तक निद्रा से जागृत हो सूत्र का स्वाध्याय करते थे। बहुत से सूत्र उन्होंने कंठस्थ कर लिये थे। उसमें दशवैकालिक सूत्र का पाठ तो वे सबसे पहले कर लेते थे। फिर उत्तराध्ययन के कितने ही अध्ययनों का पाठ करते थे। इसके पश्चात आचारांग सूत्र-कृतांग, नंदी, सुखविपाक इत्यादि जो सूत्र कंठस्थ थे उनमें से किसी सूत्र का स्वाध्याय करते थे। फिर अर्थ का चिंतवन और तत्वविचार में लीन हो अप्रमादपन से रात निर्गमन करते थे, संख्याबद्ध स्तोक उन्हें कंठस्थ थे, उनकी पर्यटना वे हमेशा करते थे,उनमें भी 24 तीर्थंकरों का लेखा ज्ञानलब्धि इत्यादि कई थोकड़ों की पर्यटना तो वे नित्यप्रति करते थे।

कभी-कभी एक आध घंटे की निद्रा ले वे जागृत हो जाते और स्वाध्यायादि में प्रवृत्त रहते थे। फिर निद्रा आने लगती तो स्वाध्याय किये पश्चात् एक आध घंटा निद्रा ले लेते और प्रतिक्रमण के पहिले जागृत हो जाते थे, सूत्रों का स्वाध्याय कई समय वे अपने शिष्यों के साथ करते, शिष्य भी जल्द उठ पूज्य श्री के साथ स्वाध्याय करने लग जाते थे।

धीमे-धीमे परन्तु गंभीर और सुमधुर स्वर से इस स्वाध्याय को सुनने का जिन-जिन भाग्यशाली साधु-श्रावकों को सुअवसर प्राप्त हुआ है वे कहते हैं कि हमारे जीवन की वे सफल घड़ियाँ थीं, उस समय का दृश्य कितना रम्य, बोधप्रद और आकर्षक था कि सिर्फ अनुभव से ही ज्ञात हो सकता है। सूत्र की अलौकिक वाणी का प्रवाह रात्रि की नीरव शांति में पूज्य श्री जैसे पवित्र पुरुष के मुख कमल में से बहता तब उसका प्रभाव कुछ भिन्न ही पड़ता था।

बालकों को शिक्षा देने का शौक

लघुवय से ही बालकों को सत्पुरुषों के संसर्ग का लाभ मिलता रहे तो उनके चारित्र का बंध उच्चतम हो जाता है। उत्तम गुण उनमें स्वयं प्रकट हो जाते हैं। इसीलिये प्राचीन समय के श्रावक अपने बालकों को व्यवहारिक शिक्षा देने के पश्चात् धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये सद्गुरुओं के पास भेजते थे।

मोरवी में जब पूज्य श्री का चातुर्मास था तब जैन शाला के विद्यार्थी महाराज श्री के सत्संग का लाभ लेते। पूज्यश्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने के लिये अत्यंत आतुरता के साथ व कोमल वयस्क बालक हमेशा पूज्यश्री के पास आते, भक्ति के रंग में रंगा हुआ उनका कोमल हृदय कमल वहां प्रफुल्लित हो जाता था और विनय से झुककर उनके शीष कमल पूज्य श्री के पदकमल का स्पर्श करते थे। इस विधि के पश्चात् वे सब सुमधुर ध्वनि से 'जयवंता प्रभुवीर' का गायन ललकारते थे। उस समय का दृश्य अत्यंत रमणीक लगता था। गायन के पश्चात वे पूज्य श्री के पास मर्यादा से बैठ जाते थे। ऐसे छोटे बालकों के योग्य कर्तव्य समझाने के लिये पूज्य श्री अपनी रसाल वाणी का प्रयोग युक्तिपूर्वक करते कि जिससे बच्चों को आनन्द के साथ ज्ञान प्राप्त हो और अपना कर्तव्य क्या है उसे स्पष्ट समझ लें।

'कम खाना और गम खाना, पढ़ना ज्ञान, देखना अपना दोष, मानना गुरु वचन, सुनना शास्त्र, ग्रहण करना हितशिक्षा, देना हितोपदेश, लेना परायागुण, सहना परिषह, चलना न्यायमार्ग, खाना गम, मारना मन, दमना इंद्रिय, तजना लोभ, भजना भगवंत, करना जीवा जीव का जतन, अपना जाप, तपना तप, खपाना कर्म, हरना पाप, मरना पंडित मरण, तरना भवसागर, करना सबका भला, धरना ध्यान, बढ़ाना क्रिया, रटना प्रभुनाम, हटाना कर्म, मांगना मुक्ति, लगाना उपयोग, करना जीवों का उपकार, रोकना गुस्सा, छोड़ना अभिमान, तजना झूठ, त्यागना चोरी, छोड़ना परस्त्री, रखना मर्यादा।'

ऐसे-ऐसे छोटे वाक्य बालकों को कंठस्थ याद करवाकर उसका रहस्य वे ऐसी खूवी से तथा मनोरम दृष्टांतों से समझाते कि बालकों के हृदय पर उनकी गहन छाप पड़ जाती कि जो कभी न हट सके और एक नैतिक शिक्षा का अमल उस दिन से ही प्रायः प्रारम्भ हो जाता था।

पाठक! स्कूल में नीति पाठ रटा-रटा बालकों के मस्तिष्क में ठूंस-ठूंस कर भरते हैं परन्तु उनका बहुत प्रभाव नहीं पड़ता। घर में माता-पिता बार-बार जो शिक्षा देते हैं वे भी उनके गले नहीं बैठती, परन्तु ऐसे सच्चारित्री और प्रभावशाली महात्माओं के बोध से तत्काल प्रभाव पड़ता है यह उनके चारित्र का ही प्रभाव समझना चाहिए। मोरवी के जैसी शुभ प्रवृत्ति राजकोट के चातुर्मास में भी पूज्यश्री की ओर से प्रचलित रही।

अवकाश मिलने पर बालकों को अपने समीप विठाकर पंचपरमेष्ठी मंत्र सिखाते थे, उसकी अपार महिमा समझाते, सोते उठते बैठते, प्रभु के नाम के गुणों की याद करने की सुचाते थे, नवकार मंत्र को उच्चारण करते समय चंचल मन अन्य विषयों में गति न करे इसलिए आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी की उपयोगिता समझाते, इतना ही नहीं, परन्तु वालकों को अनुपूर्वी की पुस्तक की मदद लिए विना ही अंगुली के इशारे द्वारा गिनने की रीति समझाते थे, ऐसी-ऐसी रीतियां सीखना वड़े मनुष्यों को भी कठिन और कंटाले जैसा मालूम होती है, परन्तु पूज्य श्री की प्रशंसनीय शिक्षा पद्धति से वालकों को ये रीतियां सरल और आनंद प्रदायक मालूम होती थीं।

अन्य मुनिवरों का ध्यान इस ओर खींचना लेखक अपना कर्तव्य समझ विनयपूर्वक प्रार्थना करता है। बालक ये भविष्य का संघ है। थोड़े वर्ष पश्चात् वीर शासन के रक्षा की धुरी इन्हीं के स्कंध पर रखी जायेगी इसलिए उन्हें अभी से ऐसी शिक्षा देना आवश्यक है कि जिससे उनके हृदय में धर्म पर प्रेम जगे। वे धर्म के सच्चे रहस्य को समझ सद्वर्तावशाली और सुखी हों एवं थोड़ी उम्र में ही वे धर्म को दिपाने वाले शासन के शृंगार रूप बन जायं नहीं तो ज्ञान के बिना धर्म सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा का जो परिणाम होता आ रहा है वह सब दृष्टिगत होता ही है।

निश्चय पर अटलता

पूज्यश्री स्वशक्ति और परिस्थिति का पूर्णता से विचार कर प्रबल बुद्धिमता से जीवन के उद्देश्य निश्चित करते थे। फलां कार्य करना है और फलां नहीं करना है। वह मार्ग जाने योग्य है और वह अयोग्य है ऐसी-ऐसी प्रतिज्ञाएं लेते, फिर प्राण की परवाह न कर उन्हें बराबर पालते थे।

देहं पातयामि वा कार्य साधयामि

यही उनका मुद्रा लेख था। छोटी उम्र से वे दृढ़निश्चयी थे। छोटे या बड़े प्रत्येक निश्चय में वे मेरू की तरह अटल रहते थे।

दीक्षा लेने का उनका निश्चय फिराने वास्ते कुटुम्बी जनों ने आकाश-पाताल एक कर डाला, अनेक परिसह आये, कैद में भी रहे, परन्तु ये नेक सत्याग्रही महापुरुष अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। साध्य प्राप्त करने की दृढ़भावना वाले महापुरुष अपने मार्ग में चाहे जैसे आरण आवें उन्हें प्रबल पुरुषार्थ द्वारा किस तरह हटा देते हैं इसकी शिक्षा पूज्यश्री के जीवन में पद-पद पर मिलती है। मन वश करने के लिये निश्चय की निश्चलता एक उत्कृष्ट साधन है और जिन्होंने मन जीता, उन्होंने सब जीत लिया। मन और इंद्रियों पर विजय प्राप्त करना यही सच्चा जैन धर्म है। जगत् की सब सिद्धियां मन बल से, मन की दृढ़ता से सिद्ध हो सकती है। पूज्यश्री आशातीत उन्नति साध सके यह उनके मनोनिग्रह का ही आधार है। उनके जैसे निश्चल, निश्चलवान, पवित्र चारित्रवान, प्रभाविक महापुरुष की भावनाएं हृदय में उतारकर उन-सा पुरुषार्थ कर स्व-परहित साधना यही कर्तव्य है, यही कर्तव्य है और यही परम साध्य है। यह कर्तव्य और प्राप्तव्य जितना समीप-पास हो उतनी ही जीवनयात्रा की सफलता है।

अपने आर्य धर्म ग्रंथों का प्रधान आशय एक्यता से भरा हुआ है परन्तु मताग्रह के कारण ऐक्य की कड़िया ढीली होती जाती है और अवनति को अवकाश मिलता जाता है। स्वयं जानबूझकर जहर खाते हैं, जानबूझ कर अपना अकल्याण अपने हाथ से ही करते हैं, स्वार्थपूर्णता के कारण प्रकृति ने न्याय न किया, कुदरत की प्रणाली पलट जाय, निश्चयन खूंटी पर रखा जाय, वहां उदय की आशा व्यर्थ है। मीठे तरुवरों की जड़ें काट फिर फलों के गिरने से उनकी पूजा करना हास्यजनक गिना जाता है। संदेह के बदले सत्य का आदर होना चाहिये। संदेह में पड़े रहने से भलाई किसमें है यह दृष्टिगत नहीं होती तो फिर भला कैसे हो ?

एक अनुभवी महाशय सलाह देते हैं कि संसार में सत्य और मिथ्या का मिश्रण कुछ तरह फैला हुआ दृष्टिगत होता है उसमें सत्य को ग्रहण कर झूठ को त्याग देना यही मनुष्य कर्तव्य है। इस

मनुष्य के देव और देवत्व प्राप्त करने में अधिक भोग देना पड़ता है। उस समय दृढ़ता से आगे बढ़ा जाय और असत्य के आकर्षणों से बचा जाय यही सच्ची कसौटी है।

अंतःकरण में उठते असंख्य विचारों-विकारों को वश करने का बल यही हृदयबल, यही सर्वोत्कृष्ट बल 'साधयति आत्मकार्य मिति साधुः।'

लेखक—दुर्लभजी त्रिभुवनदासजी जौहरी
जयपुर

परिशिष्ट

पण्डित प्रवर पूज्यश्री 1008 श्री जवाहीरलालजी महाराजानां
सुशिष्येण श्रीघासीलालजी मुनिना विरचितम्।

स्वर्गवासि—पूज्यप्रवर श्री 1008 श्रीलालजी महाराजस्य

पूज्यगुणादर्शकाव्यम्

श्रीसन्दोइलसत्स्वरूपविभया यो मोदयन्मेदिनिं
लावंलावमलीलवल्लवमपि क्रोधादिकर्मोद्भवम्।
लङ्कानिर्दहनोपमं च मदनं योऽधाक् त्रिदुःखच्छिदे
मुक्तं पादचतुष्टयादिचरमैर्वर्णैरमुं स्तौम्यहम् ।।1।।

जिन्होंने शोभा समूह से देदीप्यमान आकृति की प्रभा द्वारा संसार को प्रसन्न किया, क्रोधादि कर्मों के कारणों को एक-एक कर के काट दिया एवं जिस प्रकार हनुमान ने लङ्का का दहन किया था ठीक वैसे ही जरा-जन्म-मरण रूप दुःखों को मिटाने के लिये जिन्होंने काम को नष्ट कर दिया, शरीर से मुक्त-उन पूज्य श्रीलालजी मुनि की इस पद्य के* चारों चरणों के आद्यन्त अक्षरों से वन्दनापूर्वक मैं स्तुति करता हूँ। लंका दहन की उपमा लोकोक्ति है ।।1।।

कल्याणमन्दिरनिभात्सुरमन्दिरस्थात् श्रीलालपूज्यकरुणावरुणालयाद्य।
कल्याणमन्दिरमवाप्तुमना विनौमि कल्याणमन्दिरपदान्तसमस्यया त्वम्।।2।।

कल्याणागार, स्वर्गस्थ, करुणानिधि पूज्य श्रीलालजी से अधिक कल्याण प्राप्त करने की इच्छा से ही कल्याणमन्दिरस्तोत्र के पद को** अन्तिम समस्या के रूप में लेकर उक्त श्री चरणों की स्तुति करता हूँ।।2।।

जन्मान्तरीयदुरितात्तविपत्तिरद्य सावद्यहृममभिपद्य विपद्यमानः।
पूज्य ! त्वदीयपदपद्ममहं श्रयाणि कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि।।3।।

हे पूज्य ! जन्मान्तर में किये पापों से पीड़ित, सम्प्रति भी कुकर्मों को ही ध्येय- ग्राह्य समझ कर अपनाने से उद्विग्न मैं आपके चरणकमलों का आश्रय लेता हूँ। क्योंकि, आप के चरणकमल ही सुख निकेतन, अत्यन्त उदार एवं पापों के नाशक हैं।।3।।

दुःखी स्वदुःखशमनाय सुखी सुखाय धीमान् धियेऽधरदं सुकृती शमाय।
यत्ते सुपूज्य ! शुभसद्म तदा स्मराणि भीताऽभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रियुग्मम्।।4।।

हे सुपूज्य ! आपके जिन चरणों को दुःखी सुख की कामना के लिए, सुखी एकान्त सुख के निमित्त, बुद्धिमान् प्रज्ञावृद्धि के लिए तथा धार्मिक जन शान्ति के लिए आश्रयण करते हैं, उन्हीं

---

* श्रीलाल मुनि वन्देऽहम्

** इस काव्य के प्रत्येक श्लोक का अन्तिम पद कल्याणमन्दिर श्लोक से पूरा लिया गया है।

चरणों का मैं स्मरण करता हूं कारण कि, संसारभयोद्विग्न मनुष्य को वे ही प्रशस्तचरण अभयदान दे सकते हैं।।4।।

लोकेषु भूर्भुवि नरो नृषु मानतन्तु- स्तेनापि चेन्न हि भवेदणुजीवमन्तुः।
तेनाप्यमेति भवतेति तरिं व्यवोधि संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तुः।।5।।

तीनों लोकों में पृथ्वी बड़ी है, पृथ्वी में मनुष्य श्रेष्ठ गिना जाता है, मनुष्यों में विवेक की पूजा होती है और विवेक में भी अहिंसात्मक ज्ञान को आराध्य समझा जाता है कारण कि, उसी से मनुष्य अपने ध्येय को प्राप्त करता है। आपने भी वही सर्वोत्तम ज्ञान रूप नौका ही अपार संसार में डूबते हुए मनुष्यों को साधन बतलाया है।।5।।

तं त्वां स्मरामि सततं य इह प्रपञ्च-पञ्चाननाञ्चितकलावमलोमलेऽपि।
ग्राहेऽगृहीत उदगा दिवमङ्घ्रियुग्मम् पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य।।6।।

महाप्रपञ्चरूपी सिंह से युक्त, महामलिन, ग्राह समान दूर से ही पकड़ने वाले इस विकराल कलिकाल में भी मात्र वीर प्रभु के चरणों को ही नमस्कार कर आप स्फटिक तुल्य निर्मल तथा विषयों में अनासक्त रह कर देव लोक में पहुँच गये वैसे ही मैं भी आपका स्मरण करता हूं कारण कि, स्वर्गारोहण की पद्धति आप बता ही गये हैं।।6।।

दुर्दान्तदम्भिमदनोदनिदानमोद पाथः पयोदवचनस्य तव स्तुतिं काम्।
कुर्यामहं न गदितुं स हि यां समीष्टे यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः।।7।।

दुर्दान्त दम्भियों के मद को चूर करने का कारण तथा अमृत जल वर्षी मेघ के समान धीर-वचन वाले आप की स्तुति मैं (क्षुद्र) तो क्या ही कर सकता हूं किन्तु प्रसिद्ध वक्ता वृहस्पति भी नहीं कर सकता क्योंकि आप गरिमा के सागर हैं।।7।।

वाचा धनेन करणेन कृतेश्चयेन प्रीणन्तु सन्तमसुमन्तमथो कियन्तः।
स्तन्वन्तु तान् तव दृशाऽऽदिशतोऽतिमोदं स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम्।।8।।

मन वचन और काया से एवं अन्यान्य साधनों से जो मनुष्य सत्पुरुषों को अथवा जीव मात्र को प्रसन्न कर सकते हैं उनकी स्तुति साधारण भी कर सकते हैं किन्तु दृष्टिमात्र से एकान्तात्यन्त आनन्द देने वाले आपकी स्तुति तो प्रगल्भ तथा विस्तृत बुद्धि मनुष्य भी नहीं कर सकता।।8।।

आसाद्य भासुरधनानि वसुन्धरां च सम्राट् पदं भजतु कोपि नृपासनस्थः।
त्वन्तून्नतः प्रतिनिधिर्हृदयंगतोऽभू-स्तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोः।।9।।

देदीप्यमान धन, विशालवसुंधरा और सम्राट पद को कोई भी (साधारण) मनुष्य प्राप्त कर सकता है किन्तु कमठ नामक तापस के मद को चूर करने वाले तीर्थंकर के प्रतिनिधि तथा प्रिय बनकर सब से उच्च आसन पर आप ही बैठते थे।।9।।

यो मत्सरं समपनीय दधार हार्दं हित्वैव स्वार्थमपरार्थविधिं व्यधत्त।
शक्तिं विनापि वहुभक्तिवशोऽधिकाश-स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये।।10।।

हे पूज्य! जो आपने द्वेष छोड़कर विश्वव्यापी प्रेम धारण किया था और अपना स्वार्थ छोड़ कर परमार्थ का ही विधान किया था उन आपकी स्तुति केवल भक्तिवश होकर ही शक्ति के विना भी मैं करूंगा।।10।।

ब्रूमः कथं हृदयहैमगिरेः प्रभुतां, शान्तिक्षमासुजनताकरुणानदीं ते।
यत्कारुकर्मकरतोऽहमनीश एतत् सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूपम्।।11।।

आपके हृदयरूप हिमालय से निकली हुई शान्ति, क्षान्ति, सुजनता, तथा दया रूप नदी की तो मैं क्या महिमा कर सकता हूं किन्तु जिसको चित्रकार लोग हाथों से लिख सकते हैं उस आपके स्वरूप को मैं सामान्यतः भी नहीं कह सकता।।11।।

यत्कर्मवीरमतिधीरचरित्रलेखे वाणी विचिन्तयति नीतललाटपाणी।
शेपो न चेश इह मन्दधियोऽपि तस्मा-दस्मादृशाःकथमधीश! भवन्त्वधीशाः।।12।।

जिस अत्यन्त बुद्धिमान् कर्मवीर का चरित्र लिखने के लिये सरस्वती भी मस्तक पर हाथ रख कर चिन्ता में पड़ती है, शेष भी सहस्त्र मुख से नहीं कह सकता। हे नाथ! फिर हमारे सरीखे मन्दबुद्धि समर्थ कैसे हो सकते हैं। (शेष का नाम लोकोक्ति है)।।12।।

कुर्मो वयं वहुविधां द्रुमवर्णनां तु किन्तावता सुरतरु-प्रभव-प्रभावः।
वाच्यस्तथैव तव वर्णनहीनसन्धो धृष्टोऽपि कौशिकशिशुर्यदि वा दिवान्धः।।13।।

हम लोग साधारण वृक्षों का वर्णन अनेक प्रकार से कर सकते हैं किन्तु कल्पवृक्ष का प्रभाव नहीं कह सकते जैसे उल्लू का वच्चा अपनी जाति में कदाचित् ढीठ भी हो तो क्या सूर्य को देख सकता है? इसी प्रकार हम आपके वर्णन में कृतप्रतिज्ञ नहीं हो सकते।।13।।

मल्लं हयं गजमजं धनिनं वदान्यं संवर्णयेयमिति किं भवतोऽपि नूयाम्।
घूकोऽवलोकयति वस्तु विहायसैति रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः।।14।।

जिस प्रकार मल्ल (पहलवान), घोड़ा, हाथी, वकरा, धनी और दानी का वर्णन हम अच्छी तरह से कर सकते हैं क्या? उसी प्रकार आपका भी वर्णन कर सकते हैं? नहीं, नहीं उल्लू अपनी आवश्यकता की वस्तुएं देखता और आकाश में भी गगन करता है तो क्या सूर्य का स्वरूप भी कभी देख सकता है?।।14।।

गुर्वाश्रम श्रमकृदस्तसमस्तदोप- स्तोपान्वितोऽपि विवुधोऽपि कुशाग्रवुद्धिः।
शक्तो न वक्तुममितां भवदीयकीर्तिं मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ! मर्त्यः।।15।।

गुरु के आश्रम में श्रम करने वाला, समस्त पापों को नाश करने वाला, प्रसन्न चित्त, विद्वान् तथा तीक्ष्णबुद्धि मनुष्य मोह के क्षय से (मोहनीयकर्म के क्षयोपशम से) सांसारिक पदार्थों का अनुभव करता हुआ भी हे नाथ! आपकी विशाल कीर्ति को नहीं कह सकता ।। 15।।

पारे परार्द्धमभिते गणिते गरिष्ठो रात्रिंदिवा यदि भवेद्गणनैकनिष्ठः।
गीर्वाणजीवनशतं नियतं च जीवे- न्नगुणान्गणयितुं न तव क्षमेत।।16।।

सब संख्याओं में बड़ी संख्या को परार्द्ध (अन्त संख्या) कहते हैं। उस संख्या में निपुण भी [illegible] मनुष्य देवताओं की आयुष्य प्राप्त कर के आपके गुणों की गणना करने में कृतकार्य नहीं हो सकता।।16।।

[illegible] परिमाणितानि।
[illegible] प्रकटोऽपि यस्मात्।।17।।

आपके सुतरां शांत मन से वाणी द्वारा प्रकटित भी भाव (अभिप्राय) सांसारिक प्राणी नहीं गिन सकते जैसे कि, जल निकाल डालने से प्रकटित, समुद्र के रत्न बड़े से बड़ा हिसाबी व्यौपारी भी गिन नहीं सकता।।17।।

निर्गण्यगुण्यशुभपुण्यसुपूर्णकाय- कारुण्यपूर्णकरणस्य विभोर्गुणौघः।
गण्यो न ते गुणनिधेर्जगदार्तिहर्त्तु र्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः।।18।।

असंख्य गुणों से युक्त एवं मांगलिक पुण्य से पूर्ण है शरीर जिनका और करुणा रस से भरी हुई हैं इन्द्रियां जिनकी ऐसे गुणाकर तथा संसार के त्रिविध दुःखों को दूर करने वाले आपके गुण गणों की गणना नहीं हो सकती कारण कि, समुद्र के रत्नों की गणना अद्यावधि नहीं हो सकी।।18।।

नाहं कविर्न च सुकर्कशतर्कशीलो यद्गौरवात्कृतमतिस्तव वरणनेऽस्याम्।
वाचालयत्यतिमहात्मगुणो हि मूक-मभ्युद्योऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि।।19।।

हे नाथ! मैं कवि नहीं हूं शब्द शब्द में तर्क करने वाला तार्किक भी नहीं हूं जिससे आपकी स्तुति करने का विचार करूं किन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि, महात्माओं के गुण मूक को भी वाचाल बना देते हैं इसी आशा से मन्दबुद्धि भी मैं आपके गुण गायन में प्रवृत्त हुआ हूं।।19।।

मन्त्रप्रभाव इव सज्जनशक्तिरात्म-सेवापरं निजगुणेन गुणीकरोति।
स्यां सिद्ध एवमिह ते स्तवने प्रर्वेत कर्त्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य।।20।।

महात्माओं के समीप रहने से मन्त्र के प्रभाव समान महात्माओं के गुण भी मनुष्य को गुणी बना देते हैं ठीक इसी तरह आपकी स्तुति करने में मुझको आपके प्रभाव से सिद्धि अवश्य मिल सकेगी इसी आशा से जाज्वल्यमान अनेक गुणों के निधान आपकी स्तुति करने के लिये मैं उधत हुआ हूं।।20।।

हास्यं श्रमे सफलयेदिह मे विपश्चित् कामं ततो नहि मनागपि मे विषादः।
हास्यास्पदं गुणवतां वियतः प्रमाणे बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्त्य।।21।।

आपकी स्तुति करने में मैं जो श्रम करता हूं इस श्रम को देख कर यदि विद्वान् लोग हंसे तो यथेष्ट हंस लें मुझे इस में कुछ विषाद न होगा क्योंकि आकाश के प्रमाण को बतलाने के लिये हाथ फैलाने वाला बालक विशेषज्ञों का हास्यपात्र अवश्य होता है।।21।।

श्रीमद्गुणाब्धिरहमल्पपदार्थलब्धि-र्भेदेमहत्यपि गुणान् कथये तथा ते।
कूपस्थितोऽप्यनवलोकितलोकमेको विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः।।22।।

आपके गुण तो अगाध सागर हैं तथा मेरी बुद्धि अल्पज्ञ है इस प्रकार का महान् भेद (दिन रात का फर्क) रहने पर भी जो मैं आपके गुणों को कहने की धृष्टता करता हूं सो उस कूप मंडूक के समान है जो संसार और सागर को न जानता हुआ भी उक्त दोनों की विस्तारता कूप में ही अपने पांव फैलाकर दिखलाता है।।22।।

सन्तः कियन्त इह सन्ति वदन्ति धर्मं पञ्चव्रतान्यपि धरन्ति महीमटन्ति।
त्वय्येव ते तु निजदर्शकहर्षिणोन्त-र्ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश!।।23।।

हे नाथ! इस अपार संसार में कितने ही साधु महात्मा हैं जो सदा धर्मोपदेश देते पांच महाव्रतों को पालते एवं दूसरों से पलवाते पृथ्वी में फिरते हैं किन्तु अदृष्टपूर्व दर्शकों को आनंद देने

वाले गुण आप ही में थे जो अन्यान्य मुनियों में नहीं मिल सकते थे इसका साक्षी वही हो सकता है जिसने कदाचित् आपके दर्शनों का लाम उठाया होगा।।23।।

ये सद्गुणास्तव हृदाद्रिदरीनिलीना-स्त्वत्कण्ठमार्गमसदन्न हि जातु कुत्र।
साकं त्वयैव विधिना दिवि संप्रयाता वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः।।24।।

जो सद्गुण आपकी हृदय रूपी गुफा में छिपकर बैठे थे कभी भी आप के कंठ मार्ग द्वारा बाहिर नहीं आये थे (अपनी प्रशंसा आप कभी नहीं करते थे) वे गुण दैवयोग से स्वर्ग तक आप के साथ ही पहुंचे इसी से उनको यथावत् कहने का अवकाश मुझे प्राप्त नहीं हो सका।।24।।

आत्मप्रबोधविरहात्कलहायमानानूजाग्रत्प्रपञ्चकलिकालविवञ्चितांश्च।
अस्मान् विहाय दिवसंगमनं तवैत-ज्ञाता तदेवमसमीक्षितकारितेयम्।।25।।

आत्मज्ञान के अभाव से परस्पर कलह करते हुये तथा महाप्रपंची इस विकराल कलिकाल से छले हुए हमको छोड़ कर आप स्वर्ग को सिधारे कदाचित् आप ने अविचारित कार्य किया है तो यही किया है।।25।।

श्रीमत्कृपाकृतिचयोपकृता वयं स्मो नो शक्नुमोऽत्र भवतां प्रविकर्त्तुमेव।
कुर्मः स्तवं परमिहोपकृता यथाव-ज्जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि।।26।।

हे पूज्यवर! आपकी कृपा और क्रिया से हम अधिक उपकृत हुए हैं किन्तु प्रत्युपकार करने की शक्ति न होने से मात्र आपका गुण गायन ही करते हैं कारण कि उपकृत पक्षी भी अपने उपकारी की गद्गद्वाणी से स्तुति करता है।।26।।

यस्मान्न्यवर्ततभवान् विषयोपभोगाद् रोगादिव प्रतिदिनं व्यलिखत्तमेव।
श्रोतुर्हृदाकृतिपटे भयदं हि चित्र-मारतामचिन्त्यमहिमा जिनसंस्तवस्ते।।27।।

हे पूज्य! जिन विषयोपभोगों को रोग समझ कर आप दूर हटाते थे प्रत्युत् श्रावकों के भी हृदयपटल पर उसी को लिखते थे और स्वरचित, अचिन्त्य महिमा, जिनेन्द्र संस्तव करने में जो आपकी अलौकिक शक्ति का प्रत्यय मिलता था इत्यादि का वर्णन कैसे कर सकूं।।27।।

यस्ते पवित्रितजगत्त्रितयं विचित्रं चित्ते चरित्रमतुलं सततं विदध्यात्।
तस्योन्नतिरिहपरत्र किमत्र चित्रं नामापि पाति भवतो भतो जगन्ति।।28।।

त्रिलोकी को पावन करने वाले जो आपके विचित्र तथा अनुपम चरित्र को हृदयङ्गम करेगा उसकी उभय लोक की अवश्य उन्नति होगी इसमें आश्चर्य ही क्या है? कारन कि आपका नाम ही असार संसार से रक्षा करने वाला है।।28।।

श्रीमद्वियोग इह साधुसमाजनिष्ठान् दुःखाकरोति नितरां सुजनान् तथैव।
[illegible]।।29।।

हे पूज्य! श्री आपका वियोग साधुमार्गी जैन समाज को तथा सज्जनों को वैसे ही अत्यन्त दुःखी बना रहा है जैसे कि, [illegible]।।29।।

आपके सुतरां शांत मन से वाणी द्वारा प्रकटित भी भाव (अभिप्राय) सांसारिक प्राणी नहीं गिन सकते जैसे कि, जल निकाल डालने से प्रकटित, समुद्र के रत्न बड़े से बड़ा हिसाबी व्यौपारी भी गिन नहीं सकता।।17।।

निर्गण्यगुण्यशुभपुण्यसुपूर्णकाय- कारुण्यपूर्णकरणस्य विभोर्गुणौघः।
गण्यो न ते गुणनिधेर्जगदार्तिहर्त्तु र्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः।।18।।

असंख्य गुणों से युक्त एवं मांगलिक पुण्य से पूर्ण है शरीर जिनका और करुणा रस से भरी हुई हैं इन्द्रियां जिनकी ऐसे गुणाकर तथा संसार के त्रिविध दुःखों को दूर करने वाले आपके गुण गणों की गणना नहीं हो सकती कारण कि, समुद्र के रत्नों की गणना अद्यावधि नहीं हो सकी।।18।।

नाहं कविर्न च सुकर्कशतर्कशीलो यद्गौरवात्कृतमतिस्तव वरणनेऽस्याम्।
वाचालयत्यतिमहात्मगुणो हि मूक-मभ्युद्योऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि।।19।।

हे नाथ! मैं कवि नहीं हूं शब्द शब्द में तर्क करने वाला तार्किक भी नहीं हूं जिससे आपकी स्तुति करने का विचार करूं किन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि, महात्माओं के गुण मूक को भी वाचाल बना देते हैं इसी आशा से मन्दबुद्धि भी मैं आपके गुण गायन में प्रवृत्त हुआ हूं।।19।।

मन्त्रप्रभाव इव सज्ञनशक्तिरात्म-सेवापंर निजगुणेन गुणीकरोति।
स्यां सिद्ध एवमिह ते स्तवने प्रर्वेत कर्त्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य।।20।।

महात्माओं के समीप रहने से मन्त्र के प्रभाव समान महात्माओं के गुण भी मनुष्य को गुणी बना देते हैं ठीक इसी तरह आपकी स्तुति करने में मुझको आपके प्रभाव से सिद्धि अवश्य मिल सकेगी इसी आशा से जाज्वल्यमान अनेक गुणों के निधान आपकी स्तुति करने के लिये मैं उद्यत हुआ हूं।।20।।

हास्यं श्रमे सफलयेदिह मे विपश्चित् कामं ततो नहि मनागपि मे विषादः।
हास्यास्पदं गुणवतां वियतः प्रमाणे बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्त्य।।21।।

आपकी स्तुति करने में मैं जो श्रम करता हूं इस श्रम को देख कर यदि विद्वान् लोग हंसे तो यथेष्ट हंस लें मुझे इस में कुछ विषाद न होगा क्योंकि आकाश के प्रमाण को बतलाने के लिये हाथ फैलाने वाला बालक विशेषज्ञों का हास्यपात्र अवश्य होता है।।21।।

श्रीमद्गुणाब्धिरहमल्पपदार्थलब्धि-र्भेदेमहत्यपि गुणान् कथये तथा ते।
कूपस्थितोऽप्यनवलोकितलोकभेको विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः।।22।।

आपके गुण तो अगाध सागर हैं तथा मेरी बुद्धि अल्पज्ञ है इस प्रकार का महान् भेद (दिन रात का फर्क) रहने पर भी जो मैं आपके गुणों को कहने की धृष्टता करता हूं सो उस कूप मंडूक के समान है जो संसार और सागर को न जानता हुआ भी उक्त दोनों की विस्तारता कूप में ही अपने पांव फैलाकर दिखलाता है।।22।।

सन्तः कियन्त इह सन्ति वदन्ति धर्मं पञ्चव्रतान्यपि धरन्ति महीमटन्ति।
त्वय्येव ते तु निजदर्शकहर्षिणोन्त-र्ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश!।।23।।

हे नाथ! इस अपार संसार में कितने ही साधु महात्मा हैं जो सदा धर्मोपदेश देते पांच महाव्रतों को पालते एवं दूसरों से पलवाते पृथ्वी में फिरते हैं किन्तु अदृष्टपूर्व दर्शकों को आनंद देने

वाले गुण आप ही में थे जो अन्यान्य मुनियों में नहीं मिल सकते थे इसका साक्षी वही हो सकता है जिसने कदाचित् आपके दर्शनों का लाभ उठाया होगा।।23।।

ये सद्गुणास्तव हृदाद्रिदरीनिलीना-स्त्वत्कण्ठमार्गमसदन्न हि जातु कुत्र।
साकं त्वयैव विधिना दिवि संप्रयाता वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः।।24।।

जो सद्गुण आपकी हृदय रूपी गुफा में छिपकर बैठे थे कभी भी आप के कंठ मार्ग द्वारा बाहिर नहीं आये थे (अपनी प्रशंसा आप कभी नहीं करते थे) वे गुण दैवयोग से स्वर्ग तक आप के साथ ही पहुंचे इसी से उनको यथावत् कहने का अवकाश मुझे प्राप्त नहीं हो सका।।24।।

आत्मप्रबोधविरहात्कलहायमानान्जाग्रत्प्रपञ्चकलिकालविवञ्चितांश्च।
अस्मान् विहाय दिवसंगमनं तवैत-ज्ञाता तदेवमसमीक्षितकारितेयम्।।25।।

आत्मज्ञान के अभाव से परस्पर कलह करते हुये तथा महाप्रपंची इस विकराल कलिकाल से छले हुए हमको छोड़ कर आप स्वर्ग को सिधारे कदाचित् आप ने अविचारित कार्य किया है तो यही किया है।।25।।

श्रीमत्कृपाकृतिचयोपकृता वयं स्मो नो शक्नुमोऽत्र भवतां प्रविकर्त्तुमेव।
कुर्मः स्तवं परमिहोपकृता यथाव-ज्जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि।।26।।

हे पूज्यवर! आपकी कृपा और क्रिया से हम अधिक उपकृत हुए हैं किन्तु प्रत्युपकार करने की शक्ति न होने से मात्र आपका गुण गायन ही करते हैं कारण कि उपकृत पक्षी भी अपने उपकारी की गद्गद्वाणी से स्तुति करता है।।26।।

यस्मान्न्यवर्ततभवान् विषयोपभोगाद् रोगादिब प्रतिदिनं व्यलिखत्तमेव।
श्रोतुर्हृदाकृतिपटे भयदं हि चित्र-मास्तामचिन्त्यमहिमा जिनसंस्तवस्ते।।27।।

हे पूज्य! जिन विषयोपभोगों को रोग समझ कर आप दूर हटाते थे प्रत्युत् श्रावकों के भी हृदयपटल पर उसी को लिखते थे और स्वरचित, अचिन्त्य महिमा, जिनेन्द्र संस्तव करने में जो आपकी अलौकिक शक्ति का प्रत्यय मिलता था इत्यादि का वर्णन कैसे कर सकूं।।27।।

यस्ते पवित्रितजगत्त्रितयं विचित्रं चित्ते चरित्रमतुलं सततं विदध्यात्।
तस्योन्नतिस्तिवह परत्र किमत्र चित्रं नामापि पाति भवतो भतो जगन्ति।।28।।

त्रिलोकी को पावन करने वले जो आपके विचित्र तथा अनुपम चरित्र को हृदयङ्गम करेगा उसकी उभय लोक की अवश्य उन्नति होगी इसमें आश्चर्य ही क्या है? कारण कि आपका नाम ही असार संसार से रक्षा करने वाला है।।28।।

श्रीमद्वियोग इह साधुसमाजनिष्ठान् दुःखाकरोति नितरां सुजनान् तथैव।
पित्सून् यथा जलमलं पयसामभाव-स्तीव्रातपोपहतपान्थजनान्निदाघे।।29।।

हे पूज्य! श्री चरणों का वियोग साधुमार्गी जैन समाज को तथा सत्पुरुषों को वैसे ही अत्यन्त दुःखी बना रहा है जैसे कि, आषाढ़ मास की कड़ी धूप से व्याकुल तथा प्यासे पथिक को जल का अभाव।।29।।

द्यामुद्गतेऽत्रभवति प्रगतोऽभिलाषो नःश्रोतुमत्र भवतो वचनं सुचारु।
दृष्टिं दयार्द्रविपुलां भवतः समीहे प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि।।30।।

आपके स्वर्ग में निवास करने से आपका वचनामृत तो हम पान कर नहीं सकते मात्र आपकी दयार्द्रदृष्टि की चाहना है कारण कि, पद्मसरोवर का पावन पवन भी संसार को पवित्र तथा प्रसन्न करता है।।30।।

यादृक् प्रमोदजलसान्द्रपयोद आसीद् दृग्वर्त्तिनि त्वयि मुने! व्यतरव् सुधौघम्।
तादृक्कुतस्तदपि विघ्नविषादयूथा हृद्वर्त्तिनि त्वयि विभो! शिथिलीभवन्ति।।31।।

हे विभो! आपकी उपस्थिति में सर्वत्र अमृतमय वृष्टि होती थी अर्थात् बाह्य एवं आन्तरिक दुःख या पाप छू तक नहीं सकते थे, अब आपके न रहने पर वे उच्च आनन्द तो खपुष्प हो गया है तो भी आपको आत्मसात् करने पर विघ्न और विषाद अवश्य शिथिल होते हैं।।31।।

ध्यानप्रभावविधिना मधुलिट्स्वरूपं कीटा भजन्त इति सन्त इहामनन्ति।
तद्वद् गुणांस्तव विभावयतो विभिन्ना जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः।।32।।

ध्यान एक ऐसी वस्तु है जिसके प्रभाव से साधारण, विजातीय कीट भी भ्रमर बन जाता है ऐसा सत्पुरुषों (विज्ञानवेत्ताओं) का कहना है वैसे ही आप के गुणों का ध्यान करने पर मनुष्य के अनेक जन्मोपार्जित कर्म बन्धन भी सुतरां क्षण मात्र में दूर हो सकते हैं क्योंकि–जब आप अशुभ कर्मों के बन्धन से मुक्त हैं तब आप को आत्मसात् करने वाला भी अवश्य वैसा ही होना चाहिये।।32।।

अस्मिन् द्विजिह्वजनजिह्ममये नृलोके प्राप्ता वयं हि मुनिजाङ्गुलिकं भवन्तम्।
इच्छन्ति खं त्वयि गते ग्रसितुं खला नः सद्यो भुजङ्गमया इव मध्यभागम्।।33।।

सर्पतुल्य द्विजिह्व तथा कुटिल लोगों से ठूंस-ठूंस कर भरे हुए इस संसार में विष के वैद्य एक आप ही थे, अब आपके स्वर्ग चले जाने पर सर्प रूप वे दुर्जन हमें हृदय में काटना चाहते हैं।।33।।

जाते दिवं त्वयिविभो! सुषमां सुधर्मा भेजे यथा सुरतरौसति नन्दनस्य।
देवैर्युतापि हि यथा शुकसङ्गतस्य सत्यांगते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य।।34।।

हे पूज्य! देवताओं से भरी हुई भी इन्द्र की सभा आपके पधारने से खूब सुशोभित हुई होगी–कारण कि, शुकादि पक्षियों से युक्त चन्दन वृक्ष की शोभा मोर के आने तथा अनेक वृक्षों से युक्त नन्दन वन की शोभा कल्पवृक्ष के होने से ही होती है (यह कवि की उत्प्रेक्षा है)।।34।।

वीर! त्वदीयदयया मिलितः सुपूज्यः कालेन संहृत इतो न जनोऽस्त्यनीशः।
तस्यानुकम्पनतयाऽऽप्तसुपूज्यवर्या मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा मुनीन्द्र!।।35।।

हे वीर प्रभो! आपकी कृपा से प्राप्त हुए पूज्य श्रीजी को तो काल उठाकर स्वर्ग में ले गया किन्तु इससे (यह) जन नायक हीन नहीं हो सका कारण कि, उक्त पूज्यश्री एक ऐसे पूज्य प्रतिनिधि को स्वस्थानापन्न कर गये हैं कि, जिनके कृपाकटाक्ष से ही असंख्य प्राणी बन्धनमुक्त हो रहे हैं।।35।।

श्रीलाल पूज्य ! महिमा तब किं निगाद्यो ऽविश्रान्तसञ्चितकलेस्त्रिविधाधिलीनाः ।
धैर्य मुदं नहि जहुर्बहुहन्यमाना रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।।36।।

हे श्रीलालजी पूज्य! अवर्णनीय आपकी महिमा का वर्णन क्या करें क्योंकि, आपके दर्शनमात्र से ही अविश्रान्तसंचित पाप कारणों से आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के दुखों में तल्लीन भी मनुष्यों ने धीरता और प्रसन्नता न छोड़ी इससे बढ़कर और प्रभाव ही क्या हो सकता है।।36।।

जागर्ति नृत्यति जने वृजिनं च तावद् यावद्व्ययौ दुरितपूरितचेतसापि ।
सूर्येऽन्धकार इव पापमपैति नूनं गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टिमात्रे ।।37।।

इस संसार में पाप जीता जागता तब तक ही प्रचंड तांडव करता है जब तक उसे पीठमर्दक पापी मनुष्य मिलते रहते हैं; लेकिन जब इन्द्रियों को वश करने वाले एवं देदीप्यमान कांति वाले आप जैसे महात्मा दृष्टिगोचर होते हैं तब पाप की वही दशा होती है जो कि, सूर्योदय में अंधकार की।। 37।।

दृष्टे भवत्यभिभवान् बहु पापमाप विष्वक् ययौ हि बहुशो भयभीतभीतम् ।
ग्रस्ता जना हि खलु तेन भयान्निरस्ता श्चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ।।38।।

आपके दृष्टिगोचर होते ही पाप के होश हवाश उड़ गये और वह चारों ओर भागने लगा जिससे पाप ग्रस्त (पाप से पकड़े हुए) लोग भी वैसे ही छूट गये जैसे कि, डर से भागते हुए चोर के हाथ से पशु छूट जाते हैं ।।38।।

ये संसृतेः कृतिपरानुपदेशदानै धर्माऽदरान् व्यधिवतेह नरान्मुनीशाः ।
शान्ति क्षमामपि ददुः सततं भविभ्य स्त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव ।।39।।

हे जिन! सांसारिक जीवों को भवसागर से पार लगाने वाले के ही मुनिश्रेष्ठ, पूज्यप्रवर हो सकते हैं अर्थात् जीवों के मोक्ष दाता पूज्यवर ही हैं आप नहीं हो सकते, कारण कि, सांसारिक कृत्यों में लवलीन मनुष्यों को दिन रात उपदेश देकर धर्मशील, शांति प्रिय एवं क्षमादि गुणयुक्त उक्त पूज्यवरों ने ही किया है।।39।।

तात्स्थ्यात्स धर्म इति सत्यवचो मुनीश ! धृत्वा जिनं हृदि जना दिवमुत्प्लवन्ति ।
दृग्भ्यो गतान् जिनपरान् भवतो जनाश्च त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।।40।।

हे मुनिराज! धर्म धर्मी में रहता है यह शास्त्र सिद्धान्त सत्य है, कारण कि, जिनेन्द्र को आत्मसात् करके मनुष्य स्वर्ग तक नहीं नहीं सिद्धिशिला तक पहुंच जाते हैं इसी से जिनेन्द्र में तल्लीन तथा अभी अन्तर्धान हुए आपको संसार सागर को पार करने की इच्छा वाले मनुष्य हृदयङ्गम करते हैं।।40।।

हित्वा हृदिस्थितमनोरथसर्वगर्वा स्तद्धीनधर्मवपुषो भवतो निधाय ।
भव्यो जनस्तरति संसृतिमेव सम्यग् । यद्वादृतिस्तरति यज्जलमेष नूनम् ।।41।।

सांसारिक जीव अपने अन्तःकरण से मनोरथ और अहंकार को दूर कर वीतराग, धर्ममात्र शरीर वाले आपको ही, हृदय में रखकर इस संसार से पार होते हैं, जैसे कि, वायु के प्रभाव से मशक भी अगाध जल से पार पा लेती है।।41।।

श्रीमन्तमेव हृदये निदधाति यस्मा त्तस्माज्जनो दिवमुपैति मतं ममैतत्।
उड्डीयते दिवि सदा पृथु पार्थिवं य- श्चान्तःस्थितस्य मरुतः स किलानुभावः।।42।।

यदि जीव स्वर्ग तक पहुंचते हैं तो वे निस्सन्देह पूज्यचरणों को मनोमंदिर में प्रतिष्ठा करते हैं, ऐसा मेरा मत है क्योंकि, जो भौतिक पदार्थ आकाश में उड़ता है सो उसमें स्थित वायु का ही प्रभाव है न कि, उस पृथुल पदार्थ का।।42।।

क्रोधादिषड्रिपुगणं विनिहत्य नूनं शान्तिं वितत्य च भवान्सुरमत्यशेत।
लोकोऽमुना विजित इत्यपि किं विचित्रं यस्मिन् हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः।।43।।

आपने इस लोक को जीत लिया, इसमें कौन बड़ी आश्चर्यजनक बात है कारण कि, आपने अन्तःकरणस्थ उन क्रोधादि शत्रुओं को जीतकर और शान्ति का विस्तार कर देवों को नीचा दिखलाया जिन (क्रोधादि) से हरिहर प्रभृति भी पार न पा सके।।43।।

आकीटकैटभरिपुर्दमनेन यस्य दीनो नु भामिनिपदं सभयं ह्युपास्त।
कान्तानिदेशवशतः कपितां समाप। सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।।44।।

जिस कन्दर्प के दर्प से कीट से लेकर विष्णु तक दीन बनकर स्त्री की सभय चरणसेवा करते हैं और स्त्री की आज्ञा बजाने में बंदर बन जाते हैं उसी दुर्दान्त दंभी काम को आपने पल भर में नष्ट भ्रष्ट कर दिया।।44।।

कामादयः समभवन् जगदाश्रयासाः पाशा इवेह सततं नृपशून् वबन्धुः।
कीलालमेव हि भवान् भविभिःसुलब्धो विध्यापिताहुतभुजःपयसाऽथ येन।।45।।

काम वगैरह संसाररूपी आश्रय को हड़प जाने वाली अग्नियें हैं इन्होंने पाश के समान अपनी देदीप्यमान ज्वालाओं से नर पशुओं (अज्ञानियों) को लिपटा रक्खा था, लेकिन आपको शीतल जल के समान पाकर मनुष्यों ने उन कामाग्नियों को बुझा डाला।।45।।

कामं जलं वदतु काममपीह कामी त्वां वाऽनलं वदतु नैव तथापि हानिः।
निर्वापयत्यनलमेव जलं न वेत्तु। पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन।।46।।

विषयी लोग भले ही काम को जल और आपको अग्नि समझें तो भी इसमें हानि नहीं, सर्वत्र जल ही आग को बुझाता है ऐसा उनका मानना भ्रम मात्र है, कारण कि, वड़वा नाम की अग्नि भी जल को भस्म कर देती है।।46।।

उड्डीयतेऽनिलरयेण रजस्तदेव नाऽऽसादितेह रजसा गुरुता च येन।
मत्प्राणरेणव इहाऽऽश्रयतस्त्वदीयात् स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्नाः।।47।।

वायु के वेग से वही धूलि उड़ सकती है जिसमें भारीपन न आया हो किन्तु हमारी प्राणरूपी धूलि आपको आत्मसात् करन से भारी हो चुकी है इसी से हे स्वामिन्! इन काम क्रोधादि रूप वायु से वह धूलि उड़ नहीं सकती।।47।।

ये शीर्मपर्णनिभसूक्तरा नरास्ते धूता भवन्तु मदकामसमीरणैश्च।
नीता भवन्तु गुणगौरवमादधानं त्वां जन्तवः कथमहो? हृदये दधानाः।।48।।

अहंकार व कामरूपी वायु उन्हीं को उड़ा सकती है, जो मनुष्य सूखे हुए पत्ते के समान

एक दम हलके हैं लेकिन गुणों की गुरुता को धारण करने वाले पूज्य चरणों को जो मनुष्य हृदय में धारण करते हैं उन्हें उक्त वायु उड़ा नहीं सकती।।48।।

पूज्याऽनुराग इह भक्तिरतो विमुक्ति- रेवं हि कार्यकरणं सुधियो वदन्ति।
विद्युत्प्रशक्तिमिति युक्तिमवेत्य भक्ता जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन।।49।।

पूज्य के चरणों का अनुराग ही भक्ति कहलाता है एवं भक्ति से ही मुक्ति होती है इस प्रकार का कार्यकारण भाव विद्वान् लोग कहते हैं, इसी से बिजली की सी शक्ति वाली उक्त युक्ति को जान कर अविलम्ब से ही भक्तजन जन्मरूपी महासागर को पार करते हैं।।49।।

सन्तो भवन्त इह नो विषयानभिन्दन् संखेदयन्ति हृदयानि परासवोऽपि।
ते चैव सम्प्रति न नो हृदयात्प्रयान्ति, चिन्त्यो न हन्त ! यदि वा महतां प्रभावः।।50।।

इस संसार में रहते हुए आपने हमारे प्रिय विषयों को हमसे छुड़ाया और स्वर्ग में जाकर वियोगरूपी दुःख खड़ा कर दिया, इस तरह भारी विरोध करने पर भी हमारा हृदय आपको छोड़ता नहीं, इसी से सिद्ध होता है कि, महान् आत्माओं का (सत्पुरुषों का) प्रभाव अचिंतनीय है।।50।।

संवीक्ष्य दिक्षु जनतापदपापलीना नस्मान्दुरुद्धरतरान् रूषया गतोऽसि।
त्वं क्रोधनः कथमभूरिति विस्मयो नः क्रोधस्त्वया ननु विभो ! प्रथमं निरस्तः।।51।।

दशों दिशाओं में पापलिप्त एवं मुश्किल से उद्धार करने योग्य हम लोगों को देख आप खिसलाकर यहां से चलते बने किन्तु आप क्रोध के आवेश में क्यों कर आ गये यही हमें आश्चर्य होता है कारण कि, हे विभो ! क्रोध को तो आप प्रथम ही जीत चुके थे।।51।।

आचार्यवर्य ! भवताऽपि वतापि रोषोऽ शेषो न चेत्तदपि सत्यममुष्य लेशः।
नो चेद्वयं विरहिता रहिता हितौघै र्ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौरा।।52।।

हे आचार्यप्रवर ! खेद की बात है कि, पूर्ण रूप से तो नहीं किन्तु कुछ अंश में आप भी क्रोध की धमकी में आ गये यदि ऐसा न होता तो हितविमुख एवं दीनहीन हम लोगों को छोड़कर आप स्वर्ग में न चले जाते और अशुभ कर्मरूप चोरों का सर्वनाश न कर डालते इसका उत्तर आप ही दें।।52।।

आस्तां वितर्कविधिरेष न रोषलेशः श्रीमत्सु शान्तिसहिताऽस्त निरीहतैव।
सैवाऽजहादद्रुमततीर्हिमसंहितर्हि प्लोषत्यमुत्र यदिवा शिशिरापि लोके।।53।।

अथवा इस तर्क वितर्क को कल्पना मात्र ही रहने दो, आपमें तो क्रोध का लेश मात्र भी न था, सिर्फ शान्ति के साथ थोड़ी निरीहता (तमाम आशाओं का अभाव) थी वही बेगर्जी हम लोगों को छोड़ कर स्वर्ग चले जाने में कारण हुई क्योंकि, शीतल भी हिम वृक्षसमूह को जला कर खाक कर डालता है।।53।।

दुर्दान्तषड्रिपुपुरातनकर्मचौरा श्चूर्णीकृतास्तव सुशान्तिनिरीहिताभ्याम्।
दाह्यानि दावदहनैर्दहतीह तानि नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी।।54।।

अदम्य क्रोधादि छः शत्रुओं और पुराने चोर कर्म को आपकी अटल शान्ति और निरभिलाषिता ने चूर-चूर कर दिया, कदाचित् संदेह हो कि, अत्यन्त मृदु तथा शीतल शान्ति ने वज्र का काम कैसे किया तो इसका निवारण यों है कि, वन के भयंकर अग्नि से (दावाग्नि) भस्म होने योग्य उन हरे भरे वृक्षों को हिमसंहति (हिम की अधिकता) भी जला देती है।।54।।

यस्योपदेशमवसाय विहाय मोहं सोऽहं विदन्ति च वदन्ति जगन्ति तत्वम्।
यस्य प्रभावमधिगन्तुमचिन्तयँश्च त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूपम्।।55।।

हे जिनेन्द्र! जिस पूज्यवर के उपदेश से योगी लोग मोहमाया को छोड़ कर 'सोऽहं सोऽहं (मैं वही हूं) तत्व को समझते और रटते हैं उस पूज्यवर के आत्मप्रभाव को जानने के लिये परमात्मरूप आपका ध्यान करते हैं।।55।।

तं पूज्यवर्यमविचार्य गतं द्युलोकं, सद्योऽनवद्यमतिहृद्यमनाप्य भक्ताः।
त्वां त्वत्पदे जिन ! निरस्य तमेवलोकाः अन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोशदेशे।।56।।

बिना विचारे स्वर्ग में सिधारे हुए, दूषण रहित, गुण रूप भूषण सहित उस पूज्यवर को न पाकर हे जिनेन्द्र! आपको ध्यान स्थान (हृदय) से निकाल कर भक्त अब उन्हीं पूज्य चरणों की खोज में है।।56।।

आसादयेप्सितपदं शिवमस्तु वर्त्म सुस्वागतं समुचितं दिवि ते विभातु।
पूज्य ! स्वपुण्यकिरणैरवलोकयास्मान् पूतस्य निर्मलरूचेर्यदि वा किमन्यत्।।57।।

हे पूज्य! आप अपना अभिष्ट पद प्राप्त करें, आपके लिये मार्ग मंगलमय हो, स्वर्ग में आपका समुचित स्वागत खूब धूमधाम से हो, अपने पुण्य प्रकाश से हम लोगों को भी कर्तव्य मार्ग बतलावें कारण कि, पवित्र एवं निर्मल कान्ति से इतना मांगना पर्याप्त है।।57।।

भूतस्तिरोहितवपुर्दिवि संगतोऽपि पूज्य ! प्रभाविन उपैधय साधुमार्गान्।
आत्मा हृषीकमिव शक्तिमृते किमन्य दक्षस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः।।58।।

हे पूज्य! जिस प्रकार आत्मा इन्द्रियों को चैतन्य शक्ति देता है वैसे ही स्वर्ग सिधारे हुए आप भी इस साधुमार्गी संप्रदाय को कर्तव्य शक्ति दो कारण कि, हृदय की शक्ति के बिना इन्द्रियां नाकामयाब ही होती हैं।।58।।

देवाधिदेव ! जिनदेव ! तदेव नाम ध्यानं सुदेहि मुनिभक्तमनोजनेभ्यः।
यस्मात्सुपूज्यवरसुन्दररूपमीपी ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन।।59।।

हे देवाधिदेव भगवान् जिनेन्द्र! मुनिभक्त, साधुमार्गी जनता को वह ध्यान दो जिससे आपके रूप के साथ साथ पूज्यवर का भी सुन्दर स्वरूप दीख पड़े।।59।।

अस्मिन्ननादिनिधने भुवि भूरिशोके तद्ध्यानतो मम दृशं समुपेतु पूज्यः।
लोकाः सुरानपि यतोऽप्यतिशेरते स्म देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।।60।।

सदा से आते हुए, मृत्युकारक तथा शोक वाले इस संसार में पूज्य चरणों का हम उस ध्यान से दर्शन करें जिस ध्यान से साधारण मनुष्य भी देवताओं को पराजित करते और शरीर छोड़ने पर परमात्मस्वरूप में लीन होते हैं।।60।।

पूज्य ! त्वदीयगुणचिन्तनमस्मदादीन् संशोध्य शुद्धमनसो विदधातु तद्वत्।
यादृक् कठोरमुपलं कनकत्वमेति तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके।।61।।

हे पूज्य! आपका गुणगान हमको ठीक वैसे ही शुद्ध बनाये जिस प्रकार तीव्र अग्नि पत्थर की कठोरता को छुड़ा कर उसे निर्मल स्वर्ण बना देती है।।61।।

गृह्णन्ति ये तव सुनाम वदन्ति भावं सम्यक् स्मरन्ति रमणीयवपुः सदैव।
तेऽपि त्वदीयगुणगौरवमाप्नुवन्ति चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः।।62।।

हे स्वामिन्! जो मनुष्य आपका नाम रटते हैं, आपके अभिप्रायों से वाणी को पवित्र तथा निर्मल करते हैं और आपके रमणीय स्वरूप का सदा स्मरण करते हैं वे भी आपके गुण-गौरव को प्राप्त करते हैं, जैसे लोहा वग़ैरह धातु पारस के संयोग से सोना बन जाते हैं।।62।।

योऽन्यं सदोपकुरुते दययाऽनृतं नो ब्रूते कदापि समतां न हि सञ्जहाति।
तादृकृतवानुकृदिहासमदीयपूज्यः अन्तःसदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वम्।।63।।

हे जिन! परोपकारी, हित तथा मनोहर भाषी एवं दया पूर्ण हृदय-सम्पन्न जैसे आप हैं वैसे ही आपका अनुकरण करने वाले हमारे भी पूज्य थे क्योंकि इसी से हमारे पूज्य के अन्तःकरण में आप हमेशा विराजते थे।।63।।

यद्रूपमाप्तमसुमद्भिरसोर्विशेषं चिन्तामणिप्रतिकृतं परिपूजितं च।
त्वं पूज्यरूपमधुना परिगृध्नुभिः स्म भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।।64।।

सांसारिक जीवों ने जिस मधुररूप को प्राणों से कई गुणा अधिक प्रिय समझ कर अपनाया था एवं चिन्तामणि के समान जिस रूप की पूजा करते थे व भव्यजीव जिस स्वरूप को देखना चाहते थे उस पूज्यरूप को आपने कैसे नष्ट कर दिया।।64।।

सन्त्वत्र सुन्दरतराणि मुखानि भूरि सर्वाणि किन्तु निजकृत्यपराङ्मुखानि।
तत्पूज्यकृत्यसुमुखं सुजनाः स्मरन्ति एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनोऽपि।।65।।

इस संसार में सुन्दर मुख क्रोड़ों की तादाद में हैं, किन्तु सब के सब अपने कर्त्तव्य से विमुख हैं मात्र कर्त्तव्य में तत्पर हे पूज्य! आपका ही स्वरूप था जिसका भूलोकवासी सज्जन सदा स्मरण करते हैं।।65।।

सम्प्रत्यसाम्प्रतमितो ह्यभवत्सुपूज्य प्रस्थानमत्रभवतो विबुधा वदन्ति।
स्वस्वाऽग्रहग्रहगृहीतसुविग्रहे के यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः।।66।।

वर्त्तमान समय में इस लोक से स्वर्ग को सिधारना यह आपने सचमुच उचित नहीं किया ऐसा ही सभी विचारशील मनुष्य कहते हैं क्योंकि, अपने अपने आग्रह (हठ) रूप ग्रह से मचे हुए लड़ाई झगड़ों को कौन मिटा सकेगा कारण कि, आपके समान महानुभाव ही उसका शमन कर सकते हैं।।66।।

जाते दिवं त्वयि विभो! सकला जनाशा जाता विनाशमभितोऽस्तपदावकाशा।
आशास्ति ते गुणगणेन गुणीकृतश्चे द्रात्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्य।।67।।

आपके स्वर्ग चले जाने पर हम लोगों की तमाम आशायें निराशा के रूप में मिलकर नष्ट भ्रष्ट हो गयी हैं सिर्फ एक ऐसी आशा शेष रही है जिससे आपकी अभेदबुद्धि द्वारा आपके ही गुणों से अपनी आत्मा को विद्वान् गुणसंपन्न बना सकेंगे।।67।।

पूज्य त्वदीयकृपया प्रतिमास्तवैव लब्धा विभान्ति मतिशान्तिधनाः सुपूज्याः।।
तद्ध्यानतद्गुणकरं प्रवदन्ति यस्माद् ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत्प्रभावः।।68।।

हे पूज्य! आपकी परमकृपा से आपके समान ही शान्त दान्त तथा अगाध मतिवैभव वाले पूज्य मिल गये हैं, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय) के गुण ध्याता (ध्यान करने वाले) में आ जाते

हैं ऐसी लोकोक्ति है, इसी से हे पूज्य! आपका ध्यान करने से आपका प्रभाव होना ही चाहिये था।।68।।

ध्यानं धारतलजुषां विदिप्रभावं ध्येयानुकूलफलमालभतेऽत्र योगी।
स्वस्यामरत्वमभिकांक्षिगदातुराणांपानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानम्।।69।।

सासांरिक जीव ध्यान के प्रभाव को खूब समझते हैं कि, ध्यानशील योगी ध्येय के अनुकूल (जिसका ध्यान किया जाय उसी के अनुसार) अभीष्फल को प्राप्त करते हैं, इसीसे ही अपने अमरत्व (सदा निरोगिता) को चाहने वाले रोगियों के लिये जल भी अमृतमय हो जाता है।।69।।

यो मासपूर्वमवदो बहु नो हितार्थं स त्वं स्मृतोऽपि शुभदो भव भव्यमूर्ते!
तिष्ठन्स्मृतोऽपि गरुडोऽहिरदक्षतानां किं नाम नो विषविकारमपाकरोति।।70।।

मास दो मास पहिले आप अनेक प्रकार के हितोपदेश दिया करते थे, अतः अब स्मरण किये गये भी आप शुभदायी हो कारण कि, जो गरुड़ सर्प के काटे हुए का विष प्रत्यक्ष होकर उतारता है तो क्या वह स्मरण करने से विष विकार को दूर नहीं कर सकता?।।70।।

निन्द्यो निरक्षर इति प्रथमं त्वनिन्दन् त्वच्छान्तिशीलविधिना विगतप्रभावाः।
निन्दन्ति तच्चरितमात्मगतं स्तुवन्ति त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि।।71।।

जो झूठे प्रतिवादी प्रथम आपकी निन्दा किया करते थे वे ही अब आपकी अटल शान्ति के प्रताप से प्रभावहीन होकर अपने निन्द्य एवं व्यर्थ जीवन की निन्दा करते, आत्मा को कोसते और अतीत पर पश्चात्ताप करते हुए अज्ञान को दूर करने वाले आपकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं।।71।।

येऽपि त्वदीरितपथाऽन्यपथप्रवृत्ता स्त्वद्देवदेवनमपोह्य परं भजन्ते।
तेऽपि त्वदीरितगुणाकृतिमन्तमेव नूनं विभो! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।।72।।

जो मनुष्य आपके बतलाये हुए मार्ग को छोड़कर दूसरे मार्ग में प्रवृत्त हैं एवं आपके आराध्य देव की वन्दना न कर दूसरे को हृदयङ्गम करते हैं; हे विभो! वे भी मनुष्य केवल हरिहर आदि की बुद्धि से आपके ही बतलाये हुए गुण तथा आकार को प्राप्त करते हैं।।72।।

येषां मतावतिविपर्यय एव जातो
येषां न वा मतिरभूत्तव ते प्रतीपाः।
पीतोऽथ सन्नपि जनैर्विदितोऽस्ति नान्धैः
किं काचकामलिभिरीश! सितोऽपि शंखः।।73।।

जिनकी बुद्धि उलटे रास्ते बह गई थी या जो ज्ञान से ही शून्य थे वे ही आपके विरुद्ध चलते थे; क्योंकि, अंधे के लिये मौजूद भी शंख का अस्तित्व नहीं है और जिनकी आंखों में कामला रोग हुआ हैं उन्हें सफ़ेद भी शंख सदा पीला ही दीखता है।।73।।

यस्ते निदेशमधरद्धृदये न जन्तु र्मन्तुर्न तस्य यदसौ श्रवणेन हीनः।
दृष्टं न किं नु भवता वधिरैर्हितोऽपि नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण।।74।।

जिस मनुष्य ने आपके उपदेश को हृदय में अंकित नहीं किया उसका कुछ भी अपराध नहीं है कारण कि, उसके कान ही नहीं थे, वधिर (कानों से वहरा) मनुष्य अपने हित की बात को भी नहीं समझता, कदाचित् समझ भी ले तो उलट पलट समझता है।।74।।

वर्षर्तुबारिदनिभेऽम्ब्वमृतं वचस्तद् वर्षत्यरं त्वयि मयूरनिभा जननौघाः।
हर्षप्रकर्षमविदन् मुदमाप धर्मो धर्मोपदेशसमये सविधानुभावात्।।75।।

वर्षा ऋतु का मेघ जिस प्रकार जल बरसाता है ठीक उसी तरह जब आप वचनामृत की झड़ी लगा देते थे, तब जनता मयूरों के समान अनिर्वचनीय आनंद को प्राप्त होती थी और अपनी समीपता देखकर धर्म भी फूला नहीं समाता था।।75।।

संयोगमप्रियमवाप्य प्रियाद्वियोगं चेखिद्यते यदि भवद्धृदयं त्वयातत्।
माऽसञ्जि जीव निकरेऽतिनिदेशतोऽस्मा दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।।76।।

तुम्हारा हृदय यदि अप्रिय के संयोग से और प्रिय के वियोग से दुखी होता हो तो तुम भी किसी जीव को कष्ट मत दो, प्राणी मात्र को आत्मभाव से देखो और बन पड़े वहां तक दया देवी का हृदय में आह्वान करो, इस प्रकार का आपका उपदेश सुनकर मनुष्य ही नहीं किन्तु वृक्ष भी वीतशोक हो जाया करते थे।।76।।

श्रीमद्वचोदिनकरे सदसि द्युलोके सिंहासनोदयगिरेरुदिते जनानाम्।
चेतोरविन्दमभिनन्दति किं विचित्र मभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि।।77।।

सिंहासन रूपी उदयाचल-पर्वत से सभा रूपी विशाल आकाश में आपके वचन रूपी सूर्य का जब उदय होता था, तब चारों तीर्थों के हृदय कमल एकदम खिल उठते थे, इसमें आश्चर्य ही क्या है, कारण कि, सूर्योदय में समस्त संसार ही जग जाता है।।77।।

श्रीमत्सुशान्तिमतिभानुविधुप्रकाशे आसीतप्रकाश इह जीवहृदोऽवकाशे।
किं चित्रमत्र तपनं तपति प्रशोकः किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः।।78।।

आपके शांति रूप चंद्र तथा ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश से चारों तीर्थों के हृदयाकाश में प्रकाश हुआ है, इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है; एक ही सूर्य के उदय होने से क्या वह समस्त संसार बोध को प्राप्त नहीं होता ? ।।78।।

जाते तव प्रवचने तपनेऽत्रलोके हर्षन्ति सर्वसुमनांसि विनिस्तमांसि।
सूर्याख्यपुष्पमिव दुर्जनचित्तमेकं चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव।।79।।

आपके वचन रूपी सूर्य के उदय होने पर कमलों के समान सज्जनों के हृदयों में प्रसन्नता छा गई, लेकिन सूर्यपुष्प (सूरजमुखिया) के समान सिर्फ दुर्जनों का मन अधोमुख ही रहा यही आश्चर्य है।।79।।

हित्वा भुवं दिवमुपैतुमितः प्रयाते श्रीमत्यवर्णनगुणः सुरसंभ्रमोऽभूत्
दध्वान दुन्दुभिरगायत मञ्जु हाहा विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः।।80।।

इस लोक को छोड़कर जब स्वर्ग के लिये आपका प्रयाण हुआ था, तव देवों का संभ्रम (अतिथि सत्कार में कुतूहल) अवर्णनीय था, जैसे कि, देवदुंदुभियों से स्वर्ग गुंज रहा था, गंधर्वों का मधुर गायन मोहित कर रहा था तथा चारों ओर निरंतर मंदार के पुष्पों की वृष्टि हो रही थी इत्यादि इत्यादि (उत्प्रेक्षा) ।।80।।

पूज्य ! त्वदीयगुण अर्पितदृष्टिपातः पातोऽप्यतप्यततदैव हृदो वियोगे।
धर्त्तुं गुणांस्तव लसन्ति मनांसि नूनं त्वग्दोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !।।81।।

हे पूज्य! आपके गुणों को देखते ही राहु हृदयशून्य होकर अत्यन्त दुखी हुआ, कारण कि, आपके दर्शन होते ही देवताओं का हृदय गुण ग्रहण करने में अपूर्व उत्साह दिखलाता है (राहु का नाम लोकोक्ति है)।।81।।

वन्हिप्रभे भवति दृष्टिपथे प्रयाते एनांसि पापिनि भवन्ति समिन्धनानि।।
भस्मीभवन्त्यसुमतां भुवि तत्कृतानि गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि।।82।।

अग्नि के समान जाज्वल्यमान प्रभा वाले आपके दृष्टिमार्ग में आते हुए पापियों के पाप सूखी लकड़ी के समान भस्म हो जाते हैं, इसी से उन पापों द्वारा प्राप्त बंधन भी छिन्न भिन्न हो जाते हैं।।82।।

याते दिवं त्वयि निराश्रयतां गताया निर्व्याजशान्तिधृतिबुद्धिदयाक्षमायाः।
हृत्कम्पतापकरुणार्द्रविलाप आस्ते स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः।।83।।

आपके गंभीर हृदय-समुद्र से उत्पन्न स्वाभाविक शांति, धृति, बुद्धि, दया तथा क्षमा के हृदय में कंपन, संताप और सकरुण-क्रंदन हो रहा है; सो युक्त है, क्योंकि, वे सब की सब आपके स्वर्ग पधारने से आश्रयहीन हो चुकी हैं।।83।।

जाने जनो भुवि सदाल्पगुणाभिधानो ब्रूते हरिं गिरिधरं मुरलीधरं हि।
पीयूषयूषमिव सद्वचनं ततोऽमी पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।।84।।

ऐसा मालूम होता है कि, संसार में मनुष्यमात्र का यह स्वभाव सा हो गया है कि, बड़े से बड़े को छोटे से छोटा पुकारना जैसे कि, गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले हरि को मुरलीधर कहते हैं ऐसे ही आपकी वाणी यद्यपि अमृत का मावा (सार) है तो भी उसे अमृत समान ही बोलते हैं।।84।।

पूज्य! त्वदीयवचनारचना विचित्रा पीयूषयूषमिव नः श्रवसोरसिञ्चत्।
तां चाधरीकृतसुधामधुमाधुरीं स्मः पीत्वा यतः परमसंमद संगभाजः।।85।।

हे पूज्य! आपकी वचन रचना मनोहर एवं अलौकिक थी, हमारे कानों में मानो सदा अमृत का मावा (सार) बरसाया करती थी, इसी से सुधा तथा मधु की माधुरी की अवहेलना करने वाली उस आपकी वाणी को श्रवण पुटों से पीकर हम अब तक भी आनंद में हैं। ।।85।।

केचिद्व्रजन्ति यशसा स्तुतिपात्रतान्तु केचिद्रणे जयरमां महसा लभन्ते।
युष्मादृशं हि सहसां समुपास्य धीरं भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम्।।86।।

हे विभो! कई एक यश से स्तुति पात्र वन बैठते हैं और कई एक बल प्रयोग से युद्ध में जय को प्राप्त करते हैं, किन्तु आप जैसे धीर की उपासना करने वाले सव से उच्च अजरामरत्व –पद पर पहुंचते हैं।।86।।

नम्रास्त्वदीयचरणे सुरसुन्दरीणां कम्राः प्रयान्ति सुरसद्म तथैव जीवाः।
लङ्कां गता इह यथा पवनात्मजाताः स्वामिन्! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तः।।87।।

हे स्वामिन्! आपके चरणों में जो मनुष्य नम्र होते हैं वे ठीक वैसे ही देवाङ्गनाओं को मोहित करने वाला रूप प्राप्त कर क्षण भर में स्वर्ग जाते हैं जैसे कि, रामचन्द्रजी के चरणों में नम्र होकर तुरन्त मारुति (हनुमान्) लंका में पहुंचा था।।87।।

स्वः संगते त्वयि विभो ! दिविषत्प्रसादाः अस्मादृशा ककुभि ते वहुलीभवन्ति ।
एवं हि वालनिकरान्मुहुरा किरन्तो मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।।88।।

हे विभो! आपके स्वर्ग जाने पर देवताओं की प्रसन्नता हमारे समान दसों दिशाओं में पर्याप्त फैल रही है, मानो यही संदेश देते हुए देवताओं के चामर अपने शुभ्रबालों को आकाश में इतस्ततः बिखेर रहे हैं।।88।।

तेऽस्मिन् जनेऽमरपुरे मुदमाप्नुवन्ति लप्स्यन्त आपुरभितः समयत्रये च ।
संमोहयन्ति जनतां परिमोदयन्ति येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय ।।89।।

वे ही मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में तीनों काल आनंद पाते हैं, संसार को अपने अधीन कर सकते हैं तथा प्राणीमात्र को प्रसन्न बना सकते हैं जो मनुष्य मुनिपुंगव –आपको नमस्कार करते हैं।।89।।

पूज्याङ्घ्रिपद्मजपरागसुरागितान्तः स्वान्ता भवन्ति मनुजा हि नितान्तशान्ताः ।
तस्माद्व्रजन्ति वृजिनं परिवर्ज्य जीवा स्ते नूनमूद्धर्वगतयः खलु शुद्धभावाः ।। 90।।

पूज्यश्री के चरण कमलों के पराग से जिन मनुष्यों का अंतःकरण रंगा गया है, वे ही मनुष्य एकांतशांत मनोवृत्ति वाले होते हैं इसी से तमाम पापों का क्षयोपशम कर एवं शुद्धात्मा होकर स्वर्ग सिधारते हैं।।90।।

धर्मानुरक्तदुरितादिविरक्तभक्त भूषामणीनिव गुणान् परिवर्धयन्तम् ।
पूज्यं परासुमपि दृग्स्थितमेव मन्ये श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नम् ।।91।।

धर्मानुरागी तथा पापादियों में विरागी ऐसे भक्तरूप भूषण में मणिरूप गुणों की वृद्धि करने वाले शांत एवं गंभीर वाणी बोलने वाले और स्वर्ण के नगीने सरीखे स्थान वर्ण– पूज्यश्रीजी को अपने नेत्रों के सामने उपस्थित ही देखता हूं।।91।।

कारुण्यनीरधरमुत्तममात्मविज्ञं चारित्र्यभूमिगुणसस्यविशेषसेकम् ।
हर्षन्ति सर्वसुजनाः शरणं विलोक्य सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।।92।।

करुणारूप जल से भरे हुए तथा चरित्ररूपी भूमि में गुणरूपी धान्य को उचित रीति से सींचने वाले ऐसे आत्मज्ञानी, उत्तम रक्षक तथा सिंहासन पर वैठे आपको निहार कर समस्त सज्जन रूपी मयूर हर्षित होते हैं।।92।।

ज्ञानासिमेत्य शुभकर्म तनुत्रितं च पाखण्डखण्डनपरं सुकृताजिशूरम् ।
अर्हद्गिरं भुवि भवन्तमतीन्द्रियार्था मालोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैः ।।93।।

धर्म युद्ध में ज्ञान तलवार को पकड़ कर शुभकर्मों का कवच पहिन कर पाखंड मत खंडन शूर, अतीन्द्रिय अर्थ युक्त–अर्हद् वाणी को वीरवचनों में बोलते हुए आपको सभी प्रसन्न हो होकर देखते हैं।।93।।

दुर्नीतिरीतिगिरिराजिषु सेकशीला अर्थोदका जनघनाः प्रतिवारिता यैः ।
वायुर्विवाहयति वारिमुचं समन्ता च्चामीकराद्रिसिरसीव नवाम्बुवाहम् ।।94।।

दुर्नीति तथा कुरीति रूपी पर्वत पर जल बरसाते हुए जन रूपी मेघ को पूज्यश्रीजी ने इस

तरह उड़ाया कि, जिस तरह सुमेरु पर बरसते हुए नवजलधर को प्रकुपित वायु उड़ा देता है अर्थात् दुर्नीति और कुरीति रूपी मेघ के लिये आप प्रलयकालीन वायु थे।।94।।

तापत्रयं जनमनोजनि येन नष्टं निस्तन्द्रशारदशशाङ्कमनोहरेण।
अत्यन्तशान्तमनसस्तव का कथास्ते उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन।।95।।

जब शरत्पूर्णिमा के चन्द्रसमान आल्हाद जनक तथा मनोहर आपके दर्शन से ही मनुष्यों के तीनों प्रकार के दुःख दूर हो जाते हैं फिर यदि उसमें सुतरां शान्त मन वाले आप के अन्तःकरण से निकली हुई आशीर्वाद भी हो तो क्या नहीं हो सकता।।95।।

धर्मस्तरुः कलिनिदाघगतो विशुष्कः पाखण्डिचण्डवचनैर्मिहिरैः कठोरैः।
श्रीमद्वचोऽमृतझरैरभितोऽपि सिक्तो लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव।।96।।

इस प्रचण्ड कलिकाल निदाघ-समय में पाखण्डियों के मुख रूपी उदयाचल से निकले हुए कठोर सूर्य से धर्मतरु पतझड़ हो कर झुलस रहा था, परन्तु आपके वचनामृत झरने से फिर हरा भरा हो गया।।96।।

उत्पत्तिमूलबहुकामदलार्तिपुष्प सौख्यालिसंसृतितरुर्विशदो जटालः।
नश्यत्यवश्यमिह तत्र भवत्प्रसादा त्सांनिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!।।97।।

जन्म ही जिसका मूल (जड़) है, मनोरथ ही जिसके पत्र हैं, तीनों प्रकार के दुःख ही जिसके फल फूल हैं और सुख जिसके भ्रमर हैं ऐसे संसार रूपी विशाल वृक्ष का आपकी कृपा तथा सान्निध्य से ही विध्वंस होता है।।97।।

भोगोचितेन वयसा कमलादयाभिः सम्पन्न एव हि भवान् जगदत्यजद्यत्।
वैराग्यमेतदयतो धनतो विहीनो नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि।।98।।

अगाधलक्ष्मी सम्पन्न आपने भोगोचित अवस्था (जवानी) में जो संसार का त्याग किया सो ही वास्तविक त्याग कहलाता है, अन्यथा धन के नष्ट हो जाने तथा इन्द्रियों के शिथिल पड़ जाने पर तो बुद्धिमान् से बुद्धिमान् को भी वैराग्य हो जाता है।।98।।

उन्मादवातममताविपदादिचिन्ता
सन्तानशामकनिदानमतिं सुपूज्यम्।
यद्यात्मचिन्तनरसे रसिकाः स्थ यूयं
भो! भो!! प्रमादमवधूय भजध्वमेनम् ।।99।।

हे संसार के उपासको! यदि आत्मचिन्तन रूपी रस के रसिक बनना चाहते हो तो प्रमाद की जड़ उखाड़ो और उन्माद, ममता तथा अनेक विपत्तियों के दूर करने में कृतहस्त बुद्धि वाले पूज्य की आराधना करो।।99।।

ध्यानादिसम्बलयुता शिवमार्गगा भो! आधेःकदम्बवहुजर्जरिता गुणज्ञाः।
सज्जीभवन्तु कुरुते ह्यनुहूतिमेतु मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्।।100।।

हे ध्यानादि पाथेय (रास्ते में खाने के लिये बनाई हुई वस्तु) वालो मोक्षमार्ग के पथिको! तथा मानसिक दुःखों से दुखियो एवं गुणज्ञ मनुष्यो! आपको मोक्षपुरी में ले जाने को पूज्यश्री बुला रहे हैं अतः शीघ्र ही मोक्षगामी संघ में सम्मिलित हो जाओ।।100।।

नो प्राणिपीडनमथो न च दुष्टवाक्यं नो चौर्यमाचरत चारु समाचरध्वम्।
संश्रूयते दिवि गतोऽपि भवान् यथाप्रा-गेतन्निवेदयति देव! जगत्त्रयाय।।101।।

तुम सब किसी भी जीव को कष्ट मत दो, असंस्कृत (दुष्ट) भाषा को व्यवहार में मत आने दो, चोरी का आचरण मत करो और सदा अपने आचार विचार को शुद्ध बनाओ इत्यादि जैसा आप कहा करते थे ज्यों का त्यों अब भी सुन पड़ता है। (यदि कोई मनुष्य नाटक आदि की सीन सीनरी को दत्तचित्त तथा एकरस होकर देखता है तो बहुत दिनों तक उसके सामने वही नजारा (दृश्य) उपस्थित रहता है)।।101।।

प्रस्थानमाविरभवच्च तवेदमेत दाकस्मिकं तु मुनिनाथ! पयोदकाले।
गर्जन्ति मेघनिवहाः सुजना विदन्ति दंध्वन्यते तव मुदे सुरदुन्दुभिर्हि।।102।।

हे मुनिराज! जब भी बादल गर्जता है तभी लोग समझते हैं कि, आपके स्वागत में देवगण दुन्दुभि ही बजा रहे हैं, कारण कि, आपका आकस्मिक प्रस्थान ही इस वर्षा ऋतु में हुआ है, इससे आपके स्वर्गारोहण का दिवस वर्षाऋतु भर उभय लोक में खूब धूमधाम से प्रतिवर्ष हुआ करेगा।।102।।

शास्त्रैर्विकाशनपरैर्मिहिरैः सदा हि लुप्तप्रतत्त्वनिचयाः परवद्युलूकाः।
नश्यन्ति दूरमथवा स्वधियं त्यजन्ति उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!।।103।।

जैसे द्योतमान सूर्य के समान शास्त्रों से परवादी उल्लू अपने-अपने तत्त्व को भूल कर लुप्त प्राय हो जाते हैं, वैसे ही आपके प्रखर प्रताप से भी यही घटना घट रही है।।103।।

शिष्यौघतारकयुतं भवदिन्दुमद्य शीतैः प्रतीग्मरुचिभिश्च निदेशनाभिः
शश्वत्प्रकाशमवलोक्य विषादयुक्तस्ताराान्वितो विधुरयं विहताधिकार।।104।।

शिष्यरूपी तारागणों से सुशोभित एवं शीतल तथा ददीप्यमान धर्मदेशनारूप चंद्रिका से सुतरां प्रकाशमान आज आपको देखकर नक्षत्रों सहित चंद्रमा अपने अधिकार को भूल रहा है।।104।।

अभ्यागते त्वयि गते दिवि देवतानां स्वस्वामिभावमपनीय बभूव वार्ता।
चष्टेऽमरोऽमरपतिं त्यज शीघ्रमिन्द्र! मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्रम्।।105।।

हे पूज्य! आपके स्वर्ग चले जाने पर स्वामीसेवक भाव को एक ओर रखकर देवता इन्द्र से इस प्रकार कहने लगे हैं कि, हे इन्द्र! झूमती हुई मोतियों की लड़ियों वाले अपने छत्र को यहां से दूर कर दो।।105।।

यस्त्वां जहार कुटिलः समयः स नून मस्माकमाविरभवत्परमार्थशत्रुः।
यामीं कृतिं सकललोककृते सुपूज्य! व्याजात्त्रिधाधृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः।।106।।

जो कुटिल काल ने आपको हर लिया (चुरा लिया) सो वह अवश्य ही हमारा परमार्थ शत्रु है, कारण कि, छल से भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों रूपों से उस काल ने सब के लिये यमराज का कार्य स्वीकार किया है।।106।।

धर्मस्वरूपसमुदर्कसुरद्रुमेण प्रद्योतितः हि भवता वचसा समन्तात्।
उद्गीयमानयशसा दिवमद्य भाति स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन।।107।।

धर्म स्वरूप तथा रमणीय फल वाले कल्पवृक्ष द्वारा प्रकाशित स्वर्ग भी गाया जाता है यश जिन्हों का और पूर्ण कर दिये हैं तीनों लोक जिन्होंने ऐसे आपके वचनों से ही शोभित होता है।।107।।

मानी धनी स्वमतिमन्थिताशास्त्रराशि र्दासीकृतेतरजनोऽपि विधर्षितस्ते।
प्रोद्यन्मरीचिनिचयेन भवन्मुखेन कान्तिप्रतापयशसामिव सञ्चयेन।।108।।

धनी, अभिमानी, निज बुद्धि द्वारा शास्त्रों को विलोडन करने वाले तथा दूसरे जीवों को दास बना लेने वाले मनुष्य भी कान्ति, प्रताप और यश इन तीनों के समूह के समान देदीप्यमान है तेजः पुंज जिसमें ऐसे आपके मुख को देख कर प्रसन्न हो जाते थे अर्थात् उन मनुष्यों में उक्त दोष नहीं रहते थे।।108।।

त्वत्पादसेवनसुधा प्रददाति सौख्यं तन्नैव नैव लभते गुणिनां प्रमुख्य!।
एवं वदन्ति कवयो नृपमन्दिरेण माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन।।109।।

हे गुणिगणाग्रगण्य! आपके चरणों की सेवा मनुष्यों को जितना सुख देती थी उतना सुख मणि, सुवर्ण और चांदी से बना हुआ राजभवन भी नहीं देता है, इस प्रकार कवि लोग कहते हैं।।109।।

त्रैलोक्यपूत! समितौ समये तु तस्मिन् त्वत्तुल्यकान्तिसुषमां न कदाऽऽप कोऽपि।
अद्याऽपिकोऽपि गणनाथ! यथा त्वमेव सालत्रयेण भगवन्नभितो विभाति।।110।।

हे भगवन्! त्रिलोकपावन–पार्श्वनाथ! उस त्रिदुर्ग से उस समय में जो शोभा आपने प्राप्त की थी उसे कोई भी जीव प्राप्त न कर सका तथा वैसे ही हे गणनाथ! आप जैसे आपही शोभते हैं अर्थात् आप आप ही हैं, आपकी समता सिवा आपके दूसरों से नहीं हो सकती।।110।।

देवेन्द्रभक्तिविभवार्चितपादपीठ! संस्पृश्य पादयुगलं तव पूर्णपूताः।
पूज्यस्य संश्रितदिवो बहुशोभमाना दिव्यस्रजो जिन! नमत्त्रिदशाधिपानाम्।।111।।

हे देवेन्द्र की भक्ति से पूजित चरणों वाले सुपूज्य! स्वर्ग में पधारे हुए आपके चरणों के स्पर्श से अत्यन्त पवित्र एवं सुशोभित मंदारमाला नमस्कार करते हुए इन्द्र की और भी अधिक सुशोभित होती है।।111।।

स्वर्गापवर्गसुखरत्नचये वदान्य सम्पन्नभूपनिवहाश्चरचे पतन्ति।
त्वच्छुद्धबोधमधिचित्तमभीप्सवस्त्वते उत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिवन्धान्।।112।।

स्वर्गापवर्ग सुखरूपी रत्न समूह के देने वाले आपके अनंतज्ञान को हार्दिक सन्मान देते हुए तथा मन में आपके शुद्ध–बोध को लेने की इच्छा वाले राजा लोग रत्नजटित मुकुटों को अलग कर आपके चरणों पर पड़ते हैं।।112।।

संसारतापपरितप्तचितो जना हि मिथ्यात्वमोहगदजर्जरित्ता मुनीन्द्र!।
आप्तुं सुखानि भुवनेऽभयदाबुदारौ पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र।।113।।

हे मुनिन्द्र! संसार के त्रिविध तापों से संतप्त एवं मिथ्यात्व रोग से पीड़ित मनुष्य उभयलोक में सुख की कामना से उदार तथा अभयप्रद आपके चरणों का आश्रय लेते हैं।।113।।

हस्त्यश्वयानमणिजातसुखाङ्गमन्यद् वाराङ्गनादिकृतगीतमभिप्रपन्नाः।
ये चैहलौकिकसुखे निरतास्त एव स्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव।।114।।

जो मनुष्य हाथी, घोड़े, रथ और रत्नादिक सम्पत्ति के सुख में मग्न होकर तथा वैश्या आदि के विलास और गीतों में आशक्त हो केवल ऐहिलौकिक सुख को ही जानते एवं मानते हैं हे नाथ! वे ही मनुष्य आपके संग से प्रसन्न नहीं हैं।।114।।

बीरप्रभोर्वचनमानसमस्ति शस्तं नीरं सदक्षरतरङ्गसुभक्तिरत्र।
तीर्थारविन्दमिह तत्र निवासिहंसः त्वं नाथ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽसि।।115।।

हे नाथ! अक्षररूपी जल वाले एवं भक्तिरूप तरङ्गों से तरङ्गित तथा साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चारों तीर्थकमलों से मण्डित, भगवान् वीरप्रभु के वचनरूपी मानस-सरोवर में सर्वदा विहार करने वाले राजहंसरूपी आप जन्म-समुद्र से विरुद्ध हैं, मानस–सरोवर में रहने वाला राजहंस खारी जन्म–समुद्र से कोसों दूर रहता है, यह स्वभावसिद्ध है।।115।।

ज्ञानक्रियातरणिरूपमतिर्मतोऽसिजन्मदिशम्बरविपत्तितरङ्गरूपात्।
संसारसागरनिभादुचितं त्वमेव यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्।।116।।

जन्मरूपी गहरे जल वाले तथा विपत्तिरूपी कुटिल तरङ्गों वाले भयंकर संसार-सागर से शरणागत जीवों को आप पार करते हैं सो उचित ही है, क्योंकि, ज्ञानक्रियारूपी नौका के सादृश बुद्धि वाले आप ही प्रसिद्ध हैं।।116।।

अस्मद्गुरोर्गणनिधेश्च दयैकसिन्धो र्नित्ये परार्थनिवहार्पितजीवितस्य।
सर्वातिशायिजिनतन्त्र उदारधीत्वं युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव।।117।।

गुणनिधि, करुणा-सागर तथा परोपकार में समर्पित जीवन वाले हमारे पूज्य गुरुजी का उदार बुद्धि होना समुचित ही है, क्योंकि, विशाल, सर्वजीव हितकारी तथा सर्वोत्तम जैनतन्त्रों में श्रीजी की ही मति परिपक्व थी।।117।।

सामान्यधीर्भवतु कर्मविपाकरिक्तो जानाति नो य इह कर्मविपाकमेव।
विज्ञाततत्त्वनिकुरम्बमुनीन्द्रचन्द्र! चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः ।।118।।

जो जीव इस संसार में कर्म क्या वस्तु है और उसका विपाक क्या है ऐसा नहीं जानते हैं वे ही कदाचित् कर्म विपाक से (क्रियाजन्य फलेच्छा से) शून्य हो सकते हैं, किन्तु तत्व को जानने वाले आप भी कर्मविपाक से रहित हैं यही आश्चर्य है।।118।।

सत्प्रातिहार्यमपि यस्य सुरश्चिकीर्षुः शेतेऽष्टसिद्धिरनिशं शयशायिनीव।
नाथोच्येस तदपि मन्दधिया जनेन विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वम्।।119।।

हे नाथ! हे जनपालक! जव आपकी नौकरी देवता भी वजाना चाहते हैं और आपके हाथों में आठों सिद्धियां सदा नृत्य सी करती रहती हैं, तव भी मन्दवुद्धि लोग आपको अकिञ्चन कहा करते हैं यह कितना आश्चर्य है।।119।।

आस्यं वशेऽस्ति रसनाऽपि वशंवदैव लेखन्यखेदलिलिखुर्मसिपात्रमत्र।
त्वामस्म्यहं लिखितुमुद्यत एव मूढः किंवाऽक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश!।।120।।

हे नाथ! मुख भी मेरे अधीन है, जिह्वा वशं वदा में है, लेखनी आलस्य छोड़कर लिखना चाहती है मसी (स्याही) आदि साधन भी आधिक्य से मौजूद हैं और मैं भी लिखने को लालायित हूं तो भी आपका वर्णन नहीं कर सकता और न लिख सकता हूं इससे स्पष्ट जाना जाता है कि, आप अक्षरप्रकृति होकर भी उल्लेख में नहीं आ सकते।।120।।

तन्त्रार्णवे विविधधर्ममणिव्रजस्य निःशारणे कुशलसंविदलं न मूढः।
अस्यां स्थितौ तव कृपानिकरैः सुशक्ति रज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव।।121।।

शास्त्ररूपी अगाधसागर से अनेक प्रकार के धर्म-रत्नों को निकालने के लिये विचारशील मनुष्य ही समर्थ एवं कटिबद्ध होते हैं, मंदबुद्धि कोसों दूर भागते हैं, ऐसी विकट स्थिति में आपकी अतुल कृपा से वह शक्ति अज्ञानी जीवों में भी आवसी जिससे सर्व साधारण भी उक्त समुद्र से धर्मरूपी रत्नों को लूट रहे हैं।।121।।

अत्यन्तदुष्कृतिनिलीनमनाश्च साधु द्रोही जिघांसुरपि जीवचयं त्वदीयम्।
सान्निध्यसन्निधिमवाप्य जहौ स्वभावं ज्ञानं त्वयि स्फुरित विश्वाविकाशहेतु।।122।।

अत्यन्त पाप में मन देने वाले, साधु से द्वेष करने वाले, जीवों को घात करने की इच्छा वाले, महापातकी मनुष्य आपके सान्निध्य (समीपता) रूपी सन्निधि (शाश्वत खजाना) प्राप्त कर अपने क्रूर स्वभाव का त्याग करते हैं, अतः विदित होता है आपका ज्ञान जगत् के विकाश करने में देदीप्यमान तथा कृतहस्त था।।122।।

मिथ्यात्वमोहकलुषाऽविलचेनाजुट् जन्तोर्यथा जलधरः पयसा निजेन।
प्रक्षालयेदिवतमस्तव नाथ! नाम प्राग्भारसंभृतनभांसि तमांसि रोषात्।।123।।

जिस प्रकार धूलि से मलिन आकाश को गर्जना करता हुआ नवीन जलधर (बादल) अपने जल से साफ कर देता है ठीक उसी प्रकार आपका नाम भी मिथ्यात्व और मोह से मलिन बुद्धि वाले जीवों के हृदयाकाश को शुद्ध और साफ कर देता है।।123।।

मृत्योरहेः खगपतिः स्मरदन्तिसिंहो लोभैनराजिमृगयुः शुचरात्रिभानुः
हन्तीह नाथ! दुरितानि तवाऽभिधान मुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।।124।।

मृत्युरूपी सर्प के लिये गरुड़, कामरूपी उन्मत्त हाथी के लिये सिंह, लोभरूप मृग के लिये व्याध और शोकरूपी अंधारी रात्रि के लिये प्रचंड भानु के समान जो आपका नाम है वह नितरां कमठ नामक शठ तापस से उठाये गये पापों को निस्सन्देह नाश करने की शक्ति रखता है।।124।।

पाखण्डमण्डनपरैर्निजशक्तिसारै रिच्छानुसारकृतिमेव विकाशयद्भिः।
तीर्थोदिसस्य उदवग्रहसाग्रहैश्च छायाऽपि तैस्तव न नाथ! हता हताशैः।।125।।

अपनी प्रौढ़ शक्ति से पाखंड मत का मण्डन करने वाले, स्वेच्छाचार का विस्तार करने में कुशल एवं चारों तीर्थरूपी सस्यों में वृष्टि को रोकने वाले दुर्जन हताश होकर आपकी छाया को भी इधर उधर न कर सके।।125।।

कुड्येऽश्मराजिरचिते सविधास्थितास्तै र्लोष्ठैर्विघट्य सहसा प्रतिवर्तितैश्च।
क्षेप्ता हतो भवति तत्कपटैस्तथैव ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा।।126।।

जिस प्रकार पत्थर की दृढ़ वनी हुई दीवार पर कोई जोर से पत्थर पटके तो वह पत्थर दीवार से टकरा कर उलट पटकने वाले के मुँह पर जा लगता है उसी तरह दुर्जनों के किये हुये उत्पातों से दुर्जन ही नष्ट हुए।।126।।

साभ्रेऽह्नि संभ्रमविहीनधियैव धीमन्! धम्र्यं वचस्तव मुखाद्बहिराजगाम।
गर्जद्गुरु प्रतिभटं च तिरश्चकार यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रमीमम्।।127।।

वर्षा ऋतु में संभ्रम के बिना ही आपके मुख से निकले हुए धर्मरूपी मधुर वचन जोर से

गर्जने वाली काली घटा का तिरस्कार करते थे अर्थात् मेघ की मंद एवं मधुर ध्वनि से भी आपकी वाणी विशेष मधुर थी।।127।।

स्वान्तप्रशान्तरसिका वशिका सभासु तारापथे य तव गीः प्रणिनाद मेघम्।
गम्भीरतारगुणजाततया जिगाय भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरनादम्।।128।।

अत्यन्त शान्तमन वाले रसिकों को वश में करने वाली आपकी मधुर वाणी जब सभा मंडप में घूमती हुई आकाश को प्रतिध्वनित करती थी तब चकमकाती हुई बिजली वाली, मुसलाधार जल बरसाने वाली नील घन-घटा भी शर्माती थी।।128।।

गर्वोर्जितात्ममकरध्वजनाशदक्षः सत्पक्षमाक्षिपति पक्ष इनो विपक्षः।
पार्श्वप्रभुर्व रिपुणोक्तमसो सुसोढ़ा दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारिदृधे।।129।।

अहंकार से जिसकी आत्मा उन्नत है ऐसे काम को नष्ट करने में कृतहस्त, सत् पक्ष में झूठे आक्षेप करने वालों के प्रबल विरोधी पूज्य श्री ठीक वैसे ही दुर्जनों की दुष्ट वाणीरूपी वर्षा को एक चित्त से सहते थे जैसे कि, दैत्यों द्वारा वर्षाये हुए जल को श्री पार्श्वप्रभु बड़ी शान्ति से सहते थे।।१२६।।

वागृवरि योऽत्र विततार मलीमसात्मा मालिन्ययुक्तमधिसाधुमुदैव सेहे।
दाताऽऽप तापमभितोऽभिहितेन वक्तु स्तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम्।।130।।

हमारे पूज्य श्री पर मलिन आत्मा दुष्टों ने जो वाणीरूपी जल को वर्षाया उस कठोर वाणी-वर्षा को पूज्य श्री ने बड़ी खुशी से सह लिया, किन्तु वर्षा करने वाले बाद में संतप्त हुए और बोलने वाले को उन दुष्ट वचनों से निकले हुए विषयुक्त जल को पीने का फल भी मिला।।130।।

प्रागृजन्मसञ्चितसुपुण्यविभावतश्चेत् साधूनवद्यमभिगद्य न खिद्यतेऽसौ।
मृत्वा व्रजिष्यति यमालयमाविषीदन् ध्वस्तोद्धर्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्डः।।131।।

अगर साधुओं की निन्दा करने वाला पूर्वजन्म के इकट्ठे किये हुए पुण्योदय से दुःखी न हुआ तो भी केशों के उखाड़ने से विकृताकार तथा दुःखी होता हुआ वह मनुष्य अवश्य ही नरक में पड़ेगा।।131।।

निन्दाऽभिनन्दितधियां दुरितक्षयाय कालिन्ददिष्टपुरुषैः पुरुषैः समिद्धः।
जिव्हेन्धनो धमतिनो विकलं करोति प्रालम्वभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः।।132।।

जो मनुष्य सदा दूसरों की निन्दा करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं उन्हें पापों से मुक्त करने के लिये धर्मराज की आज्ञा से भयानक यमदूत उक्त मनुष्यों की जिह्वा में आग लगा देते हैं जिससे वह आग उनके मुखों से बड़ी बड़ी ज्वाला रूप से निकलती है और उन्हें भस्मसात् करती जाती है।।132।।

नाथ ! त्वदीयहितदेशनतः सनाथः तिष्ठन् तिरोहिततनुस्तरुमौलिलीनः।
तत्याज तूर्णमपिसोथ परेतयोनिं प्रेतवजः प्रतिभवन्तमपीरीतो यः।।133।।

हे नाथ ! आपके हितोपदेश से सनाथ-वृक्ष की सघन शाखाओं में शरीर को छिपा कर बैठे हुए प्रेत भी आप के प्रति भक्ति प्रेरित होकर तथा आपको आत्मसात् करके प्रेतयोनी से मुक्तहोते हैं।।133।।

यैः प्राज्ञमानिनिवहैर्भवतोपदेशः प्रत्तः कृतो न निजकर्णगतोऽभिमानात्।
तस्माद्विरुद्धविधिमाविदधे विरोधात् सोऽस्याऽभवत्प्रतिभवं भवदुःख हेतुः।।134।।

अपने को ही पण्डित मानने वाले जो लोग आपके दिये गये अमृतमय उपदेश को कानों द्वारा नहीं पीते थे प्रत्युत विरोधी होकर उपदेश से विपरीत आचरण करते थे उनके जन्म-जन्म के लिये वह विरोध दुःख का कारण बन बैठा है।।134।।

सद्वाक्यरत्ननिचयं व्यतरन् जनेभ्यो
ज्ञानप्रभावगुणगौरवगुम्फिताश्च।
ध्यायन्ति धीरधिषणास्त्वमिव प्रभुं चेत्
धन्यास्त एव भवनाधिप! ये त्रिसन्ध्यम्।।135।।

सुन्दर वाणी रूपी रत्न समूह को लेकर सारी जनता को देने वाले, ज्ञान एवं प्रताप से सुशोभित जो विद्वान् आपके समान तीनों कालों में परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे भी धन्य हैं।।135।।

सुज्ञानदर्शनचरित्रपवित्रचित्तं यत्सर्वजन्मितरणिं शरणं प्रपद्य।
दुष्टाष्टकर्मरिपुमोचनसिद्धहेतु माराधयन्ति सततं विधुतान्यकृत्याः।।।136।।

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् चारित्र से जिन्होंने हृदय को पवित्र किया है और प्रतिपक्षी (शत्रु) आठों कर्मों के मिटाने के प्रधान कारण तथा प्राणीमात्र को भवसागर से पार करने की नौका के समान परमेश्वर को तल्लीनता से जो भजते हैं वे धन्य हैं (इतना पूर्व श्लोक से जानना)।।136।।

आबालवृद्धयुवकायधराऽविशेषाःप्राप्तत्वदीयवचनार्थमुदाद्यशेषाः।
न्यस्ताप्तजीवसुलभत्रिविधार्त्तिलेशा भक्तयोल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः।।137।।

बालक, वृद्ध, युवा एवं समस्त प्राणधारी जीव आपके सारगर्भित वचन-जन्य अर्थज्ञान से हर्षित हुए तीनों प्रकार के दुःखों को त्याग कर भक्ति से रोमाञ्चित देह वाले हो रहे हैं।।137।।

शास्त्राब्धिगूढहृदयार्थविदः समन्ता ज्जीवादितत्त्वनिकरे परमार्थविन्दाः।
तेऽप्यालपन्ति भवदुःखविनाश हेतु पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः।।138।।

शास्त्ररूपी समुद्र के छिपे हुए हृदयरूप अर्थ को जानने वाले, जीवादि तत्वों को प्राप्त करने वाले प्राणी भी आपके चरणों को सांसारिक दुःखों के दूर करने का कारण ही कहते हैं।।138।।

जन्मान्तताब्विषयपङ्कवितर्षगर्ते गर्वोर्मिजन्ममकरस्वझषाष्टकर्म।
पाषाणदम्भविशदेऽवनिमज्जतोऽस्मान् अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश! ।।139।।

हे मुनिराज! जन्म तथा मरण रूपी जल वाले, विषय रूपी भयंकर तृष्णा ही है भंवर जिसमें अहंकार की तरंगों से युक्त, जीव ग्राहों से भरे हुए वन्धुवर्ग है मीन जिसमें, आठों कर्म रूपी चट्टानों से विषम तथा दम्भ से वृद्धि प्राप्त ऐसे दुस्तर भवसागर में डूबते हुए हम लोगों की रक्षा करो।।139।।

विश्राणने विमलवैश्रवणेन तुल्यो धर्मादितत्वनिचयस्य वदान्यकस्त्वम्।
शाणायमानधिषणः सकले प्रतीतो मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि।।140।।

दान में कुवेर सदृश, धर्म्मादि तत्त्व प्रदान में शाण समान वुद्धि वाले तथा जगत्प्रसिद्ध भी आपको मैं नहीं जान सका (यही मेरी वज्रमयी अज्ञता का नमूना है)।।140।।

संग्रामवह्निभुजगार्णवतिग्मशस्त्रो न्मत्तेभसिंहकिटिकोटिविषाक्तवाणाः।
दुष्टारिसंकटगदाः प्रलयं प्रयान्ति आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे।।141।।

युद्ध, अग्नि, विकराल सर्प, दुस्तर समुद्र, तीखे शस्त्र, उन्मत्त हाथी, भयंवह सिंह, उद्धत सूअर, विषलिप्त वाण, दुष्टात्मा शत्रु, संकट और रोग ये सब उसी क्षण में नष्टप्राय हो जाते हैं, हे नाथ! जब आपका नाम रूपी पवित्र मन्त्र सुन लेते हैं।।141।।

चिन्तावितानजननान्तविनाशहेतौ कल्पद्रुमे त्वयि सुसिद्धिसमानरूपे।
हृत्पद्मसद्मवसिते भविनां मुनीन्द्र! किंवा विपद्विषधरी सविधे समेति ?।।142।।

चिन्ता समूह को तथा जन्म मरण को नाश करने वाले एवं कल्पवृक्ष के समान अष्टसिद्धि स्वरूप आप जब जनता के हृदय सरोज में निवास करते हैं, हे नाथ! तब क्या विपत्तिरूपी महाविषधारी –नागिन पास आ सकती है ?।।142।।

पीयूषयूषसमशान्तिनितान्तपुष्टो हृष्टः सदा धनगणेश्चरणप्रभावात्।
नो विस्मरामि शुभतत्वगृहीतकोऽहं जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं मुनीश!।।143।।

अमृत के मावा समान सरस शान्ति से पुष्ट तथा आपके चरणों के प्रताप से धन धन्यादि से संतुष्ट एवं तत्त्वग्राही हम आपके श्रीचरणयुगलों को जन्मान्तर में भी नहीं भूल सकेंगे।। 143।।

विश्राणनश्रमितशीलतपोव्रतस्य सुध्यानयोगशमसंयमसिद्धशुद्धेः।
कस्यापि शुद्धचरणं तव चाप्यसद्यो मन्ये मया महितमाहितदानदक्षम्।।144।।

अभयदान तथा सत्पात्र दान में तत्पर, शील एवं तप के धारक, शुल्क ध्यान तथा संयमादि से युक्त ऐसे किसी महापुरुष के पवित्र चरणों को जन्मान्तर में आत्मसात् करके ही अभीष्टप्रद, समर्थ एवं जगत्पूजित आपके चरणकमलों को प्राप्त किया है ऐसी हमारी प्रबल धारणा है।। 144।।

श्रीमत्सु सत्सु न हि दुःखमवाप चास्मान् यातेषु खं प्रतिनिधीन् समयज्ञसुज्ञान्।
ज्वाहीरलालशमिनः प्रददत्सु नाणु स्तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानाम्।।145।।

हे मुनिराज! आपके रहते हुए हमें दुःख का अनुभव नहीं हुआ तथा आपके स्वर्ग सिधारने पर अवश्य देश, काल, क्षेत्र एवं भाव के जानकार प्रवल पण्डित श्री 1008 श्री जवाहीरलालजी महाराज को आप अपने स्थानापन्न कर गये हैं, इससे वर्तमान भव में तो हम पराभूत नहीं हो सकते।।145।।

काव्यप्रणीतिजनितानवकीर्त्तिदूत्या आहूतिनीतमतिरद्य भवद्विभूतेः।
प्राप्तोऽपवादपदभागभिसारिकाया जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम्।।146।।

काव्य वनाने से पैदा हुई नवीन कीर्तिरूपी दूती के वुलाने पर सम्मत होकर पूज्यप्रवर श्रीजी की विभूतिरूप अभिसारिका के आदेश से हमने मलिन आशय वालों के अपवाद से युक्त घर को प्राप्त किया है।।146।।

यो भाव आविरभवत्तव चिद्वियत्तो भास्वत्प्रभाव इव तेन तमो निरस्तम्।
त्वद्भावभावितजनैरिह ते प्रतीपै र्नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन।।147।।

हे नाथ! जो भाव आपके मनोव्योम में प्रचण्ड भास्कर के समान प्रकट हुआ उस तेजोमय भाव के प्रताप से आपके अनुयायी मनुष्यों के हृदयपटल पर जो मोहमय अन्धकार था सो एकाएक

नष्ट हो गया परन्तु आपके विपक्षचारियों की आंखें मोह से चकाचौंध हो गयीं जिससे उनके हृदयाकाश का मोहान्धकार दूर न हो सका।।147।।

जातः सतोऽमितहितोऽत्रभवान् महीतो
दृष्टिं गतो नहि भवेदिति नैव कष्टम्।
ध्यातो भविष्यसि यतो हि जनैर्वियुक्तः
पूर्वं विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।।148।।

सुतरां सज्जनों के हितकारी, परमपूज्य आप इस संसार से पधार गये अतः अब आपका साक्षात्कार दुर्लभ हो गया है, तो भी इस बात की विशेष चिन्ता नहीं; कारण कि, आपका प्रथम दर्शन किया हुआ है जिससे अब ध्यान से आपका साक्षात्कार हो जाया करेगा।।148।।

युष्मत्पदानुगमने भविनां मनीषा उत्कन्ठयन्ति रमयन्ति सदादिशन्ति।
कृत्वाऽखिलं परिकरं गमनोत्सुकतञ्च मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः।।149।।

आपका अनुसरण करने की इच्छा भव्य जीवों को उत्कण्ठित करती है, प्रसन्न करती है एवं सब प्रकार से आज्ञा देती है इसी से मैने भी आपका अनुसरण करने को सब तरह की तैयारियाँ करली हैं परन्तु मर्मभेदी अनर्थ (पाप) ही मुझे बारंबार रोक रहा है।।149।।

स्युस्त्वद्विधा बहुविधा विबुधाः सुशान्ता स्त्वां वीक्ष्य मानवशिरोऽर्चितपादपीठम्!।
आहेयभोगनिमभोगभुजा निरस्ताः प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते।।150।।

अनेकों विद्वानों ने आपको समस्त जनमस्तकों से पूजित चरण पीठ देखा, ये सब आपके समान शान्तात्मा बनना चाहते थे किन्तु बन न सके वे सांसारिक भोगों को भोग कर सर्प के समान मूर्च्छित हो चुके थे, जिससे उन्हें पछाड़ खानी पड़ी अन्यथा कुल तैयारियां करने पर भी वे वैसे (आपके समान) क्यों न बने।।151।।

भावाऽवबोधविधुराय निरक्षराय
द्रव्याधिपाय च समृद्धिविवर्जिताय।
सर्वेभ्य एव समबोधमदाः सुपूज्य!
आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि।।151।।

आप श्रुत–श्रवणगोचर थे, पूजित-समस्तलोकमान्य थे एवं दृष्ट –देखे गये थे इसी से आपने भेदभाव को एक ओर छोड़कर विद्वानों, मूर्खों, धनियों तथा निर्धनों को समान ज्ञान दिया जिससे आप पूर्ण समदर्शी थे।। 151।।

दीने दयार्द्रहृदयः परमस्त्वमासी र्ह्यो दरिद्रनिवहः परमस्तवासीत्।
यातो यतो दिवमवैमि च निर्धनेन नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।।152।।

हे पूज्य! दीन दुःखियों के लिये आपका हृदय सदा दयार्द्र रहता था और दरिद्रियों ने आपको आत्मसात कर लिया था, इतना होने पर भी आप स्वर्ग में चले गये इससे स्पष्ट विदित होता है कि परमदरिद्री मैं आपको हृदय में स्थान न दे सका–अपना न सका पश्चात्ताप!!!।।152।।

दैवेन मे हि विमुखेन भवन्तमद्य हृत्वा हृतं मम हृदो वद किं न सद्यः।
किं वाऽधिकेन मम शर्मविभिन्नमर्म जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रम्।।153।।

हमारे प्रतिकूलवर्ती दैव ने आपको हरकर हमारा क्या नहीं हर लिया यह आप ही कहें, अधिक क्या कहें, हमारा शर्म–कल्याण (शुभ) भिन्नमर्म हो चुका है जिससे हे प्राणिमात्र के बन्धो! आज हम दुःख के भाजन बन बैठे हैं।।153।।

सम्प्रत्यसाम्प्रतबहुच्छलदम्भयुक्त स्तद्धीनसाधुपथवर्त्तिनमाक्षिपन्ति।
रक्ष प्रभो ! बहुदुरक्षरवर्षतोऽस्मात् त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य ! ।।154।।

हे प्रभो! इस समय कपट पटु अनेकों दंभी लोग निष्कपटी साधुमार्गी जैन समाज की हंसी उड़ाते हैं अतः हे नाथ! हे दीनबन्धो! हे भक्तवत्सल! हे शरणागतप्रतिपालक! उन दुष्टाक्षरों के बरसाने वालों से रक्षा करो।।154।।

नाथ ! त्वदीयचरणे विनयेन युक्ता मत्प्रार्थनेयमधुना सफलैव कार्या।
स्यादस्मदादिहृदयं शुभभावलिप्तं यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।।155।।

हे नाथ! आपके चरणों में हमारी यह सविनय प्रार्थना अब युक्त है–उचित है अब इसे आप सफल करें और हमारे अन्तःकरणों को शुभ भावों से भावित– संस्कारित बनावें कारण कि, भावशून्य (श्रद्धाविहीन) क्रियाएं फलतीं नहीं; वे व्यर्थ होती हैं।।155।।

स्वस्मिन्निवाशु बहु पूरय शान्तिपूण्य कारुण्यशास्त्रनिवहैर्मम मानसानि।
मन्मानसाऽप्रमदमाशु विवर्त्तयेश ! कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य !।।156।।

हे ईश! हे संयमियों में श्रेष्ठ! हे करुणा और पुण्य के निवास भवन! अपनी आत्मा के समान हमारी आत्मा को भी उन्नत बना दो अर्थात् हमारे हृदयों में भी शान्ति, पुण्य, दया एवं शास्त्र समूह को कूट-कूट कर भर दो और हमारे अन्तःकरण में जो मद है उसे उलट दो अर्थात् दम (ब्राह्यवृत्तियों से मन को रोकना) कर दो अथवा मद की उन्नति को रोक कर उसका ह्रास कर दो।।156।।

सन्तु प्रपूर्णमनसो वचसा विनाऽपि स्यात्केवलेन मनसाऽपि ममेष्टसिद्धिः।
भारो न ते यदि सचेत्तदपीह सार्थो भक्तया नते मयि महेश ! दयां विधाय।।157।।

'तुम सब पूर्ण मनोरथ होवो' यदि आप ऐसा कहने का कष्ट न भी उठाकर केवल हमारे अभ्युदय को आप मन में ही विचार दिया करें तो भी हमारी अभिलषित सिद्धि हो सकती है, भक्ति से नम्र हमारे जैसे भक्तों में दया करना आपका कर्त्तव्य है कोई बोझा नहीं मान लो यदि बोझा भी है तो निष्प्रयोजन नहीं सप्रयोजन है।।157।।

चेखिद्यते जनमनः कलिखेदतश्च श्रीमद्वियोगप्रभवात्परिभावतश्च।
हित्वाऽधुना सुखनिदानसमाधिमाशु दुःखाङ्कुरोद्दलनतत्परतां विधेहि।।158।।

विकराल कलिकाल जन्य दुःख से तथा श्री चरणों के वियोग से आविर्भूत परिभव द्वारा इस समय समस्त मनुष्यों के अन्तःकरण पूर्ण दुःखमय हो रहे हैं अतः आत्मा का सुख साधन करने वाली समाधि छोड़कर हमारे दुःखांकुरों के दलन में कटिबद्ध हो जाइए।।158।।

जन्मान्तरीयकलुषार्तजनार्तिहारि भावत्कभव्यभवनंदुरितप्रहारि।
आसाद्य प्रीतिनिकरं समुपैति भोगी निःसख्यसारशरणं शरणं शरण्यम्।।159।।

भवान्तर में किये हुए पापों से दुःखी जनों के दुःख दूर करने वाले, कल्याण –मंगल के उच्च भवन, दुरित विदारक एवं असहाय के सहाय आपके चरणों को पाकर सांसारिक जीव प्रसन्न होते हैं।।159।।

मन्ये स पापपरिपूरितचित्त आसीद् दुर्दैवदेवनविलासनिवास एव।
नाऽसादि येन सुखमङ्घ्रियुगं त्वदीय मासाद्य सादि तरिपुप्रथिताऽवदात्तम्।।160।।

निःसन्देह यह मनुष्य घोर पापी एवं दुर्दैव का क्रीड़ास्थल ही था जो आपके सर्व सुखकारी चरणों को पाकर भी सुखी न बन सका।।160।।

अन्यत्कृतिप्रतिहितात्मतया न दृष्टो
दिष्टेन नष्टशुभकर्मचयेन दीनः।
ध्यातोऽपि नैव नियतं च विवञ्चितोऽस्मि
त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानबन्ध्यः।।161।।

और और कार्यों में व्यग्र होने से तथा दुर्दैव से बाधित होने से मैं दीन हीन आपके पदारविन्दों का दर्शन न कर सका अथवा ध्यान न करने पाया, अतः हे जगत्पावन! मैं अवश्य ही छला गया।।161।।

त्वत्पादचिन्तनपरं प्रविहाय सर्वं
सम्प्रस्थितो यदि भवांन्नहि मामवादीत्।
सम्प्रत्यपि प्रतिपलं भवता न गुप्तो
बन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन! हा हतोऽस्मि।।162।।

सर्वस्व का बलिदान कर मात्र आपके ही शरणागत था परन्तु आपने भी मुझे निराधार छोड़ बिना कहे बूझे परलोक सिधार गये अब इस समय में यदि रक्षा न करोगे तो इस अनाथ का सर्वनाश अवश्यंभावी है।।162।।

सर्वे भवन्तु सुखिनो गददैन्यमुक्ताः सक्ताः परोपकृतिकार्यचये भवन्तु।
जह्युः परस्परविरोधमवाप्य मोदं देवेन्द्रवन्द्य! विदिताऽखिलवस्तुसार!।।163।।

हे देवेन्द्रवन्द्य! हे सकल पदार्थ तत्त्वज्ञ! आपकी अतुल कृपा से आधिव्याधि एवं शोक से मुक्त होकर प्राणीमात्र सुखी हों सदा परोपकार में लगें और प्रसन्न रहकर पारस्परिक विरोध को छोड़ें।।163।।

विद्याऽनवद्यकृतिधर्मधनोन्नतीना मास्ते निदानमिति तां परिवर्धयस्व।
त्वत्सेवकान् कुरु सुशास्त्ररसे रसज्ञान् संसारतारक! विभो! भुवनाधिनाथ!।।164।।

चारुक्रिया, धर्म एवं धन आदि की उन्नति का मूल कारण सद्विद्या ही है, अतः विद्या को बढ़ाइये और सेवकों को शास्त्ररस के रसिक बनाइये।।164।।

संसारसागरसुसेतुमतिं विवेक प्राग्भारपूरितकृतिह्रदनीहिमाद्रिं ।
पूज्यं नवीनमतिदीनजने दयालुं त्रायस्व देव ! करुणाह्रद ! मां पुनीहि ।।165।।

दुस्तर भवसागर में सेतु समान है बुद्धि जिनकी, विवेक संसार से पूर्ण क्रियारूप नदी के लिये हिमालय (नदी हिमालय से ही निकलती है) दुःखी जीवों में परमदयालु ऐसे हमारे नवीन पूज्य श्रीजी की रक्षा आप करें।।165।।

ध्वान्तार्त्तजीवमिव भानुमुदन्ययार्त्तं वारीव पन्नगगणर्त्तमिवाहिभोजी ।
यो मां जुगोप बहु गोप्स्यति पाति नित्यं सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ।।166।।

आप हमारे उन नवीन पूज्य श्री की रक्षा करें जो अन्धकार से पीड़ितों के लिये प्रचण्ड मार्तण्ड हैं, पिपासा कुलों के लिये शीतल जल हैं, विषधरों से काटे हुओं के लिये गरुड़ हैं एवं जिन्होंने भयप्रद व्यसनरूपी जल से भरे हुए इस अपार संसार सागर से रक्षा की, करते हैं और करेंगे।।166।।

शत्रुः प्रशाम्यति पराङ्मुखतां प्रयाति सिंहाहिदन्तिमहिदारचयाश्च हिंस्र ।
ध्यानं नितान्तसुखदं हृदये नराणां यद्यस्ति नाथ ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणाम् ।।167।।

हे नाथ ! यदि आपके चरणकमलों का ध्यान मनुष्यों के हृदय में है तो निस्सन्देह शत्रु स्वयं नष्ट होंगे अथवा भग जायेंगे सिंह, सर्प, हाथी आदि हिंसक जीव भी पराभव पा सकेंगे।।167।।

वक्तुं वृहस्पतिरसक्त इनोऽपि दीनः शक्नोति नो बहुविशारदशारदाऽपि ।
अस्मादृशोऽल्पविषयस्तव किं गदामि भक्तेः फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः ।।168।।

एकान्त संचित की हुई जिस भक्ति के फल को समर्थ वृहस्पति भी नहीं कह सकता बहुत जानने वाली सरस्वती भी कहने को समर्थ नहीं हो सकती उस भक्ति के फल को बहुत थोड़ा जानने वाला मेरे जैसा दीन क्या कह सकता है ? ।।168।।

सातार नामनगरे वसतोऽब्दकालं षट् सिन्धुसागर सुनेत्र मिते शुभाऽब्दे ।
वीरस्य मासि नभसि स्तुवतोऽयकारी तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्यभूयाः ।।169।।

का ते स्तुतिः स्तुतिपथादतिरिक्तवृत्तेः सर्वानुकूलकरणाप्तविशेषशक्तेः ।
किन्त्वर्थयेऽहमिदमेव भवान् विभूयात् स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ।।170।।

समस्त अनुकूल करणों की प्राप्ति से असाधारण शक्ति वाले तथा स्तुतिमार्ग में न आने वाले आपकी स्तुति क्या हो सकती है, किन्तु मेरी यही एक प्रार्थना है कि, इस भव में और भवान्तर में भी एक आप ही मेरे स्वामी हों।।170।।

ध्यात्वाऽभिनुत्य निजकृत्यमथो वितत्य पूज्यो गतोऽस्ति च भवान् वियतं यथैव ।
एवं वयं जितहृषीकचया व्रजाम इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र !171।।

विधिवत् शुल्कादि ध्यान करके, जिन चरणों में अभिनमन करके तथा अपने चारु कृत्यों को विस्तारित करके आप इस संसार से जिस प्रकार स्वर्ग को सिधारे उसी प्रकार जितेन्द्रिय एवं रागादियुक्त बुद्धि वाले होकर हम भी आपका अनुगमन करें।।171।।

हित्वा यदापि गतवानिह नस्तथाऽपि स्वीयेषु नो गणय नाथ ! सदैव सौम्य ! ।
ध्यानं विदेहि तव येन सदा भवेम सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः ।।172।।

यद्यपि हमें छोड़कर आप इस संसार से स्वर्ग चले गये हैं तो भी भव्यमूते! अपनों में—आत्मीयों में हमारी गणना अवश्य करें हमें अवश्य अपनायें आपकी दृष्टि मान से ही हम सघन एवं उत्पन्न हुए रोमांच से वस्त्रधारी बन सकते हैं अर्थात् अनिवर्चनीय आनन्द के भागी बन सकते हैं।।172।।

कामं विभातु भुवने सदृशस्तवेश ! शान्तिं विना न तव कान्तिरमुष्य चास्ति।
यत्राऽस्महे सुसुखिनः समवीक्ष्यमाणा स्त्वद्विम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः।।173।।

अर्थैर्जनैर्हयगजैश्च समेधमानाः भव्यैः सुधीभिरतितश्च बिवर्द्धमानाः
अन्ते समीप्सितपदं सततं ह्ययूयन्ते ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्याः ।।174।।

हे विभो! जो भव्य जीव आपके इस प्रकार संस्तव (स्तुति) की रचना करते हैं वे निःसन्देह इस संसार में धन से, बन्धुओं से, सुन्दर घोड़ों से, उन्मत्त हाथियों से युक्त बुद्धिमान् भव्य जीवों से वृद्धि गत अन्त में निश्चय से अभिलषित पद (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।।174।।

परिशिष्ट 2 रा.

जीवदया का पट्टा परवाना

बोहोतसा छोटा मोटा जागीरदारो व ठाकरो की तरफ सें पूज्य श्री को जीवदया का पट्टा परवाना मिला था, वो सब मिल नहि शकने से जो थोड़ा सा मिला वो असल भाषा में अक्षरसः ऊत्र दीया है।

।।श्रीरामजी।।

नंबर 382

महोरछाप छे

हुकम कचेरी राजस्थान बान्सी बनाम समसी पंचां जैन मार्गी साकीन सादड़ी वाला अभी अठे आये मालुम कराई के मारे श्री पूज्यजी महाराज मारवाड़ सूं पधारे है और अठे सादड़ी में चातुर्मास करेगा सो महाराज को फरमान उपकार के बारे में है बंदोबस्त के वास्ते फरमायो है जीसुं और ठिकाना में चाहे जैसो जैसो बंदोवस्त करावे।

और अबे अठे भी अरज है सो उपकार को बंदोवस्त का वक्से जीसुं थाने जरिये हुकमनामा हाजा लीखो जावे है के अठे खटीक, कसाई वगेरे की दुकान श्रावण, कार्तिक, वैशाख मास में बिलकुल बंद रहेगा इंके अलावा हमेशा मुजब इग्यारस व अमावास्या को तो थावर भी दुकान बंद रहेगा खटीक, कसाई लोग बिना समजसुं दुकान करेगा तो बीने सजा देदी जावेगी संवत 1965 के जेठ सुद 1

☐ ☐

श्री एकलिंगजी

(सही)

श्रीरामजी

सिधश्री कुंतवास राजश्री ओंकारसिंहजी दस कसवे हाजा का समस्त पंचों आपने थांकेणी करीके श्रीपूजजी महाराज सा. को पधारवो हुओ और धरम चरचा वगैरे उपकार हुआ और उपाकर हमेशा के वास्ते वेणो चाले छे वास्ते यो पटो अठा के वास्ते तथा पटा की रियासत के लिये लीख देवणो सो ई माफिक बन्दोबस्त रहेगा

वैशाख, श्रावण, कार्तिक या तीन महीना में जीव ने नहीं मारेगा, मारेगा जीने सजावेगा।

बारा महीना में पांच अमरिया अठा की तरफ से होता रहेगा सालोसाल ई माफिक और ई सिवाय पेलां सुं बन्दोवस्त अगियारस अमावस पजुसण, सराद वगैरा की है ई जैसे मजबुत रहेगा सं. 1966 को चैत सुदी 15

द. केशरीचंद बोरडिया

हुक्म से

श्री

नकल रोबकार महकमें खास ब इजलास मुन्शी सुजानमल बांठिया कामदार कुशलगढ़ ता. 21-9-9 ईस्वी।

सिक्का

B. SUJANMUL,
Kamdar of Kushalgarh

चुंके मोसम बारिस खतम होने आया और जंगल में घास भी पका होकर सुखने आ गया है भील लोक अपनी कम कहमी से इलाके हाजा के जंगल में आग याने (दवाड़) बे अहती वाती से लगा देते हैं जिससे की तमाम घास व सब किस्म की लकड़ी जल जाती है जो उन्ही गरीब लोगों के गुजारे की बड़ी आधार की चीज है और ऐसा होना से राजा को भी नुकसान होता है अवल भी इस अमर में माकुल इन्तजाम रखने लिये हुकम जारी हुवा है मगर इतमिनान लायक इन्तजाम हुवा नहीं लिहाजा केवल अज गुजर जाने ऐसे वाका के इस साल इन्तजाम होना मुनासिब लिहाजा।

हुकम हुवा के

एक एक नकल रोबकार हाजा महकमे माल में भेजकर लिख जावे के इस वक्त जमाबन्धी का काम शुरू है और हर देहात के भील वास्ते टकवाने के जमाबन्धी महकमें माल में आते हैं इस वास्ते हर मुखिया गांव से इस बात की काफी समजायसकर मुचलके ताबानी रुपे पंधरा का लिया जावे के वो अपने अपने गांव की हद के जंगल की पुरी निगरानी रखकर दावड़ न लगावें वन लगने देवे अगर दवाड़ ऊपर से आई तो फौरन तमाम गांव के लोग जमा हो बुझावे और जंगल या रास्ते में तमाकु पीने वाले या दीगर अशखाश न आग न डाल दें जिससे के अलोफैलकर जंगल में नुकशान पहोंचाने का अहतमाल हो अगर इसमें किसी के जानीव से कसूर होगा तो उससे रूपे सदर तावान के वसूल किये जावेंगे और एक नकल रोबकार ताजा पुलिस में भेजी जावे और लिखा जावे के हर मुलिजमान पुलिस में हिदायत की जावे के वो इस बात की पुरी निगरानी रखे याने दवाड़ के अमीनान चुड़ावार व मोहकमपुरा व छोटा शरवा कारकून तावे शराके तरफ भेजी जावे और यह असल फाईल महकमें हाजा में वास्ते दाखला के रखा जाय फक्त।

सिक्का

श्रीएकलिंगजी

श्रीरामजी

सावत

राजश्री जालोदा ठाकोर साहेब श्री दोलतसिंहजी इस मुजव छोड़्या मारी सीम मांही। मारी सीम में हरण व पंखेरु कोई मारे नहीं ना खाय ते उमर पीछे से भी कोई मारे नहीं।

द. प्यारचंद मालु का श्री रावला हुकमसुं

लिखा सं 1965 जेठ बुदी 3

□ □

श्रीरामजी

साबत

ठिकाना साठोला में ई मुजब नहीं वेगा। रावतजी साहब श्री दलपतसिंहजी सादड़ी का पंच अरज करवा आया जी पर छोड़ा।

तालाब में मछली नहीं मारागां गजा पगु तलावठे पर तीतर आतो परगणा में कोई नहीं मारेगा और खास रावले आ जानवरां के सिवाय हिरण रोज नहीं मारेगा और उपर लिख्या मुजब परगणा में कोई मारेगा तो सजा दी जावेगी सं. 1965 जेठ बुद 10 द. नरसिंही राजा हुजुरा हुकमसुं श्रावण, कातिक, बैशाख तीन महीना में जानवर मात्र नहीं मारेगा सदीवरे सींवे नरसिंही राजी हजुर रा केणासुं।

नकल रोबकार महकमें खास व इजलास मुंशी सुजानमल बांठीया कामदार कुशलगढ़ ता. 21-9-9 ई. महोर छाप।

B. SUJANMUL,
Kamdar of Kushalgarh

चुंके ऐसा वजह हुआ के इलाके हाजा के हर देहात में भील लोग दशहरा पर पाडा मारा करते हैं और वो पाडे ऐसे जानवर हैं के जो खेती के काम में बजाय बैलों के मदद देते हैं तो ऐसे सैंकड़ों जानवर के एक दिन में हलाक होने से और हर साल पर नौबत पहोंचने से बेसुमार जानवरों के नाबुद होने में बहुत भारी नुकसान उन्हीं लोगों को मालूम होता है पस मुनासिब कि ऐसे ना दुरुस्त और बेरहम तरीके के जरिये जो सेंकड़ों जानवरों का नाश करने में बहस्त कोम कमहमी करते हैं उसके निस्बत उन को ऐसी समजुत दी जाय के वो अपनी इस भुल भरी हुई चाल का तरक कर ऐसे पाप के काम को हरगीज न करे बल्के पाड़ों की जान का बचाव करने में अपना फायदा समझे और शायद हैं के उनके उन खाम खयालीकों के जो पाडा एक देवी के भोग की खातर हलाक करते हैं वे वैसा होने से उनके जान माल की खैर है मगर देवी को वो और तरीके से भोग दे सकते हैं लेकिन इस रिवाज को कत्तई नाबुद करे ताके उन काम की बहुत ही हो लीहाजा

हुक्म हुवा के

नकल इसकी माल आफीसर की तरफ भेजकर लिखा जावे के दशहरे के दिन पाड़ा हरगीज नहीं मारे अगर जिस किसी के जानीब से ऐसा होगा उस से रु. 15 ताबान लिया जावेगा ऐसे मुचलके हर देहात के मुखीया तड़वी के लिये जाकर उनके दिल पर पूरा असर इस बात का कर दिया जावे के वो पाड़े के मारने के रिवाज को ब खुबी छोड़कर उसमें अपने फायदे का एतकाद कर लेवे वनकल सारी पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की तरफ भेजकर तहरीर हो के इस बात के निगरार होके ऐसा वाका न गुजरे क्योंकि यह एक सबाब का काम है इसमें हर मुलामजीम ने बादीली कोशीश करने में इसी साल इस बात का नतीजा जहुर में आयेगा कि इस हुकम की तामील व पायबंदी रीयाया इलाके हाजा के जानीव से वा इतमीनान हुई तो निहायत दर्ज खुशी का वायस होगा और एक-एक नकल इसका बहनाय तामील मसन्दरे मोहकम पुराव छोटी सरवा को भेजी जाकर वजी नहीं फाईल में रहे। फक्त।

सिक्का

ल. कामदार कुशलगढ़

हजुरी चेनाजी साकिन अमावली ई मुजब सोगन कर्या मारा हाथ सुं जनावर बिलकुल मारुं नहीं और घरे खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है।

द. जालमसिंह चेनाजी का कहवासु

ठाकरां रुगनाथसिंहजी बगेली साकीन अमावली जागीरदार को भाई हरण, हुलो, तीतर मारुं नहीं खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है।

द. जालमसिंह रुगनाथसिंहजी रा कहबासुं

गाम ननाणे पेटे

ठाकरां देवीसिंहजी गोड़ इण मुजब सोगन कर्या मारा हाथ सुं जानवर मातर नहीं मारुं माने चारभुजारा सोगन है कसाई लोगा ने बेचणे नहीं देऊं।

द. ठाकरां देवीसिंहजी द. जीतमल का

ठाकरां दलेसिंहजी जोड़ भोमिया इण मुजब सोगन कर्या मारा हाथ सुं जानवर मात्र खाबा के वास्ते नहीं मारूं दाव मारा हाथ सुं नहीं लगावणो मवेशी बिना सेंधा आदमी ने नहीं बेचुं

द. उद्देसिंह

ठाकरां जालिमसिंहजी जागीरदार अमावली ई मुजब सोगन कर्या जींरी विगत मारा गाम में सुं गाय बिना आलखाणने बेचवा देवुं नहीं मारी सीम गाम अमावली में कोई जानवर मारी जाण में मारवा देवुं नहीं और मैं मारुं नहीं हरण खरगोश मारुं नहीं खाऊं नहीं और पंखेरु जानवर मारुं खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है।

द. जालमसिंह का हाथरा छै

।।श्रीरामजी।।

साबत

श्रीपूजजी महाराज चांदड़ी पधारवा पर पंच सादड़ी का ठिकाणा लुंदा अरज होवा पर नीचे लिख्या मुजब छोड्या और सरदार वगैरे से भी छोड़ाया गया सो सावित है जानवर वगैरा ई मुजव सं. 1965 का जेठ बदी बुधवार।

श्री रावली तरफ से

वैशाख कार्तिक में कसाई अमावस ग्यारस बकरा खज नहीं करेगा आगे भी वंदोवस्त हो परन्तु अव भी पुख्ता राखा जावेगा वारा ही महिना री अमावास ग्यारस भी माफ है कार्तिक, वैशाख दो महीना माफ और वाराही महिना की अग्यारस माफ ई साल में चैत्र मास में राज गन देवगन वारे है कसाई दुकान नहीं करेगा हिरण छीलरा रोज ग्यारस अमावास लुंदा में शिकार नहीं करेगा।

द. पन्नालाल रांका श्री हजुर का हुक्म से

श्रीपरमेश्वरजी

सिक्को छे

सवरूप श्री ठाकरां राज श्री 105 श्री मोतीसिंहजी लाखावतंग जैन रा साधु पूजजी महाराज श्री श्री 1008 श्री श्री श्रीलालजी महाराज मोटा उत्तम पुरुषारो पधारणों बाबरे हुओ तरे मैं बादण ने गया तरे इणा मुजब सोगन किया है सो जावजीव पालां जावसुं

1. शीकार में सूर वो नार सिवाय दुजो कोई जानवर मारा हाथ सुं नहीं मारसुं

2. अमावस अग्यारस महीना में तिन आवे है सो मास बारारी छतीस तिथि हुए सो मारा राज में जावजीव हलांरो (हल) अगतो रेसी।

3. बारस री तिथी रे दिन कुंभार, लवार, तेली, न्याव निभाड़ों, घाणी, एरणरो अगतो पालसी ने कसाई खटीकरो भी अगतो रेसी।

4. मारा राज में गाय बगैरे कसाई व परदेशी मुसलमान ने नहीं बेचसी।

5. सुड़ कोकड़ रा खेता रो मारा राज में वारे नाम देसी बालण देसी नहीं बालसी सो राज रो कसुरबार होसी

6. आसोज सुद 10 ने सालो साल नव जीव बकरा 11 रे कुकड़क गलाया जावसी।

इणां मुजब पाला जावसी ए कलमां पीढ़ी दर पीढ़ी पालां जावसी सं. 1964 पोश सुद 15

द. कामदार महेताब चंदरा छे श्री ठाकोर साहबरा हुकम सुं लिख दिनो छे।

श्रीभैरूंनाथजी

श्रीरामजी

महोरछाप

सीधश्री महाराज महारावतजी श्री भोपालसिंहजी रा. भदेसर बचनाम् बड़ी सादड़ी का समस्त ओसवाल माननारा पंचा सुं अर सादापेच अपरंच थां अरज कीधी के मारवाड़ सुं मां के श्री पूज्यजी चतुरमासो करवान आवे है सो वठां सुं के वाई हैं के मारो आवो वे है ई निमित्ति कुछ उपकार वणो चावे ई वास्ते अठे हुकम है के सावन, कातिक, बैशाख तीनों महिना कसाई दुकान सदैव बंद रहेगा और इगियारस अमावस तो आगे सदैव सुं पाले है जो पले ही है।

सिक्कोछै

सं. 1965 का जेठ सुद 13

द. गिरधारी सिंह

□ □

श्रीएकलिंगजी

राजस्थान गोगुन्दा मेवाड़

श्रीरामजी

नंबर की 859

महोरछाप छे

स्वामीजी महाराज श्री पूज्यजी महाराज श्री श्रीलालजी को हाल में गोगुन्दे पधारणो **हुओ**

आपका उपदेश की तारीफ सुण मारो भी सभा में जाबो हुओ, जो उपदेश श्रीमान् को मैं सुणों मारो मन बहुत प्रसन्न हुओ और आप जैसा महात्मा का उपदेश सुं मैं हमेशा के वास्ते पंखेरू जानवरों की व हरण की शिकार छोड़ दी है। और अठै राजस्थान में आसोज सुदी 8 हमेशा सुं दो पाड़ा रो बलदान होवे है वी में सुं 1 हमेशा के लिये बंध किधो सो मारी पुस्त हर पुस्त बंध रहेगी ई के पहले सं. 1965 में स्वामीजी महाराज चोथमलजी को पधारवो हुओ जद श्री बड़ा हजुर २ बकरा हर साल अमरा करवा को प्रण कीधो वा अब तक चलो जावे है वीरो हमेशा अमल रहेगा में श्री पूजजी महाराज के उपकार के लिये जतरो धन्यवाद करुं थोड़ो है सं. 1971 का जेठ बदी 7 सोम.

द. राजराणा दलपतसिंह

महीयर स्टेटमां धर्म निमित्ते थती हिंसा केम अटकी ?

महीयर राज्यमां एक हील ऊपर श्री शारदा देवीनुंमंदिर आवेलुं छे तेमां देवी निमित्ते अनेक प्रसंगे देवी भक्तों तरफथी बकरा, पाड़ा, विगेरे हजारों प्राणिओनो लांबा काल थी दर वर्षे भोग अपातो हतो के जे वात त्यांना दिवान साहेब रा. रा. हिरालाल गणेशजी अंजारीयाने रुचिकर नहि लगवाथी ते ओ आवा प्रकारनी करीपण हिंसा हमेशने माटे बंध थाय तेवुं इच्छता हता अने ते माटे तेओ श्रीए मी. भगवानलाल तथा मी. दुर्लभजी त्रिभुवनदास झवेरी ने वात करतां ते उपरथी जो कांइपण सारे रास्ते लोकोने दोरवी ते हिंसा अटकावाय तो ते बाबत पोतानो विचार जणत्रिव्यो हतो। आ उपरथी मी. दुर्लभजीए सेठ मेघजीभाई थोभण भाई ने पत्र लखी आ हिंसा बंध करवा माटे कंईक इलाज लेवानी भलामण करी हती। ते उपरथी अमे तेमने खास आ कार्यमाटे महीयरना मे. दिवान साहेवनी मुलाकात लेवा मोकल्या हता के ज्यां तेओए नजरोजर आ करपीण हिंसायुक्त कार्यो जोयां हतां बाद दीवान साहेबे जणाव्युं के जो आ राज्यमां कोई सखी गृहस्थी तरफ थी एक सार्वजनिक लाभ माटे एक इस्पितालनुं मकान बंधावी देवामां आवे तो तेना बदलामां नामदार महीयरना महाराजा साहेवनी संमति मेलवी ते घातकी कार्य सदाने माटे हूं बंध करावी शकूं। आ उपरथी मी. दुर्लभजीए हमने ए हकीकत जणावतां अमे नीचेनी शरते तेवी एक इस्पीताल बंधावी आपवा ठराव कर्यो हतो।

शरतो

1. महीयर राज्यमां तमाम जाहेर देवलोमां हिंसा सदंतर बंध करवी।

2. ते बावतना लेखीत हुकमो अमने त्यांना सत्तावालाने अपवा।

3. आवी जातनी हिंसा बंध करीने ते बाबत श्री शारदा देवीना देवालय आगल ते बावतनो राज्य तरफथी बे पीलर लगावी हिंदी तथा अंग्रेजी भाषामां शिक्षा लेख लगाडवा।

4. अमे ते इस्पीताल बंधाववा माटे रु. 15001 अंके पंदर हजार अने एकनी रकम स्टेटने एवी शरते सोंपीए के ते इस्पीताल उपर आबावतनो शिलालेख पण हमेश माटे कायम राखवामां आवे अने पंदर हजारथी ओच्छी रकम खर्चवी नहि पण जो विशेष रकम जोइए तो स्टेट तरफथी ते आपवामां आवे अने इस्पीताल निरन्तर निभाववानो सघलो खर्च राज्ये आपवो।

उपरना शरतो प्रमाणे ते राज्यना नामदार राजा साहेब ब्रीजनाथ सिंहजी वहादुरे पोताना राज्यमां तेमना दीवान साहेवनी नेक सलाहथी धार्मिक पशुवध हमेश ने माटे वंध करवाना परमार्थि ठरावो करेला छे, अने आ ठराव विरुद्ध जो कोईपण शक्ष वर्तन करे तो तेने 6 मासनी सखत केदखानानी सजा तथा रु. 50 पचास दंड करवाना ठराव ता. 2 सितम्वर 1920 ना रोज राज्य तरफथी प्रसिद्धथयो छे। अने ते माटे अमे ते नामादरनो मानपूर्वक आभार मानी ए छीए। दीवान साहेवनी असल सही सीक्कावाला सदरहु ठेरावोना फोटोग्राफोनी नकलो अमे जाहेर प्रजानी जाण माटे प्रसिद्ध करीए छीए, के जे जेथी भविष्यमां ते राज्यमां तेवो वनाव कदि दैवयोगे वनवा पामे तो अमारा आ दस्तावेजोनी साक्षी अने आधार द्वारा जाहिर प्रजाते अटकावी शके।

वलभ टेरस सेन्डहर्स्ट रोड

बम्बई नं. 4

मेघजी थोभण

शांतिदास आशकरण

अरु एक अनुवाद

(1)

मिस्टर हीरालाल गणेशजी अंजारिया साहेब; बी.ए. दीवान रियासत मईहर तारीख 2-9-1920

नवम्बर 1297

(सही) हीरालालजी अंजारिया

महीयर राज्यना मंदीरामां घणे करीने बकरां तथा बीजा प्राणिओनां बलीदान आपवामां आवे छे। आ रुढ़ी पसंद नहीं होवा थी हुकम करवामां आवे छे के श्री देवी शारदाजीना मंदीरमां अथवा राज्यना कोई पण जाहर मदीरोमां कोईपण माणस कोईपण देवी अथवा देवताओना नाम उपर बकरां अथवा तो बीजां जनावरानो वध करवानी के बलीदान देवानी सखत मनाई करवामां आवे छे। अने जे माणस आ हुक्मनो भंग करशे अथवा कोई माणसने आ हुकम कोई ऐ भंग कर्यानी खबर हशे अने ते दरवारमां ते बाबत नहीं रजु करेश, तो ते हुकमनो भंग करवा वालानो, अथवा तेवी खबर जाणवावाला ने दरेकने 6-6 मास सुधी सखत केदनी सजा अने 50-50 पचास रुपया सुधी दंड करवामां आवशे अने जे माणस आ हुकमनो अनादर करवावाला ने पकड़ी दरबारमां हाजर करशे तेने 10 दश रुपिया दंडनी रकममांथी पेस्तर कापी दरबारमां थी आपवामां आवशे, अने ते माणसने राज्यनुं हितेच्छ गणवामां आवशे। आ हुकमनो अमल आजनी तारीख थी करवामां आवशे. लख्यूं।

(2)

हु.

आ हुकमनी एक नकल रवीन्यु ओफीसर ने मोकलवी अने एवं लखवुं के तेओ जल्दीथी सर्व पुजारियो तथा मानता लेबावाला माणसने आ बाबत खबर दे अने सुपरिंटेन्डेन्ट सा. पोलीसने मोकली एवं लखवामां आवे के राज्यना दरेक गामोमां हुकम लखावी चोटाडवामां आवे अने दांडीद्वारा तेमां खबर देवामां आवे अने महीअर तलपदमां हुकमनी नकल छपावी चोटाडवामां अने दांडी पिटावी जाहे करवामां आवे अने दश-दश पांच-पांच नकलो मजकुर राज्यनी आसपास जाण वास्ते मोकलवामां आवे अने एक नकल मजिस्ट्रेटने अने एक नकल बाजार मारतर ने खवर माटे मोकलाववी असल नकल फाइलमां हाजर राखवी

(सही) फतेसिंहजी,

(सही) हीरालालजी, अंजारिया,

दीवान महीयर।

नकल मा, सेठ मेघजी भाई

अने शान्तिदास भाईने मोकलवी

Sd, H.G.A.

10-9-20

जीवदयाना सिद्धांतो ने अनुसरीने महीयर राज्यना जाहेर देवलोमां देवी, शारदा देवी अथवा तो कोई देवदेवीओना शामे अगर तेगना नामे थतो बकराओ अथवा प्राणीओनो वध करवानी महीअर राज्ये सखत मनाई करेली छे अने एवा दाखला लइ कच्छ मांडवी रहीश सेठ मेघजीभाई थोभण भाई तथा सेठ शांतिदास आसकरण, जे.पी. जेओए रुपये 15000 नी रकम आ अटकावनी यादगीरी मां शारदा देवी ने ते रकम जीवदयाना कार्यमां वापरवा माटे अर्पण करवा विनंती करी छे। राज्य तेमनी विनंतीनो खुशी थी स्वीकार करे छे अने तेमनी साथे मसलत चाल्या पछी तेमना तरफ थी अर्पण करवामां आवेली रकम थी ओछी नहीं तेटला खर्चथी एक होसपीटल बांधवाना निर्णय उपर आव्युं छे।

आ इस्पीटलनुं मकान सज्ञ करवानो, नीभाववानो; दुरस्त करवानो तथा तेने लगतो तमाम खर्च राज्य तरफ थी उपाडवामां आवशे।

शारदा देवीना डुंगरनी तळेटीमां वे स्थंभो उभा करवामां आवशे अने जेमां ईग्रेजी तथा हिन्दुस्थानी भाषामां बकराओ तथा बीजां प्राणीओना थता वध अथवा बळीदान अटकाववानी अने कसुर करनार ने सजा करवानी जाहेर खबरोना शीलालेख लगाडवामां आवशे।

जो कोईपण प्राणी अथवा बकराने श्री शारदा देवी ने अथवा तो कोई देव अगर देवी ने जाहेर देवलोमां अर्पण करवामां आवशे तो तेनो कबजो राज्य तरफथी संभाळी तेमनो खर्च राज्य तरफ थी नीभाववामां आवशे।

महीयर, सी. आइ.

ता. 27 सप्टेंबर 1920

(सही) हीरालाल गणेशजी अंजारीया दीवान, महीयर स्टेट

म्होर

महीयर, ता. 2 जी सप्टेंबर 1920

(4)

महीयर राज्यमां आवेला शारदादेवीनां डुंगरनी तळेटीमां उभा करवामां आवता वे स्थंभो उपर अंग्रेजी तथा हिन्दुस्थानी बन्ने भाषामां नीचे दर्शावेली जाहेर खबरनी वे आरसनी तकतीओ जडाववामां आवशे।

जाहेर खबर।

महीयर राज्यमां आवेला शारदा देवी अगर कोई देव अथवा देवीना सामे अथवा तेमनी नाममां जाहेर देवलोमां तथा प्राणी वध माटे राज्य तरफथी सखत मनाई करवामां आवे छे। जेथी करीने कोईपण मनुष्य कोईपण जातना प्राणीना कोईपण देव अथवा देवीना नामे वध अथवा तो बळीदान करी अथवा तो दई शकशे नहीं।

कसुर करनारने छ मास सुधीनी सखत मजुरी साथेनी जेलनी अने रु. 50 पचासना दंडनी सजा करवामां आवशे।

(सही) हीरालालजी, अंजारीया, दीवान, महीयर स्टेट

म्होर

नीचे दर्शाव्या मुजबनो शीलालेख बांधवामां आवती होस्पीटालना मकानमां (प्रसिद्ध) सुदृश्य जगाए लगाडवामां आवशे।

'आ होस्पीटल कच्छ मांडवीना रहीश सेठ मेघजी भाई थोभन भाई तथा सेठ शांतिदास आसकरण, जे.पी. जेओए. महीयर राज्यनां सर्व जाहेर देवलोमां थता प्राणीवधनी अटकायतना माटे त्यानां महाराजा साहेब श्री ब्रीजनाथसिंहजी बहादुरना आभारनी यादगीरीमां तेनां बांधकामना खर्च बदल रुपये 15001 अंके पंदर हजार एक एनायत करतां तेमना प्रेरणाथी बांधवामां आवे छे।'

दीवान हीरालाल गणेशजी आजारीयाना वखतमां

महीयर, तारीख 2 जी सप्टेंबर, 1920

(सही) हीरालाल गणेशजी अंजारीया,

दीवान, महीयर स्टेट।

म्होर

परिशिष्ट 3

पूज्य श्री का, मुसलमीन भक्तसैयद असदअली M.R. A.S.F.T.S. जोधपुर।

सैयद असदअली लिखते हैं कि, जब श्री 1008 श्री पूज्य श्रीलालजी महाराज का चौमासा जोधपुर में हुआ था, मुझको श्रीपूज्य महाराज के उपदेश से फैजरुहानी (आत्मज्ञान) बहुत पहुंचा। मुझको श्रीपूज्य महाराज ने अत्यन्त कृपा करके नौकार मंत्र की कृपा करी ओर खुद श्रीपूज्य महाराज ने अपनी ज़बान फैजतर जुबान (खास श्रीमुख) से जुबानी नौकार मंत्र याद कराया जो अब तक जपता हूं और बड़ा काम देता है–जैनधर्म का उपदेश लेने के बाद उन्हीं दिनों में मूढ़ लोगों से वड़ा कष्ट उठाना पड़ा, यहां तक कि मूढ़ लोगों ने मुझे जान से मरवा डालने के उपाय किये थे। और दो तीन जगह दुष्ट लोगों ने मेरे बदन पर चोट भी पहुंचाई थी। इस वजह से कि, मेरे भाई अमीरहुसैन जिले गुड़गांव (देश हरियाना) में डाक्टर थे। सो मैंने अपने भाई डाक्टर मजकूर से कहकर तमाम जिले में करीब 3000 तीन हजार के गौओं को वध होने से बचाया। जब कि, प्लेग उस तरफ फैला हुआ था और मेरे भाई डाक्टर मजकूर को हर तरह के अख्तियारात हासिल थे। इस कार्रवाई से रियासत जोधपुर में इस दया के काम के बाबत खुशी के जलसे हुए थे और उन जलसों में तीन-तीन चार-चार हजार आदमियों ने इकट्ठे होकर मानपत्र अर्पण किये थे।

दांता जिले गुजरात के राजा साहिब मेरे मेहरबान थे। वे राजा साहिब मौसूफ अम्बे भवानी के मन्दिर में तशरीफ ले गये थे मैं भी साथ में था वहां अम्बे भवानी के भेंट चढ़ाने को बकरे पचास-पचास के करीब आते थे याने जितने आदमी उतने ही बकरे अम्बे भवानी को व गरज सुख शान्ति चढ़ाने लाते थे और यह बात राजा साहिब को भी बड़ी खुशी और मरजी की होती थी। मैंने राजा साहिव का और हाज़रीन को 'अहिंसा परमो धर्म्मः' का मसला समझाकर और सुख शान्ति वरावर रहने का अपना जिम्मा लिया। चुनांचे राजा साहिब से बकरे छुड़ाने के बदले नकद रुपया अर्पण अम्बे भवानीजी के कराना मुकरर करा दिया जाता था और उन सब वकरों के कान में कड़्यां डलवा कर अमरे करा दिये गये। सब तरह से सुख शान्ति रही किसी की आंख भी वहां नहीं दुखी। इस वावत कई द्वेषी लोगों की तरफ से मुझ पर वड़े-बड़े जोर पड़े परन्तु मैंने धर्म मार्ग में किसी तरह तकलीफ पहुंचने की परवाह नहीं की, और राजा साहिव ने वहां सवको सरोपाव दिये थे वह भी मैंने वहां नहीं लिया। इस तरह पंजाब की तरफ एक रियासत में एक रईस को हजार-हजार कागले रोज मारने का शौक हो गया था, और मार-मार कर वगिंग करते थे, जो कि, वहां पर उस रईस ने मुझको खास उनकी मुशकिल के वक्त वुलाया था। मैंने वहां पहुंचते ही उन रईस साहव से अर्ज करा दी कि, मैं अव वापिस जोधपुर जाता हूं। आपका मुझसे जो खास काम है वह धरा रहेगा, लेकिन उन रईस साहिव का मुझसे खास तौर से मतलव और ग़रज थी। उन्होंने जल्दी से मुलाकात की और मुझसे पूछा कि, विगर मुलाकात किये वापिस क्यों जाते थे। मैंने कहा कि मैं सुनता हूं कि आप हज़ार-हज़ार कागलों का रोज मर्राह फक्त मनराजी के शकल में शिकार करते हैं। इससे आपकी बड़ी वदनामी हो रही है और लोग गालियां देते हैं और फक्त आपकी दिललगी के लिये हजारों जानों का मुफ्त में नाश होता है। इस तरह उनको कई तरह समझाया तो रईस ने आयन्दा के वास्ते ऐसी हिंसा करने की सौगन्ध ले ली। इसी तरह एक रईस साहव जो जोधपुर में बड़े मुअज़्ज़िज़ हैं, उनको उनकी इस किस्म की नामवरी ज़ाहिर कराने का बहुत शौक हुआ तो उन्होंने

बच्चे वाली कुतिया जंगल वग़ैरह से तलाश कराकर मंगाना शुरू किया और उनके शरीर पर चिथड़े लिपटा, लिपटा कर लैम्प के तेल के पीपों में उन कुतियों को डलवा देते खूब तर करवाते पीछे दियासलाई बतला देते। जब वह बच्चे वाली कुतिया जलती कूदती उछलती वह रईस साहिब मय जनाना के बहुत हंसते खुश होते और इनाम तकसीम फरमाते। इसी तरह सैकड़ों जानें कुतियों और गधों की उन रईस साहिब ने ले डाली, जब मुझको मालूम हुआ मैं खुद उन रईस साहिब की खिदमत में गया और अपनी जान तक देना मंजूर किया और हर तरह समझा कर उनसे आइन्दा के वास्ते सोगन करा दी। लेकिन इस मौक़े पर यह जाहिर कर देने काबिल है कि, उन रईस साहिब को इस पाप के अशुभ फल हाथों हाथ मिल गये। जिसको मारवाड़ के छोटे बड़े जानते हैं। मुसलमानों में एक महात्मा मौलाना रूम हुए हैं। उन्होंने भी उन की वाणी में लिखा है कि–

तो मशोले खौफ अर हल्म खुदा।

देरग़िरो सख्त गिरो मर तरा।।

जनाबेमन हमारे कलेजे कांपते हैं। हमारा दिल दुखता है, हमारी कलम में ज़रा ताकत नहीं कि, हम एक शिम्मा बराबर भी ओसाफ हमारे परम दयालु, परम कृपालु, सत्य धर्म की नाव, ज्ञान के समुद्र, दया धर्म की होली गाईड, श्री श्री 1008 श्री श्री पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का क्या लिख सकें। आपने हजारों पापियों को सत्यमार्गी और हज़ारों हिंसाकारों को 'अहिंसा परमो धर्मः' पर आमिल बना दिया था। सैकड़ों चोरों ने चोरी और हिंसा के पेशे छोड़ दिए थे। मीने बावरियों तक ने तीर कमठे फैंक दिये थे और खेती बाड़ी पर गुजरान करने लगे थे।

Indeed, I will never find such a propkari Guru in this world, like shri pujya Shrilalji Maharaj again. His fatherly love & sympathy bring me into force, to weep for him once a day at least.

My Jiwan is useless now without his superium satsung, what I can write you, Sir, more than this?

परिशिष्ट 4

वर्तमान आचार्यश्री

चरित्रनायक सद्गत पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के पश्चात् भारतवर्ष की जैन साधुमार्गी सम्प्रदाय में सब से अधिक मुनि व आर्याजी वाली इस सम्प्रदाय का समस्त भार पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के सुपुर्द हुआ। आप इस पद पर आरूढ़ होकर जैनधर्म को देदीप्यमान कर पूज्य पदवी दिपा रहे हैं। आपका संक्षिप्त परिचय पाठकों को करा देना आवश्यक है।

मालवा देश की पवित्र उर्वरा भूमि में सं. 1932 कार्तिक शुल्का 4 को श्रीमती नाथी बाई के उदर से आपका जन्म थांदला ग्राम में हुआ। आपके पिता श्री का नाम सेठ जीवराजजी था। आप बीसा ओसवाल कुंवार गोत्र में उत्पन्न हुए। आपको बालवय से ही अनेक संकटों का सामना करना पड़ा। जब आप दो वर्ष के थे तब आपकी माता श्री एवं चार वर्ष की अवस्था में आपके पिता श्री का देहान्त हो गया। अतएव आप मौसार में रह पढ़ने लगे। मामा मूलचंदजी को ब्यौपार कार्य में मदद भी देते और विद्याभ्यास भी करते थे। दैवात् मामाजी का आपकी चौदह वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया, अतएव आप पर उनके समस्त कुटुम्ब बाल बच्चे एवं ब्यौपार का समस्त भार आ पड़ा। आपने तीव्र बुद्धि से सबको यथोचित संभाला परंतु सांसारिक कई अनुभवों ने आपको वैराग्य में तल्लीन बना दिया। आप संसार को असार समझ वैराग्यवंत हो दीक्षित होने को तैयार हुए, परंतु आपके बड़े बाप (पिता के बड़े भाई) ने आपको आज्ञा न दी। अतएव आप स्वयं भिक्षा लाकर गुजर करने लगे। वर्ष सवा वर्ष यों व्यतीत होने पर आपने सबकी आज्ञा ले महाराज श्री घासीलालजी महाराज श्री मगनलालजी के पास झाबुआ के समीप लीमड़ी ग्राम में सं. 1948 में मगसर सुदी 1 को दीक्षा अंगीकार की। परन्तु दीक्षित होने के $1\frac{1}{2}$ माह बाद ही आपके गुरुजी का परलोकवास हो गया। इतने अल्प समय में गुरुजी ने आपको अत्यंत शिक्षित बना दिया था उस गुरुतर मोह के कारण आपका मन उचट गया और आप पागल से हो गए। पौने पांच माह पागलावस्था में रहे। दरम्यान तपस्वीजी श्री मोतीलालजी महाराज ने आपकी खूब सेवा सुश्रुषा की। आपके उस समय के पागलपने के घावों के निशान अभी तक मौजूद हैं। आपको भले चंगे किये और सब चातुर्मास प्रायः अपने साथ ही कराये। इसी कृतज्ञता के कारण पूज्य जवाहिरलालजी महाराज तपस्वीजी की आज तक सेवा कर रहे हैं और इस उपकार के स्मणार्थ आप के पूर्ण एहसानमंद हैं। दीक्षा लिये पश्चात् आज तक आपके निम्नोक्त 31 चातुर्मास हुए हैं।

1. धार, 2. रामपुरा, 3. जावरा, 4. थांदला, 5. परतापगढ, 6. सेलाना, 7-8 खाचरोद, 9. महिदपुर, 10. उदयपुर, 11. जोधपुर, 12. ब्यावर, 13. बीकानेर, 14. उदयपुर, 15. गंगापुर, 16. रतलाम, 17. थांदला, 18. जावरा, 19. इंदोर, 20. अहमदनगर, 21. जुनेर, 22. घोड़नदी, 23. जामनगर, 24. अहमदनगर, 25. घोड़नदी, 26. मीरी, 27. दीवड़ा, 28. उदयपुर, 29. बीकानेर, 30. रतलाम, 31. सतारा।

आप शुरू से ही विद्या के अत्यंत प्रेमी थे। आप संस्कृत पढ़े न थे परन्तु संस्कृत के काव्यादि आप बहुत प्रेम से सीखते और मनन करते थे। जब आप दक्षिण की तरफ पधारे तब

आपको सब अनुकूलता मिली और आप संस्कृत के धुरंधर विद्वान् हो गए। आपका व्याख्यान आज अत्यंत प्रभावोत्पादक ढंग का वर्तमान शैली से होता है। आपके व्याख्यान से विद्वान् जन भी अत्यंत संतुष्ट हैं। आपने अत्यंत परिश्रम कर बहुत अधिक ज्ञान सम्पादन किया। कई ग्रंथ देखे उनमें से स्याद्वादमंजरी 'लघुसिद्धांतकौमुदी, मालापद्धति, न्यायदीपिका, परिश्रामण, विशेषावश्यक, रघुवंश, माघकाव्य, कादंबरी, वंशकुमार, किरातार्जुनीय, नेमिनिर्वाण, हितोपदेश इत्यादि का तो अभ्यास किया और तत्वार्थसूत्र,गोमटसार, महाराष्ट्रग्रंथज्ञानेश्वरी, रामदास का दासबोध, लो. तिलक की गीता, कर्मयोग तुकारामजी की पुस्तकें, मनुस्मृति, महाभारत, गीता, पुराण, उपनिषद् इत्यादि जैन सूत्रों के सिवाय अन्य ग्रंथों का अवलोकन किया है। आप संस्कृत के पारंगत विद्वान् होकर हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाएं बोल सकते हैं। श्रीमान् लोकमान्य तिलक आपसे अहमदनगर में मिले थे। आपने जैन धर्म के सम्बन्ध में अपनी गीता में कई सुधार करना चाहे थे और लोकमान्य ने मंजूर भी किये थे। जैनधर्म के सम्बन्ध में जगत् प्रसिद्ध लोकमान्य तिलक महाराज के सुवर्णांकित शब्द ये हैं-

'जैन और वैदिक ये दोनों प्राचीन धर्म हैं। परन्तु अहिंसा धर्म का प्रणेता जैनधर्म ही है। जैनधर्म ने अपनी प्रबलता के कारण वैदिक धर्म पर कभी न मिटने वाली ऐसी उत्तम छाप बिठाई है।'

वैदिक धर्म में अहिंसा को जो स्थान प्राप्त हुआ है वह जैनों के कारण ही है। अहिंसा धर्म के पूर्ण वारिस जैन ही हैं। अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व वेद विधायक यज्ञों में हजारों पशुओं का वध होता था, परन्तु चौबीस सौ वर्ष पहिले जैनियों के चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी ने जब इस धर्म का पुनरोद्धार किया तब जैनियों के उपदेश से लोगों के चित्त अघोर निर्दय कर्म से विरक्त होने लगे और धीरे-धीरे लोगों के चित्त में अहिंसा दृढ़ जम गई। उस समय के विचारशील वैदिक विद्वानों ने धर्म के रक्षार्थ पशुहिंसा बिल्कुल बंद कर दी और अपने धर्म में अहिंसा को आदरपूर्वक स्थान दिया और अहिंसा मंडन कर अपने धर्म को बचाया। यह सब अहिंसा धर्म के प्रणेता जैन धर्म का ही प्रभाव है। (प्रो. आनंद शंकर वापुभाई ध्रुव के लेख का कुछ अनुवाद)। आप के चातुर्मास जहां-जहां हुए वहां-वहां अत्यन्त उपकार हुए। उदयपुर के चातुर्मास में तपस्या के पूर पर किसना नाम के खटीक ने यावज्जीवन पर्यंत अपना क्रूरधन्धा बंद किया और उसने दूसरे नौ जनों को सुधारा। तेराहपंथी साधु फौजमलजी के साथ जेतारण में एक माह तक आपने लिखित चर्चा की। उस समय मंदिरमार्गी व वैष्णव मध्यस्थ थे। इसके फलस्वरूप सद्गत मंदिरमार्गी महाराज श्री सीवजीरामजी का लेख मौजूद है।

आपने कई ठाकुरों का मांसाहार छुड़ाया तथा शिकार का त्याग कराया। कई मुसलमान श्रावक बनाये। कई जगहों के संघ के दो भाग दूर कराये व कुव्यवहार वंद कराये हैं। प्रोफेसर राममूर्ति ने शांतता से आपका व्याख्यान सुनकर फरमाया था कि अगर ऐसे भारतवर्ष में दस व्याख्याता भी हो जायें तो संसार का बड़ा भारी कल्याण हो जाय।

आपका शिष्य समुदाय विद्वान् और श्रद्धालु है। पूज्य पदवी प्राप्त हुए वाद आप श्री संघ एवं साधु समाज में सिंह समान गर्ज रहे हैं। विशाल भाल, दिव्य चक्षु, उज्ज्वल कांति, दैदीप्यमान शरीर रचना इत्यादि इतने आकर्षक हैं और व्याख्यान शैली इतनी उत्कृष्ट, शास्त्रीय एवं सरल है कि श्रोता वंशीपर नाग के सदृश डोलते रहते हैं।

शिष्य समुदाय और श्री कोटापुर महाराजा साहिब

सं. 1977 मार्गशीर्ष बद 5 मंगलवार के दिन मिरिज़म श्री 1008 घासीरामजी महाराज को लेकर हम आये। उसी दिन गोरे डाक्टर साहिब ने महाराज साहिब को देखकर निश्चय कर दिया कि, मार्गशीर्ष बद 3 गुरुवार को सफा खाना में आकर डेरा करो, और मिगसर बद 8 को शुक्रवार को आपरेशन किया जायेगा।

हम इस बात के विचार में थे कि अस्पताल में रहने से 4 बात साधुओं के कल्प से विरुद्ध पड़ेंगी। उसका बन्दोबस्त डॉक्टर साहिब से करना चाहिये।

जैसा कि 1. अस्पताल में नर्स वग़ैरह स्त्रीजाति सब काम करती है। और श्री महाराज साहिब स्त्रीजाति को छूते नहीं इसलिये स्त्री मात्र महाराज साहिब से स्पर्श न करे।

2. पानी वगैरह कोई भी चीज अस्पताल की काम में नहीं आनी चाहिये।

3. अस्पताल के सब कमरों में रोशनी जलती है परंतु महाराज साहिब के कमरे में रोशनी नहीं होनी चाहिये।

4. दूसरे कोई रोगी महाराज साहिब के कमरों में दोनों साथ वाले साधु महाराज के सिवा नहीं रहने चाहिये। इसी विचार में थे कि, इतने में ही श्री गुरु देवों के प्रताप से कोल्हापुर के सेठ फतहचंदजी श्रीमालजी जिन्होंने सातारा में श्री 1008 घासीरामजी से सम्यक्त्व ली थी आन मिले। और फतहचंदजी डाक्टर साहिव के पहिले से मुलाकाती होने के सिवा कोल्हापुर के महाराज साहिब के मर्जीदानों में हैं। इस वास्ते फतहचंदजी ने कहा कि, मैं कोल्हापुर से महाराज साहिब की सिफारिश डाक्टर साहिव के नाम लिखा लाऊंगा। जिसमें महाराज साहिब का कल्प के मुजब सव बन्दोवस्त हो जायगा। यह वात मार्गशीर्ष बद वुधवार की है।

उसके दूसरे दिन 7 गुरुवार को महाराज साहिब कोल्हापुर गुरुदेवों के प्रताप से अकस्मात् उनके किसी हजूरी का अप्रेशन कराने के लिये अस्पताल मिरिजम में आ गये उसी दिन श्री 1008 घासीलालजी महाराज साहिव भी डाक्टर साहिव के कथनानुसार अस्पताल में पहुंचे। सो सेठ फतहचंदजी ने महाराज साहिव से इन्ट्रोड्यूस (Introduce) श्री महाराज साहव को कराया और पीछे गोरे डाक्टर साहिब के रूवरू ही कोल्हापुर के महाराज ने श्री महाराज साहिव से धर्मसम्वन्धी वार्तालाप किया। उस समय श्रीमहाराज साहिव ने संस्कृत के अनेक गीता आदि ग्रंथों के श्लोकों से जैनधर्म का महत्व सिद्ध कर सुनाया जिन पर डाक्टर साहिव ने भी वहुत प्रसन्न होकर कहा कि, मैं भी जैनतत्वों को सुनना समझना चाहता हूं। उस समय महाराज साहिव के पास ऐसी हेन्डवुक मौजूद थी जिसमें ऊपर संस्कृत श्लोक और नीचे अंग्रेजी तरजुमा भी थे। वह किताव साहिव को दी सो साहिव ने वहुत खुशी से ले ली। उस वक्त में कोल्हापुर के राजा साहिव ने डाक्टर साहव से खास तौर पर इन शब्दों में सिफारस की कि, 'ये हमारे गुरु महाराज हैं आप कल इनका अप्रेशन वहुत सवझह और मेहरवानी से करें' इस वात का असर डाक्टर साहिव पर ऐसा हुआ कि, जो चारों वातें ऊपर लिख आये हैं उन सवका इन्तजाम महाराज साहिव के कल्प के अनुसार हुआ और अप्रेशन करते समय भी वहुत तवज्जह से काम किया और सातारा वाले सेठ मोतीलालजी को भी अप्रेशन के

समय में मौजूद रहने दिया। और खुद डाक्टर साहिब भी और अस्पताल के कुल कर्मचारी हिन्दू अंग्रेज वगैरह श्री महाराज साहिब को गुरु महाराज के नाम से बोलते हैं दोनों साधु महाराज और हम लोग महाराज साहिब के पास रात दिन हाजिर रहकर कल्प के अनुसार सेवा करने जाते हैं। और आहार पानी आदि का भी साधु-नियमानुसार ही काम चलता है।

अप्रेशन के पूर्व दिन कोल्हापुर राजा साहिब कोल्हापुर से खास श्री 1008 श्री घासीलालजी महाराज के दर्शनार्थ सेठ फतहचंदजी को तथा कोल्हापुर संस्कृत के पंडित दिगम्बरी जैन को साथ लेकर मिरिजम अस्पताल में आये और श्री महाराज के सामने कुर्सी पर बैठकर मूर्तिपूजन चातुवर्ण्य जैन सिद्धांत आदि विषयों पर $1\frac{1}{2}$ डेढ घंटा तक चर्चा की। और आते ही हाथ जोड़कर नमस्कार किया, और खड़े रहे। कहने से कुर्सी पर बैठे और पांव की जूती निकलवा कर कमरे से बाहिर भिजवा दी और अतिनम्रता से बात करते थे तथा महत्व की बात नोट करते जाते थे। पहिली दफे के सिवा इस वक्त भी महाराज से कोल्हापुर जरूर पधारने की विनती की और कहा कि, आपके जैन धर्म सिद्धांत मैं सुनूंगा और हमारे और लोगों को भी सुनाऊंगा।

डेरे पर जाकर सेठ फतहचंदजी से कहा कि, महाराज की बातें मुझे बहुत पसंद आई, महाराज को कोल्हापुर जरूर लाना। जिस समय राजा साहिब कोल्हापुर महाराज के पास आये थे, उस वक्त पं. दुःखमोचनजी भी मौजूद थे अतएव जान पहचान हो जाने से 2 वक्त डेरा पर पंडितजी को बुलाया और खूब मान देकर वार्तालाप करते रहे रात के 11 बजे सीक दी। उस समय में भी श्री 1008 श्री घासीलालजी महाराज साहिब के गुरु महाराज पद से हर बात में प्रशंसा करते थे। फक्त

श्री कोल्हापुर राजा साहिब के वास्ते मशहूर है कि, ये किसी देवी, देवता, पंडित, संन्यासी आदि को मान नहीं देते हैं और न हाथ जोड़कर किसी को नमस्कार करते हैं। परन्तु श्री 1008 घासीलालजी महाराज साहिब को हाथ जोड़कर आते जाते नमस्कार करने हरेक बातों में गुरु महाराज कहने नम्रतापूर्वक कोल्हापुर पधारने को बारंबार विनंति करने वगैरह सबब से सेठ मोतीलालजी साहिब ने ऐसा लिखा होगा सो ऊपर लिखी हकीकत से आप भी जैसा मुनासिब हो **गौर फरमाइए।**

मिरिज

मिशन हॉस्पिटल

प्राईवेट रूम नं. 2

अभी महाराज साहिब अस्पताल में हैं, 3-4 दिन में अस्पताल से रुकसद देने वास्ते साहिब ने कहा है। और साहिब ने यह भी कहा है कि आराम होने पर हमारे वंगले में आप जरूर आवें। हम धर्म विषय में बातचीत करना और जैन सिद्धांत सुनना चाहते हैं।

मुकाम सातारा शहर में स्वामीजी महाराज श्री 1008 श्री घासीलालजी महाराज, श्रीगणेशलालजी महाराज मय दूसरे साधुओं के साथ विराजमान थे। उस स्थानक में उनके पास महात्मा गांधीजी आए वह थोड़ी देर वाद ही मौलाना सोकतअलीजी मय दो दूसरे मुसलमान साहिव आए और महाराज श्रीघासीलालजी से हाथ जोड़ नमस्कार कर वैठ गये और कहा कि यह तखता

जो विछा है आपको इसके ऊपर बैठना चाहिये था। आपकी वह जगह है आप ज़मीन पर क्यों बैठे हैं। यहां तो हमारे बैठने का हक है। श्री घासीलालजी महाराज ने कहा कि तखते पर तो हम व्याख्यान के वक्त बैठते हैं और हम इस में कुछ ऊंच नीच नहीं खयाल करते हैं। साधु हैं। उसके वाद गांधीजी ने श्री घासीलालजी महाराज से कहा कि मैं जैन साधुओं और जैन सिद्धान्तों से अच्छी तरह वाकिफ हूं और मैं जहां मौका मिलता है आप साधुओं के पास जाता हूं और अच्छा जानता हूं मगर आप लोगों में 1 त्रुटि है वह यह है कि आप अपने श्रावकों को हाल के माफिक उत्तेजन नहीं देते हैं-सो यह त्रुटि निकाल देनी चाहिये। इस पर श्रीघासीलालजी महाराज ने जवाब दिया कि हमारा तालुक धर्म सम्बन्धी बातों से है सो हम जैसी हमारे धर्म में रीति और आगना है उसी मुजब उपदेश करते हैं। उससे ज्यादह कम नहीं कर सकते। इसी किस्म की बातचीत में करीब 25 मिनट के हो गये थे और दोनों महात्मा की फेर बातचीत करने की रुचि थी मगर थानक से बाहर सैकड़ों आदमी की भीड़ लग गई थी उससे बहुत से आदमी हर किस्म के महात्मा गांधीजी की जय बोलते अंदर एकदम घुस आये और महात्मा गांधीजी के पांव पड़ पड़कर उनकी और शौकतअली की जय वोलने लगे और घेर लिया जिससे महात्मा गांधीजी और शौकतअलीजी दोनूं ने श्रीघासीलालजी महाराज से हाथ जोड़ नमस्कार कर ली और बिदा हो गए।

नकल

ता. 18-12-1920 ई.

श्री :

श्रीमन्साहू छत्रपति कोल्हापुर नरेश प्रत प्रशंसापत्रस्य प्रतिकृतिः

श्रीमतां श्री 1008 मोतीलालजी महाराजानां पूज्यप्रवर श्री 1008 श्री जवाहिरलालजी महाराजनां सुशिष्यैः श्री 1008 घासीलालजी महाराजैः समगंसि मया मिरजाभिध ग्रामस्य भैषज्यालये। प्रागेव श्रुतैद्वृत्तान्तावयं सति साक्षात्कारेऽप्राक्ष्म मूर्त्तिपूजादि प्रधान जैन तत्त्व विषयान्। रुग्णासनारीना अपि एते महाराजा नः तथा सर्व विषयानुदातारिखुर्येन जैनशास्त्रादिचार्यादि प्रधानोपाधिमाधातु मर्हन्तीति मामकीनानुमतिः।

यध मी जनताभिः स्युः प्रोत्साहितास्तदा भवेयुर्भारत भाग्य भानून्नायकाः साधव इति मि. मार्ग. शु. 8 शनिवासरे संवत् 1977

हस्ताक्षर साहू छत्रपति कोल्हापुराधीशस्य

अधोविन्यस्तरेखाद्वयस्थले.

(Sd.) साहू छत्रपति खुद.

COPY

AMERICAN PRESBYTERIAN

Missian Hospital Miraj

18th December 1920.

This is to Certify that Mr. Ghasilal Sadhu had been a patient in this hospital from 2nd December 1920 to 16th

December 1920 while under my treatment in this hospital the patient was not touched by any nurse or a woman. He was put in a private room alone and he used no eatable or drinking loater etc. from the hospital.

(Sd.) C.E. Vail B. A. M. D.

शांति-कामन

(ले. श्रीमज्जैनधर्मोपदेष्टापूज्यश्री श्रीमाधवमुनिजी)।

विज्ञ युवराज श्री जवाहर लालजी मुनीश,
शान्तिता के साथ ऐक्यता का साज-साजेंगे।
द्वैतता मिटाय वातशल्यता हृदयमें लाय,
सर्व सम्प्रदाओं के हितेषी आप बाजेंगे।
लाजेंगे विपक्ष लोक गाजेंगे गजेंद्र सम,
अहा! हा! हमारे सकल शोक थोक भाजेंगे।
पूज्य-पद पाय, सम्प्रदाय में बढ़ाय प्रेम,
प्रतिदिन प्रताप दूनों पाते पट्ट-राजेंगे।।1।।

महीयर स्टेट के दीवान साहब के साथ हुए इकरारनामे का दस्तावेज

III.

The killing of goats and animals in any public temple in in the Maihar State before or in the name of Sharda Devi or - any God or Goddess, is strictly prohibited by the Maihar State on humanitarian principles, and at the instance of Messrs Megh Jibhai Thoban and Shantidass Ashkaran J.P. of Cutch, Mandvi who have, in memory of the prohibition arranged to dedicate -- Rs 15,000/- to Devi Shardaji with a request that the same may be spent in charitable purposes. The state is pleased to accede to their request and, in consultation with them, has decided to erect a hospital at a cost of not less than the sum -- provided.

The hospital building shall be equipped, maintained and kept in repairs and all expenses borne by the state.

Two pillars shall be erected at the foot of - the Sharda Devi Hill bearing inscriptions in English and in - Hindi notifying to the public that killing of goats and other animals is prohibited, and that defaulters shall be punished.

If any animals or goats are dedicated to Sharda Devi or any other God or Goddess in any public temple in the state, they shall be taken charge of by the state and their - maintenance provided for.

Maihar C.I.
The 2nd September, 1929.

Dewan, Maihar State, C.I.

महीयर में हिंसा बन्द करने का फरमान

Maihar, 2nd September, 1920.

Marble Slabs bearing the undermentioned notes in English and Hindi will be fixed in two pillars to be erected at the foot of the Sharda Devi hill at Maihar.

Notice

Sacrifice of animals in the Maihar State before or in the name of Sharda Devi or any god or goddess in all public temples in the State is strictly prohibited by the State. No one shall, therefore, slaughter or sacrifice any animal in the name of any god or goddess. Defaulters will be punished with rigorous imprisonment which may extend to six months and to pay a fine up to Rs. 50/-.

श्री शारदादेवी पहाड़ी की तलहटी में लगा हिंदी तथा अंग्रेजी का नोटिस वोर्ड

शुद्धि-पत्र

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्ध	शुद्ध
3	25	उठकर	उठाकर
7	32	आत्मा समान	आत्मायें समान
12	26	सिमारिनी	सियारिनी
21	7	शुक्ल	शुक्ला
22	14	गड्डों	गड्ढों
22	15	गड्डों	गड्ढों
27	19	इनकी	ईस्वी
27	19	अपनी	उनकी
29	13	संचित	सचित
29	14	संचित	सचित
29	15	संचित	सचित
30	3	हुआ है मात्र	हुआ है पर मात्र
30	21	सामयिक	सामायिक
31	14	बेडच नदी	बेड़च नदी
34	23	द्युति	गति
39	22	इन्दियां	इन्द्रियाँ
39	30	पश्चातु	पश्चात्
47	19	घरवा	धरवा
47	27	स्नेहग्रह	स्नेहाग्रह
47	27	में कि	में भी
47	32	नररंक	नररत्न
50	27	राह उससे	राह पर उससे
59	22	विचलक्षण	विलक्षण
60	18	करने अपने	करने में अपने
66	12	किसी आचार्य	किसी कारण से वे आचार्य
68	5	लालजी	लालाजी
69	19-21	लालजी	लालाजी
69	19	जोड़ी से	जोड़े से
69	35	तरफ ले भेज	तरफ से भेज
72	17	शीताल	शीतल
72	25	परिसह	परिषह
73	20	सिलोक	श्लोक

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्ध	शुद्ध
85	17	तत्वज्ञ	तत्वज्ञों
85	26	लावजमा	लवाजमा
86	9	इससे लम्बे	इतना लम्बा
86	12	अपने वचन के	अपना वचन निभाने के
86	21	दर्शनियों	दर्शनार्थियों
86	22	बाहर लाया करो	बहिर कर लाया करो
86	30	संगति	संगीत
87	2	कांग्रेस के	कांग्रेस अधिवेशन के
87	5	की जो कि	जो कि
87	23	चिकित्सा किये बाद	चिकित्सा एवम् परीक्षा किये बाद
87	24	गांधी के/करती है	गांधी की/करती है।
87	28	अशिक्षित	प्रशिक्षित
87	31	लेकर संभोग किये	लेने पर विलग किये
87	32	संसारी	सांसारिक
88	6	पड़ते और	पड़ते हैं और
89	5	कुपात्र मात्र	कुपात्र याने मात्र
90	29	प्रारंभ त्याग	प्रारंभ काय बंद रखने का त्याग
94	18	स्वास्याय प्रतिलेहना	स्वाध्याय प्रतिलेखना
96	3	प्राणि रक्षा	प्राणी रक्षा (संकेत में तीसरी पंक्ति)
96	3	प्रभृति	आदि (संकेत में तीसरी पंक्ति)
97	31	अपने को	हमको
98	22	जानकर	जानकार
99	19	विशेष विवेचन	विशेष विवेचन होता था।
102	19	देवदूत 'यह	देवदूत कहता है कि, 'यह
102	20	जाना मेरे दूतों	मेरे दूतों
102	22	को क्या मैं क्या	को मैं क्या
102	24	अदम देवदूत से	अदम ने देवदूत से कहा
103	16	प्रभू के	मेरे
104	13	को बिठाया	को उठाकर विठाया
106	11	अलौकिक है।	अलौकिक था।
107	28/29	उसे उसका हीं धर्म हमें समझा रहे हैं।	उन्हें उनका ही धर्म समझाया जा रहा है।
110	24	सनीटोरियम	सेनीटोरियम
116	23	काल्पनिक	काल्पनिक न होने से

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्ध	शुद्ध
117	25	निपुणत की	निपुणता की
118	3	नवकारसी	नवकरसी
119	26	मुझ पढ़ाओ	मुझे भी पढ़ाओ
120	14	जाता है,	जाता था,
127	25	तपस्वीजी	तपस्विनी
127	28	वायु-वाने दर्द से	वायु-विकार से
128	1	पहिले	वे पहले
135	18	कि यह हिंसा	कि जब तक यह हिंसा
138	15	सिफारिश	निर्देशन
138	27	भी महात्मा	भी उन महात्मा
144	1	सूल	शूल
147	23	जावरे वाले	जावरा वाले
149	13	महाराजा	महाराणा
152	10	जावक	जावद
153	25	पर व कहने	पर वह कहने
154	2	अज्ञान	अज्ञानी
156	10	धेरीलालजी	गेहरीलालजी
156	12	आता है	आ रहा है
157	28	आचार्य	आर्याजी
160	18	संघ वड़ी	संघ ने वड़ी
162	17	खेरादे	खेरोदा
173	13	महाराज	समाज
181	2	करने अपरिमित	करने की अपरिमित
181	19	उसकी की ओर	उसकी ओर
184	27	जानकारों	जानवरों
186	27	जावाद	जावद
193	25	निर्नाण	निर्वाण
205	30	पंचम प्रस्तताव	पंचम प्रस्ताव
207	18	ऐसे अन्य	ऐसे प्रसंग अन्य
207	20	साथ दर्शन शास्त्र	साथ जब दर्शन शास्त्र
208	10	सचारित्र यही	सद्चारित्र की